वामन पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित)



सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,

२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





प्रथम संस्करण
१९७०



मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

दो शब्द

'वामन पुराण' के द्वितीय खण्ड मे दैत्यवंश के पूर्व पुरुषो की कथाएं मुख्यरूप से कही गई। किस प्रकार 'भोगवादी' असुरगण आरम्भ में 'तपस्या' करके देव शक्तियों (शिव, ब्रह्मा आदि) से वरदान प्राप्त करते थे और फिर संसार का आधिपत्य प्राप्त करने के लिए देवताओं के साथ संघर्ष करने लगते। यद्यपि भारतीय-धर्म के अनुयायी अध्यात्म-वादियों ने 'देवासुर संग्राम' की कथाओ को सात्विक और तामसिक शक्तियो का संघर्ष माना है, पर पुराणकारों ने उनको बड़े बड़े उपाख्यानों का रूप देकर ऐसी रोचक कथायें लिखी हैं कि श्रोतागण उन्हे बडी संलग्नता से सुनते हैं और उनसे धर्म की महत्ता और अधर्म के नाश की शिक्षा ग्रहण करते हैं। जैसा हमने इस खण्ड के अन्त में दिये गये 'उपसंहार' मे ,बतलाया है इन कथाओ मे अवश्य ही कल्पना का बहुत अधिक पुट है, तो भी उनका सूत्र कुछ वैदिक वर्णनों और कुछ ऐतिहासिक घटनाओ से लिया गया है। जैसा हम अन्यत्र लिख चुके हैं किसी समय यहाँ के निवासी समुद्र पार मैसोपोटामियाँ आदि के प्रदेशो को 'पाताल लोक' की तरह मानते थे और वहाँ के रहने वालों को असुर कहा गया था। वे असुर समय-समय पर भारतवर्ष पर आक्रमण करके यहाँ अपना राज्य स्थापित करने की चेष्टा किया करते थे, पर कुछ समय पश्चात् उनको पराजित होकर फिर अपने मूल देश को ही वापस चला जाना पड़ता था। इस प्रकार की घटनाओ मे सबसे अन्तिम घटना बलि राजा की हुई जिसको 'वामन देव' ने पराभूत करके स्थायी रूप से 'पाताल' मे ही रहने का आदेश दिया।

चाहे ये घटनायें देश के एक भाग मे ही सीमित रही हो, पर उनकी चर्चा दूर-दूर तक फैली और जिस प्रकार ऐसे मौखिक कथोपकथन परिवर्तित होते-होते एक नया ही रूप धारण कर लेते हैं उसी प्रकार उस समय के 'कथाकारों' ने इसमें वीर, शृंगार, अद्भुत रसो का समावेश करके एक नहीं पचासों उपाख्यान रच डाले। 'वामन पुराण' के इस

द्वितीय खण्ड में शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड-मुण्ड, महिषासुर, तारक, मुर, अन्धक आदि अनेक असुर वीरों के आख्यान समन्वित किये गये हैं। इन सब का सम्पर्क 'बलि-वामन' उपाख्यान से इस आधार पर जोड़ा गया है कि राजा बलि जिस दैत्यवंश का सम्राट था, वे समस्त असुर गण उसके पूर्वज थे। महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ आदि के उपाख्यान तो 'दुर्गा सप्तशती' और 'देवी भागवत' आदि में बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन किये गये हैं। अन्य सब पुराणों में भी, विशेष कर शैव पुराण में उनका वर्णन पर्याप्त पाया जाता है। इस प्रकार का वर्णन किसी ने संक्षेप में और किसी ने बहुत विस्तार के साथ किया है, पर सब में यही दर्शाया गया है कि जब कोई नृपति या अधिपति अहंकार से भर जाता है अथवा अनीति पर उतारू हो जाता है तो उसका पतन अवश्यम्भावी होता है। इस प्रकार की शिक्षा को मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी ही कहा जायगा। यदि लोग इसका अनुसरण करें तो संसार में से बहुत से झगड़े कलह और कष्ट कम हो सकते हैं।

दैत्यों का जो वर्णन पुराणों में किया गया है, उससे वे राक्षस अथवा रक्त-पिपासु नहीं जान पड़ते, वरन् पुराणकारों ने उनके नगरों, महलों और रहन-सहन का जो वर्णन किया है उससे ऊँचे दर्जे के शासक, कलाप्रेमी और सुसंस्कृत मनुष्य प्रतीत होते हैं। वे लोग समुद्र में नौका चलाने में निपुण थे, इस लिये दूर-दूर जाकर अपनी शक्ति से धन-सम्पत्ति को एकत्र कर लाते थे। अगर उनमें कोई दोष था तो यही कि उनको अपनी शक्ति और सत्ता का अहंकार बहुत जल्दी हो जाता था जिससे वे दूसरों के अधिकारों पर हस्तक्षेप करके सर्वोच्च पदवी को ही अभिलाषा करने लगते थे। इसी कारण आर्य जाति के मुख्य नेताओं (देवताओं) से उनका संघर्ष हो जाता था और अन्त में विष्णु भगवान या इन्द्र द्वारा उनको पराभूत किया जाता था।

इससे हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि दैत्य, असुर अथवा राक्षसों को किसी एक खास जाति का मानना आवश्यक नहीं है। वरन् पुराणकारों की दृष्टि से तो जो लोग धर्म के विरुद्ध आचरण करते थे,

अथवा जो वैदिक कर्मकाण्ड के विरोधी होते थे वे सब दैत्य, असुर आदि थे। 'कल्कि पुराण' में तो इसी कारण बौद्ध, जैन आदि सभी अवैदिक सम्प्रदाय वालों को दैत्यों के रूप में चित्रित किया है। इतना तो हम भी कह सकते हैं कि जो लोग सात्विक प्रवृत्तियों को त्याग कर राजसी और विशेष कर तामसी प्रवृत्तियों में संलग्न रहते हैं वे दैत्य या असुर ही हैं। तामस प्रवृत्तियाँ हर हालत में व्यक्ति और समाज के लिए पतनकारी होती हैं। चाहे उनके कारण धन वैभव और सुख साधनों की कितनी भी वृद्धि होजाय पर उससे मनुष्य का मानसिक क्षेत्र कलुषित और संकीर्ण होने लग जाता है। इसका अन्तिम परिणाम स्वार्थपूर्ण संघर्ष ही होता है। उस दृष्टि से हम असुरों और देवों (देवताओं की संगठित शक्ति) के युद्धों को शिक्षाप्रद ही कह सकते हैं, चाहे उनमें वास्तविकता का अंश अत्यल्प हो और वे सृष्टि निर्माण और विकास की घटनाओं के आधार कल्पना प्रसूत हों।

'वामन पुराण' में बलि के यज्ञ में वामन देव ने आगमन और तीन पग भूमि का दान माँगकर उसे पाताल लोक से आबद्ध कर देने की कथा दो बार वर्णन की गई है। एक बार ३१वें अध्याय मे और दूसरी ६०वें अध्याय मे। कथानक बिल्कुल एक है, पर वे अलग-अलग लेखकों की रचना प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार महिषासुर की कथा भी दो बार दी गई है। इस तरह की पुनरावृत्तियाँ पुराणों मे अनेक स्थानों पर मिलती रहती हैं। दो अलग-अलग पुराणों में तो कितने वर्णन ऐसे दिखाई दे जाते हैं जिनकी घटनायें ही नहीं भाषा भी पूरी तरह या अधिकांश मे एक ही होती है। श्राद्ध वर्णन के अध्यायों में यह बात प्रायः देखने में आती है। पुराणों के कथावाचक इसका कारण न जाने क्या बतलाते होंगे, पर हमारा अनुमान यही है कि विभिन्न कथावाचक समय-समय पर इनमें अपनी रुचि के अनुसार जोड़-तोड़ करते रहते थे। 'वामन-बलि' का जो चरित्र आरम्भ के अध्यायों मे वर्णन किया गया और वह किसी अन्य कथावाचक को कम पसन्द आया तोउन्होंने अपनी रुचि के अनुसार उसे नये रूप में लिख कर अपनी पुस्तक के अन्दर रख

लिया और अपने श्रोताओं को उसी को सुनाने लगे। कुछ समय मे उनके साथी अन्य कथावाचक भी उसे सुनाने लगे और कुछ वर्षों के भीतर धीरे धीरे वह वास्तव मे शास्त्र का अंग बन गया। इस प्रकार के मिलते-जुलते वर्णन 'वामन पुराण' में इनके सिवा और भी कई स्थानों पर हैं।

अन्य पुराणो मे से हमने ऐसी पुनरावृत्तियों को प्राय. अलग कर दिया है पर वामन पुराण पहले ही छोटा था, इस कारण इसको ज्यों का त्यों पूरा छापने की योजना बना ली गई थी। अब इसमे से किसी कारण वश तीन छोटे-छोटे वर्णन छूट गये हैं, बाकी पूरा पुराण जैसे का तैसा दिया गया है। ग्रन्थ के अन्त मे अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथो से बलि-वामन उपाख्यान के विभिन्न विवरण भी एकत्रित करके प्रकाशित कर दिये है। आशा है इससे इसकी उपयोगिता अधिक बढ जायगी और पाठक इसका मनन करके लाभ उठायेंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय सूची

वामन पुराण

(द्वितीय खण्ड)

५३—गौरी विवाह-वर्णन

समागतान्सुरान्दृष्ट्वा नन्दिराख्यातवान्विभोः ।
अथोत्थाय हरिं भक्त्या परिष्वज्य न्यपीडयत् ॥१

ब्रह्माणं शिरसा नत्वा समाभाष्य शतक्रतुम् ।
आलोक्यान्यान्सुरगणान्संभावयत्स शंकरः ॥२
गणाश्च जय देवेति वीरभद्रपुरोगमाः ।
शैवाः पाशुपताद्याश्च विविशुर्मन्दराचलम् ॥३

ततस्तस्मान्महाशैलं कैलासं सह दैवतैः ।
जगाम भगवाञ्छर्वः कर्तुं वैवाहिकं विधिम् ॥४

ततस्तस्मिन्महाशैले देवमातादितिः शुभा ।
सुरभिः सुरमा चान्याश्चक्रुर्मण्डनमाकुलाः ॥५

महास्थिशेखरी चारुरोचनातिलको हरः ।
सिंहाजिनी चातिनीलभुजंगकृतकुण्डलः ॥६

महाहिरत्नवलयहारकेयूरनूपुरः ।
समुन्नतजटाभारो वृषभस्थो विराजते ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—वहां पर समागत हुए सुरों को देखकर नन्दी ने विभु से कहा था। इसके अनन्तर भगवान् हर ने उठ कर हरि

को भक्तिभाव से मिलकर निपीड़ित किया था ॥१॥ फिर ब्रह्माजी को शिर टेक कर प्रणाम किया और इन्द्रदेव से सम्भाषण किया था और अन्य सभी सुरगणों को देखकर शंकर ने उन का भी समादर किया था ॥२॥ वीरभद्र जिनका नायक थे वे सभी गण 'जयदेव'—ऐसा कहते हुए वहाँ पर मन्दराचल में प्रविष्ट हुए थे, उनमें शैव तथा पाशुपत आदि सभी थे ॥३॥ इसके उपरान्त उससे महान् शैल कैलास पर भगवान् शंकर समस्त देवगणों के सहित वैवाहिक विधि को सम्पन्न करने के लिये चले गये थे ॥४॥ इसके पश्चात् उस महान् शैल पर परम शुभा देवमाता अदिति—सुरभि, सुरमा और अन्यों ने समाकुल होकर मण्डन किया था ॥५॥ महान् अस्थि शेखर वाले—चारु, रोचना के तिलक से समन्वित हर को किया गया था। सिंह के चर्म से मण्डित और अत्यन्त नीले भुजगों से कुण्डलों की रचना वाले उनको बनाया था। ॥६॥ महान् जो सर्प थे उनके रत्नों के वलय—केयूर और नूपुर बनाये गये थे। समुन्नत जटाओं के भार से संयुत वृषभ पर विराजमान शंकर अत्यन्त शोभित हो रहे थे ॥७॥

तस्याग्रतो गणाः स्वैः स्वैरारूढा यान्ति वाहनैः ।
देवाश्च पृष्ठतो जग्मुर्हुताशनपुरोगमाः ॥८
वैनतेय समारूढः सह लक्ष्म्या जनार्द्दनः ।
प्रयाति देवपार्श्वस्थो हंसेन च पितामहः ॥९
गजाधिरूढो देवेन्द्रश्छत्रं शुक्लपटं विभोः ।
धारयामास विततं सहेन्द्राण्या सहस्रधृक् ॥१०
यमुना सरितां श्रेष्ठा वालव्यजनमुत्तमम् ।
श्वेतं प्रगृह्य हस्तेन कच्छपे संस्थिता ययौ ॥११
हंसकुन्देन्दुसङ्काशं वालव्यजनमुत्तमम् ।
सरस्वतीसरिच्छ्रेष्ठा गजारूढा समादधे ॥१२
ऋतवः षट् समादाय कुसुमं गन्धसंयुतम् ।
पञ्चवर्णं महेशार्थे जग्मुस्ते कामचारिणः ॥१३

मत्तमैरावतनिभं गजमारुह्य वेगवान् ।
अनुलेपनमादाय ययौ तत्र पृथूदकः ॥१४

उनके आगे समस्त गण अपने-अपने वाहनों के द्वारा समारूढ़ होकर जारहे थे । हुताशन (अग्नि) जिनमे अग्रगामी थे ऐसे सब देवगण भी पीछे २ जारहे थे ॥८॥ लक्ष्मी के साथ गरुड़ पर समारूढ़ होकर भगवान् जनार्दन तथा हंस पर स्थित पितामह भी देवों के पार्श्व भाग मे चले जारहे थे ॥६॥ गजेन्द्र पर स्थित देवेन्द्र थे जिनका शुक्ल पर वाला छत्र था जिसको धारण कर रक्खा था । ऐसे इन्द्र देव भी जिनके सहस्र नेत्र थे इन्द्राणी के साथ में थे ॥१०॥ सरिताओं मे परम श्रेष्ठ यमुना उत्तम बाल व्यजन जो श्वेत था हाथ से ग्रहण करके कच्छप पर समारूढ़ होकर जा रही थी ॥११॥ हंस, कुन्द, इन्दु के समान परमोत्तम बाल व्यजन ग्रहण कर सरिताओं में श्रेष्ठ सरस्वती गज पर समारूढ़ थी ॥१२॥ छै ऋतुऐं भी पाच वर्णों वाले गन्ध से युक्त कुसुमों को लेकर महेश के लिये कामचारी होती हुई साथ में गईं थी ॥१३॥ पृथूदक तीर्थ ऐरावत के तुल्य मत्त हाथी पर समारूढ़ होकर वेगयुक्त अनुलेपन लेकर वहाँ पर शंकर की बरयात्रा मे गया था ॥१४॥

गन्धर्वास्तुम्बरुमुखा गायन्तो मधुरस्वरम् ।
अनुजग्मुर्महादेवं वादयन्तश्च किन्नराः ॥१५
नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव स्तुवन्तो मुनयश्च तम् ।
गन्धर्वा यान्ति देवेशं त्रिणेत्रं शूलपाणिनम् ॥१६
एकादश तथा कोटचो रुद्राणां तत्र वै ययुः ।
द्वादशैवादितेयानामष्टौ कोटचो वसूनपि ॥१७
सप्तषष्टिस्तथा कोटचो गणानामृषिसत्तमाः ।
चतुर्विंशत्तदा जग्मुर्गणानामूर्ध्वरेतसाम् ॥१८
असङ्ख्यातानि यूथानि यक्षकिन्नररक्षसाम् ।
अनुजग्मुर्महेशानं विवाहाय समाकुलाः ॥१६
ततः क्षणेन देवेशः क्ष्माधराधिपतेस्तलम् ।
संप्राप्तश्चगमञ्छैलाः कुञ्जरस्थाः समन्ततः ॥२०

ततो ननाम भगवांस्त्रिणेत्रः स्थावराधिपम् ।
शैलाः प्रणेमुरीशानं ततोऽसौ मुदितोऽभवत् ॥२१

(तुम्बरु प्रमुख गन्धर्व मधुर स्वर से गायन करते हुए तथा किन्नरगण वाद्यों का वादन करते हुए महादेव के पीछे २ जारहे थे ॥१५॥ अप्सराऐ नृत्य करती हुई जा रही थी और मुनिगण स्तवन करते हुए गमन कर रहे थे ।) त्रिनेत्र भगवान् शूलपाणि के साथ गन्धर्व भी थे ॥१६॥ वहा पर उस वर यात्रा मे एकादश करोड रुद्र थे । बारहों आदित्य और आठ करोड वसुगण थे ॥१७॥ हे ऋषि सत्तमो ! इस तरह से सड़सठ करोड गण थे । ऊर्ध्वरेता गण चौबीस करोड थे ॥१८॥ यक्ष, किन्नर और राक्षसो के यूथ तो इतने थे कि उनकी कोई सख्या ही नहीं थी । सभी लोग महेश्वर के पीछे २ जारहे थे जोकि शकर के विवाह देखने के लिये परम समाकुल हो रहे थे ॥१९॥ इसके पश्चात् थोडी ही देर मे भूमिधरों के अधिपति के तल मे देवेश्वर प्राप्त होगये थे और कुञ्जरस्थ समस्त शैल चारो ओर से वहा आगये थे ॥२०॥ इसके उपरान्त भगवान् त्रिनेत्र ने स्थावरो के स्वामी को प्रणाम किया था । सब शैलों ने ईशान को प्रणाम किया था । इसके बाद में वह बहुत प्रसन्न हुए थे ॥२१॥

समं सुरैः पार्षदैश्च विवेश वृषकेतनः ।
नन्दिना दर्शिते मार्गे शैलराजपुर महत् ॥२२
जीमूतकेतुरायात इत्येव नगरस्त्रियः ।
निजकर्म परित्यज्य दर्शनायाद्दताभवन् ॥
माल्यदाम समादाय करेणैकेन भामिनी ।
केशपाश द्वितीयेन शकराभिमुखी गता ॥२४
अन्याऽलक्तकरागाढ्य पादं कृत्वाऽऽकुलेक्षणा ।
अनलक्तकमेक हि हर द्रष्टुमुपागता ॥२५
एकेनाक्ष्णाऽञ्जितेनैव श्रुत्वा भीममुपागतम् ।
साञ्जना च प्रगृह्यान्या शलाका सुष्ठु धावति ॥२६

अन्या सरशनं वास. पाणिनाऽऽदाय सुन्दरी।
उन्मत्तेवागमन्नग्ना हरदर्शनलालसा ॥२७
अन्याऽतिक्रान्तमीशानं श्रुत्वा स्तनभरालसा।
अनिन्दत कुचौ बाला यौवनं स्व कृशोदरी ॥२८

फिर सब सुरगण और पार्षदों के सहित भगवान् वृषकेतन ने प्रवेश किया था। नन्दी ने मार्ग का प्रदर्शन कराया था उसी मार्ग से हिमाल शैलराज के पुर मे शिव ने प्रवेश किया ॥२२॥ जीमूतकेतु प्रभु आगये हैं–इसी कारण से नगर की नारियाँ अपना सब कार्य्य छोड़कर उनके दर्शन करने के लिये आतुर होगई थी ॥२३॥ उनमे एक भामिनी हाथ मे माला की डोरी लेकर और दूसरे हाथ से अपने केशपाश को सम्हालती हुई शंकर के सामने हुई थी ॥२४॥ अन्य नारी अलक्तक के राग से संयुक्त पाद को करके बहुत ही समाकुलित होती हुई दूसरे चरण पर अलक्तक नहीं लगा कर ही हर को देखने के लिये वहाँ आगई थी ॥२५॥ तीसरी ललना एक ही नेत्र में अञ्जन डालकर जैसे ही उसने सुना दूसरे नेत्र को अञ्जन रहित ही छोड़कर वेग से वहां उपस्थित हो गई थी। उसके हाथ मे अञ्जन की शलाई भरी हुई लगी हुई थी और बिना ही अञ्जन डाले दौड़ती आ रही थी ॥२६॥ अन्य सुन्दरी रसना के सहित वस्त्र को हाथ मे लेकर उन्मत्त की भाँति नग्न ही हरदर्शन लालसा से वहाँ चली आई थी ॥२७॥ अन्या भामिनी हर को अतिक्रान्त हुए सुनकर स्तनो के भार से अत्यन्त आलस्य मे भरी हुई कृशोदरी बाला अपने यौवन और उस यौवन मे बढ़े हुए भारी स्तनो की निन्दा कर रही थी क्योंकि उन्हीं के कारण से वह शीघ्र गामिनी न हो सकी थी ॥२८॥

इत्य स नागरस्त्रीणा क्षोभ संजनयन्हर।
जगाम वृषमारूढो दिव्य श्वशुरमन्दिरम् ॥२९
ततः प्रविष्ट प्रसमीक्ष्य शम्भुं शैलेन्द्रवेश्मन्यबला ब्रुवन्ति।
स्थाने तपो दुश्चरमम्बिकायाश्चीर्णं महानेष सुरस्तु शम्भु॥३०

स एष येनाङ्गमनङ्गतां कृतं कन्दर्पनाम्नः कुसुमायुधस्य ।
क्रतोः क्षयी दक्षविनाशकर्त्ता भगाक्षिहा शूलधरः पिनाकी ॥३१
नमो नमः शंकर शूलपाणे मृगारिचर्माम्बर कालशत्रो ।
महाहिहाराङ्कितकुण्डलाय नमो नमः पार्वतिवल्लभाय ॥३२
इत्थ संस्तूयमानः सुरपतिविधृतेना तपत्रेण शंभुः
सिद्धैर्वन्द्यः सपक्षैरहिकृतवलयी चारुभस्मोपलिप्तः ।
अग्रस्थेनाग्रजेन प्रमुदितमनसा विष्णुना चानुगेन
वैवाही मंगलाढ्या हुतवहसहितामारुरोहाथ वेदीम् ॥३३
आयाति त्रिपुरान्तके सहचरैः सार्धं च सप्तर्षिभिर्व्यं—
ग्रोऽभूद्गिरिराजवेश्मनिजनः कन्यासमालङ्कृतौ ।
व्याकुल्य समुपागताश्च गिरयः पूजादिना देवताः
प्रायो व्याकुलिता भवन्ति सुहृदः कन्याविवाहोत्सुकाः ॥३४
प्रसाध्य देवीं गिरिजां ततः स्त्रियो
दुकूलशुक्लाभिवृतागयष्टिकाम् ।
आज्ञां सुनाभेन तदोत्सवे कृते
सा शंकराभ्यां शमथोपपादिता ॥३५

इस प्रकार से भगवान् हर ने वहां नगर की स्त्रियों में बड़ा भारी क्षोभ समुत्पन्न कर दिया था और वृषभ पर समारूढ होकर भगवान् शंकर अपने श्वशुर के मन्दिर में प्रविष्ट होगये थे ॥२९॥ इसके उपरान्त जब शम्भु ने प्रवेश कर लिया था तो शैलेन्द्र के घर मे उनको देखकर सब नारियाँ आपस मे बोल रही थी । अम्बिका का दुश्चर तप उचित ही था । यह सुर शम्भु तो एक महान् देव हैं ॥३०॥ यह वही देवेश्वर तो हैं जिनने कन्दर्प नाम वाले कुसुमायुध के अंग को नष्ट कर उसे अनंग बना दिया था । क्रतु के क्षय करने वाले और दक्ष प्रजापति के विनाश करने वाले तथा भग के नेत्र के नाशक शूलधारी और पिनाक धनुष वाले भी यही हैं ॥३१॥ हे शंकर ! आपको बारम्बार नमस्कार है । आप तो शूलपाणि हैं और व्याघ्र के चर्म के धारण करने वाले तथा काल के भी शत्रु हैं । महान् सर्पों के हार तथा कुण्डलों से विभूषित

पार्वती वल्लभ प्रभु के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥३२॥ इस प्रकार से सस्तवन किये गये शम्भु जिनका आतपत्र (छत्र) सुरपति ने लगा रक्खा था, मपक्ष सिद्ध गणों के द्वारा वन्द्यमान होते हुए, सर्पों के वलय धारण करने वाले तथा चारु भस्म में लेपित अंगों वाले, जिनके आगे में स्थित अग्रज (ब्रह्मा) थे और पीछे की ओर प्रसन्न मन वाले विष्णु थे, विवाह के समय में पहिनी जाने वाली माला से सयुत होकर अग्नि के सहित वेदी पर आरूढ होगये थे ॥३३॥ वहा त्रिपुरान्तक के आने पर जिसके साथ सप्तर्षि सहचर थे गिरिराज के घर में कन्या के समालकरण करने में जन बहुत व्यग्र हो रहे थे। सभी पर्वत व्याकुलता को प्राप्त हो रहे थे और पूजादि के कार्य से सब देवगण भी व्याकुलित थे तथा समस्त सुहृद्गण कन्या के विवाह सम्पन्न कराने में उत्सुकता धारण किये हुए थे ॥३४॥ इसके पश्चात् सभी स्त्रियाँ दुकूल अर्थात् शुक्ल वस्त्र से देवी पार्वती के अंगों को समावृत करके गिरिजा का प्रसाधन कर चुकी थी, सुनाभ भाई के द्वारा उस उत्सव के किये जाने पर वह पार्वती शंकर के समीप मे उपस्थित की गई थी ॥३५॥

ततः शुभे हर्म्यतले हिरण्मये
स्थिताः सुराः शंकरकालिचेष्टितम् ।
पश्यन्तिदेवोऽपि समं कृशाङ्ग्या
लोकानुजुष्टं पदमाससाद ॥३६

यत्र क्रीडा विचित्रा सकुसुमतरवो वारिणो विन्दुपातैः
गन्धाढ्यैर्गन्धचूर्णैः प्रविरलमवनी गुण्ठिनी गुण्डिकायाम् ।
मुक्तादामैः प्रकामं हरगिरितनयाक्रीडनार्थं तदाघ्नन् ।
पश्चात्सिन्दूरपुञ्जैरविरतविततैश्चक्रतुः क्ष्मासुरक्ताम् ॥३७

एवं क्रीडा हरः कृत्वा समं च गिरिकन्यया ।
आगच्छद्दक्षिणा वेदिमृषिभिः सेविता दृढाम् ॥३८

अथाजगाम हिमवाञ्छुक्लाम्वरधरः शुचिः ।
पवित्रपाणिरादाय मधुपर्कमथाकुलम् ॥३९

उपविष्टस्त्रिणेत्रस्तु शाक्रीं दिशामपश्यत ।
सप्तर्षिकाश्च शैलेन्द्रः सूपविष्टो विलोकयन् ॥४०
सुखासीनस्य शर्वस्य कृताञ्जलिपुटो गिरिः ।
प्रोवाच वचनं श्रीमान्धर्मसाधनमात्मनः ॥४१

इसके उपरान्त परम शुभ हिरण्मय हर्म्य तल में स्थित सुरगण भगवान् शंकर के कान्ति चेष्टित को देख रहे थे। देव भी वृन्दांगी के साथ लोकों का अनुसेवन करने के लिये उस स्थान पर प्राप्त होगये थे ॥३६॥ जिस स्थल में विविध प्रकार वाले पुष्पों से समन्वित वृक्ष जल की बिन्दुओं के पातों द्वारा क्रीड़ा कर रहे थे तथा भूमि पर गन्ध पूर्ण चूर्णों के द्वारा कहीं-कहीं पर गुण्ठित मुक्ता दामों के द्वारा हर और गिरि तनया की क्रीड़ा के लिये प्रक्षेप किये जारहे थे एवं अविरल विततं सिन्दूर के पुंजों के द्वारा भूमि के भाग को एक दम सरक्त कर दिया था ॥३७॥ इस प्रकार से भगवान् हर गिरिकन्या के साथ क्रीड़ा करके ऋषियों के द्वारा सेवित दृढ़ दक्षिण वेदी पर चले गये थे ॥३८॥ इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारी परम पवित्र होकर वहाँ पर हिमवान् विशुद्ध हाथ में मधुपर्क लेकर समाकुलित होते हुए आगये थे ॥३९॥ भगवान् त्रिनेत्र ऐन्द्री दिशा को देख रहे थे । शैलेन्द्र वहाँ सप्तर्षियों को देखते हुए उपविष्ट हो गये थे ॥४०॥ सुख सस्थित भगवान शम्भु के आगे हाथ जोड़कर श्रीमान् अपनी आत्मा के धर्म साधन वाले गिरिराज बोले-॥४१॥

मत्पुत्री भगवन्काली पौत्री च पुलहाग्रजे ।
पितॄणामपि दौहित्री प्रतीच्छेमां मयोदिताम् ॥४२
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रो हस्तं हस्तेन योजयन् ।
प्रादात्प्रतीच्छ भगवन्निदमुच्चैरुदीरयन् ॥४३
न मेऽस्तिमाता न पितातथैव न ज्ञातयोवाऽपिचबान्धवावा: ।
निराश्रयोऽहगिरिश्रृङ्गवासीसुताप्रतीच्छामितवाद्रिराज ॥४४
इत्येवमुक्त्वा वरदोऽवपीडयत्करंकरेणाद्रिकुमारिकाया: ।
सा चापि सस्पर्शमवाप्य शभो. परा मुद लब्धवती सुरर्षे ॥४५

तथाऽधिरूढो वरदोऽथ वेदिं सहाद्रिपुत्र्या मधुपर्कमश्नन्।
दत्त्वाचलाजान्कलमस्यशुक्लास्ततोविरञ्चोगिरिजामुवाच ह॥
कालि पश्येशवदनं रम्यं शशधरप्रभम्।
समदृष्टिः स्थिरा भूत्वा कुरुष्वाग्नेः प्रदक्षिणाम् ॥४७
ततोऽम्बिका हरमुखे दृष्टे शैत्यमुपागता।
यथार्करश्मिसंतप्ता प्राप्य वृष्टिमिवावनी ॥४८
भूयः प्राह विभोर्वक्त्रमीक्षस्वेति पितामहः।
लज्जया साऽपि दृष्टेति शनैर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥४९

हिमवान् ने कहा—हे भगवन् ! मेरी पुत्री काली जो प्रजापति की पौत्री है और पितृगणों की दौहित्री है इसको आप मेरे द्वारा प्रदान की हुई को आप ग्रहण कीजिए ॥२४॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—शैलराज ने इस प्रकार कहकर पुत्री के हाथ को शिव के कर में योजित करते हुए प्रदान किया था और 'हे भगवन् ! स्वीकार कीजिए'—यह ऊँचे स्वर से कहा था ॥४३॥ भगवान् हरने कहा—हे अद्रिराज ! मेरी कोई माता नहीं है और न कोई पिता ही है तथा ज्ञाति के लोग और बान्धव आदि भी मेरे कोई नहीं हैं। मैं तो एक बिना ही आश्रय वाला और गिरि की चोटी पर निवास करने वाला हूँ। मैं इस आपकी पुत्री को ग्रहण करता हूँ ॥४४॥ इस प्रकार से कहते हुए वरद ने अपने कर से उस आदि कुमारिका के करका पीडन किया था। वह भी शम्भु के करका सस्पर्श पाकर हे मुरर्ये ! परम प्रसन्नता को प्राप्त हुई थी॥४५॥इसके उपरान्त वह वरद प्रभु अद्रिराज की पुत्री के साथ वेदी पर अधिरूढ हुए थे और मधुपर्क का अशन कर रहे थे। इसके अनन्तर भगवान् ब्रह्मा शुक्ल लाजाओं (खीलों) को ग्रहण कर गिरिजा से बोले ॥४६॥ हे कालि ! चन्द्र के समान प्रभा से युक्त परम सुन्दर ईश के मुख को देखिए और समदृष्टि वाली स्थिर होकर अब आप अग्नि की प्रदक्षिणा करो ॥४७॥ इसके पश्चात् अम्बिका ने हर मुख पर दृष्टिडाली तो शैत्य को प्राप्त होगई थीं जिस तरह सूर्य की सुतप्त किरणों से तप्त भूमि वृष्टि को प्राप्त कर शीतल तम हो जाया करती है ॥४८॥

पितामह ने पुनः कहा—शम्भु के मुख को देखो। तब लज्जा से जगदम्बा ने धीरे से ब्रह्माजी से कहा—मैंने देख लिया है ॥४६॥

समं गिरिजया तेन हुताशस्त्रिः प्रदक्षिणम् ।
कृतो लाजाश्च हविषा सम क्षिप्ता हुताशने ॥५०
ततो हराङ्घ्रिर्मालिन्या गृहीतो दायकारणात् ।
किं याचसे ते दास्यामि मुञ्चस्वेति हरोऽब्रवीत् ॥५१
मालिनी शङ्कर प्राह मत्सख्या देहि शङ्कर ।
सौभाग्य निजगोत्रीय ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥५२
अथोवाच महादेवो दत्तं मालिनि मुञ्च माम् ।
सौभाग्यं निजगोत्रीय योऽस्यास्त श्रृणुवच्मि ते ॥५३
योऽसौ पीताम्बरधरः शङ्खधृङ् मधुसूदनः ।
एतदीय हि सौभाग्यं दत्त मद्गोत्रमेव हि ॥५४
इत्येवमुक्ते वचने प्रमुमोच वृषध्वजम् ।
मालिनी निजगोत्रस्य शुभचारित्रमालिनी ॥५५
यदा हरो हि मालिन्या गृहीतश्चरणे शुभे ।
तदा कालीमुख ब्रह्मा ददर्श शशिनोऽधिकम् ॥५६

इसके पश्चात् शम्भु ने गिरिजा के साथ अग्नि की तीन परिक्रमा की थीं और हवि के साथ लाजाओं का प्रक्षेप अग्नि में किया गया था ॥५०॥ इसके पश्चात् मालिनी ने भगवान् हर का चरण दाय कारण से ग्रहण कर लिया था हर ने कहा—क्या माँगती हो, कहो, मैं दूँगा किन्तु मेरा चरण छोड़ दो ॥५१॥ मालिनी ने शम्भु से कहा—हे शंकर ! आप इस मेरी सखी को निजगोत्रीय सौभाग्य प्रदान कीजिए तभी मैं चरण का त्याग करूँगी ॥५२॥ तब महादेव ने कहा—हे मालिनि ! मैंने दे दिया अब मेरा चरण छोड़ दो। मैंने निजगोत्रीय सौभाग्य दे दिया है। जो इसका सौभाग्य है उस को भी श्रवण करो, मैं बतलाता हूँ ॥ ५३ ॥ जो यह पीताम्बर धारी शंख ग्रहण करने वाले मधुसूदन हैं। मेरे गोत्र का इनका ही दिया हुआ सौभाग्य है ॥५४॥ इस वचन के कहने पर उसने वृषध्वज को

छोड दिया था । मानिनी निजगोत्र की शुभ चारित्र मालिनी थी ॥५५॥ जब हर का शुभ चरण मालिनी के द्वारा ग्रहण किया गया था उस समय में ब्रह्माजी ने काली के मुख को चन्द्रमा से भी अधिक सुरम्य देखा था ॥५६॥

तद्दृष्ट्वा मोहमगमच्छुक्रच्युतिमवाप च।
तच्छुक्रं वालुकाया च खिलीचक्रे ससाध्वसः ॥५७
ततोऽब्रवीद्धरो ब्रह्मन्न द्विजान्हन्तुमर्हसि ।
अमी महर्षयो धन्या वालखिल्याः पितामह ॥५८
ततो महेशवाक्यान्ते समुत्तस्थुस्तपस्विनः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि वालखिल्या इति स्मृताः ॥५६
ततो विवाहे निर्वृत्ते प्रविष्टः कौतुकं हरः ।
रेमे सहोमया रात्रिं प्रभाते पुनरुत्थितः ॥६०
ततोऽद्रिपुत्री समवाप्य शंभुः सर्वैः समं भूतगणैश्च हृष्टः ।
संपूजितः पर्वतपार्थिवेन स्वमन्दिरं शीघ्रमुपाजगाम ॥६१
ततः सुरान्ब्रह्महरीन्द्रमुख्यान्प्रणम्य संपूज्य यथाविभागम् ।
विसृज्य भूतैःसहितो महीध्रमध्यावसन्मन्दरमष्टमूर्तिः ॥६२

ब्रह्माजी को जगदम्बा का परम सुन्दर मुख देखते ही मोह हुआ और वीर्य की च्युति होगई । उस वीर्य को भययुक्त होकर वहीं पर बालुका मे मिला दिया था ॥५७॥ इसके पश्चात् हर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे पितामह ! आप इन द्विजों को मारने के योग्य नहीं हैं। ये महर्षिगण परम धन्य हैं और ये बालखिल्य नामधारी हैं ॥५८॥ इसके उपरान्त महेश्वर के वाक्य के अन्त मे वे तपस्वी गण उठकर खड़े होगये थे । वे अट्ठासी सहस्र संख्या मे थे जो वाल्य खिल्य नाम से पुकारे गये थे ॥५६॥ इसके अनन्तर विवाह के सम्पन्न हो जाने पर हर ने कौतुक मे प्रवेश किया था । उमा के साथ रात्रि में रमण किया था और प्रातःकाल में पुनः समुत्थित हुए थे ॥६०॥ तब तो भगवान शम्भु समस्त भूतगणों के साथ अद्रिराज की पुत्री को प्राप्त कर परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गये थे । पर्वतराज के द्वारा भलीभाँति पूजित होकर भगवान् शंकर शीघ्र

ही अपने मन्दिर में आ गये थे ॥६१॥ इसके उपरान्त अष्टमूर्त्ति प्रभु ब्रह्मा-इन्द्र आदि मुख्य देवों को प्रणाम करके और विभाग के अनुसार भली-भाँति पूजन करके भूतों के सहित उन सबको विदा करके मन्दर पर्वत पर अधिवास किया था ॥६२॥

५४—विनायकोत्पत्ति वर्णन

ततो गिरौ वसन्रुद्रः स्वेच्छया विचरन्मुने ।
विश्वकर्माणमाहूय प्रोवाचकुरु मे गृहम् ॥१
ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्तिकलक्षणम् ।
योजनानि चतुःषष्टिः प्रमाणेन हिरण्मयम् ॥२
दन्ततोरणनिर्व्यूहं मुक्ताजालान्तरं शुभम् ।
शुद्धस्फटिकसोपानं वैडूर्यकृतरूपकम् ॥३
सप्तकक्षं सुविस्तीर्णं सर्वं समुदितं गुणैः ।
ततो देवपतिश्चक्रे यज्ञं गार्हस्थ्यलक्षणम् ॥४
तं पूर्वचरितं मार्गमनुयाति स्म शङ्करः ।
तथा सतस्त्रिणेत्रस्य महान्कालोऽभ्यगान्मुने ॥५
रमतासह पार्वत्या धर्मापेक्षी जगत्पतिः ।
ततः कदाचिद्महार्थं कालीत्युक्ता भवेन हि ॥६
पार्वती मन्युनाऽऽविष्टा शङ्करं वाक्यमब्रवीत् ।
संरोहतीषुणा विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे मुने ! इसके अनन्तर पर्वत पर भगवान् रुद्र स्वेच्छा से विचरण करते हुए निवास कर रहे थे। विश्वकर्मा को बुलाकर उन्होंने उससे कहा—मेरे गृह का निर्माण करो ॥१॥ इसके पश्चात् विश्वकर्मा ने भगवान् शिव के स्वस्तिक लक्षण वाला गृह निर्मित किया था जो हिरण्मय था और प्रमाण में चौंसठ योजन के विस्तार वाला था ॥२॥ उस गृह में दन्ततोरण थे तथा मुक्ताओं के जालों से

अन्दर शोभित होरहा था जिसमे शुद्ध स्फटिक मणि के सोपान (सीढियां) थी जिनमे वैडूर्यमणि की भी रचना थी ॥३॥ उस गृह मे सात कक्ष थे और वह समस्त गुणो से समुदित एव अत्यधिक विस्तीर्ण था। इसके पश्चात् देवपति ने यहाँ पर गार्हस्थ्य के लक्षणों वाला यज्ञ किया था ।४। शकर उस पूर्व में चरित मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। इस तरह से रहते हुए हे मुने ! त्रिनेत्र भगवान् को बहुत अधिक कालव्यतीत हो गया था ॥५॥ धर्म की अपेक्षा रखने वाले जगत्पति ने पार्वती के साथ रमण किया था। इसके पश्चात् किसी समय मे भगवान् भव ने ब्रह्मा के लिये पार्वतीजी से 'काली'—ऐसा कह दिया था ॥६॥ इसे सुनकर पार्वती को महान् क्रोध हो गया था और क्रोधाविष्ट होकर वह शंकर से यह वचन बोली—बाण के द्वारा हुआ क्षत तथा परशु के द्वारा हनन किया हुआ वन,पुन: भर जाता है किन्तु वाणी के द्वारा दुष्ट एव बीभत्स वचन से होने वाला क्षत फिर कभी भी नहीं भरा करता है ॥७॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति तैराहत: शोचति रात्र्यहानि ।
न तान्विमुञ्चेतहिपण्डितोजनस्तदद्यधर्मंवितथत्वयाकृतम् ॥८

तस्माद्व्रजामि देवेश तपस्तप्तुमनुत्तमम् ।
तथा यतिष्ये न यथा भवान्कालीति वक्ष्यति ॥९

इत्येवमुक्त्वा गिरिजा प्रणम्य च महेश्वरम् ।
अनुज्ञाता त्रिणेत्रेण दिवमेवोत्पपात ह ॥१०

समुत्पत्य च वेगेन हिमाद्रे: शिखरं शिवम् ।
टङ्कच्छिन्नं प्रयत्नेन विधात्रा निर्मितं यथा ॥११

ततोऽवतीर्य सस्मार जया च विजया तथा ।
जयन्ती च महापुण्या चतुर्थीमपराजिताम् ॥१२
ता: संस्मृता: समाजग्मु: काली द्रष्टुं हि देवता: ।
अनुज्ञातास्तथा देव्या शुश्रूषा चक्रिरे शुभा: ॥१३
ततस्तपसि पार्वत्या स्थिताया हिमवद्वनात् ।
समाजगाम तं देशं व्याघ्रो दंष्ट्रानखायुधः ॥१४

वाणी रूपी वाण मुख से निकला करते हैं उनसे आहत हुआ पुरुष रातदिन शोच किया करता है। अतएव जो पण्डितजन होते हैं वे कभी भी वचन वाणों को नहीं छोड़ा करते हैं सो आप ने आज वितथ अधर्म किया है। इसलिए हे देवेश मैं तो उत्तम तप करने के लिये जाती हूँ और ऐसा यत्न करूँगी फिर आप 'काली'—यह शब्द नहीं कहेंगे ।।८-९।। इतना मात्र कहकर गिरिजा ने महेश्वर को प्रणाम किया और त्रिनेत्र के द्वारा अनुज्ञात होकर दिवलोक को उड़कर चली गई थी ।।१०।। फिर वेग के साथ हिमाद्रि के शिव शिखर पर आ गई थी जो विधाता ने बड़े प्रयत्न से दृष्टद्ध करके निर्मित किया था ।।११।। इसके पश्चात् वह उतरकर पार्वती ने जया-विजया, जयन्ती और महापुण्यशालिनी चौथी अपराजिता का स्मरण किया था ।।१२।। स्मरण करते ही वे सब वहाँ आगई थी और वहाँ काली का दर्शन किया था। देवी के द्वारा आदेश प्राप्त कर सबने उनकी शुभ सेवा की थी ।।१३।। फिर तपश्चर्या में स्थित पार्वती के समीप में हिमवान् के वन से एक दंष्ट्रा और नखों के आयुधों वाला व्याघ्र उस जगह आ गया था ।।१४।।

एकपादस्थितायां वै देव्यां व्याघ्रस्त्वचिन्तयत् ।
यदा पतिष्यते चेष्टं तदा दास्यामि वै अहम् ।।१५

इत्येवं चिन्तयन्नेव दत्तदृष्टिर्मृगाधिपः ।
पश्यमानस्तद्वदनमेक दृष्टिरजायत ।।१६

ततो वर्षशतं देवी गृणन्ती ब्रह्मणः पदम् ।
तपोऽप्यसतोऽभ्यागाद्ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ।।१७

पितामहस्ततोवाच देवी प्रीतोऽस्मिशाश्वते ।
तपसा धूतपापाऽसि वरं वृणु यथेप्सितम् ।।१८

अथोवाच वचः काली व्याघ्रस्य कमलोद्भव ।
वरदो भव तेनाहं यास्ये प्रीतिमनुत्तमाम् ।।१९

ततः प्रादाद्वरं ब्रह्मा व्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः ।
गाणपत्यं विभौ भक्तिमजेयत्वं च धर्मिताम् ।।२०

वरं व्याघ्राय दत्त्वैवं शिवकान्तामथाब्रवीत् ।
वृणीष्व वरमव्यग्रा वरं दास्ये तवाम्बिके ॥२१

एक चरण से स्थित हुई देवी को देखकर उस व्याघ्र ने सोचा था कि जब भी यह गिरेगी तभी मैं इष्ट दे दूँगा ॥१५॥ इस प्रकार से वह मृगाधिप सोचता ही रहा और उसने पार्वती की ओर अपनी दृष्टि लगा दी थी। उस देवी के मुख की ओर देखते हुए वह एक दृष्टि हो गया था ॥१६॥ इसके उपरान्त देवी ने सौ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मा के पद को ग्रहण करते हुए तप किया था। इसके पश्चात् त्रिभुवनेश्वर ब्रह्माजी आये थे ॥१७॥ पितामह ने आकर देवी से कहा—मैं परम प्रसन्न हूँ। हे शाश्वते ! आप अब तपस्या से धूत पापों वाली हो गई हो, जो भी आपका अभीष्ट हो मुझसे वरदान प्राप्त करलो ॥१८॥ इसके पश्चात् काली व्याघ्र का वचन बोली—हे कमलोद्भव ! आप वरद होवें जिससे मैं उत्तम प्रीति को प्राप्त होऊँगी ॥१९॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने अद्भुत कर्म वाले व्याघ्र का वर दिया था। गणपत्य, विभु में भक्ति, अजेयत्व धर्मिता का भी वरदान दिया था। इस प्रकार से व्याघ्र को वरदान प्रदान करके फिर ब्रह्माजी भगवान् शिव की कान्ता से बोले-हे अम्बिके ! अव्यग्र होकर आप भी मुझसे वर प्राप्त करलो मैं आपको वरदान दूँगा ॥२०-२१॥

ततो वरं गिरिसुता प्राह देवी पितामहम् ।
वरः प्रदीयतां ब्रह्मन्वर्णं कनकसंनिभम् ॥२२

तथेत्युक्त्वा गतो ब्रह्मा पार्वती चाभवत्ततः ।
कोशं कृष्णं परित्यज्य पद्मकिञ्जल्कसन्निभा ॥२३

तस्मात्कोशाच्च सा जाता भूयः कात्यायनी मुने ।
तामभ्येत्य सहस्राक्षः प्रतिजग्राह दक्षिणाम् ।
प्रोवाच गिरिजां देवीं वाक्यं स्वर्गाय वासवः ॥२४

इयं प्रदीयतां मह्यं भगिनी मेऽस्तु कौशिकी ।
त्वत्कोशसंभवा चेयं कौशिकी कौशिकोऽप्ययम् ॥२५

ता प्रादादिति संश्रुत्य कौशिकीं रूपसंयुताम् ।
सहस्राक्षोऽपि तां गृह्य विन्ध्यं वेगाज्जगाम च ।।२६
तत्र गत्वा त्वथोवाच तिष्ठ चात्र महाचले ।
पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना ख्याता त्वं विन्ध्यवासिनी ।।२७
तत्र स्थाप्य हरिर्देवीं दत्त्वा सिंहं च वाहनम् ।
भवामरारिहन्त्री चेत्युक्त्वा स्वर्गमुपागमत् ।।२८

इसके अनन्तर गिरि सुता देवी पितामह से बोली—हे ब्रह्मन् ! सुवर्ण के तुल्य वर्ण होने का वरदान दीजिए ।।२२।। ऐसा ही होगा-यह कह कर ब्रह्माजी वहाँ से चले गये थे और फिर पार्वती वैसी ही हो गई थी । उस देवी ने कृष्ण कोश का त्याग कर दिया था और वह फिर पद्म के किञ्जल्क के तुल्य हो गई थी ।।२३।। हे मुने । उस कोश से फिर वह कात्यायनी उत्पन्न हुई थी । उसके पास इन्द्र ने आकर दक्षिणा को ग्रहण किया था । इन्द्र देव गिरिजा देवी से स्वर्ग के लिये वचन कहा था ।।२४।। इन्द्र ने कहा-यह भगिनी मुझे देदो । यह कौशि की होवे । आपके कोश से समुत्पन्ना यह कौशिकी है और यह भी कौशिक है ।।२५।। रूप से समन्वित उस कौशि को दे दिया-यह वचन सुनकर इन्द्र देव भी उसे ग्रहण करके वेग से विन्ध्य पर्वत पर चले गये थे ।।२६।। वहाँ जाकर फिर यह बोले-हे महा चले । आप यहीं पर ठहरिए । सुरों से पूज्यमान होती हुई आप नाम से विन्ध्य वासिनी विख्यात होगी ।।२७।। वहाँ पर इन्द्र ने देवी की स्थापना की और उनको सिंह वाहन दिया था । आप शत्रुओं के हनन करने वाली होवे जो देवों के शत्रु हों- इतना कहकर वह स्वर्ग को चले गये थे ।।२८।।

उमाऽपि तं वरं लब्ध्वा मन्दिरं पुनरेत्य च ।
प्रणम्य च महेशानं स्थिता सविनयं मुने ।।२९
ततोऽमरगुरुः श्रीमान्पार्वत्या सहितोऽव्ययः ।
तस्थौ वर्षसहस्रं हि महामोहनके मुने ।।३०
महामोहस्थिते रुद्रे भुवनाश्चेलुरुद्धताः ।
चुक्षुभुः सागराः सप्त देवाश्च भयमागमन् ।।३१

ततः सुरा महेन्द्रेण ब्रह्मणः सदनं गताः ।
प्रणम्योचुर्महेशानं जगत्क्षुब्धं तु किं त्विदम् ॥३२
तानुवाच भवो नूनं महामोहनके स्थितः ।
तेनाक्रान्तास्त्विमे लोका जग्मुः क्षोभं दुरत्ययम् ॥३३
इत्युक्त्वा सोऽभवत्तूष्णीं ततोऽप्यूचुः सुरा हरिम् ।
आगच्छ शक्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ॥३४
समाप्ते मोहने बालो यः समुत्पत्स्यतेऽव्ययः ।
स नूनं देवराजस्य पदमैन्द्रं हरिष्यति ॥३५

उमा देवी भी उस वरदान को प्राप्त कर पुनः मन्दिर में आ गई थी और हे मुने ! महेश्वर को प्रणाम करके वहाँ विनयान्विता होकर स्थित हो गई थी ॥२६॥ इसके पश्चात् श्रीमान् अमर गुरु जो अविनाशी हैं पार्वती के साथ हे मुने ! महा मोहनक में एक सहस्र वर्ष तक स्थित रहे थे ॥३०॥ रुद्र देव के महामोह में स्थित होने पर समस्त भुवन उद्धत होकर चचल हो गये थे । सब सागर क्षोभ को प्राप्त हो गये और देव भयभीत हो गये थे ॥३१॥ तब सब सुरगण महेन्द्र देव के साथ ब्रह्माजी के सदन को गये थे । महेशान को सब ने प्रणाम किया था और कहा था—यह सम्पूर्ण जगत् क्षुब्ध हो गया है—यह क्या हो गया है ? ॥३२॥ तब महा मोहनक में स्थित भव उनसे बोले—उनके द्वारा आक्रान्त ये समस्त लोक दुरत्यय क्षोभ को प्राप्त हो गये हैं ॥३३॥ इतना ही कह वह चुप हो गये थे । इसके पश्चात् सब सुर वृन्द ने इन्द्रदेव से कहा—हे इन्द्रदेव ! आइये चलें जब तक यह समाप्त नहीं होता है ॥३४॥ इस मोहन के काल के समाप्त हो जाने पर जो एक अव्यय बालक समुत्पन्न होगा वह निश्चय देवराज के पद का हरण करेगा ॥३५॥

ततोऽमराणां वचनाद्दिवौकोवलघातिनः ।
भयाज्ज्ञानं ततो नष्टं भाविकर्मप्रचोदनात् ॥३६
ततः शक्रः सुरैः सार्धं वह्निना च सहस्रदृक् ।
जगाम मन्दरगिरिं तच्छृङ्गेष्वपि सत्तम ॥३७

विनिष्क्रान्ते सुरपतौ देवा मुदितमानसाः ।
शिरोभिरवनी जग्मुः सेन्द्रार्कशशिपावकाः ॥४४
ततः प्रीत्या सुरानाह वदध्वं कार्यमाशु मे ।
प्रणामावनता वो हि दास्येऽहं वरमुत्तमम् ॥४५
यदितुष्टोऽसि देवानां वरं दातुमिहेच्छसि ।
तदिह त्यज्यतां तावन्महामैथुनमीश्वर ॥४६
एवं भवतु संत्यक्तो मयाभावोऽमरोत्तमाः ।
ममेदं तेज उद्रिक्तं कश्चिदेव प्रतीच्छतु ॥४७
इत्युक्ताः शम्भुना देवाः सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः ।
असीदन्त यथा मग्नाः पङ्के गावस्तथा सुराः ॥४८
सीदत्सु दैवतेष्वेवं हुताशोऽभ्येत्य शंकरम् ।
प्रोवाच मुञ्च तेजस्त्वं प्रतीच्छाम्येव शंकर ॥४९

हे नारद ! यह सुनते ही शम्भु ने उठकर गिरि सुता का त्याग कर दिया था और फिर अग्नि के साथ ही अपने आँगन से बाहिर निकल आये थे ॥४३॥ सुरों के स्वामी शम्भु के निकल आने पर देवगण बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे। और सबने सूर्य-चन्द्र और पावक के साथ इन्द्र ने शिर को भूमि पर टेक कर प्रणाम किया था अर्थात् सभी नत मस्तक हो गये ॥४४॥ इसके अनन्तर भगवान् शंकर ने प्रीति पूर्वक देवगण से कहा—मुझे आप लोग शीघ्र ही अपना जो भी कार्य हो उसे बतला दो। आप सब लोग प्रण मन करके अवनत हो गये हो मैं आप सबको श्रेष्ठ वरदान दूंगा ॥४५॥ देवों ने कहा—यदि आप हम सब देवों पर परम सन्तुष्ट हैं और कोई वरदान भी हमको देना चाहते हैं तो हे ईश्वर ! आप अब यहाँ पर यह महा मैथुन जो कर रहे हैं इसका त्याग कर दीजिएगा ॥४६॥ ईश्वर ने कहा—ऐसा ही होगा हे अमरोत्तम वृन्द ! मैंने वह भाव त्याग दिया है। मेरा जो यह उद्रिक्त तेज है इसको कोई भी ग्रहण करे ॥४७॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—शम्भु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर इन्द्र चन्द्र और दिवाकर आदि समस्त देवगण पंक में मानों गौओं की भांति बहुत ही दुःखित हुए थे ॥४८॥ इस प्रकार

से देवों के दुःखित होने पर अग्निदेव शङ्कर के समीप में आकर बोले— हे शंकर ! आप तेज को छोड़िये मैं ग्रहण करता हूँ ॥४६॥

ततो मुमोच भगवांस्तद्रेतः स्कन्नमेव तु ।
जलं तृषार्तो वै यद्वत्तैलपानं पिपासितः ॥५०
ततः पीते रेतसि वै शार्वे देवेन वह्निना ।
स्वस्थाः सुराः समामन्त्र्य हरं जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥५१
सम्प्रयातेषु देवेषु हरोऽपि निजमन्दिरम् ।
समभ्येत्य महादेवीमिदं वचनमब्रवीत् ॥५२
देवि देवैरिहाभ्येत्य यत्नात्प्रेष्य हुताशनम् ।
ततः प्रोक्तो निषिद्धस्तु पुत्रोत्पत्तिस्तवोदरात् ॥५३
साऽपि भर्तुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धा रक्तान्तलोचना ।
शशाप दैवतान् सर्वान्नष्टपुत्रोद्भवा शिवा ॥५४
यस्मान्नेच्छन्ति ते दुष्टा मम पुत्रं ममौरसम् ।
तस्मात्ते न जनिष्यन्ति स्वासु योषित्सु पुत्रकान् ॥५५
एवं शप्त्वा सुरान्गौरी शौचशालामुपागमत् ।
आहूय मालिनीं स्नातुं मतिं चक्रे तपोधन ॥५६

इसके अनन्तर भगवान् शम्भु ने उस स्कन्न रेतस् का त्याग किया था, जिस तरह तृषा से आर्त्त पुरुष जल को और पिपासित तैल को पीता है वैसे ही उस शंकर के रेतस को वह्नि देव ने पान कर लिया था। फिर स्वस्थ सुरगण हर की अनुज्ञा प्राप्तकर अपने त्रिविष्टप को चले गये थे ॥५०-५१॥ देवों के चले जाने पर भगवान् हर भी अपने मन्दिर में आकर महादेवी से यह वचन बोले ॥५२॥ हे देवि ! देवों ने यहाँ आकर हुताशन को यत्न पूर्वक मेरे समीप में भेजा था फिर इन्होंने मुझसे निषेध करते हुए कहा था कि आपके उदर से पुत्र की उत्पत्ति न करूँ ॥५३॥ वह देवी भी स्वामी के इस वचन को सुनकर बहुत क्रोधित हुई और उनके नेत्र लाल होगये थे। पार्वती ने सभी देवों को शाप दे दिया था क्योंकि अपने उदर से पुत्र जन्म न होने के कारण शिवा को क्रोध हो गया था ॥५४॥ क्योंकि ये दुष्ट मेरे औरस पुत्र को नहीं चाहते

हैं इसीलिये ये सब सुर भी अपनी स्त्रियों में कोई भी पुत्र उत्पन्न नहीं करेंगे—यह मेरा शाप है ॥५५॥ इस तरह सुरों को शाप देकर गौरी शौचशाला में चली गई थी। हे तपोधन ! तुरन्त मालिनी को बुलाकर पार्वती ने स्नान करने की इच्छा प्रकट की थी॥५६॥

मालिनी सुरभि गृह्य श्लक्ष्णमुद्वर्तनं शुभा ।
देव्यङ्गमुद्वर्तयते कराभ्यां कनकप्रभा ॥५७
तच्छौचं पार्वती नेदं मेने कौटगुणेन हि ।
उद्वर्त्य पार्वती सा तु शुभेनोद्वर्तनेन च ।५८
मालिनी तूर्णमगमद्गृहं स्नानस्य कारणात् ।
तस्या गतायां शैलेयी मलाच्चक्रे गजाननम् ॥५९
चतुर्भुजं पीनवक्षः पुरुषं लक्षणान्वितम् ।
कृत्वोत्तमजं त भूम्या स्थिता भद्रासने पुनः ॥६०
मालिनी तच्छिद्रः स्नानं ददौ विहसती तदा ।
ईषद्धासमुखीं दृष्ट्वा मालिनीं प्राह नारद ॥६१

देखकर नारद ने कहा—॥६१॥ हे भीरु ! तुम किस लिये शनैः २ हंस रही हो ? इसके उत्तर मे उसने कहा—मैं इसी प्रकार से हंस रही हूँ कि देव ने नन्दि गणाधिप से कहा था कि आपका तनय ऐसे ही होगा। यह श्रवण करके हे कृशोदरि ! आज मुझे हंसी आगई है ॥६२-६३॥

यस्माद्देवो पुत्रकामाच्छंकरो विनिवारित. ।
एतच्छ्रुत्वा वचो देवी सस्नौ तत्र विधानतः ॥६४
स्नात्वाऽर्च्य शकरं भक्त्या समभ्यागाद् गृहं प्रति ।
ततः शम्भुः समागत्य तस्मिन्मद्रासनेऽपि च ॥६५
स्नातस्तस्य ततस्तस्मात्स्थितः स मलपूरुषः ।
उमास्वेदभवस्वेद जलभूमिसमन्वितम् ॥६६
तत्संपर्कात्समुत्तस्थौ फूत्कृत्य करमुत्तमम् ।
अपत्य हि विदित्वा च प्रीतिमान्भुवनेश्वरः ॥६७
त चादाय हरो नन्दिमुवाच भगनेत्रहा ।
रुद्रः स्नात्वाऽर्च्य देवादी वाऽद्भिरग्नि पितृनपि ॥६८
जप्त्वा सहस्रनामानमुमापार्श्वमुपागतः ।
समेत्य देवी विहसञ्शकरः शूलधृग्वचः ॥६९
प्राह त्व पश्य शैलेयि स्वत्सुत गुणसयुतम् ।
इत्युक्ता पर्वतसुता ह्युपेत्यापश्यदद्भुतम् ॥७०

क्योंकि देवी ने पुत्र की कामना से भगवान् शकर को विनिवारित कर दिया था। यह वचन सुनकर देवी ने वहाँ पर विधि पूर्वक स्नान किया था ॥६४॥ स्नान करके भक्ति भाव से शकर की पूजा की थी फिर घर की ओर चली गई थी। इसके पश्चात् शम्भु ने आकर उसी भद्रासन पर स्नान किया था। फिर उस स्थान से वह मल पुरुष स्थित हुआ था। उमा के स्वेद और शकर के स्वेद तथा जल भूमि से सयुत वह था ॥६५-६६॥ उसके सम्पर्क से उत्तम कर को फूत्कार करके वह खडा होगया था। अपत्य को जानकर भुवनेश्वर बहुत अधिक प्रीतिमान् हुए थे ॥६७॥ उसको लेकर भग के नेत्रों के हनन करने वाले हर ने नन्दी से कहा था—रुद्र स्नान करके जल से देवादि का अर्चन करके और

अग्नि तथा पितृगण को तृप्त करके एवं सहस्र नाम का जाप करके फिर उमा के समीप में आये थे। देवी के समीप में आकर शूलधारी शंकर हँसते हुए देवी से यह वचन बोले थे। हे शैलेयि ! गुणों से संयुत तुम अपने पुत्र को देखो। इस प्रकार से कहने पर पार्वती ने वहां आकर अद्भुत ही देखा था ॥६८-७०॥

यस्त्वदङ्गमलाद्दिव्यः कृतो गजमुखो नरः।
ततः प्रीता गिरिसुता तं पुत्रं परिषस्वजे ॥७१
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय ततः शर्वोऽब्रवीदुमाम्।
नायकेन विना देवी मया भूतोऽपि पुत्रकः ॥७२
यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः।
एष विघ्नसहस्राणि देवादीनां हनिष्यति ॥७३
पूजयिष्यन्ति देवाश्च देवि लोकाश्चराचराः।
इत्येवमुक्त्वा देव्यास्तु दत्तवांस्तनयं स हि ॥७४
सहायं तु गणश्रेष्ठं नाम्ना ख्यातं घटोदरम्।
तथा मातृगणा घोरा भूता विघ्नकराश्च ये ॥७५
ते सर्वे परमेशेन देव्याः प्रीत्योपपादिताः।
देवी च तं सुतं दृष्ट्वा परां मुदमवाप च ॥७६
रेमेऽथ शंभुना सार्द्धं मन्दिरे चारुकन्दरे।
एवं भूयोऽभवद्देवी इयं कात्यायनी विभो।
या जघान महादैत्यौ पुरा शुम्भनिशुम्भकौ ॥७७
एतत्तवोक्तं वचनं सुभाष्यं यथोद्भवः पर्वततो मृडान्याः।
स्वर्ग्यंयशस्यं च तथाऽघहारिआख्यानमूर्ज्जस्करमद्रिपुत्र्याः ॥

जो आपके अंग के मल से एक दिव्य गज के समान मुख वाला नर बनाया गया है उससे गिरि सुता बहुत ही प्रसन्न हुई है और उस पुत्र का उसने समालिंगन किया था ॥७१॥ इसके मस्तक को सूँघ कर भगवान् शिव उमा से यह वचन बोले—देवी, मेरा यह पुत्र भी नायक के बिना ही उत्पन्न हुआ है इसलिये यह नाम से भी विनायक ही होगा। यह देवों के सहस्रों विघ्नों का हनन करेगा ॥७२-७३॥ हे देवि ! सब चर,

अचर लोक और देवगण इसकी पूजा करेंगे। इतना यह कर शिव ने वह पुत्र देवी को दे दिया था ॥ ७४ ॥ घटोदर नाम से प्रसिद्ध गणों में श्रेष्ठ सहायक दिया था तथा मातृगण-घोर भूत और जो विघ्न करने वाले थे वे सब परमेश ने प्रीति पूर्वक देवी के लिये प्रतिपादित किये थे। देवी भी उस पुत्र को देख कर परम प्रसन्न हुई थी ॥७५-७६॥ सुन्दर कन्दराओं वाले उस मन्दिर में वह देवी शम्भु के साथ रमणानन्द प्राप्त करने लगी। हे विप्रो ! इस प्रकार से यह कात्यायनी पुत्र हुई थी जिसने पहले शुम्भ और निशुम्भ नाम वाले महान् दैत्यों को हनन किया था ॥७७॥ यह सुन्दर भाषण करने के योग्य वचन मैंने तुम को बतला दिया है जिस प्रकार से मृडानी का पर्वत से उद्भव हुआ था। यह अद्रि पुत्री का आख्यान स्वर्ग देने वाला, यशप्रद, पापहारी और ऊर्जस्कर है ॥७८॥

५१—चण्डमुण्ड वध वर्णन

कश्यपस्य दनुर्नाम्ना भार्याऽऽसीद्द्विज सत्तम ।
तस्याः पुत्रत्रय चासात्सहस्राक्षाद्बलाधिकम् ॥१
ज्येष्ठ शुम्भ इति ख्यातो निशुम्भश्चापरोऽसुर ।
तृतीयो नमुचिर्नाम महाबलसमन्वित ॥२
योऽसौ नमुचिरित्येव ख्यातो दनुसुतोऽसुर ।
त हन्तुमिच्छति हरि प्रगृह्य कुलिश करे ॥३
त्रिदिवेश समायान्त नमुचिस्तु भयादथ ।
प्रविवेश रथ भानोस्ततो नाशकदच्युत ॥४
शक्रस्तेनाथ समय प्रचक्रे स महामना ।
अवध्यत्व वर प्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्च नारद ॥५
ततोऽवध्यत्वमाज्ञाय शस्त्रैरस्त्रैश्च नारद ।
सत्यज्य भास्कररथ पातालमुदयादथ ॥६

स निमज्जन्नपि जले सामुद्रं फेनमुत्तमम् ।
ददर्श दानवपतिस्तं प्रगृह्येदमब्रवीत् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! महर्षि कश्यप की दनु नाम वाली भार्या थी । उसके इन्द्र से भी अधिक बल वाले तीन पुत्र थे ॥१॥ ज्येष्ठ पुत्र शुम्भ-इस नाम से विख्यात था, दूसरा असुर निशुम्भ था और तीसरे का नाम नमुचि था । यह महान् बल से समन्वित था ॥२॥ जो यह नमुचि नाम से प्रसिद्ध असुर दनु का पुत्र था उसको हाथ में वज्र लेकर हरि ने मारने की इच्छा की थी ॥३॥ नमुचि ने त्रिदिवेश को आते हुए देख कर भय से भानु के रथ में प्रविष्ट हो गया था । फिर अच्युत कुछ न कर सके । उस महामना इन्द्र ने उसके साथ सन्धि कर ली थी । हे नारद शस्त्रों और अस्त्रों से अवध्य होने का वरदान दिया था ॥४॥५॥ हे नारद ! फिर शस्त्रास्त्रों से अवध्यत्व की आज्ञा पाकर उसने सूर्य के रथ का त्याग कर पाताल में गमन किया था ॥६॥ उस दानवों के स्वामी ने जल में निमज्जन करते हुए भी समुद्र के उत्तम फेन को देखा था । उसने उसका ग्रहण करके यह वचन कहा था ॥७॥

यदुक्तं देवपतिना वासवेन वचोऽस्तु तत् ।
अयं स्पृशतु मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः ॥८
मुखनासादिकर्णादीन्समापूर्य यथेच्छया ।
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद्वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः ॥९
तेनासौ रुद्धनासास्यः पपात च ममार च ।
समये न तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्धरिम् ॥१०
स चैतत्तीर्थमासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥११
उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान्बाधितुमागतौ ।
सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः ॥१२
जितास्त्वाक्रम्य दैत्याभ्यां सबलाः सपदानुगाः ।
शक्रस्याहृत्य च गजं याम्यं च महिषं बलात् ॥१३

वरुणस्य मणिं छत्रं गदां वै माधवस्य च ।
निधयः शङ्खपद्माद्या हृतास्त्वाकम्य दानवैः ॥१४

देवों के स्वामी इन्द्र ने जो वचन कहा था । उस दानव ने करों से ग्रहण करके कहा यह फेम मेरा स्पर्श करे ॥८॥ मुख, नासिका और कान आदि को भली भाँति भर कर ईश्वर इन्द्र ने उसमें यथेच्छा भीतर छिपे हुए वज्र को छोड़ दिया था ॥९॥ उससे उसकी नासिका रुक गई थी और मुख भी अवरुद्ध हो गया था । वह फिर गिर पड़ा और मर गया था । समय से (सन्धि से) उस प्रकार नष्ट हो जाने पर ब्रह्महत्या ने हरि का स्पर्श किया था ॥१०॥ फिर उसने इस तीर्थ को प्राप्त किया था और स्नान किया था जिससे वह पाप से मुक्त हो गया था । इसके पश्चात् उसके भाई और शुम्भ और निशुम्भ दोनों बहुत अधिक क्रोधित हुए थे । ॥११॥ महान् उद्योग करके वे दोनों सुरों को बाधा पहुँचाने के लिये आ गये थे । देव गण भी इन्द्र को नायक बनाकर निकल दिये थे ॥१२॥ सब देव गण इन दोनों दैत्यों के द्वारा आक्रमण करके सेना तथा अनुचरों के सहित जीत लिये गये थे । उन दैत्यों ने इन्द्र का गज छीन लिया था और यमराज का महिष वाहन भी बल पूर्वक अपहृत कर लिया था ॥१३॥ वरुण देवता की मणि और छत्र तथा माधव की गदा एवं शंख पद्म आदि आयुध और निधियाँ दानवों ने आक्रमण करके छीन ली थीं ॥१४॥

त्रिलोकी वशगा चास्तेऽनयोर्नारद दैत्ययोः ।
आजग्मतुर्महीपृष्ठ ददृशाते महासुरम् ॥१५
रक्तबीजमथोचुस्ते को भवानिति सोऽब्रवीत् ।
स चाह दैत्योऽस्मि विभो सचिवो महिषस्य तु ॥१६
रक्तबीजेति विख्यातो महावीर्यो महाभुजः ।
अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ ॥१७
तावास्तां सलिले मग्नौ भयाद्देव्या महाभुजौ ।
यस्त्वासीत्प्रभुरस्माकं महिषो नाम दानवः ॥१८

निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्तृते ।
भवन्तौ कस्य तनयौ किं वा नाम्ना परिश्रुतौ ।
किंवीर्यौ किंप्रभावौ च एतच्छंसितुमर्हथः ॥१९

अहं शुम्भ इति ख्यातो दनोः पुत्रस्तथौरसः ।
निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयाञ्छक्रदर्पहा ॥२०

अनेन बहुशो देवाः सेन्द्ररुद्रदिवाकराः ।
समेत्य निर्जिता वीरा ये चान्ये बलवत्तराः ॥२१

हे नारद ! इन दोनों दैत्यों के वश मे त्रिलोकी हो गई थी । फिर इस भूमि के पृष्ठ पर आ गये थे और यहाँ उन्होने महासुर को देखा था ॥१५॥ उन्होंने रक्तबीज से कहा था—आप कौन हैं । उसने उत्तर दिया था । उसने कहा—हे विभो ! मैं महिष का सचिव दैत्य हूँ ॥१६॥ रक्तबीज-इस नाम से वह महान् वीर्य और महान् भुजा वाला विख्यात है । महिष के अमात्य तो बहुत अच्छे एवं परम वीर चण्ड और मुण्ड सुने गये थे ॥१७॥ वे दोनों महा भुजाओं वाले देवी के भय से जल में मग्न हो गये थे । जो हमारा महिष नामक दानव प्रभु था वह सुविस्तृत विन्ध्य शैल पर महादेवी के द्वारा मार दिया गया था । आप दोनों किसके पुत्र हैं और किन नामों से प्रसिद्ध हैं । आपका क्या बल वीर्य है तथा क्या प्रभाव है—यह आप कहने के योग्य होते हैं ॥१८-१९॥ शुम्भ और निशुम्भ ने कहा—मैं शुम्भ, इस नाम से विख्यात हूँ और मैं दनु का औरस पुत्र हूँ । यह निशुम्भ मेरा भाई है जो कि मुझसे छोटा भाई है और इन्द्र के दर्प का नाशक है ॥२०॥ इसने बहुत से इन्द्र-रुद्र दिवाकर आदि देवगण सम्मुख में जाकर जीत लिये हैं और अन्य भी जो बड़े-बड़े अधिक बलवान वीर थे वे भी सब जीत लिये हैं ॥२१॥

तदुच्यतां कथं दैत्यो निहतो महिषासुरः ।
यावत्तान्घातयिष्यावः स्वसैन्यपरिवारितौ ॥२२

इत्थं तयोस्तु वदतोर्नर्मयास्तटे मुने ।
जलवासाद्विनिष्क्रान्तौ चण्डमुण्डौ च दानवौ ॥२३

ततोऽभ्येत्य सुरश्रेष्ठौ रक्तबीजं समाश्रितौ ।
ऊचतुर्वचनं श्लक्ष्णं कोऽयं तव पुरस्सरः ॥२४
स चोचौ प्राह दैत्योऽसौ शुम्भो नाम सुरार्दनः ।
कनीयानस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भकः ॥२५
एतावाश्रित्य तां दुष्टां महिषघ्नी न संशयः ।
अहं विवाहयिष्यामि रत्नभूतां जगत्त्रये ॥२६
न सम्यगुक्तं भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम् ।
यः प्रभुः स्यात्स रत्नार्हस्तस्माच्छुम्भाय योज्यताम् ॥२७
तदाऽऽचचक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम् ।
भूयोऽपि तद्विधा जाता कौशिकी रूपशालिनीम् ॥२८

सो अब आप यह बताइये कि महिषासुर दैत्य कैसे मारा गया है। *जिसके हुए अपनी सेना उसको साथ में लेकर उसको मार डालेंगे ॥२२॥* हे मुने! इस तरह से नर्मदा के तट पर उन दोनों के बातचीत करने पर चण्ड-मुण्ड दोनों दानव जल के निवास स्थल से बाहिर निकल आये थे ॥२३॥ इसके उपरान्त वे दोनों सुरश्रेष्ठ वहाँ आकर रक्तबीज के समाश्रित हो गये थे और उन दोनों ने परम श्लक्ष्ण वचन कहे थे कि यह आपके आगे कौन है ॥२४॥ उससे उन दोनों ने कहा—यह सुरों का मर्दन करने वाला शुम्भ नाम वाला दैत्य है। इसका छोटा भाई दूसरा निशुम्भ है ॥२५॥ ये दोनों महिषासुर के हनन करने वाली उस दुष्टा का आश्रय लेकर रहते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस त्रिभुवन में रत्न के समान उसके साथ मैं विवाह करूँगा ॥२६॥ चण्ड ने कहा—आप ने ठीक नहीं कहा है क्योंकि अब आप उस रत्न के प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं। जो प्रभु होता है वही रत्न प्राप्त करने के योग्य होता है। इसलिए शुम्भ के लिये ही उसका योजन करो ॥२७॥ उस समय में शुम्भ और निशुम्भ के लिये उस उसी प्रकार की रूप शालिनी कौशिकी को उत्पन्न हुआ बतलाया गया था ॥२८॥

ततः शुम्भो निजं दूतं सुग्रीवं नाम दानवम् ।
दूत्ये च प्रेषयामास सकाशं विन्ध्यवासिनीम् ॥२९

स गत्वा तद्वच. श्रुत्वा देव्यागत्य महासुरः ।
निशुम्भशुम्भावाहेद मन्युनाऽभिपरिप्लुत ॥३०
युवयोर्वचनाद्देवी प्रदिष्टा दैत्यनायकौ ।
गतवानहमद्यैव तामह वाक्यमब्रवम् ॥३१
यथा शम्भोऽतिविख्यात. कत्रुद दानवेष्वपि ।
स त्वा प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये ॥३२
यानि स्वर्गे महोपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि ।
रत्नानि सन्ति तावन्ति मम वेश्मनि नि यश. ॥३३
त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्या रत्नमूना कृशोदरी ।
तस्माद्भजस्व मा वा त्व निशुम्भ वा ममानुजम् ॥३४
सा चाह मा विहसती शृणु सुग्रीव मद्वच ।
सत्यमुक्त त्रिलोकेश. शुम्भो रत्नार्हं एव च ॥३५

इसके अनन्तर शुम्भ ने अपना सुग्रीव नामक दानव दूत जो दैत्य था विन्ध्य वासिनी के समीप मे भेजा था ॥२९॥ उसका वचन सुनकर उसने वहाँ जाकर महासुर ने क्रोध से परिप्लुत होकर निशुम्भ शुम्भ की बात देवी से कही थी ॥३०॥ सुग्रीव ने कहा—हे दैत्यनायको ! मैं आप दोनों के वचनो से देवी को कहा गया है और मैं आज ही गया था, मैंने उससे यह वाक्य कहा था ॥३१॥ जिस प्रकार से शुम्भ समस्त दानवों में अत्यन्त विख्यात है और शिरोमणि भी है—यह सभी मैंने कहा और हे महाभागे ! उसने तुमको यह सम्वाद कहा है कि मैं तीनो लोको मे प्रभु हूँ । हे सुन्दरि ! जो भी स्वर्ग में, भूमि के पृष्ठ मे और पाताल म रत्न हैं वे सभी मेरे घर म नित्य ही निवास करते हैं अर्थात् त्रैलोक्य की रत्न स्वरूप सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त हैं ॥३२-३३॥ कृशोदरी आपको चण्डमुण्डों ने रत्न के समान बतलाया है । इसलिये जब रत्नरूप सभी पदार्थों का भोक्ता मैं ही हू तो तुम भी मेरा सेवन करो अथवा मेरे छोटे भाई निशुम्भ का सेवन करो ॥३४॥ जब मैंने उस देवी से आपका यह सम्वाद कहा तो उसने हँसते हुए मुझसे कहा था—हे सुग्रीव ! मेरा

वचन सुनो। यह तुमने बिल्कुल सत्य कहा है कि वह तीन लोकों का स्वामी है और शुम्भ रत्नों के पाने के योग्य है ॥३४-३५॥

किं त्वस्ति,दुर्विनीताया हृदये मे मनोरथः।
यो मां विजयते युद्धे स भर्ता स्यान्महासुरः ॥३६
मया चोक्ताऽवलिप्ताऽसि यो जयेत्ससुरासुरान्।
स त्वां कथं न जयते सा त्वमुत्तिष्ठ भामिनि ॥३७
साऽथ मां प्राह किं कुर्मो यदनालोचितः कृतः।
मनोरथस्तु तद्गच्छ शुम्भाय त्वं निवेदय ॥३८
तयैवमुक्तस्त्वभ्यागां त्वत्सकाशं महासुरः।
तां चाग्निकोटिसंकाशां मत्वैवं कुरु यत्क्षमम्।
प्राह दूतं स्थिवद् शुम्भो दानवं धूम्रलोचनम् ॥३९
धूम्राक्ष गच्छ तां दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्।
सापराधां यथा दासीं कृत्वा शीघ्रमिहानय ॥४०
यश्चास्याः पक्षकृत्कश्चिद्भविष्यति महाबलः।
स हन्तव्योऽविचार्यैव यदि ही स्यात्पितामहः ॥४१
स एवमुक्तः शुम्भेन धूम्राक्षोऽक्षौहिणीशतैः।
वृतः षड्भिर्महातेजा विन्ध्यं गिरिमुपाद्रवत् ॥४२

किन्तु दुर्विनीता मेरे मनमें एक मनोरथ है कि जो महान् असुर युद्ध में मेरे ऊपर विजय प्राप्त कर लेगा वही मेरा भर्त्ता होगा ।।३६।। यह उसका कथन सुनकर मैंने उस से कहा था--तुमको बहुत ही घमण्ड हो गया है जो सभी सुर और असुरों को जीत लेता है वह तुमको कैसे नहीं जीत लेगा। हे भामिनि ! तुम मेरे साथ ही उठकर चलो चलो ।।३७।। इसके उपरान्त उसने मुझसे कहा—क्या करें, मैंने अपने मनोरथ के विषय में पहिले आलोचना नहीं की थी। इसलिये तुम जाकर शुम्भ से यही कह देना ॥३८॥ उसके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर मैं महासुर आपके समीप में आया हूँ। अब अग्नि की कोटि के समान उसको समझकर जो भी ठीक हो आप करिए। फिर शुम्भ ने धूम्रलोचन नाम वाले दानव दूत को यह वचन बोला था ॥३९॥ शुम्भ ने कहा—हे

धूम्राक्ष ! तुम जाओ और उस दुष्ट को एक अपराधी के समान केशों को पकड़कर विह्वल बनाकर तथा दासी बनाकर शीघ्र ही खींचकर यहाँ ले आओ ॥४०॥ और जो भी कोई उसकी सहायता करे चाहे वह पितामह भी क्यों न हो बिना कुछ विचार किये हुए ही उसे भी मार डालना ॥४१॥ इस प्रकार शुम्भ के द्वारा कहे जाने पर वह छै सौ अक्षौहिणी सेनाओं से समावृत होकर धूम्राक्ष महान् तेजस्वी विन्ध्य पर्वत पर चढ़ाई कर पहुँच गया था ॥४२॥

तवदृष्ट्वा चता दुर्गा भ्रान्तदृष्टिरुवाचह ।
एह्येहि मूढे भर्तारं शुम्भमिच्छस्व कौशिकि ।
न चेद्बलान्नयिष्यामि केशाकर्षणविह्वलाम् ॥४३
प्रेषितोऽस्मीह शुम्भेन बलान्नेतुं हि मां किल ।
तत्र किं ह्यबला कुर्याद्यथेच्छसि तथा कुरु ॥४४
एवमुक्ता विभावर्या बलवान्धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्ममात्रकाराम्बिका तथा ॥४५
ततो हाहाकृतमभूज्जगत्यस्मिश्चराचरे ।
सबलं भस्ममान्नीतं कौशिक्या वीक्ष्य दानवम् ॥४६
तं च शुम्भोऽपि शुश्राव महच्छब्दमुदीरितम् ।
अथादिदश बलिनौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥४७
रुरुं च बलिनां श्रेष्ठं तथाऽज्ञप्तमुर्दाऽन्विताः ।
तेषां च सैन्यमतुलं गजाश्वरथसंकुलम् ॥४८
समाजगाम सहसा यत्रास्ते कोशसम्भवा ।
तदाऽऽयान्तं रिपुबलं दृष्ट्वा कोटिशतावरम् ॥४९

वहाँ विन्ध्याचल पर पहुँचकर भ्रान्त दृष्टि वाला होकर उस धूम्राक्ष ने उस दुर्गा से यह कहा था—हे मूढे ! हे कौशिकि ! मेरे साथ आजाओ और शुम्भ को अपना स्वामी बनालो। यदि ऐसा नहीं करोगी तो मैं तुम्हारी चोटी खींचकर बलपूर्वक तुमको पकड़ कर ले जाऊँगा ॥४३॥ श्री देवी ने कहा—तुमको शुम्भ ने भेजा है और बलपूर्वक मुझे ले जाने को कह दिया है तो मैं अबला उसमें क्या कर सकती हूँ, जो भी

तुम चाहते हो वही करो ॥४४॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार से विभावरी के द्वारा कहे जाने पर उस बलवान् धूम्र लोचन को अम्बिका ने एक हुंकार से ही भस्म कर दिया था ॥४५॥ इसके पश्चात् इस चराचर जगत् में हाहाकार मच गया था। कौशिकी ने इतने सबल दानव को देख कर ही भस्मसात् कर दिया है ॥४६॥ उस उदीरित महान् शब्द को अर्थात् हुंकार की ध्वनि को शुम्भ ने भी सुना था। इसके अनन्तर महान् असुर चण्ड-मुण्डों को उसने आदेश दिया था तथा बलवानों में श्रेष्ठ रुरु को भी आदेश दिया था। ये सब परम प्रसन्न होते हुए वहाँ आ गये थे। उनकी सेना असीम थी जिसमें हाथी और घोड़े पर्याप्त संख्या में थे ॥४७-४८॥ वह सेना वहाँ पर आ गई थी जहाँ कौशिकी विद्यमान थी। उस समय में लगभग सैकड़ों करोड़ शत्रु की सेना को वहाँ पर आती हुई देखी गई थी ॥४९॥

अथ सिंहो धुतसटः पातयन्दानवान्रणे ।
काश्चित्करप्रहारेण काश्चिदास्येन लीलाया ॥५०
नखरैः काश्चिदाक्रम्य उरसाऽन्यमियाय च ।
ते वध्यमाना. सिंहेन गिरिकन्दरवासिना ॥५१
भूतैश्च देव्यनुचरैश्चण्डमुण्डौ समाश्रयन् ।
तावार्त्तं स्वबलं दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधरौ ॥५२
समाद्रवेतां दुर्गां वै पतङ्गाविव पावकम् ।
तावापतन्तौ ततो रौद्री दृष्ट्वा क्रोधपरिप्लुता ॥५३
त्रिशिखां भ्रुकुटी चक्रे चकार परमेश्वरी ।
भ्रुकुटीकुटिलाद्देव्या ललाटफलकादद्रुतम् ।
काली करालवदना निःसृता योगिनी शुभा ॥५४
खट्वाङ्गमादाय करेण रौद्रमसिं च कालोग्रमकोशमुग्रम् ।
संशुष्कगात्री रुधिराप्लुताङ्गी नरेन्द्र मूर्द्धास्रजमुद्वहन्ती ॥५५
काश्चित्खड्गेन चिच्छेद खट्वाङ्गेन परान्रणे ।
न्यपूदयद् भृशं क्रुद्धा सरथाश्च गजाश्रिपून् ॥५६

इसके उपरान्त देवी के सिंह ने उस रण स्थल में अपनी जटाओं को हिलाकर दानवों को पाट दिया था। उनमें कुछ को तो हाथों के थपेड़ों से गिराया था और कुछ को लीला ही में मुख में चीर डाला ॥५०॥ कुछ दानवों को अपने नखों से मार दिया और कुछ को अपने उर स्थल से कुचल कर नष्ट कर दिया था। पर्वत की कन्दरा में निवासी सिंह के द्वारा वध्यमान होते हुए तथा भूतगणों के द्वारा जो देवी के अनुचर थे मारे हुए होकर वे सब दानव चण्ड, मुण्ड के पास भागकर आगये थे। उन दोनों ने अपनी सेना को जब आर्त्त दशा में देखा तब वे दोनों क्रोध से होठों को फड़फड़ाने लगे थे ॥५१-५२॥ दोनों क्रोध में भर कर उस दुर्गा पर आक्रमणकारी हुए जैसे पतंगे पावक पर आक्रमण किया करते हैं। उस समय में रौद्र रूप वाले उन दोनों को आते हुए देखकर देवी क्रोध में एकदम भरगई थी और परमेश्वरी ने अपनी भृकुटी त्रिशिखा कर लिया था। देवी के भृकुटियों के कुटिल होने से ललाट फलक से आतुर कराल मुख वाली शुभा योगिनी काली निकली थी जिसके हाथ में खड्ग था और एक परम रौद्र असि थी जो पाश के समान उग्र तथा म्यान से बाहिर थी। वह काली शुष्क गात्र वाली थी और उसके अंग रुधिर से समाप्लुत हो रहे थे। नरेन्द्रों के मस्तकों की माला गले में धारण करने वाली थी ॥५५॥ उस काली ने कुछ को तो खड्ग से काट डाला था और कुछ को खट्वाङ्ग से मार दिया था। अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथों और हाथियों पर स्थित शत्रुओं को मार गिराया था ॥५६॥

चर्माङ्कुशं मुद्गरं च सधनुष्कं सघण्टिकम्।
कुञ्जरं सह यन्त्रेण प्रचिक्षेप मुखेऽम्बिका ॥५७
सचक्रकूबररथं ससारथितुरङ्गमम्।
समं योधेन वदने क्षिप्य चर्वयतेऽम्बिका ॥५८
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामपरं तथा।
पादेनाक्रम्य चैवान्यं देव्यापातयदन्तिके ॥५९

ततस्तु तद्बलं देव्या भक्षितं सगणाधिपम् ।
रुरुर्दृष्ट्वा प्रदुद्राव तं चण्डो ददृशे स्वयम् ॥६०
आजघानाथ शिरसि खड्गाङ्गेन महासुरम् ।
स पपात हतो भूम्यां छिन्नमूल इवद्रुम. ॥६१
ततस्तं पतितं दृष्ट्वा पशोरिव विभावरी ।
कोशमुत्कर्त्तयामास करादिचरणान्तिकम् ॥६२
सा च कोशं समादाय बबन्ध विमलां जटाः ।
एकां न बन्धमगमत्तामुत्पाट्याक्षिपद्भुवि ॥६३

उस अम्बिका ने चर्माकुश, मुद्गर, सधनुष्क,सघनुष्क और घण्टा के साथ कुञ्जर को मुख पर प्रक्षिप्त किया था ॥५७॥ चक्र और कूबर के सहित रथ को तथा सारथि और घोड़ो के सहित रथ को एवं योधा के के साथ अपने मुख म डालकर उस अम्बिका ने चबा लिया था ॥५८॥ एक की चोटी पकड कर और दूसरे की गरदन पकड कर अपने पैर से दबा कर मौत के मुह मे भेज दिया था ॥५९॥ इसके पश्चात् उसके बल को गणाधिप के सहित देवी ने खालिया था । रुरु देखकर दौड़ा था उसे चण्ड ने स्वयं देखा था ॥६०॥ उस महासुर के शिर मे खड्ग से प्रहार किया था जिससे कटे हुए मूल वाले वृक्ष की भाँति वह जमीन पर गिर पड़ा था ॥६१॥ उसके पश्चात् उस विभावरी ने उसे एक पशु के समान पड़ा हुआ देखकर उसके कोश को करो से चरणों के अन्त तक कतर दिया था ॥६२॥ और उसने कोश को लेकर विमल जटाओं को बांध लिया था । एक बन्ध मे नहीं आई थी उसे उत्पाटित करके भूमि पर डाल दिया था ॥६३॥

श्रुत्वैव वचन देव्या. साऽभ्यद्रवत तावुभौ ।
प्रदुद्रुवतुर्भयात्तौ दिशमाश्रित्य दक्षिणाम् ॥६७
ततस्तावपि वेगेन प्राधावत्त्यक्त वाससा ।
साऽधिरुह्य महावेग रासभ गरुडोपमम् ॥६८
यतो गतौ हि तौ दैत्यौ तत्रं वानुययौ शिवा ।
सा ददर्श तदा पौण्ड्र महिप वै यमस्य च ॥६९
सा तस्योत्पाटयामास विपाण भुजगाकृतिम् ।
त प्रगृह्य करेणैव दानवानन्वगाज्जवात् ॥७०

वह सुतरा रौद्री उत्पन्न होगई थी जिसके केश तैल से अभ्यक्त थे। उसका शरीर आधा शुक्ल और आधा कृष्ण था जिसे वसन धारण कर रक्खा था ॥६४॥ वह एक बार बोली थी कि मैं महासुर को मार देती हूँ। उस समय मे उसका नाम चण्डमारी-यह विख्यात किया गया था ॥६५॥ उससे कहा था—हे सुमगे! जाओ और चण्ड-मुण्डो को यहाँ पर ले आओ। मैं उनको स्वय ही मारदूँगी तुम तो उन्हें यहा पर ले आने को ही योग्य होती हो ॥६६॥ इस प्रकार से देवी के वचन को श्रवण करके वह उन दोनो की ओर दौडी थी। वे दोनो भय से आर्त होकर दक्षिण दिशा का आश्रय लेकर दौड गये थे ॥६७॥ वे दोनो बड़े ही वेग से दौड रहे थे। वह भी वस्त्र त्यागकर दौडी और महान् वेग वाले गरुड के समान रासभ पर अधिरूढ होगई थी ॥६८॥ जहाँ वे दोनो दैत्य गये थे वहीं पर वह शिवा भी गयी थी। उस समय मे उसने यम राज के पौण्ड्र महिष को देखा था ॥ ६९ ॥ उसने उस महिष के भुजग की आकृति वाले विषाण को उखाड लिया था। उसको हाथ से ही ग्रहण करके वह वेग से दानवो के पीछे चली गई थी ॥७०॥

तौ चापि भूमि सत्यज्य जग्मतुर्गगन तदा ।
वेगेनाभिसृता सा च रासभेन महेश्वरी ॥७१
ततो ददर्श गरुड पन्नगेन्द्र विषादिपु ।

भयार्त्तश्चैव गरुडो मांसपिण्डोपमो बभौ ।
न्यपतस्तस्य पत्राणि रौद्राणि हि पतत्रिणः ॥७३
खगेन्द्रपत्राण्यादाय नाग कर्कोटक तथा ।
वेगेनाथासरद्देवी चण्डमुण्डौ भयातुरौ ॥७४
सम्प्राप्तौ च तदा देव्या चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
बद्धौ कर्कोटकेनैव बद्ध्वा विन्ध्यमुपागमत् ।७५
निवेदयित्वा कौशिक्याः कोशमादाय भैरवम् ।
शिरोभिर्दानवेन्द्राणां तार्क्ष्यपत्रैश्च शोभनैः ॥७६
कृत्वा स्रजमनौपम्यां चण्डिकायै न्यवेदयत् ।
घर्घरां च मृगेन्द्रस्य चर्मणः सा समार्पयत् ॥७७

वे दोनों फिर भूमि का त्याग करके उस समय मे आकाश मे गमन कर गये थे । वह महेश्वरी भी बड़े वेग से रासभ के द्वारा उनके पीछे गई थी ॥७१॥ इसके पश्चात् उसने गरुड को तथा विषादि मे पन्नगेन्द्र कर्कोटक को देखा था और देख कर ही ऊर्ध्व रोमा हो गया था ॥७२॥ भय से आर्त्त गरुड मास के पिण्ड के समान होगया था और उस पतत्री के रौद्र पत्र गिर गये ॥७३॥ उस खगेन्द्र के पत्रो को तथा कर्कोटक नाग को लेकर वह देवी बड़े वेग से आगे चली थी और चण्ड, मुण्ड अत्यन्त भयभीत होगये थे ॥७४॥ ये महासुर चण्ड-मुण्ड उस समय देवी के समीप मे प्राप्त होगये थे । देवी ने उन दोनों को कर्कोटक से बांधकर विन्ध्याचल पर वह आगई थी । वहाँ उनको निवेदित कर दिया था । फिर कौशिकी के भैरव कोश को ग्रहण कर दानवेन्द्रो के मस्तको से तथा शोभन तार्क्ष्य पत्रों से एक अनुपम माला की रचना करके चण्डिका को निवेदित की थी । उसने मृगेन्द्र के चर्म की घर्घरा समर्पित की थी ॥७५-७७॥

स्रजमन्या खगेन्द्रस्य पत्रैर्मूर्ध्नि निबध्य च ।
आत्मना सा पपौ पानं रुधिरं दानवेष्वपि ॥७८
चण्ड त्वादाय मुण्ड च मुण्ड चासुरनायकौ ।
चकार कुपिता दुर्गा विशिरस्कौ महासुरौ ॥७९

तयोरेव तदा देव्या शेखरः शिरसा कृतः ।
कृत्वा जगाम कौशिक्याः सकाशं शर्वया सह ॥८०
समेत्य साऽब्रवीद्देवि गृह्यतां शेखरोत्तमः ।
ग्रथितो दैत्यशीर्षाभ्यां नागराजेन वेष्टितः ॥८१
तं शेखरं शिवा गृह्य चामुण्डामूर्ध्नि विस्तृतम् ।
बबन्ध प्राह चैवैनां कृतं कर्म सुदारुणम् ॥८२
शेखरं चण्डमुण्डाभ्यां यस्माद्धारयसे शुभम् ।
तस्माल्लोके तव ख्यातिश्चामुण्डेति भविष्यति ॥८३
इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्रा सा चण्डमुण्डस्रजधारिणी वै ।
दिग्वाससं चाभ्यवदत्प्रतीता निपूदयस्वारिबलान्यमूनि ॥८४
सा त्वेवमुक्ताऽथ विषाणकोट्या सुवेगयुक्तेन शरासनेन ।
निपूदयन्ती रिपुसैन्यमुग्रं चचार चान्यानसुरांश्चखाद ॥८५
ततोऽम्बिकायास्त्वथ चण्डमुण्डौ मार्या च सिंहेन च भूतसंघैः ।
निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते ककुद्मिनं सिंहमुपाश्रयन्तम् ॥८६

एक अन्य माला खगेन्द्र के पत्तों से मस्तक में निबद्ध की थी । उसने अपने आप से दानवों में भी रुधिर का पान किया था ॥७८॥ चण्ड और मुण्ड दोनों असुरनाथ को लाकर उस दुर्गा ने कुपित होकर बिना सिर वाले कर दिये थे ॥७९॥ उस समय में उन्हीं दोनों से देवी ने शिर का शेखर बनाया था । उसे बनाकर शर्वा के सहित कौशिकी के पास गयी थी ॥८०॥ उनके समीप में पहुँच कर उसने कहा—हे देवि ! इस अत्युत्तम शेखर को आप ग्रहण कीजिये । यह दैत्यों के मस्तकों से ग्रथित किया गया है और नागराज के द्वारा वेष्टित किया गया है ॥८१॥ शिवा ने उस शेखर को ग्रहण करके उस विस्तृत शेखर को चामुण्डा के मस्तक में बाँध दिया था कि आपने बहुत सुदारुण कर्म किया है ॥८२॥ क्योंकि आप चण्ड मुण्डों से निर्मित शुभ शेखर को धारण कर रही हैं इसीलिए लोक में आपकी चामुण्डा—यह ख्याति होगी ॥८३॥ इस प्रकार से कही गयी उस चामुण्डा देवी ने इसके उपरान्त बड़े वेग से युक्त होकर विषाण कोटि से तथा शरासन

से उस अतीव उग्र असुरों की सेना का संहार करती हुई भक्षण किया था और असुरों का भक्षण कर गयी थी ॥८४-८५॥ इसके अनन्तर उस अम्बिका देवी के सिंह के द्वारा और भूत सर्पों के द्वारा चण्डमुण्ड एवं अन्य दानव निपात्यमान हो गये थे और उन्होंने वह पी सिंह के उपाश्रय ग्रहण किया था ॥८६॥

५६—शुम्भ और निशुम्भ वध वर्णन

चण्डमुण्डौ च निहतौ दृष्ट्वा सैन्य च विद्रुतम् ।
समादिदेशातिबल रक्तबीज महासुरम् ॥१
अक्षौहिणीना त्रिशद्भिः कोटिभि. परिवारितम् ।
समापतन्त दैत्याना बल दृष्ट्वा च चण्डिका ॥२
मुमोच सिंहनाद वै काल्या सह महेश्वरी ।
निनदत्यास्ततो देव्या ब्रह्माणी मुखतोऽभवत् ॥३
हसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलु. ।
माहेश्वरी त्रिनेत्रा च वृषारूढा त्रिशूलिनी ॥४
महाहिवलया रौद्रा जाता कुण्डलिनी क्षणात् ।
ततोऽथ जाता कौमारी बर्हिपक्षा च शक्तिनी ॥५
समुद्भूता च देवर्षे मयूरवरवाहना ।
बाहुभ्या गरुडारूढा शङ्खचक्रगदासिनी ॥६
शार्ङ्गबाणधरा जाता वैष्णवी रूपशालिनी ।
महोग्रमुशला रौद्रा दंष्ट्रोल्लिखितभूतला ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—चण्डमुण्डों को मरा हुआ और समस्त सेना को वहाँ से भागी हुई देखकर फिर अत्यन्त बलशाली महासुर रक्तबीज को युद्ध करने का आदेश दिया गया था। तीस करोड अक्षौहिणी सेना से सयुत होकर आते हुए उस दैत्यों के बल को चण्डिका ने देखा था ॥१-२॥ उसी समय काली के साथ महेश्वरी ने सिंह नाद किया था। इस प्रकार से निनाद करती हुई महादेवी के मुख से ब्रह्माणी हुई थी ॥३॥ हसयुक्त विमान पर सस्थित, अक्षसूत्र और कमण्डलु ग्रहण करने वाली, तीन

त्रैलोक्य में भर गया था सुनकर देवेश्वर शूलपाणि त्रिलोचन प्रभु वहाँ आगये थे और उन्होंने वन्दना करके फिर अम्बिका से कहा था ।।८-११।। हे दुर्गे ! मैं आगया हूँ। अब आप मुझे आज्ञा दो, मैं क्या करूँ उनके वाक्य के साथ ही देवी के देह से समुत्पन्न होने वाली शिवा उपस्थित होगई और उसने देवेश से कहा—हे शङ्कर ! दूत बन कर जाओ और शुम्भ तथा निशुम्भ से यह सन्देश कह दो कि क्या वे जीवित रहना चाहते हैं। यदि ऐसा है तो वे दुराचारी अब भागकर रसातल में चले जावें। इन्द्र स्वर्ग का सुख भोगे तथा समस्त देवगण व्यथा से रहित हो जावें ।।१२-१४।।

यजन्तु ब्राह्मणाद्याश्च वर्णा यज्ञांश्च साम्प्रतम् ।
नोचेद्बलावलेपेन भवन्तो योद्धुमिच्छथ ।।१५
तदागच्छध्वमव्यग्रा एषाऽहं विनिपूदये ।
यतस्तु सा शिव दौत्ये न्ययोजयत नारद ।।१६
ततो नाम महादेव्याः शिवदूतीत्यजायत ।
ते चापि शकरवचः श्रुत्वा गर्वसमन्वितम् ।
हुं कृत्वाऽभ्यद्रवन्सर्वे यत्र कात्यायनी स्थिता ।।१७
ततः शरैः शक्तिभिरङ्कुशैर्वरैः परश्वधैः शूल भुशुण्डिपट्टिशैः ।
प्रासैः सुतीक्ष्णैः परिघैश्च विस्तृतैर्ववृषुर्दैत्यवरा सरस्वतीम् ।।१८
सा चापिबाणैर्वरकार्मुकच्युतैश्चिच्छेद शस्त्राण्यथ बाहुभिर्तं सह ।
जघान चान्यान्रणचण्डविक्रमा महासुरान्बाणशतैर्महेश्वरी ।।१९
मारी त्रिशूलेन जघान चान्यान्खट्वाङ्ग पातैरपराश्च कौशिकी ।
महाजलक्षेपहतप्रभावान्ब्राह्मी तथाऽन्यानसुरांश्चकार ।।२०
माहेश्वरी शूलविदारितोरसश्चकार दग्धांश्च पराश्च वैष्णवी ।
धनरयाकुमारीकुलिशेन चण्डीतुण्डीतुण्डेन चक्रेणवराहरूपिणी ।।

ये ब्राह्मण आदि वर्ण सब अब यज्ञादि का यजन करें। यदि ऐसा वे नहीं करते हैं तो और मुझसे युद्ध ही करना चाहते हैं तो अव्यग्र होकर शीघ्र मेरे सामने आजावें मैं उनका संहार करने को उद्यत हूँ। हे नारद ! क्योंकि उस देवी ने भगवान् शिव को दूत कार्य में नियोजित

किया था तभी से उस महादेवी का नाम शिवदूती-यह पड गया था। उन्होंने भी गर्व सेयुक्त शंकर के वचन को सुन कर सब के सब हुंकार करके युद्ध के लिये टूट पड़े थे जहाँ पर वह कात्यायनी देवी स्थित थी ।।१५-१७।। इसके पश्चात् उन दोनो दैत्यो ने सरस्वती देवी पर शर, शक्ति, अंकुश, परश्वध, शूल, भुशुण्डी, पट्टिश, सुतीक्ष्ण प्रास, परिघ आदि विस्तृत हथियारो से वर्षा की थी ।।१८।। उस देवी ने भी अपने धनुष से बाणो के द्वारा शस्त्रो के सहित उनकी भुजाओ को काट दिया था। उस महेश्वरी ने सैंकडों बाणों से अन्य बडे वीर योधा महासुरो को मार डाला था ।।१९।। मारी ने त्रिशूल से, कौमारी ने खट्वाग के प्रहारो से तथा ब्राह्मी ने अन्य बहुत से असुरो को महाजल में क्षेप करके हत प्रभाव वाले कर दिया था ।।२०।। माहेश्वरी ने शूल से असुरो के वक्षः स्थल को फाड दिया था। वैष्णवी ने अन्यों को दग्ध कर दिया। कुमारी ने शक्ति से—चण्डी ने कुलिश से और वराह रूपिणी ने तुण्ड एवं चक्र से असुरो का निहनन किया था ।।२१।।

मर्यैर्विभिन्नानपि नारसिंही अट्टट्टहासैरपि रुद्रदूती ।
रुद्रस्त्रिशूलेन तथैव चान्यान्विनायकश्चापि परश्वधेन ।।२२
एव हि देव्या विविधैस्तु रूपैर्निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते ।
पेतुः पृथिव्यां भुवि चापि भूतैस्ते भक्ष्यमाणाः प्रलयं प्रजग्मु ।।२३
ते वध्यमानास्त्वथ देवताभिर्महासुरा मातृभिराकुलाश्च ।
विमुक्तकेशास्तरलेक्षणा भयात्ते रक्तबीज शरण हि जग्मुः ।।२४
स रक्तबीजः सहसाऽभ्युपेत्यवरास्त्रमादायचमातृमण्डलम् ।
विद्रावयन्भूतगणान्समन्ताद्विवेश कोपात्स्फुरिताधरश्च ।।२५
तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य मातरः शस्त्रैः शिताग्रैर्दितिजंवपुः ।
योरक्तबिन्दुर्न्यपतत्पृथिव्या स तत्प्रमाणस्त्वपरोऽपि जज्ञे ।।२६
ततश्च मारी स्वयमम्बिकाऽथ प्रहन्यता साम्प्रतमित्युवाच ।
पिबस्व चण्डे रुधिर त्वरान्वितव्य वक्त्रं वडवानलाभम् ।।२७
सा त्वेवमुक्ता वरदाऽम्बिरा हि वितत्य वक्त्रं विकराल ...
तुष्टं नभःस्पृक्पृथिवीस्पृगार्यपृत्वा चिरंतिष्ठति च...

नारसिंही ने नखों द्वारा विदीर्ण किया था, रुद्र दूती ने जोर के अट्टहास से नष्ट किया था, रुद्र ने त्रिशूल से असुरों को मारा था और विनायक ने परश्वध से अन्य असुरों का हनन किया था ॥२२॥ इस प्रकार से देवी के द्वारा अनेक रूपों से निपात्यमान वे समस्त दानव भूमि में गिर गये थे और भूतगणों के द्वारा भक्ष्यमाण होकर नाश को प्राप्त होगये थे ॥२३॥ इसके अनन्तर देवगण के द्वारा वध्यमान् तथा मातृगण के द्वारा समाकुल वे असुर खुली हुई चोटी वाले भय से तरल नेत्रों वाले होकर रक्त बीज के शरण में गये थे ॥२४॥ वह रक्त बीज सहसा श्रेष्ठ अस्त्र ग्रहण कर मातृमण्डल के समीप में आगया था। उसने समस्त भूतगण को भगाते हुए रणस्थल में प्रवेश किया था। उसके होठ क्रोध से फड़क रहे थे ॥२५॥ मातृगण ने आये हुए उसे देखकर उस दैत्य पर तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहारों की वर्षा करदी थी। उसके रक्त की बूंद जो गिरती थी उसी से पृथ्वी पर उसी जैसा दूसरा खड़ा हो जाया करता था ॥ २६॥ इसके पश्चात् भारी अम्बिका स्वयं यह बोली—अब इसको मारो। हे चण्डे! बड़वानल के समान मुख को फैलाकर इस शत्रु के रुधिर का पान करो॥२७॥इस प्रकार से कहे जाने पर वरदा अम्बिका ने अपना विकराल एवं अग्रमुख फैला दिया था जो परम तुष्ट था। आकाश और पृथिवी को स्पर्श करने वाले मुख को करके चर्ममुण्डा बहुत समय तक स्थित होगई थी ॥२८॥

ततोऽम्बिका केशविकर्पणाकुलं कृत्वारिपुं प्राक्षिपत्स्वे च वक्त्रे।
बिभेद शूलेन तथाऽप्युरस्तः क्षतोद्भवो वा न्यपतश्च वक्त्रे ॥२९
ततस्तु शोषं प्रजगाम रक्तं रक्तक्षये हीनबलो बभूव।
तं हीनवीर्यं शतधा चकार चक्रेण चामीकरभूषितेन ॥३०
तस्मिन्हते वै दनुसैन्यनाथे ते दानवा दीनतरं विनेदुः।
हा तातहा भ्रातरिति ब्रुवन्तः क्व यासितिष्ठस्व मुहूर्तमेहि ॥३१
तथाऽपरे विलुलितकेश पाशा विशीर्णचर्माभरणा दिगम्बरा।
निपातिताधरणितले मृडान्या प्रदुद्रुवुर्गिरिमूह्य दैत्याः ॥३२

विशीर्णचर्मा युधभूषणं तद्बलं निरीक्ष्यैव हि दानवेन्द्रः ।
विकीर्ण चक्राक्षरथेनिशुम्भःक्रोधान्मृडानी समुपाजगाम ॥३३
खड्गं समा दया च चर्ममास्वरघुन्वञ्छिरः प्रेक्ष्य च रूपमस्या ।
सस्तम्भ मोह ज्वरपीडिताऽथ चित्रे यथाऽसौ लिखितो बभूव ॥३४
त स्तम्भित वीक्ष्य सुरारिमग्रे प्रोवाच देवी वचन विहस्य ।
अनेन वीर्येण सुरास्त्वया जिता अनेन मा प्रार्थय से बलेन ॥३५

इसके अनन्तर केशो के विकर्षण से आकुल शत्रु को बनाकर अम्बिका ने अपने मुख मे डाल लिया था। शूल से वक्षःस्थल को भेदन कर दिया था और अतोदव वह मुख मे गिर गया था ॥२८॥ इसने उसका रक्त सूख गया था और रक्त के क्षीण हो जाने पर वह हीन बल वाला हो गया था। उसी हीन वीर्य को स्वर्ण भूषित चक्र से सैकड़ो टुकड़े कर दिये थे ॥३०॥ उस दैत्यों के स्वामी के मारे जाने पर वे सब दानव दीन स्वर से चिल्लाने लगे। हे तात! हा भाई! ऐसा पुकारते कह रहे थे—आप कहाँ गये ? थोड़ी देर तो ठहरो, यहा आओ ॥३१॥ इसी भाँति दूसरे जो दानव थे उनके केशपाश विलुलित होगये थे और चर्माभरण विशीर्ण होगये थे। एकदम न ये उनको मृडानी ने भूमिपर गिरादिया था। शेष दैत्य गिरि पर चढकर भाग गये थे ॥३२॥ चर्माभरण और आयुधों से विशीर्ण उसके बल को दानवेन्द्र ने देखा था और विकीर्ण चक्राक्ष रथ मे आरूढ होकर निशुम्भ बड़े क्रोध से मृडानी पर चढकर आगया था ॥३३॥ उसने चर्मभास्वर खग को ग्रहण करके इस देवी के रूप को देखकर शिर को हिलाते हुए मोह से सस्तम्भित हो गया और ज्वर से पीड़ित होकर चित्र मे लिखे हुए की भाँति होगया था ॥३४॥ देवी ने उस सुरारि को अपने आगे स्तम्भित देख कर हसते हुए यह वचन कहे थे। इसी वीर्य से तूने समस्त देवगण जीत लिया था और ऐसे ही वीर्य बल से बलात् मुझे चाहता था ॥३५॥

श्रुत्वा तु वाक्यं कौशिक्या दानवः सुचरादिव ।
प्रोवाच चिन्तयित्वाऽथ वचन वदता वरः ॥३६

सुकुमारशरीरा त्वं मच्छस्त्रपतनादपि ।
शतधा यास्यसे भीरु आमपात्रमिवाम्भसि ॥३७
एवं सञ्चिन्तयन्नर्थं त्वां प्रहर्त्तुं न सुन्दरि ।
करोमि बुद्धिं तस्मात्त्वं मां भजस्वायतेक्षणे ॥३८
मम खड्गनिपातं हि नेन्द्रो धारयितुं क्षमः ।
निवर्त्तय मतिं युद्धाद्भार्या मे भव साम्प्रतम् ॥३९
इत्थं निशुम्भवचनं श्रुत्वा योगेश्वरी मुने ।
विहस्य भावगम्भीरं निशुम्भं वाक्यमब्रवीत् ॥४०
नाजिताऽहं रणे वीर भवे भार्या हि कस्यचित् ।
भवान्यदीह भार्यार्थी ततो मां जय संयुगे ॥४१
इत्येवमुक्ते वचने खड्गमुद्भ्राम्य दानवः ।
प्रचिक्षेप तदा वेगात्कौशिकीं प्रति नारद ॥४२

कौशिकी के इस वाक्य का श्रवण कर दानवेन्द्र जो बोलने वालों में बहुत ही श्रेष्ठ था, बहुत देर में सोचकर यह वचन कहा था ॥३६॥ हे भीरु ! आपतो सुकुमार अंगों वाली हैं। मेरे शस्त्र के गिरने से जल में कच्चे पात्र की भाँति सैकड़ों टुकड़ों वाली हो जाओगी॥३७॥ हे सुन्दरि ! यही विचार करते हुए तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करता हूँ। इसलिये हे आयत नेत्रों वाली ! तुम मेरे पास ही रहो अर्थात् मुझे अपना स्वामी बनालो ॥३८॥ मेरे खग के प्रहार को तो इन्द्र भी सहन करने में असमर्थ है। युद्ध से अपनी बुद्धि हटालो और अब भार्या हो जाओ ॥३९॥ हे मुने ! ऐसे निशुम्भ के वचन सुनकर योगेश्वरी हँस पड़ी जो हँसी बड़े भाव से पूर्ण एवं गम्भीर थी। वह फिर निशुम्भ से बोली ॥४०॥ रण में अजिता मैं किसी की भी भार्या नहीं होऊँगी। आप यदि मुझे भार्या बनाना चाहते हैं तो फिर युद्ध में मुझे पराजित करदो ॥४१॥ इस वचन के कहने पर दानव ने खग को घुमाकर हे नारद ! उस समय में बड़े वेग से कौशिकी पर फेंक दिया था ॥४२॥

समापतन्तं निस्त्रिंशं षड्भिर्बर्हिणवाजिभिः ।
चिच्छेद चर्मणा तदद्भुतमिवाभवत् ॥४३

खड्गं सचर्मणि च्छिन्ने गदा गृह्य महासुरः ।
समाद्रवत्कोशभवा वायु वेगसमो जवे ॥४४
तस्यापतत एवाशु करौ श्लिष्टौ समौ दृढौ ।
गदया सह चिच्छेद क्षुरप्रेण रणेऽम्बिका ॥४५
तस्मिन्निपतिते रौद्रे सुरशत्रौ भयकरे ।
चण्डयाद्या मातरो हृष्टाश्चक्रु. किलकिलाध्वनिम् ॥४६
गगनस्थास्ततो देवा. शतक्रतुपुरोगमा ।
जयस्व विजयेत्यूचुर्हृष्टा शत्रौ निपातिते ॥४७
ततस्तूर्याण्यवाद्यन्त भतसङ घ समन्ततः ।
पुष्पवृष्टि च मुमुचु सुरा कात्यायनी प्रति ॥४८
निशुम्भ पतित दृष्ट्वा शुम्भः क्रोधान्महामुने ॥
वृन्दारक समारुह्य प्रासपाणि समभ्यगात् ॥४६

देवी न उस अपने ऊपर आते हुए निस्त्रिंश को पट्वहंण बाणो से चर्म के साथ छेदन कर दिया था। वह एक बडा अद्भुत ही कार्य हुआ था ॥४३॥ चर्म के साथ खग क छिन्न होने पर महासुर ने गदा उठाली थी और कौशिकी पर वायु के वेग के तुल्य होकर आक्रमण किया था ॥४४॥ उसके गिरते ही दोना हाथ दृढता से श्लिष्ट हो गये थे और रण स्थल मे अम्बिका ने गदा के सहित क्षुरप्र से छिन्न कर दिये थे ॥४५॥ उस महान् रौद्रदेव शत्रु के निपतित हो जाने पर जो कि अत्यन्त भयकर था चण्डी आदि सभी मातृगण बहुत प्रसन्न होगई थी और किलकिला हुट की ध्वनि करने लगीं थी ॥४६॥ फिर तो इन्द्र आदि समस्त देवता आकाश मे स्थित होकर प्रसन्न होते हुए विजय हुई जय हो, यह कहने लगे थे क्यो कि शत्रु का निपातन हो गया था ॥४७॥ फिर तो चारों ओर भूत सघो के द्वारा तूर्य वाद्य बजने लगे थे सुरो ने कात्यायनी के ऊपर पुष्प वृष्टि की थी ॥४८॥ हे महामुने ! जब निशुम्भ मर गया तो शुम्भ क्रोध मे भर कर प्रास हाथ म लेकर वृन्दारक पर समारूढ हो आक्रमण करने वाला होगया था ॥४६॥

तमाप तन्त दृष्ट्वाऽथ सगजं दानवेश्वरम् ।
जग्राह चतुरो बाणाश्चन्द्रार्धाकारवर्चसः ॥५०
क्षुरप्राभ्या सम पादौ द्वौ चिच्छेद द्विपस्य सा ।
द्वाभ्या कुम्भे जघानाथ हसन्ती लीलयाऽम्बिका ।५१
निकृत्ताभ्यां गजः पद्भ्यां निपपात यथेच्छया ।
शक्रवज्रसमा क्रान्त शैलराजशिरो यथा ॥५२
तस्यावर्जितनामस्य शुम्भस्याप्युत्पतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद बाणेन कुण्डलालङ्कृत शिवा ॥५३
छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रो निपपात सकुञ्जरः ।
यथा स महिष क्रौञ्चो महासेनेन सहतः ॥५४
श्रुत्वासुरासुररिपूनिहतौमृडान्या सेन्द्रा ससूर्यमरुश्विवसुप्रधानाः ।
आगत्यतगिरिवरविनयावनम्रादेव्यास्तदा श्रुतिसुखस्वितमीरयन्तः

उस आते हुए गज के सहित दानवेश्वर को देखकर चन्द्रार्धाकार वर्चस वाले चार बाणों को ग्रहण किया था क्षुरप्रों से हाथी के दो पैर छिन्न कर दिये थे और दो से अम्बिका ने हँसते हुए लीला ही से दोनों कुम्भों पर प्रहार किया था ॥५०-५१॥ पैरों के कट जाने पर हाथी यथेच्छा से गिरगया था जिस तरह इन्द्र के वज्र के आघात से शैलराज गिर जाया करता है ॥५२॥ गज से हीन उठने हुए शुंभ का शिर जो कुण्डलों से भूषित था शिवा ने बाण से काट दिया था ॥५३॥ शिर के

नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयंकरि नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते ।
नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणि नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते ॥५७
नमोऽस्तु तेऽष्टादशबाहुशालिनि नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनि ।
नमोऽस्तु ते चार्त्तिहरे त्रिशूलिनि नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि ॥५८
एवम्स्तुतासुरवरैः सुरशत्रुनाशी प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षि वर्यान् ।
प्राप्तो मयाऽद्भुततमो भवतां प्रसादात्संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमदात् ॥
इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति ।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो वरस्तथान्यो व्रियतामभीप्सितः ॥६०

देवों ने कहा—हे भगवति ! आपको हमारा नमस्कार है । आप पापों के नाश करने वाली हैं तथा देवों के शत्रुओं के दर्प का शासन करने वाली हैं । आप हरि और हर को राज्य देने वाली हैं आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है । हे मखभुजों (देवों) के कार्य को करने वाली ! आपको नमस्कार है ॥५६॥ आप देवों के शत्रुओं का क्षय करने वाली हैं और इन्द्र के द्वारा आपके चरण वन्द्यमान हैं आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है । महिषासुर के मारने वाली आपको नमस्कार है । हे हरिहर भास्कर के द्वारा स्तुत होने वाली ! आपको प्रणाम है ॥५७॥ आप अठारह बाहुओं से शोभित हैं और शुम्भ-निशुम्भ के घात करने वाली हैं आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है । हे आर्तिहरे ! हे त्रिशूलिनि ! हे नारायणि ! हे चक्रधारिणी ! आपके लिये हम सबका नमस्कार है ॥५८॥ इस प्रकार से स्तुति की गई सुरों के शत्रुओं का नाश करने वाली वह देवी हँसकर समस्त सुर-सिद्ध और महर्षियों से बोली—मैंने आप सब लोगों के प्रसाद से ही संग्राम में यह अति अद्भुत विजय प्राप्त किया है ॥५९॥ जो नरोत्तम आपके द्वारा की हुई इस स्तुति का कीर्तन भक्ति में परायण होकर करेंगे उनके दुःस्वप्न का नाश हो जायगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अब आप लोग अपना अन्य कोई अभीष्ट वर मुझसे प्राप्त करलो ॥६०॥

यदि वरदा भवती त्रिदशानां द्विजशिशुगोषु यतस्व हिताय ।
पुनरपि देवरिपूनमरास्त्वं प्रदह हुताशनतुल्यशरीरे ॥६१

भूयो वधिष्यामि सुरारिमुत्तमं संभूय नन्दस्य गृहे यशोदया ।
तत्रावतीर्णा लवणं तथाऽपरौ शुम्भं निशुम्भं दशनप्रहारिणी ॥६२
भूयः सुरास्तिष्यगुगे निराशनान्निरीक्ष्य मारीचगृहे शतक्रतोः ।
सम्भूय देव्याऽदितिसप्तधा मया सुरान्मरिष्यामि च शाकसकरैः ॥६३
भूयो विपक्षक्षपणाय देवा विन्ध्ये भविष्याम्यृषिरक्षणार्थम् ।
दुर्वृत्तचेष्टान्विनिहत्य दैत्यान्भूय समेष्यामिसुरा जय हि ॥६४
यदाऽरुणाक्षो भविता महासुरस्तदा भविष्यामि हिताय देवताः ।
महालिरूपेण विनष्टजीवितं कृत्वा समेष्यामिपुनस्त्रिविष्टपम् । ६५
इत्येवमुक्त्वा वरदा सुराणां कृत्वा प्रणामं द्विजपुंगवानाम् ।
विसृज्य भूतानि जगाम देवी ख सिद्धसंघैरनुगम्यमाना ॥६६
इदं पुराणं परमं पवित्रं देव्या जयं मङ्गलदायि पुंसाम् ।
श्रोतव्यमेतन्नियतैः सदैव रक्षोघ्नमेतद्भगवानुवाच ॥६७

देवो ने कहा—यदि आप देवगण को वरदान प्रदान करती हैं तो हम यही चाहते है कि आप द्विज-शिशु और गोओं के हित के लिये यत्न करने वाली रहें। हे अग्नि के समान शरीर वाली ! फिर भी कोई दूसरे देवो के शत्रु हों तो उन्हें आप दग्ध कर देवें ॥६१॥ देवी ने कहा—फिर भी मैं नन्द की पत्नी यशोदा के यहाँ जन्म ग्रहण कर उत्तम सुर शत्रु का वध करूँगी। वहाँ पर अवतीर्ण होकर लवणासुर का तथा दूसरे शुम्भ निशुम्भ के दशनो का सहार करने वाली होऊँगी ॥६२॥ तिष्य युग मे निराशनो को देखकर मारीचगृह मे शतक्रतुकी देवी से जन्म लेकर शाकसकरो से पुन मैं सात प्रकार से देवो का मरण करूँगी। ६३। हे देवगण ! फिर विपक्ष के क्षपण के लिय विन्ध्य मे ऋषियो के रक्षण के लिये होऊँगी। जो दुराचारी दैत्यो का नाश कर मैं फिर जय प्राप्त करूँगी ॥६४॥ जिस समय मे अरुणाक्ष होगा जो महान् असुर होगा तब मैं देवो के हित के लिये प्रकट होऊँगी। महालि रूप से उसे विनष्ट जीवित करके फिर स्वर्ग मे आ जाऊँगी ॥६५॥ पुलस्त्य ने कहा—वरदा ने इस तरह सुरो से कह कर फिर द्विज श्रेष्ठो को प्रणाम करके और समस्त भूतो का त्याग करके वह देवी सिद्ध सघ से अनुगम्यमान

होती हुई आकाश मे चली गई थी ॥६६॥ यह परम पवित्र देवी का जप है जो पुरुषों को मङ्गल देने वाला है। इस को नियत होकर सदा ही सुनना चाहिए। यह राक्षसों का हनन करने वाला है—ऐसा भगवान् ने कहा है ॥६७॥

५७ कार्तिकेय उत्पत्ति वर्णन

कथं समहिषः क्रौञ्चो भिन्नः स्कन्देन सुव्रत ।
एतन्मे विस्तराद्ब्रह्मन्कथयस्वा मितद्युते ॥१
शृणुष्व कथयिष्यामि कथा पुण्या पुरातनीम् ।
यशोवृद्धि कुमारस्य कार्तिकेयस्य नारद ॥२
यत्तत्पीतं हुताशेन स्कन्नं शुक्रं पिनाकिनः ।
तेनाक्रान्तोऽभवद्ब्रह्मन्मन्दतेजा हुताशनः ॥३
ततो जगाम देवाना सका शर्मामितद्युतिः ।
तैश्चापि प्रहितस्तूर्णं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥४
स गच्छन्कुटिला देवी ददर्श पथि पावकः ।
ता दृष्ट्वा प्राह कुटिले तेज एतत्सुदुर्द्धरम् ॥५
महेश्वरेण संत्यक्तं निर्दहेद्भुवनान्यपि ।
तस्मात्प्रतीच्छ पुत्रोऽयं तव धन्यो भविष्यति ॥६
इत्यग्निना सा कुटिला स्मृत्वा स्वमतमुत्तमम् ।
प्रक्षिपस्वाम्भसि मम प्राह वह्निं महापगा ॥७

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे सुव्रत ! स्कन्द ने महिष के सहित क्रौञ्च का कैसे भेदन किया था ? हे अमित द्युति वाले ! हे ब्रह्मन् ! इसे आप विस्तार पूर्वक मेरे सामने कहिये ॥१॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—आप सुनिये, अब मैं परम पुरातन एक कथा कहता हू जो परम पवित्र है। हे नारद ! इसमे कुमार कार्तिकेय की यश की वृद्धि भरी हुई है ॥२॥ जो हुताशन ने पिनाकी के स्कन्न शुक्र का पान किया था हे ब्रह्मन् ! उससे आक्रान्त होकर अग्निदेव मन्द तेज वाले हो गये थे ॥३॥ इसके उपरान्त वह अमितद्युति वाला अग्नि देवों के समीप मे गया था।

उन्होंने भी उसको शीघ्र भेज दिया था और फिर वह ब्रह्म लोक को गया था ।।५।। उस पावक ने मार्ग में कुटिला देवी को देखा था । उसको देखकर उसने कहा—हे कुटिले ! यह दुर्धर्ष तेज है महेश्वर के द्वारा यह सत्यक्त है और समस्त भुवनों को यह दग्ध कर देगा । इसलिये इसे ग्रहण कर लो यह तुम्हारा बड़ा धन्य पुत्र होगा ।।८-६।। इस प्रकार से अग्नि ने उस कुटिला से कहा तो अपना उत्तम मन स्मरण करके महापगा ने अग्नि से कहा—इसे मेरे जल में प्रक्षिप्त कर दो ।।७।।

ततस्त्वधारयद्देवी शार्वतेजस्त्वपूपुपत् ।
हुताशनोऽपि भगवान्कामचारी परिभ्रमन् ।।८
पञ्चवर्षसहस्राणि धृतवान्हव्यभुक्तत ।
मासमस्थीनि रुधिरं मेदो मज्जाऽस्थ तस्य हि ।।९
रोमश्मश्रुक्षिकेशाद्या सर्व जाता हिरण्मयाः ।
हिरण्यरेता लोकेषु तेन गीतश्च पावकः ।।१०
पञ्चवर्षसहस्राणि कुटिला ज्वलनोपमम् ।
धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणः स्थानमागता ।।११
तां दृष्ट्वाऽब्जजन्मा सतप्यन्ती महापगाम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ केनाय तव गर्भः समाहितः ।।१२
सा चाह शाङ्कर यतच्छुक्र पीतं हि वह्निना ।
तदशक्तेन तेनाद्य नि. क्षिप्तं मयि सत्तम ।।१३
पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्या पितामह ।
गर्भस्य वर्त्तते कालो नाय पतति कर्हिचित् ।।१४

इसके पश्चात् उस देवी ने उस शंकर के तेज को धारण कर लिया था और पोषण भी किया था । हुताशन भी कामचारी होकर भ्रमण करने लगे थे ।।८।। पाँच सहस्र वर्ष तक हुताशन ने इसे धारण किया था । उनके मांस, अस्थि, रुधिर, मेद, मज्जा, रोम, श्मश्रु, अक्षिकेश आदि सब हिरण्मय हो गये थे । उसी से वह पावक लोकों में हिरण्य रेता कहा गया है ।।९-१०।। पाँच हजार वर्ष पर्यन्त ज्वलनोपम उस तेज को कुटिला ने धारण किया था तब फिर वह गर्भ धारण किये हुए वह

ब्रह्मा के स्थान पर समागत हुई थी ॥११॥ पद्मजन्मा ब्रह्माजी ने संतप्त होती हुई उस महापगा को देखा था और देखकर उससे पूछा था कि किसने तुझे यह गर्भ समाहित किया है ॥१२॥ उसने कहा—यह शंकर का तेज है जिस शुक्र को अग्नि ने पीया था। उसने अशक्त होकर मुझमें निक्षिप्त कर दिया था ॥१३॥ हे पितामह ! मैंने इसे पाँच सहस्र वर्ष से धारण किया है। इस गर्भ का यह काल है। यह किसी भी तरह विरत्त नहीं है ॥१४॥

तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छ त्वमुदयं गिरिम्।
तत्रास्ति योजनशतं रौद्रं शरवणं महत् १५
तत्रैन क्षिप सुश्रोणि विस्तीर्णे गिरिसानुनि।
दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति ॥१६
सा श्रुत्वा ब्रह्मणे वाक्यं रूपिणी गिरिमागता।
आगत्य गर्भं तत्याज मुखेनैवाद्रिनन्दिना ॥१७
सा तु सत्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहसाऽगमत्।
आपोमयो मन्त्रवशात्सजाता कुटिलासती ॥१८
तेजसा चापि शार्वेण रौक्मं शरवणं महत्।
तन्निवासरताश्चान्ये पादपा मृगपक्षिणः ॥१९
ततो दशसु पूर्णेषु शरदां हि शतेष्वथ।
बालार्कदीप्तिः संजातो बालः कमललोचनः ॥२०
उत्तानशायी भगवान्दिव्ये शरवणे स्थितः।
मुखेऽङ्गुष्ठं समाक्षिप्य रुरोद घनराडिव ॥२१

यह सुनकर पितामह ने कहा—तुम उदयगिरि पर जाओ। वहाँ पर सौ योजन का एक विस्तृत महान् रौद्र शरों का वन है ॥१५॥ हे सुश्रोणि ! उस विस्तृत गिरि के शिखर पर इसको प्रक्षिप्त कर दो। दश सहस्र वर्ष के पश्चात् यह बालक होगा ॥१६॥ उसने ब्रह्माजी के इस वाक्य का श्रवण करके रूपिणी वह गिरि पर आ गई थी। वहाँ पर उस अद्रिनन्दिनी ने मुख से ही उस गर्भ का त्याग किया था ॥१७॥ उसने उस बालक का त्याग करके पुनः सहसा वह ब्रह्माजी के पास आ गई

थी। आपोमयी वह मन्त्र के वश से सती कुटिला हो गई थी ॥१८॥ उस शकर के तेज से वह महान् शरवण रौकम हो गया था। और उसमें निवास करने वाले सभी पादप, मृग तथा पक्षीगण सभी रौकम हो गये थे ॥१९॥ इसके पश्चात् दश सहस्र वर्ष पूरे होने पर बाल सूर्य के समान दीप्ति से परिपूर्ण और कमल के समान लोचनों वाला बालक समुत्पन्न हुआ था ॥२०॥ उत्तान होकर शयन करने वाले भगवान् उस परम दिव्य शरवण में स्थित थे। मुख में अपना अंगुष्ठ लिये हुए घनराट् की भाँति रुदन किया करते थे ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे दिव्या कृत्तिका षट् सुतेजस ।
ददृशु स्वेच्छया यान्त्यो जाल शरवणे स्थितम् ॥२२
कृपायुक्ताः समाजग्मुर्यत्र स्कन्द स्थितोऽभवत् ।
अह पूर्वमह पूर्वं तस्मै स्तन्य विचुक्रुशु. ॥२३
विवदन्ती स ता दृष्ट्वा षण्मुख. समजायत ।
अबीभरश्च ता सर्वाः शिशुस्नेहाच्च कृत्तिकाः ॥२४
ध्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने ।
कार्तिकेय इति ख्यातो जातः स बलिना वरः ॥२५
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा पावक प्राह पद्मभूः ।
कियत्प्रमाणः पुत्रस्ते साम्प्रत गुह ॥२६
स तद्वचनमाकर्ण्य जानन्नपि हि चात्मजम् ।
प्रोवाच वह्निर्देवेश न वेद्मि कतमो गुह. ॥२७
त प्राह भगवान्प्रीतस्तेजः पीत पुरा त्वया ।
त्र्यम्बक त्रिलोकेशो जातः शरवणे शिशु ॥२८

इसी बीच में सुन्दर तेज वाली षट् दिव्य कृत्तिकाओं ने उसे देखा था जो बालक शरवण में संस्थित था वे स्वेच्छा से ही वहाँ होकर गमन कर रही थी ॥२२॥ वे कृपा से युक्त होकर वहाँ पर आगई थी जहाँ पर स्कन्द स्थित थे। उन सबने पहिले मैं स्तन्य दूगी—पहिले मैं दूगी—इस प्रकार से कह रही थीं ॥२३॥ इस तरह परस्पर में विवाद करती हुई उनको देखकर वह छै मुखों वाले होगये थे। फिर उन सब कृत्ति

काओं ने शिशु के स्नेह से उस बालक को दूध पिलाया था ॥२४॥ उन के द्वारा भरण किया हुआ वह बालक हे मुने ! वृद्धि को प्राप्त हो गया था । तभी से वह कार्तिकेय इस नाम से विख्यात हुए थे । वह बल-शालियों में परम श्रेष्ठ थे ॥२५॥ इसी बीच मे ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा—इस समय तुम्हारा पुत्र गुह कितना बड़ा है ॥२६॥ वह उनके वचन को सुनकर अपने पुत्र को जानते हुए भी अग्नि ने देवेश से कहा—मैं नही जानता हूँ कौनसा गुह है ॥२७॥ भगवान् ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर कहा—आपने पहिले तेज का पान किया था जोकि भगवान् त्र्यम्बक का था । उससे त्रिलोक का स्वामी शिशु शरवण मे उत्पन्न हुआ है ॥२८॥

श्रुत्वा पिता महवचः पावकस्त्वरितोऽभ्यगात् ।
वेगिनं मेषमारुह्य कुटिला त ददर्श ह ॥२६
ततः पप्रच्छ कुटिला शीघ्रं क्व व्रजसे कवे ।
सोऽब्रवीत्पुत्रदृष्टयर्थं जातः शरवणे शिशुः ॥३०
साऽब्रवीत्तनयो मह्यं ममेत्याह च पावकः ।
विवदन्तौ ददर्शाथ स्वेच्छाचारी जनार्दनः ॥३१
तौ पप्रच्छ किमर्थं वा विवादमिह चक्रतुः ।
तावूचतुः पुत्रहेतो रुद्रशुक्रोद्भवो यदि ॥३२
तावुवाच हरिर्देवो गच्छतं त्रिपुरान्तकम् ।
स यद्वक्ष्यति देवेशस्तत्कुरुध्वमसशयम् ॥३३
इत्युक्तो वासुदेवेन कुटिलाग्नी हरान्तिके ।
समभ्येत्योचतुस्तथ्य कस्य पुत्रेति नारद ॥३४
रुद्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य हर्षनिर्भरमानसः ।
दिष्ट्या दिष्ट्येति गिरिजां प्रह्वू तपुलकोऽब्रवीत् ॥३५

पितामह के इस वचन का श्रवण कर अग्निदेव तुरन्त ही वहाँ गये थे । मेष पर समारूढ़ होकर वेग से युक्त उसे देखकर कुटिला ने पूछा—हे कवे ! इतनी शीघ्रता से आज कहा जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया पुत्र को देखने के लिये जो शिशु शरवण मे समुत्पन्न हुआ है ॥३०॥

वह बोली—यह पुत्र तो मेरा है पावक ने कहा—यह मेरा पुत्र है।' दोनों इसी प्रकार से आपस में विवाद कर रहे थे कि उन्होंने स्वेच्छाचारी भगवान् जनार्दन का दर्शन किया था ॥३१॥ उन दोनों से पूछा गया था कि वहाँ पर वे किस लिये वह विवाद कर रहे थे। उन्होंने कहा यदि रुद्र के शुक्र से उसका जन्म हुआ है तो उसी पुत्र के लिये वह विवाद हो रहा था। उन दोनों से देव हरि ने कहा था—आप दोनों ही शिव के समीप में चले जाओ। जो कुछ भी वह देवेश ,आज्ञा देंगे वही आप दोनों बिना किसी संशय के करना ॥३२-३३॥ इस प्रकार से वासुदेव के द्वारा कहे जाने पर वे दोनों कुटिला और अग्निदेव भगवान् शिव के समीप में पहुंच कर हे नारद ! यह सब कुछ यथार्थ निवेदन कर दिया था और जानना चाहा था कि वह पुत्र किसका है ॥३४॥ भगवान् रुद्र को उनके वचन को श्रवण कर मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। बहुत हर्ष है—बड़ी प्रसन्नता है—यह कहते हुए हर्षातिरेक से पुलकायमान होकर गिरिजा से बोले—॥३५॥

ततोऽम्बिका प्राह हर देव गच्छाव तं शिशुम्।
प्रष्टुं समाश्रयेद्य स तस्य पुत्रो भविष्यति ॥३६
बाढमित्येव भगवान्समुत्तस्थौ वृषध्वजः।
सहोमयाऽकुटिलया पावकेन च धीमता ॥३७
संप्राप्तास्ते शरवणं हरोमाकुटिलाग्नयः।
ददृशुः शिशुकं तं च कृत्तिकोत्सङ्गशायिनम् ॥३८
ततः स बालकस्तेषां मत्वा चिन्तितमादरात्।
योगाच्चतुर्मूर्तिरभूच्छिशुत्वेऽपि च षण्मुखः ॥३९
कुमारः शंकरमगाद्विशाखो गिरिजामगात्।
कुटिलामभ्यगाच्छाखो नैगमेयोऽभ्यगात् ॥४०
ततः प्रीतियुतो रुद्र उमा च कुटिला तथा।
पावकश्चापि देवेशः परां मुदमवाप ह। ४१
ततोऽब्रुवन्कृत्तिकास्ताः षण्मुखः किं हरात्मजः।
ततोऽब्रवीद्धरः प्रीत्या विशेषवचनं मुने ॥४२

इसके अनन्तर अम्बिका ने भगवान् हर से कहा—हे देव ! उस शिशु के पास चलना चाहिए और पूछें। वह जिस का भी समाश्रय ग्रहण करेगा उसी का पुत्र होगा ॥३६॥ वृषध्वज भगवान् भी 'बहुत अच्छा' यही कहकर उठ खड़े हुए थे। वे उमा-कुटिला और बुद्धिमान अग्नि के साथ चल दिये थे ॥३७॥ वे सब भगवान् हर, कुटिला, उमा और अग्नि शरवण में प्राप्त हो गये थे। वहाँ उन्होंने कृत्तिका के गोद में शयन करते हुए उस शिशु को देखा था ॥३८॥ इसके पश्चात् उस बालक ने आदर से उनके चिन्तित को मान कर वह योग चतुर्मूर्ति हो गया था जोकि शिशुत्व में ही छँ मुख वाला हुआ था ॥३९॥ कुमार तो शंकर के समीप में चला गया था, विशाख गिरिजा के पास चला गया, शाख कुटिला के समीप में गया और नैगमेय अग्नि के पास गया था ॥४०॥ इसके उपरान्त रुद्र भी प्रीति से युक्त होगये तथा उमा, कुटिला और देवेश पावक भी परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए थे ॥४१॥ इसके पश्चात् वे कृत्तिकाऐं बोलीं-क्या षण्मुख हर का पुत्र है। इसके बाद में हर ने प्रीति से विशेष वचन कहा था ॥४२॥

नाम्ना तु कार्त्तिकेयेति युष्माकं च भवत्वसौ ।
कुटिलाया.कुमारीति पुत्रोऽय भाविताऽव्ययः ॥४३
स्कन्द इत्येव विख्यातो गौरीपुत्रो भवत्वसौ ।
गुह इत्येव नाम्ना च ममासौ तनयः स्मृतः ॥४४
महासेन इति ख्यातो हुताशस्यास्तु पुत्रकः ।
सारस्वत इति ख्यातः पुत्रः शरवणस्य च ॥४५
एवमेष महायोगी पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति ।
षडशत्वान्महाबाहुः षण्मुखो नाम गीयते ॥४६
इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्छूलपाणिः पितामहम् ।
सस्मार देवतं :सार्द्धं तेऽप्याजग्मुस्त्वरान्विताः ॥४७
प्रणिपत्य च कामारिमुमां च गिरिनन्दिनीम् ।
दृष्ट्वा हुताशनं प्रीत्या कुटिलां कृत्तिकास्तथा ॥४८

ददृशुर्बालमत्युग्रं षण्मुखं सूर्यसन्निभम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि तेजसा स्वेन देवताः ॥४९
कौतुकाभिवृताः सर्व एवमूचुः सुरोत्तमाः ।
देवकार्यं त्वया देव कृत दिव्याग्निना तदा ॥५०

महादेवजी ने कहा—कार्त्तिकेय—इस नाम से तो यह आप सब का पुत्र होगा । कुमार—इस नाम से यह कुटिला का पुत्र अविनाशी होगा । जो 'स्कन्द'—यह इसका नाम विख्यात होगा उससे यह गौरी का पुत्र होगा । गुह—इस नाम से यह मेरा पुत्र होगा ॥४३-४४॥ इसका नाम एक 'महासेन'—यह भी प्रसिद्ध होगा । उससे यह अग्नि का पुत्र होगा । सारस्वत—इस नाम से प्रसिद्ध यह शरवण का भी पुत्र होगा ॥४५॥ इस प्रकार से महायोगी यह इस भूमण्डल मे ख्याति को प्राप्त करेगा । छै अश होने से महाबाहु यह षण्मुख नाम वाला कहा जायगा ॥४६॥ इतना ही इस प्रकार से कहकर भगवान् शूलपाणि ने पितामह का स्मरण किया था । वे भी समस्त देव वृन्द के साथ बड़ी शीघ्रता से वहा पर आगये थे ॥४७॥ उन्होंने काम के शत्रु देवेश तथा गिरिनन्दिनी उमा को प्रणाम करके वहा पर अग्नि, कुटिला और कृत्तिकाओ को भी देखा था ॥४८॥ और एक सूर्य्य के समान कान्ति वाले छै मुख से संयुत बालक भी देखा था जो अपने अपरिमित तेज से चक्षुओं को छाया रहा था ॥४९॥ सभी सुरगण उस कौतुक से अभिभूत होकर इस प्रकार से बोले थे । हे देव ! उस समय मे दिव्याग्नि के द्वारा आपने देवकार्य किया था ॥५०॥

तदुत्तिष्ठ व्रजामोऽद्य तीर्थमोज समव्ययम् ।
कुरुक्षेत्रं सरस्वत्यामभिषिञ्चाम षण्मुखम् ॥५१
सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिन्नराः ।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम् ॥५२
बाढमित्यब्रवीच्छर्वः समुत्तस्थुः सुरास्ततः ।
कुमारसहितः जग्मुः कुरुक्षेत्रं महाफलम् ॥५३

तत्रै व देवताः सेन्द्रा रुद्रब्रह्मजनार्द नाः ।
यत्नमस्याभिषेकार्थं चक्रु मु निगणैः सह ॥५४
ततोऽम्बुना सप्तसमुद्रवाहिना नदी जलेनापि महाफलेन ।
वनौषधीभ्वैवसहस्रमूर्तिभिस्तमभ्यषिञ्चन्तहराच्युताद्याः॥५५
अभिषिक्ते तु सेनान्या कुमारे दिव्य रूपिणि ।
जगुर्गन्धर्वऋषयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५६

इसलिये अब उठिये औजस अव्यय तीर्थ पर चलें । कुरुक्षेत्र और सरस्वती में इस षण्मुख का अभिषिञ्चन करें ॥५१॥ सभी देव-गन्धर्व तथा किन्नरों की सेना का यह पति होवे । यह महिषासुर तथा परम दारुण तारकासुर का घात करेगा ॥५२॥ 'बहुत ठीक'—यह कह कर भगवान् शिव एवं सुरगण खड़े होगये और कुमार के सहित महान् फल वाले कुरुक्षेत्र को चल दिये थे ॥५३॥ वहाँ पर ही इन्द्र के सहित समस्त देव, रुद्र, ब्रह्मा और जनार्दन ने सब मुनिगणों के सहित इसके अभिषेक करने के लिये यत्न किया था ॥५४॥ इसके अनन्तर सातों समुद्र के जल से हर एवं अच्युत आदि ने वनौषधियों में सहस्र मूर्त्तियों से उसका अभिषेक किया था ॥५५॥ (उस परम दिव्य रूप वाले सेनानी कुमार के अभिषिक्त होने पर गन्धर्व और ऋषियों ने जयजयकार का गान किया तथा अप्सराओं ने नृत्य किया था ॥५६॥)

अभिषिक्तं कुमारंहि गिरिपुत्री निरीक्ष्य हि ।
स्नेहादुत्सङ्ग स्कन्द मूर्ध्न्यजिघ्रन्मुमुर्हुः ॥५७
जिघ्रती कार्त्तिकेयस्य अभिषेकार्द्रमाननम् ।
भात्यद्रिजा यथेन्द्रस्य देवमाताऽदितिः पुरा ॥५८
तदाभिषिक्तं तनयं दृष्ट्वा शर्वो मुदं ययौ ।
पावकः कृत्तिकाश्चै व कुटिला च यशस्विनी ॥५९
ततोऽभिषिक्तस्य हरः सेनापत्ये गुहस्य च ।
प्रमथांश्चतुरः प्रादाच्छक्रतुल्यपराक्रमान् ॥६०
घण्टाकर्णं लोहिताक्षं नन्दिषेणं च दारुणम् ।
चतुर्थं बलिना मुख्य स्यात कुमुदमालिनम् ॥६१

हरदत्तान्गणान्दृष्ट्वा देवाःस्कन्दस्य नारद ।
प्रददुः प्रमथान्स्वाश्च सर्वे ब्रह्मपुरोगमाः ॥६२
स्थाणुं ब्रह्मा गणं प्रादाद्विष्णुः प्रादद्गणत्रयम् ।
सक्रमं विक्रमं चैव तृतीयं च पराक्रमम् ॥६३

गिरि पुत्री गौरी ने कुमार को अभिषिक्त हुआ देखा तो उनका स्नेह उमड़ पड़ा और स्कन्द को अपनी गोद में बिठा लिया था तथा बार-बार उसके मस्तक को सूंघने लगी थीं ॥५७॥ स्वामि कार्त्तिकेय के उस भीगे हुए मुख को बारम्बार सूंघती हुई गिरिजा इस प्रकार से शोभित हो रही थी जैसे पहिले देवों की माता अदिति इन्द्र के मस्तक को सूंघती हुई सूषित हुई थी ॥५८॥ उस समय में अपने पुत्र को अभिषिक्त देख कर भगवान् शिव को परम हर्ष हुआ था। पावक, कृत्तिका, कुटिला जो परम यशस्विनी थी सभी अत्यन्त हर्षित हुए थे ॥५९॥ इसके उपरान्त भगवान् हर ने सेनापति के पद पर अभिषिक्त गुह को इन्द्र के समान पराक्रम वाले चार प्रमथों को प्रदान किया था ॥६०॥ उन चारों गणों के नाम इस प्रकार हैं—घण्टाकर्ण, लोहिताक्ष, नन्दिषेण जो बहुत ही दारुण था। चौथा बलवानों में शिरोमणि कुमुद माली नाम से विख्यात था ॥ ६१ ॥ हे नारद ! शंकरदेव के द्वारा दिये हुए गणों को देख कर देवों ने भी जिनमें ब्रह्मा प्रधान थे सब ने स्कन्द को अपने प्रमथ दिये थे ॥६२॥ ब्रह्माजी ने स्थाणु नामक गण प्रदान किया था विष्णु ने सक्रम-विक्रम और तीसरा पराक्रम ये तीन गण दिये थे ॥६३॥

उत्क्लेशपङ्कजौ शक्रो रविर्दण्डकपिञ्जलौ ।
चन्द्रो मणिं वसुमणिमश्विनौ वत्सनन्दिनौ ॥६४
ज्योतिर्हुताशनः प्रादाज्ज्वलज्जिह्वं तथा परम् ।
कुन्दमुकुन्दकुसुमं त्रीन्धाताऽनुचरान्ददौ ॥६५
चक्रानुचक्रौ त्वष्टा च वेधा निस्थिरसुस्थिरौ ।
पाणितूर्जं कालिकं च प्रादात्पूषा महाबलौ ॥६६
स्वर्णमालं घनाह्वं च हिमवान्प्रमथोत्तमौ ।
प्रादादेवोच्छ्रितो विन्ध्यस्त्वतिशृङ्गं च पार्षदम् ॥६७

सुवर्चसं च वरुणः प्रददौ चातिवर्चसम् ।
सग्रहं विग्रहं चापि नागा जयपराजयौ ॥६८
उन्माद शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथाम्बिका ।
घस चातिघस वायुः प्रादादनुचरावुभौ ॥६९
परिघं वटकं भीमं दाहातिदहनौ तथा ।
प्रददावंशुमान्पञ्च प्रमथान्षण्मुखाय हि ॥७०

इन्द्र ने उत्क्लेश और पंकज दिये थे । रवि ने दण्ड और कपिञ्जल प्रदान किये थे । चन्द्र ने मणि और वसुमणि समर्पित किये थे । अश्विनी कुमारों ने वत्स और नन्दी दिये थे ॥६४॥ हुताशन ने ज्योति-ज्वलज्जिह्व तथा पुर दिये थे । धाता ने कुन्द मुकुन्द और कुसुम ये तीन अनुचर दिये थे ॥६५॥ त्वष्टादेव चक्र और अनुचक्र दो अनुचर दिये थे । वेधा ने निस्थिर और सुस्थिर को दिया । पूषादेव ने महान् बलवान् पाणिध्वज और कालिक दिये थे ॥६६॥ हिमवान् ने उत्तम प्रमथ स्वर्णमाल और घनाह्व नाम वाले दिये थे । उच्छ्रित विन्ध्य ने अतिकृष्ण नामक पार्षद दिया था ॥६७॥ वरुण ने सुवर्चस और अतिवर्चस दिये थे । नागों ने सग्रह-विग्रह-जय और पराजय गण दिये थे ॥६८॥ अम्बिका ने उन्माद-[illegible] कुकर्ण और पुष्पदन्त नाम वाले गण दिये थे । घस-अतिघस दो अनुचर वायुदेव ने दिये थे ॥६९॥ अंशुमान् ने परिघ, वटक, भीम, दाह और अतिदहन नाम वाले पाँच प्रमथ षण्मुख को प्रदान किये थे ॥७०॥

महिपासुर—तारक उपाख्यान वर्णन

सैनापत्येऽभिषिक्तस्तु कुमारो दैवतैरथ ।
प्रणिपत्य भव भक्त्या गिरिजा पावकं शुचिम् ॥१
षट् कृत्तिकाश्च सरया प्रणम्य कुटिलामपि ।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य इदं वचनमब्रवीत् ॥२
नमो भगवती देवीसो नमोऽस्तु तपोघना- ।
युष्मत्प्रसादाज्जेष्यामि शत्रू महिपतारकौ ॥३

शिशुरस्मि न जानामि वक्तु किंचन देवताः ।
दीयता ब्रह्मणा सार्धमनुज्ञा मम साम्प्रतम् ॥४
इत्येवमुक्ते वचने कुमारेण महात्मना ।
मुख निरीक्ष्य तत्सर्वा सर्वे विगतसाध्वसाः ॥५
शकरोऽपि सुतस्नेहात्समुत्थाय प्रजापतिम् ।
आदाय दक्षिणे पाणौ स्कन्दान्तिकमुपायसौ ॥६
अथोमा प्राह तनय पुत्र एह्येहि शत्रुहन् ।
वन्दस्व चरणौ दिव्यौ विष्णोर्लोकनमस्कृतौ ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार से बहुत से प्रमथो से विभूषित स्वामि कार्तिकेय सेनापति के पद पर अभिषिक्त हुए थे और सभी देवगण ने कुमार का अभिषेक किया तथा सभी ने अपनी २ ओर से उनको गण भी समर्पित किये थे । इसके अनन्तर कुमार ने भक्तिभाव से शिव-गिरिजा तथा परम शुचि अग्निदेव को प्रणाम किया था । छैओ कृत्तिकाओं को तथा सरसा कुटिला को और ब्रह्मा को भी प्रणाम करके फिर वे यह वचन बोले थे ॥१-२॥ कुमार ने कहा—भगवती देवी को मेरा प्रणाम है और समस्त तपस्वियों को मेरा नमस्कार है । मैं अब आप लोगों के प्रसाद से ही महिष और तारक इन दोनो शत्रुओ पर विजय प्राप्त करूँगा ॥३॥ मैं तो एक छोटा-सा शिशु हूँ, मैं कुछ भी बोलना नहीं जानता हूँ । ब्रह्माजी के साथ ही समस्त देववृन्द अब मुझे आज्ञा प्रदान करें ॥४॥ महात्मा कुमार के द्वारा इस प्रकार से यह वचन कहने पर उस कुमार का मुख देखकर सब देवता भय रहित हो गये थे ॥५॥ भगवान् शकर भी सुत के स्नेह से उठ कर दाहिने हाथ से प्रजापति को लेकर स्कन्द के समीप मे पहुँच गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर देवी उमा पुत्र से बोली—हे पुत्र ! तुम तो शत्रुओ का हनन करने वाले हो, यहाँ पर आओ, मेरे समीप मे आ जाओ । भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण लोको के द्वारा वन्द्यमान परम दिव्य चरणो की तुम वन्दना करो ॥७॥

ततो विहस्याह गुह. कोऽय मातवदस्व माम् ।
यस्यादरात्प्रणामोऽय क्रियते मद्विधजनैः ॥८

तं माता प्राह वचनं कृते कर्मणि पद्मभूः ।
वक्ष्यते तव योऽय हि महात्मा गरुडध्वजः ॥९
केवल त्विह मा देव त्वत्पिता प्राह शंकरः ।
नान्यः परत रोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः ॥१०
पार्वत्या गदिते स्कन्दः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
तस्थौकृताञ्जलि पुटस्तत्वाज्ञा प्रार्थयतेऽच्युतात् ॥११
कृताञ्जलि पुट स्कन्दं भगवान्भूतभावनः ।
कृत्वा स्वस्त्ययन देवो ह्यनुज्ञा प्रददौ ततः ॥१२
यत्तत्स्वस्त्ययन पुण्यं कृतवान्गरुडध्वज ।
शिखिध्वजाय विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१३
शृणुष्वस्त्ययने पुण्य यत्प्राह भगवान्हरिः ।
स्कन्दस्य विजयार्थाय वधाय महिषस्य च ॥१४

इसके उपरान्त हँस कर गुह ने कहा—हे माताजी ! यह कौन है, यह तो मुझे बतला दो जिसको आदर भाव के साथ मेरे जैसे मनुष्य प्रणाम किया करते हैं ॥८॥ उस समय मे माता उमा ने उस गुह से यह वचन कहा—कर्म्म पूर्ण करने के पश्चात् ब्रह्माजी यह बतलायेंगे कि जो यह गरुडध्वज महात्मा है ॥९॥ हे देव ! केवल आपके पिता भगवान् शङ्कर ने मुझे तो यही बतलाया है कि इससे पर तर अन्य कोई भी नहीं हैं हम और अन्य तो देही हैं ॥१०॥ पार्वती देवी के द्वारा ऐसा कहने पर स्कन्द ने जनार्दन को प्रणिपात करके वहीं पर अपने हाथों को जोड़कर स्थिति करली थी और भगवान् अच्युत से आज्ञा की प्रार्थना करने लगे ॥११॥ समस्त भूतों पर कृपा करने वाले भगवान् ने अञ्जलि बाँधकर सस्थित स्कन्द का स्वस्त्ययन करके फिर देव ने उसे अपनी आज्ञा प्रदान कर दी थी ॥१२॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—भगवान् गरुडध्वज ने जो भी उस समय परम पुण्यमय स्वस्त्ययन शिखिध्वज के लिये किया था हे विप्रर्षे ! आप उसकी व्याख्या मेरे समक्ष मे करने को योग्य होते हैं ॥१३॥ महर्षि पुलस्त्य जी ने कहा—अब आप उस पुण्य

महान् बल वाले भूतगण, गणेन्द्र ये सभी आपके कल्याण करने के लिये प्रस्तुत होवें ॥२०॥ द्विपादों में, चतुष्पादों से आपका मगल होवे । बहुपादों से और अपादों से भी आपका अनामय कल्याण होवे ॥२१॥

प्राग्दिशं रक्षता वज्री दक्षिणा दण्डनायकः ।
पाशी प्रतीचीमवतु यक्षेशः पातु चोत्तराम् ॥२२
वह्निर्दक्षिणपूर्वा तु कुबेरो दक्षिणापराम् ।
प्रतीचीमुत्तरा वायु शिवः पूर्वोत्तरामपि ॥२३
उपरिष्टाद् ध्रुवः पातु ह्यधस्ताच्च धरा धरः ।
मुसली लाङ्गली वज्री धनुष्मानन्तरेषु च ॥२४
वाराहोऽम्बुनिधौ पातु दुर्गे पातु नृकेसरी ।
सामवेदध्वनिः श्रीमान्सर्वद पातु माधवः ॥२५
एव कृतस्वस्त्ययनो गुहः शक्तिधरोऽग्रणीः ।
प्रणिपत्य सुरान्सर्वान्भूतलादुत्पपात खम् ॥२६
तमन्ये च गणा सर्वे देवाश्च मुनिदं वतः ।
अनुजग्मु कुमार ते कामरूपा विहङ्गमाः ॥२७
मातरश्च तथा सर्वाः समुत्पेतुर्नभस्तलम् ।
सम स्कन्देन बलिना हन्तुकामा महासुरान् ॥२८

आपकी वज्रधारी इन्द्र पूर्व दिशा में रक्षा करें, दण्डनायक दक्षिण दिशा में, पाशी (वरुण) पश्चिम में और यक्षराज उत्तर दिशा में आपकी रक्षा करें ॥२२॥ दक्षिण पूर्व में अग्नि देव, दक्षिणा परा में कुबेर, प्रतीची उत्तरा में वायु और पूर्वोत्तर दिशा में भगवान् शिव आपकी रक्षा करें ॥२३॥ ऊपर की दिशा में धराधर शेष आपकी रक्षा करें । अन्तरों में मुसली, लाङ्गली-वज्री और धनुष्मान् आपकी रक्षा करे ॥२४॥ अम्बुनिधि में वाराह रक्षक होवें । दुर्ग में नृसिंह भगवान् रक्षा करे । सामवेद की ध्वनि वाले तथा सभी कुछ प्रदान करने वाले श्रीमान् माधव सर्वत्र आपकी रक्षा करे ॥२५॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार से स्वस्त्ययन किये हुए अग्रणी शक्तिधर गुह ने समस्त सुरों को प्रणाम करके इस भूतल से आकाश में छलाँग मारी थी ॥२६॥ उनके

पीछे अन्य समस्त गण तथा मुनियों के साथ सब देवगण गये थे जो इच्छा से स्वरूप धारण करने वाले एवं विहगम थे ॥२७॥ समस्त माताएं भी नभस्तल में उत्पतन कर गई थी जो बलवान् स्कन्द के साथ ही उन महासुरों के हनन कराने की इच्छा वाली थीं ॥२८॥

ततः सुदीर्घमध्वानं गत्वा स्कन्दोऽब्रवीद्गणान् ।
भूम्यां तूर्णं महावीर्याः कुरुध्वमवतारणम् ॥२९
गणा गुहवचः श्रुत्वा अवतीर्य महीतलम् ।
आरात्पर्वतमभ्येत्य नादं चक्रुर्भयंकरम् ॥३०
तन्निनादो मही सर्वामापूय नभस्तलम् ।
विवेशार्णवरन्ध्रेण पातालं दानवालयम् ॥३१
श्रुतः स महिषेणाथ तारकेण च धीमता ।
विरोचनेन कुम्भेन निकुम्भेनासुरेण च ॥३२
श्रुत्वा च सहसा नादं वज्रपातोपमं दृढम् ।
किमेतदिति संचिन्त्य तूर्णं जग्मुस्तदान्धकम् ॥३३
ते समेत्यान्धकेनैव समं दानवपुंगवाः ।
मन्त्रयामासुरुद्विग्नास्तच्छब्दं प्रति नारद ॥३४
मन्त्रयत्सु च दैत्येषु पातालात्सूकराननः ।
पातालकेतुर्दैत्येन्द्र सम्प्राप्तोऽथ रसातलम् ॥३५

इसके पश्चात् बहुत अधिक मार्ग को तय करके स्कन्द ने अपने गणों से कहा—हे महान वीर्य वालो ! आप लोग अति शीघ्र भूमि पर उतर जाओ ॥२९॥ सब गणों ने गुह के इस वचनको सुनकर महीतल पर अवतारण कर लिया था और समीप में ही पर्वत में पहुँच कर भयंकर ध्वनि की थी ॥३०॥ वह महान् घोर ध्वनि सम्पूर्ण पृथ्वी पर भर गई थी और फिर नभस्तल में पहुँच गई थी। अर्णव रन्ध्र के द्वारा दानवालय पाताल में भी प्रविष्ट हो गई थी ॥३१॥ उस ध्वनि को महिष और बुद्धिमान तारक ने सुना था। विरोचन, कुम्भ, निकुम्भ असुर ने भी श्रवण किया था। वह नाद बहुत ही भीषण और वज्रपात के समान दृढ़ था। सब ने सोचा था कि यह क्या ध्वनि है। वे सब अति शीघ्र

अन्धक के समीप में पहुँच गये थे ॥३२-३३॥ हे नारद ! वे सब अन्धक के साथ एकत्रित होकर समस्त दानव श्रेष्ठ उद्विग्न होते हुए उस ध्वनि के विषय में मन्त्रणा करने लगे थे ॥३४॥ इस प्रकार सब दैत्यों के मन्त्रणा करने पर पश्चात् ने सूकर के समान मुखवाला दैत्येन्द्र पातालकेतु रसातल में प्राप्त हो गया था ॥३५॥

स बाणविद्धो व्यथितः कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीद्वचनं दीनं समभ्येत्यान्धकासुरम् ॥३६
गतोऽहमद्य दैत्येन्द्र गालवस्याश्रमं प्रति ।
तद्विध्वंसयितुं यत्नः समारब्धो बलान्मया ॥३७
यावत्सूकररूपेण प्रविशामि तदाश्रमम् ।
न जानेऽहं नरं राजन्येन मे प्रहितः शरः ॥३८
शरसंभिन्नजत्रुश्च भयाच्च महाजवः ।
प्रपलाय्याश्च मात्तस्मात्स च मां पृष्ठतोऽन्वगात् ॥३९
तुरङ्गखुरनिर्घोषः श्रूयते परमोऽसुर ।
तिष्ठ तिष्ठेति वदतः सूकरस्य च पृष्ठतः ।
तद्भयादस्मि जलधिं सम्प्राप्तो दक्षिणार्णवम् ॥४०
यावत्पश्यामि तत्रस्थान्नानावेषाकृतीन्नरान् ।
केचिद्गर्जन्ति घनवत्प्रत्यगर्जंस्तथाऽपरे ॥४१
अन्ये चोचुर्वयं नून निहन्मो महिषासुरम् ।
तारकं घातयामोऽद्य वदन्त्यन्ये सुतेजसः ॥४२

वह पातालकेतु बाणों से विद्ध हो रहा था और अत्यन्त व्यथा से पूर्ण तथा बारम्बार काँपता हुआ वहाँ अन्धकासुर के समीप में आकर अत्यन्त दीनता पूर्वक यह वचन बोला ॥३६॥ पातालकेतु ने कहा— हे दैत्येन्द्र ! मैं गालव ऋषि के आश्रम की ओर गया और मैंने बलपूर्वक उस आश्रम को विध्वस्त करने के लिये मैंने अपना यत्न भी आरम्भ कर दिया था ॥३७॥ ज्योंही मैं सूकर के स्वरूप से उस आश्रम में प्रवेश करने लगा था, मैं उसे नहीं जानता हूँ किसी राजन्य ने मुझे शर मार दिया था ॥३८॥ शर से सम्भिन्न जत्रु वाला, भय से अत्यन्त आर्त,

वेग वाला मैं उस आश्रम से पलायन करके चला तो वह भी मेरे पीछे ही चल दिया था ॥३९॥ हे असुर ! अश्व के खुर का अतीव शब्द सुनाई दे रहा था और वह 'खड़ा रह खड़ा रह'–इस प्रकार से मेरे पीछे ही चला आ रहा था। तब मैं भय से दक्षिण सागर में प्रवेश कर गया था ॥४०॥ जैसे ही मैंने सागर में प्रवेश किया था मैंने वहाँ पर अनेक आकृतियों वाले नरों को देखा था। उनमें कुछ तो मेघ की भाँति गर्जन कर रहे थे और दूसरे भी उनके ही साथ फिर गर्जना करते थे ॥४१॥ दूसरे यो कह रहे थे हम निश्चय ही महिषासुर को मार डालेंगे। आज तारक का घात करेंगे ऐसा भी दूसरे सुन्दर तेज वाले कह रहे थे ॥४२॥

तच्छ्रुत्वा सुतरा त्रासो मम जातोऽसुरेश्वर ।
महार्णव परित्यज्य पतितोऽस्मि भयातुरः ॥४३
धरण्यां विवृत गर्तं स मामन्वपतद्बली ।
तद्भयात्सपरित्यज्य हिरण्यपुरमात्मनः ॥४४
तवान्तिकमनुप्राप्तः प्रसाद कर्तुमर्हसि ।
तच्छ्रुत्वा चान्धको वाक्य प्राह मेघस्वन वचः ॥४५
न भेतव्यं त्वया तस्मात्सत्यं गोप्तास्मि दानव ।
महिषस्तारकश्चोग्रो बाणश्च बलिनन्दनः ॥४६
अनाहूता यैव ते वीरास्त्वन्धक महिषादयः ।
स्वपरिग्रहमयुक्ता भूमौ युद्धाय निर्ययुः ॥४७
यत्र ते दारुणाकारा गणाश्चक्रुर्महास्वनम् ।
तत्र दैत्याः समाजग्मुः सायुधाः सबला मुने ॥४८
दैत्यानां पतयो दृष्ट्वा कार्त्तिकेयगणांस्ततः ।
अभ्यद्रवन्त सहसा ते चोग्रं मातृमण्डलम् ॥४९

हे असुरेश्वर ! यह श्रवण कर मुझे सुतरा बड़ा भय समुत्पन्न हो गया था फिर उस महार्णव को त्याग कर मैं भयातुर होकर गिर पड़ा ॥४३॥ धरणी में एक विवर्त गर्त था, वह बलवान् भी मेरे पीछे गिर पड़ा। उसके भय से मैं अपने हिरण्यपुर का परित्याग करके चल दिया

॥४४॥ अब आपके समीप में मैं आया हूँ । आप मेरे ऊपर अपना प्रसाद करिये । यह सुनकर अन्धक ने मेघ के तुल्य ध्वनि वाला वचन कहा था ॥४५॥ हे दानव ! इसने तुमको डरना नहीं चाहिए । मैं तुम्हारी रक्षा करने वाला होऊँगा । फिर महिष, तारक, उग्रवाण और बलि का पुत्र आदि बहुत से वीर अन्धक के साथ महिष आदि बिना कहे ही अपने २ परिग्रह से सयुत होकर भूमि पर युद्ध करने के लिये निकल आये थे ॥४६-४७॥ जहाँ पर हे मुने ! वे दारुण आकार वाले स्वामि कार्त्तिकेय के गण महान् नाद कर रहे थे वहीं पर वे दैत्य अपने २ आयुधों से समन्वित होकर सबन्न होते हुए आगये थे ॥४८॥ इसके अनन्तर दैत्यों के पतियों ने वहाँ पर कार्त्तिकेय के गणों को देखकर उन्होंने सहसा उस मातृ मण्डल पर हमला कर दिया ॥४९॥

तेषां पुरस्सरः स्थाणुः प्रगृह्य परिघं बली ।
न्यपूदयत्परबलं क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥५०
तं निघ्नन्त महादेवं निरीक्ष्य कलशोदरः ।
कुठारं पाणिनाऽऽदाय हन्ति सर्वान्महासुरान् ॥५१
ज्वालामुखो भयकरः करेणादाय चासुरम् ।
सरथं सगज साश्वं विस्तृते वदनेऽक्षिपत् ॥५२
दण्डकश्चापि संक्रुद्धः प्रासापाणि महासुरम् ।
सवाहन प्रक्षिपति समुत्पाट्य महार्णवे ॥५३
शङ्कुकर्णश्च मुसली हलेनाहृत्य दानवान् ।
सचूर्णयति मन्त्रीव राजानं हीनपौरुषम् ॥५४
खड्गचर्म धरो वीरः पुष्पदन्तो गणेश्वरः ।
द्विधा त्रिधा च बहुधा चक्रे दैतेयदानवान् ॥५५
पिङ्गलो दण्डमुण्डैश्च यत्र यत्र प्रधावति ।
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते राशयः सर्वदानवैः ॥५६

उनके आगे बलवान् स्थाणु परिघ लेकर आगये थे और क्रुद्ध रुद्र जैसे पशुओं को मार देते हैं वैसे ही शत्रु के बल का उन्होंने संहार

कर कलशोदर ने हाथ में कुठार ग्रहण करके समस्त महान् असुरों का हनन किया था ।।५१।। भय करने वाले ज्वाला मुख ने हाथ में असुर को पकड़ कर रथ-गज और अश्व के सहित अपने विस्तृत मुख में प्रक्षिप्त कर दिया था ।।५२।। दण्डक भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रास हाथ में रखने वाले महासुर को उस के वाहन के सहित समुत्पाटित कर महार्णव में फेंक देता था ।।५३।। शङ्कुकर्ण और सुमनी दानवों को हल से मार कर हीन पौरुष राजा को मन्त्री की भाँति चूर्ण कर देता था ।।५४।। खड्ग और चर्म को धारण करने वाले गणेश्वर पुष्पदन्त दैतेय दानवों के दो-तीन और बहुत से टुकड़े कर मार डालता था ।।५५।। दण्ड मुण्डों के सहित पिंगल जहाँ-जहा पर भी प्रधावन करता था वहीं-वहीं पर सब दानवों के ढेर दिखलाई देते थे ।।५६।।

सहस्रनयनः शूल भ्रामयन्वै गणाग्रणीः ।
निजघानासुरान्वीर सवाजिरथकुञ्जरान् ।।५७
भीमो भीमशिलावर्षैः सपुर. सरिणोऽसुरान् ।
निजघान यथेन्द्रो वज्रवृष्ट्या नगोत्तमान् ।।५८
रौद्र. शक टचक्राख्यो गण पञ्चशिखो वली ।
भ्रामयन्मुद्गर वेगान्निजघान बलाद्रिपून् ।।५९
गिरिभेदी तलेनैव सारोह कुञ्जर रणे ।
भस्म चक्रे महावेगो रथ च रथिना सह ।।६०
नाडीजङ घो निपातैश्च मुष्टिभिर्जानुनाऽसुरान् ।
कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जघान बलवान्मुने ।।६१
कूर्मग्रीवो हयग्रीवःशि रसा चरणेन च ।
लुण्ठनेन तदा दैत्यान्निजघान सवाहनान् ।।६२
पिण्डाकरस्तु तुण्डेन शृङ्गाभ्या च कलिप्रिय ।
विदारयति सग्रामे दानवान्समरोद्धतान् ।।६३

गणों के अग्रणी सहस्र नयन बहुत वीर थे वह अपने शूल को घुमाते हुए और घोड़ों के सहित तथा रथों से युक्त असुरों का वध कर रहे थे। ।।५७।। भीम नाम वाला गण भयानक शिला की वर्षाओं से सपुर सरी

असुरों को वज्र वृष्टि से नगोत्तमो को इन्द्र की भाँति मार रहा था ॥५८॥ परम रौद्र वालो पञ्चशिख शंकर चक्र नाम धारी गण अपने मुद्गर को घुमाता हुआ बड़े वेग के साथ बलपूर्वक शत्रुओं का हनन कर रहा था ॥५९॥ गिरिभेदी रण में आरोह के सहित गज को तल से ही मार रहा था महावेग रथो के सहित रथ को भस्मसात् कर देता था ॥६०॥ नाडी जंघ प्रहारो से, मुष्टियों से, जानु से असुरों का वध कर देता था। यह महाबलशाली वज्र के तुल्य नोकाओं से हे मुने ! असुरो को मार देता था ॥६१॥ कूर्मग्रीव और हयग्रीव शिर से और चरण तथा लुण्ठन से उस समय से वाहनो के सहित दैत्यों का वध कर देता था ॥६२॥ शिखाकर अपने तुण्ड (मुन्ड) से और कश्चित्‌ अपने सींगो से उस संग्राम में समरोद्धत दानवों का विदारण कर रहे थे ॥६३॥

ततो दृष्ट्वैव स्वबलं वध्यमानं गणेश्वरैः ।
प्रदुद्रावाथ महिषस्तारकश्च गणाग्रणीः ॥६४
ते हन्यमानाः प्रमथा दानवाना वरायुधैः ।
परिवार्य समन्तात्ते युयुधुः कुपिता स्तदा ॥६५
हयास्यः पट्टिशेनाथ जघान महिषासुरम् ।
षोडशास्यस्त्रिशूलेन शतशीर्षो वरासिना ॥६६
श्रुतायुधस्तु गदया विशोको मुसलेन च ।
बन्धुदत्तस्तु शूलेन मूर्ध्नि दैत्यमताडयत् ॥६७
तथाऽन्यैः पार्षदैर्युद्धे शूलशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ।
नाकम्पत्ताड्यमानोऽपि मैनाक इव पर्वतः ॥६८
तारको भद्रकाल्या च तयोलूखलया रणे ।
वध्यतेऽनेक चूडाया दारितं परमायुधैः ॥६९
तौ ताड्यमानौ प्रमथो मातृभिश्च महासुरैः ।
न क्षोभ जग्मतुर्वीरौ क्षोभयन्तौ गणानपि ॥७०
महिषो गदया तूर्णं प्रहारैः प्रमथानपि ।
पराजित्य प्रयात्येन कुमारं प्रतिमायुधः ॥७१

इसके अनन्तर गणेश्वरों के द्वारा अपने बल को इस तरह बुरी भाँति मरता हुआ देख कर फिर महिष और गणाग्रणी तारक ने आक्रमण किया था। ६४॥ फिर दानवो के श्रेष्ठ आयुधों से वे हन्यमान होते हुए प्रमथ चारो ओर से परिवारित होकर उस समय मे अत्यन्त कुपित होकर युद्ध करने लगे थे ॥६५॥ इसके पश्चात् हयास्य ने पट्टिश से महिषासुर का हनन किया था। षोडशास्य ने त्रिशूल से और शतशीर्ष ने वर असि से उस पर प्रहार किये थे ॥६६॥ श्रुतायुध ने गदा से और विशोक ने मुसल से प्रहार किया था। बन्धुदत्त ने शूल से मस्तक मे दैत्य को ताडित किया था ॥६७॥ इसी भाँति अन्य पार्षदों के द्वारा भी शूल, शक्ति, ऋष्टि और पट्टिशो के द्वारा युद्ध स्थल मे उस पर खूब प्रहार किये गये थे किन्तु इस प्रकार से अत्यन्त प्रताडित होते हुए भी वह योद्धा भी मैनाक पर्वत की भाँति कम्पित नही हुआ था ॥६८॥ उस रण स्थल मे वह तारक भी भद्र काली के द्वारा तथा उलूखला के द्वारा बध किया गया था एवं अनेक चूडा के परमायुधों से दारण किया गया था ॥६९॥ वे दोनो प्रमथ मातृगण के द्वारा तथा महासुरों के के द्वारा ताड्यमान होते हुए भी गणो को क्षुब्ध करते हुए भी स्वयं वीर तनिक भी क्षोभ को प्राप्त नही हुए थे ॥७१॥

समापतन्तं महिषं स चक्राक्षो निरीक्ष्य हि ।
चक्रमुद्यम्य सक्रुद्धो रुरोध दनुनन्दनम् ॥७२
गदाचक्राङ्कितकरौ गणासुरमहारथौ ।
अयुध्येतां तदा अह्ल्लयु चित्रं च सुष्ठु च ॥७३
गदां मुमोच महिषः समाविध्य गणाय तु ।
सुचक्राक्षो निजं चक्रमुत्ससर्ज रथं प्रति ॥७४
गदां छित्वा सुतीक्ष्णारं चक्रं महिषमाद्रवत् ।
तत उच्चुक्रुशुर्दैत्या हा हतो महिषस्त्विति ॥७५
तच्चक्रं त्वाऽभ्यद्रवद्वाणः प्रासं माविध्य वेगवान् ।
जघान चक्रं रक्ताक्षं पञ्चमुष्टिशतेन हि ॥७६

पञ्चबाहुशतेनापि सुचक्राक्षं बबन्ध सः ।
बलवानपि बाणे न निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥७७

महिषासुर ने गदा से प्रहारों के द्वारा शीघ्र प्रमथों को भी पराजित कर दिया था और फिर वह आयुधों के सहित कुमार की ओर आया था ॥७१॥ उस महिषासुर को अपने ऊपर आता हुआ देखकर उस चक्राक्ष ने अपना चक्र उठाकर अत्यन्त क्रोधी वेश में आकर उस दनुनन्दन को रोक दिया था ॥७२॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय गदा और चक्र से विभूषित करने वाले दोनों गण सुर महारथ परस्पर में लघु-विचित्र और परम सुन्दर युद्ध कर रहे थे ॥७३॥ महिष गण को समाविद्ध करके उसके ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया था और सुचक्राक्ष ने उस के रथ पर अपना चक्र छोड दिया था ॥७४॥ उसने महिष की गदा का छेदन करके सुतीक्ष्ण अरों वाले चक्र को महिष पर फेंका था। तब तो सभी दैत्य हाहाकार करने लग गये थे कि महिष मर गया है ॥७५॥ यह सुनकर बाण ग्राम को आविद्ध करके बड़े वेग वाला होकर उसके ऊपर चढ़ पड़ा था। पञ्च मुष्टि शत के द्वारा रक्ताक्ष चक्र मारा गया था ॥७६॥ उसने पञ्च बाहुशत के द्वारा भी सुचक्राक्ष बाँध दिया था। वह बलवान् भी था किन्तु गण के द्वारा निष्प्रयत्न गति वाला कर दिया गया था ॥७७॥

सुचक्राक्षं सचक्रं हि बद्धं बाणासुरेण हि ।
दृष्ट्वाऽद्रवद्गदापाणिर्मकराक्षो महाबलः ॥७८
गदया मूर्ध्नि पातेन निजघान महाबलः ।
स चापि तेन सयुक्तो व्रीडायुक्तो महामनाः ॥७९
स संग्रामं परित्यज्य शालिग्राम मुपाययौ ।
बाणोऽपि मकराक्षेण ताडितोऽभूत्पराङ् मुखः ॥८०
अभज्यत बलं सर्वं दैत्यानां सुरतापस ।
प्रभज्य तद्बलं सर्वं दैत्यानां ते गणेश्वराः ॥८१
तिष्ठन्तस्ते भृशं क्रुद्धा दैत्यान्व्यद्रावयद्रणे ।

वाणोऽथ वीरे निहतेऽथ तारके गते हिमाद्रौ महिपे भयार्त्ते ।
भयाद्विवेशोग्रमपानिधान गणैर्बले विद्यति सापराधे ॥८६
हत्वा कुमारो रणमूर्ध्नि तारकं प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन ।
मयूरमारुह्यशिखण्डमण्डितं ययौ निहन्तुं महिपासुरं च ॥८७
स पृष्ठतः प्रेक्ष्य शिखण्डिकेतनं समापतन्तं वरशक्तिपाणिनम् ।
कैलासमुत्सृज्यहिमाचलं तथा क्रौञ्चं समभ्येत्य गुहां विवेश ॥
दैत्यं प्रविष्टं स पिनाकिसूनुर्जुगोप यत्नाद्भगवान्गुहोऽपि ।
स्वबन्धुहन्ताभविताकथं त्वहं विचिन्तयन्नेवनतः स्थितोऽभूत ॥
ततोऽभ्यगात्पुष्करमभवश्च हरो मुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च ।
अभ्येत्यचाचुर्महिषं मशैलं भिन्दस्वशक्त्या कुरु देवकार्यम् ॥९०
तत्कार्तिकेयः प्रियमेव तथ्य श्रुत्वा वचः प्राह मुरारिंहस्य ।
कथं हि मातामहनप्तृकं च स्वभ्रातरं भ्रातृसुतं च मातुः ॥९१

हे महर्षे ! दर्प के मग्न हो जाने वाले उस अपने भाई के निहत हो जाने पर महिपासुर अत्यन्त भय से आतुर हो गया था। फिर वह उस संग्राम के अगले भाग को त्याग कर दुरात्मा वह हिमाचल पर्वत पर चला गया था ॥८५॥ इसके अनन्तर बाणासुर तारक जैसे महान् वीर के मारे जाने पर और भयभीत महिपासुर के हिमाद्रि पर्वत पर जाने पर स्वयं भी भय से गणों के द्वारा सापराध बल के विध्यमान किये जाने पर उग्र जल के निधि में प्रवेश कर गया था ॥८६॥ कुमार ने रणस्थल में शक्ति ग्रहण कर बड़े वेग से तारक का हनन करके मयूर पर समारोहण किया जो कि शिखण्ड से मण्डित था और फिर महिपासुर का वध करने के लिये गमन किया था ॥८७॥ उस महिषन हाथ में श्रेष्ठ शक्ति को लिये हुए पीछे से शिखण्डि के तन को अपने ऊपर आक्रमण को आते हुए देखकर कैलाश पर्वत को त्याग कर हिमाचल पर और फिर वहाँ से भी क्रौञ्च पर्वत पर जाकर गुफा में प्रवेश कर लिया ॥८८॥ उस पिनाकी पुत्र भगवान् गुह ने भी उस प्रविष्ट हुए दैत्य की यत्न से रक्षा की थी। मैं अपने बन्धु का हन्ता कैसे होऊँगा—यह चिन्तन करते हुए ही वहीं पर स्थित हो गया था ॥८९॥ इसके पश्चात् पुष्कर मग्न, हर,

मुरारि और त्रिदशेश्वर यहाँ पर आये और उन्होने कहा था कि इस शैल के सहित महिष का भेदन कर दो तथा शक्ति से देवों का कार्य करो ।।९०।। तब स्वामि कार्तिकेय ने इस प्रिय और तथ्य वचन को सुनकर हँसते हुए सुरो से यह वचन कहा—मैं किस प्रकार से मातामह के नाती, अपना भाई और माता के भाई के पुत्र का वध करूँ ।।९१।।

एषा श्रुतिश्चापि पुरातनी विलगायन्ति या वेदविदो महर्षयः ।
कृत्वा च यस्या मतमुत्तमायास्वर्गप्रजन्तित्वतिपापिनोऽपि ।।९२
गां ब्राह्मणं वृद्धमथापि चाप्तं बालं स्वबन्धुं ललनामदुष्टाम् ।
कृतापराधामपि नैव वध्यादाचार्यमुख्या गुरवस्तथैव ।।९३
एवं जानन्धर्ममग्र्यं सुरेन्द्रा नाहं वध्या भ्रातरं मातुलेयम् ।
यथादैत्योऽभिगमिष्यद्गुहातस्तथाशक्त्याघातयिष्यामिशत्रुम् ।।९४
श्रुत्वा कुमारवचनं भगवान्महर्षे
कृत्वा मतं स्वहृदये गुहमाह शक्रः ।
मत्तो भवान्न मतिमान्वदसे किमित्थं
वाक्यं शृणुष्व हरिणा गदितं हि पूर्वम् ।।९५
नैकस्यार्थे बहून्हन्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ।
एकं हन्याद्बहूना हि न पापी तेन जायते ।।९६
एतच्छ्रुत्वा मया पूर्व समयस्तेन चाग्निज ।
निहतोनमुचिः पूर्व सोदरोऽपि सहानुजः ।।९७
तस्मादयन्नामर्षाय सक्रौञ्चं महिषासुरम् ।
घातयस्व पराक्रम्य शक्त्या पावकदत्तया ।।९८

दैत्य गुहा से बाहिर निकलेगा वैसे ही मैं शक्ति के द्वारा उसका घात कर दूँगा ॥९४॥ कुमार के इस वचन को सुनकर हे महर्षे ! भगवान् ने अपने हृदय में मत को करके इन्द्र ने गुह से कहा—मुझसे अधिक तो आप मतिमान् नहीं हैं फिर किस तरह इस प्रकार का वाक्य बोलते हैं। मेरा वचन सुनो जो कि हरि ने पूर्व में ही कहा है ॥९५॥ एक के लिये बहुतों को कभी नहीं मारना चाहिए, यही शास्त्रों में निश्चय किया गया है। बहुतों की रक्षा के लिए एक को मार डालना चाहिए। इससे कभी भी पापी नहीं होता है ॥९६॥ हे अग्निज ! यह सुनकर मैंने पहिले समय दिया था। उसने पहिले सोदर सहानुज भी नमुचि को मार दिया था ॥९७॥ इसलिए बहुतों की भलाई के लिये क्रौञ्च के सहित महिपासुर को पद में आक्रमण करके अग्निदेव के द्वारा दी हुई शक्ति के द्वारा मार दो ॥९८॥

पुरंदरवचः श्रुत्वा क्रोधादारक्तलोचनः।
कुमारः प्राह वचनं कम्पमानः शतक्रतुम् ॥९९
मूढ किं ते बलं बाह्वोः शौरी ँ वाऽपि वृत्रहन्।
येनाधिक्षिपसे मा त्वं भुवने मतिमानसि ॥१००
तमुवाच सहस्राक्षः स्वतोऽहं बलवान्गुह।
तं गुहः प्राह एह्येहि युद्धयस्व बलवान्यदि ॥१०१
शक्रः प्राहाथ बलवाञ्ज्ञायते कृत्तिकासुत।
प्रदक्षिणमीश्वरं यः कुर्यात्क्रौञ्चमेव हि ॥१०२
श्रुत्वा तद्वचनं स्कन्दो मयूरं प्रोज्झ्य तत्क्षणात्।
प्रदक्षिणं पादचारी कर्तुं तूर्णतरोऽभ्यगात् ॥१०३
शक्रोऽवतीर्य नागेन्द्रात्पादेनाथ प्रदक्षिणाम्।
कृत्वा तस्थौ गुहोऽप्येत्य मूढ किं स्वित्स्थितोभवान् ॥१०४
तमिन्द्रः प्राह कौटिल्यान्मया पूर्वं प्रदक्षिणा।
कृताऽन्य तत्त्वया पूर्वं कुमारः शक्रमब्रवीत् ॥१०५

पुरन्दर के इस वचन का श्रवण कर क्रोध से कुछ लाल नेत्र वाले कुमार ने कांपते हुए इन्द्र से कहा ॥९९॥ हे मूढ ! तेरी भुजाओं में क्या

बल है ? हे वृत्रहन् ! तेरा शारीरिक बल भी कितना है ? जिसके कारण मेरे ऊपर ऐसा अधिक्षेप कर रहा है। तू ही इस भुवन में बड़ा भारी मतिमान् है ॥१००॥ सहस्राक्ष ने कुमार से कहा—हे गुह ! मैं स्वतः बलवान् हूँ। फिर गुह ने कहा—यदि तू बड़ा भारी बलवान् है तो चला आ—आगे आजा मुझसे युद्ध करले ॥१०१॥ इन्द्र ने कहा—हे कृत्तिका के पुत्र ! यदि बलवान है तो क्रौञ्च की अत्यन्त शीघ्रता से प्रदक्षिणा करो ॥१०२॥ उसके वचन को सुनकर स्कन्द ने तुरन्त ही अपने वाहन मयूर का त्याग कर दिया था और पादचारी होकर शीघ्र ही दक्षिणा करने को आगया था ॥१०३॥ शक्र भी हाथी से नीचे उतर कर पैरों से प्रदक्षिणा करके स्थित हो गया था। गुह ने आकर कहा—हे मूढ ! आप कैसे स्थित होगये हैं ? ॥१०४॥ इन्द्र ने कौटिल्य से उससे कहा—मैंने पहिले ही प्रदक्षिणा करली है। कुमार ने इन्द्र से कहा तुझसे भी पहिले मैंने प्रदक्षिणा की है ॥१०५॥

मया पूर्वं मया पूर्वं विवदन्तौ परस्परम् ।
आगम्योचुर्महेशाय ब्रह्मणे माधवाय च ॥१०६

अथोवाच हरिः स्कन्द प्रष्टुमर्हसि पर्वतम् ।
योऽयं वक्ष्यति पूर्व स भविष्यति महाबल ॥१०७

तन्माधववचः श्रुत्वा क्रौञ्चमभ्येत्य पार्वकि ।
पप्रच्छाद्रिमिदं केन कृतं पूर्व प्रदक्षिणम् ॥१०८

इत्येवमुक्तः क्रौञ्चस्तु प्राह पूर्वं महामतिः ।
चकार गोत्रभित्पूर्व त्वया कृतमथो गुह ॥१०९

एवं ब्रुवन्तं क्रौञ्चं स क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः ।
बिभेद शक्त्या कौटिल्यान्महिषेण समं तदा ॥११०

तस्मिन्हतेऽथ तनयेऽबलवान्मुनाभोवेगेनभूमिधरपार्थिवजस्तथाऽगात् ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदश्विवसुप्रधानाजग्मुर्दिवमहिपमीक्ष्यहतगुहेन ॥१११

स्वमातुलं वीक्ष्य बली कुमारः शक्तिं समुत्पाट्य निहन्तुकामः ।
निवारितश्चक्रधरेण वेगात्मालिङ्ग्य दोर्भ्यां गुरुरित्युदीय ॥११२

पहिले मैंने की है-पहिले मैंने प्रदक्षिणा की है—इस प्रकार से वे दोनों परस्पर में विवाद कर रहे थे और महेश्वर, ब्रह्मा तथा माधव भगवान् से यही कहने लगे थे ॥१०६॥ इसके अनन्तर भगवान् हरि ने स्कन्द से कहा—पर्वत से पूछना चाहिए। जो यह कह देगा कि पूर्व में इसने की है वही महान् बलवान् हो जायगा ॥१०७॥ माधव के इस वचन का श्रवण कर पावक पुत्र गुह ने क्रौञ्च के समीप में आकर उस अद्रि से पूछा कि किसने पहिले प्रदक्षिणा की है ॥१०८॥ इस तरह से पूछे गये क्रौञ्च ने कहा—महामति इन्द्र ने पहिले परिक्रमा की है इसके पश्चात् हे गुह ! फिर आपने प्रदक्षिणा की है ॥१०९॥ इस प्रकार से कहने वाले उस क्रौञ्च को क्रोध से अपने अधरों को फड़काते हुए कुमार ने कौटिल्य से महिषासुर के सहित उसी समय में शक्ति के द्वारा भेदन कर दिया था ॥ ११० ॥ इसके पश्चात् अपने पुत्र के निहत हो जाने पर भूमिधर राजा का पुत्र सुनाभ जो बहुत बलवान् था बड़े वेग से वहाँ पर आगया था। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मरुद्, अश्विनी कुमार, वसु आदि प्रमुख देवगण गुह के द्वारा महिषासुर को मरा हुआ देखकर दिवलोक को चले गये थे ॥१११॥ बलशाली कुमार ने अपने मातुल को देखकर उसे भी शक्ति उठाकर मारदेने के लिये वह समुद्यत होगये थे। उसी समय में चक्रधर ने बड़े वेग से हाथों से समालिंगन करते हुए उनको 'यह गुरु हैं—यह कह कर निवारण कर दिया था ॥११२॥

सुनाभमभ्येत्य हिमाचलन्तु प्रगृह्य हस्तेन निनाय त च ।
हरिं कुमार सशिखण्डिन नयन्वेगाद्विपन्नगशत्रुपत्रः ॥११३

ततो गुहः प्राह हरिं सुरेशं मोहेन नष्टो भगवन्विवेको ।
भ्रातामयामातुलेयो निरस्तस्तस्मात्त्वरिष्ये स्वशरीरशोषम्॥११४

तमाह विष्णुर्व्रज तीर्थवर्यं पृथूदकं पापहरं कुमार।
स्नात्वौघवत्या हरमीक्ष्य भक्त्या भविष्यसे नूनममप्रभावः ॥११५

इत्येवमुक्तो हरिणा कुमारस्त्वभ्येत्य तीर्थं प्रसमीक्ष्य शम्भुम् ।
स्नात्वार्च्य देवान्स रविप्रकाशो जगाम शैलं सदनं हरस्य

सुचक्रनेत्रोऽपि महाश्रमे तपश्चचार शैले पवनाशनस्तु ।
आराधयामास वृषध्वज तथा हरोऽपि तुष्टो वरदो बभूव ।।११७
देवात्स वव्रे वरमायुधार्थे क्रौञ्चान्तकारी रिपुबाहुखण्डम् ।
छिन्द्या यथा स्वत्प्रतिम करेण बाणस्य तस्मै भगवान्ददातु ।। ११८
समाहरशत्रुभुजं ददात्येतद्वर हि चक्रस्य तवायुधस्य ।
बाणस्य तद्बाहुवन प्रवृद्ध सछेत्स्यसे नात्र विचार्यमस्ति ।।
वरे प्रदत्ते त्रिपुरान्तकेन गणेश्वरः स्कन्दमुपाजगाम ।
निपत्य पादौ प्रतिवेद्य हृष्टो निवेदयामास हरप्रसादम् ।।१२०
एव तवोक्त महिषासुरस्य वधश्चिणेन्नारमजशक्तिभेदात् ।
क्रौञ्चस्य मृत्युः शरणागताना पापापह पुण्यविवर्धन च ।।१२१

हिमाचल ने सुनाभ के समीप मे आकर उसे हाथ से पकड कर ग्रहण कर लिया था और उसे लेगय थे । पतग शत्रु पत्र हरि-सशिखण्डी कुमार को भी वेग पूर्वक दिवलोक मे ले गये थे ।।११३।। इसके पश्चात् परम विवेक शील गुह हरि से बोले—हे भगवन् ! मैं मोह से नष्ट हो गया था और मैंने मातुलेय भाई को मार डाला है। इसलिये अब मैं अपने शरीर का शोषण करूँगा ।।११४।। भगवान् विष्णु ने उससे कहा—हे कुमार ! तीर्थों मे परम श्रेष्ठ पृथूदक को आप चले जाइये क्योंकि वह तीर्थ पापो के हरण करने वाला है। वहाँ पर ओधवती मे स्नान करके फिर भक्तिभाव मे हर का दर्शन कर आप सूर्य के समान प्रभाव वाले हो जायगे ।।११५।। इस प्रकार से हरि द्वारा कहे जाने पर कुमार उस तीर्थ पर प्राप्त हागये थे। फिर शम्भु का दर्शन करके स्नान करके तथा देवार्चन करके रवि के समान द्युतिमान् होते हुए भगवान् हर के सदन शैलपर चले गये थे ।।११६।। सुचक्र नेत्र भी पवन का अशन करते हुए शैल पर महाश्रम मे तपश्चर्या करने लगे थे । वृषभध्वज की समाराधना की थी और भगवान् हर भी परम प्रसन्न होकर वरदान प्रदाता होगय थे ।।११७।। क्रौञ्चान्तकारी उसने आयुध के प्राप्त करने क लिए वर दान माँगा था कि ऐसा बाण के कर से अपने समान अस्त्र देवें कि मैं शत्रु के बाहुओं का छेदन कर दूं । भगवान् मुझे वही आयुध प्रदान

करें ॥११८॥ भगवान् शम्भु ने उससे कहा—जाओ, मैंने तुझको यही वरदान दे दिया है। तेरा आयुध चक्र ही कटे हुए बाण के उस बाहुओं के वन को भली भाँति छिन्न कर देगा—इसमें कुछ विचारने योग्य बात नहीं है ॥११९॥ त्रिपुरान्तक के द्वारा वरदान देने पर गणेश्वर स्कन्द के समीप में उपस्थित हुआ। स्कन्द के चरणों में पड़ कर निवेदन किया और भगवान् शम्भु के प्रसाद के विषय में सब सुना दिया था ॥१२०॥ इस प्रकार से आपके विषय में कहा था। त्रिणेत्रात्मज की मृत्यु के विषय में भी निवेदन किया था। शरण आये हुओं का रक्षण पापों का अपहरण करना तथा पुण्य का बढ़ाने वाला होता है ॥१२१॥

५९—अन्धकासुर पराजय वर्णन

योऽसौ मन्त्र यता प्राप्तो दैत्यानां शरताडितः।
स येन वद निर्भिन्नः शरेण दितिजेश्वरः ॥१
आसीन्नृपो रघुकुले रिपुजिन्महर्षे
तस्यात्मजो गुणगणैर्निधिर्महात्मा।
शूरोऽरिसैन्यदमनो बलवान्सहृष्टो
विप्राधदीनकृपणार्तिशमः पृथिव्याम् ॥२
ऋतध्वजो नाम महामहीशः स गालवार्थं तुरगाधिरूढः।
पातालकेतुं निजघान पृष्ठे बाणेन चन्द्रार्धनिभेन वेगतः ॥३
किमर्थं गालवस्यासौ साधयामास सत्तम।
येनासौ पत्रिणा नूनं निजघान नृपात्मजः ॥४
पुरा तपस्त्यति गालवर्षौ महाश्रमे स्वे सततं निविष्टे।
पातालकेतुस्तपसोऽस्य विघ्नं करोति मोहात्ससमाधिभंगम् ॥५
न चेष्यतेऽसौ तपसोऽस्य हि शक्नोति कर्तुं स्वयमस्मसात्तम्।
आकाशमीक्ष्याय स दीर्घमुष्णं मुमोच निःश्वासमनुत्तमं हि ॥६
ततोऽम्बराद्वाजिवरः पपात बभूव वाणी त्वशरीरिणी च।
असौ तुरङ्गो बलवान्क्रमेतत्वहन्सहस्राणि तु योजनानाम् ॥७

देवर्षि नारदजी ने कहा—जो यह मन्त्रणा करते हुए दैत्यों को मार ताडित प्राप्त हुआ था वह दितिजेश्वर किस शर से निर्भिन्न हुआ—यह बतलाइये ॥१॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षि ! रघुकुल में एक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला राजा हुआ था उसका पुत्र गुणों की एक निधि था—महान् आत्मा वाला था—बडा, शूर, शत्रु सेना के दमन करने वाला—बलशाली, सुहृष्ट और पृथिवी में विप्र, अन्धे, हीन कृपण आदि की पीडा का शमन करने वाला हुआ था ॥२॥ उस राजा का नाम ऋतुध्वज था यह महामहीश था और वह गालव के लिये ही तुरग पर अधिरूढ हुआ था। उसने वेग पूर्वक अर्ध चन्द्र के समान बाण से पीठ में मारकर पाताल केतु का हनन किया था ॥३॥ नारद जी ने कहा—हे सत्तम ! किस लिये इसने गालव का साधन किया था जिस पत्री से इसने तुरन्त ही नृपात्मज का हनन किया था ॥४॥ पुलस्त्यजी ने कहा—पहिले समय में गालव ऋषि अपने आश्रम में बैठ कर निरन्तर तपश्चर्या करते थे। पाताल केतु मूढता से इस ऋषि की तपस्या में विघ्न किया करता था और समाधि को भग्न करदेता था ॥५॥ यह ऋषि अपनी तपस्या को क्षीण नहीं करना चाहते थे कि इसको अपनी शक्ति में ही भस्मसात् कर देवें ओकि वह कर सकते थे। उसने आकाश को देखकर उसने दीर्घ, उष्ण और उत्तम निःश्वास छोड दिया था ॥६॥ इसके पश्चात् आकाश से एक परम श्रेष्ठ अश्व गिरा था और साथ ही आकाश वाणी भी हुई थी कि यह अश्व अत्यन्त बलवान् है, और एक ही दिन में सहस्रों योजन जा सकता है ॥७॥

स तं प्रगृह्याश्ववरं तुरङ्गमृतध्वज योज्य तदाऽऽत्तशस्त्रम् ।
स्थितस्तपस्येव ततो महर्षिर्दैत्य समभ्येत्य नृपो बिभेद ॥८

केनाम्बरतलाद्वाजी निसृष्टो वद सुव्रत ।
वाक्स्यादेहिनी जाता परं कौतूहलं मम ॥९

विश्वावसुर्नाम महेन्द्रगायनो गन्धर्वराजो बलवान्यशस्वी ।
निसृष्टवान्भूवलये तुरङ्गमृतध्वजस्यैव सुतार्थमाशु ॥१०

कोऽर्थोगन्धर्वराजस्य येन प्रैषीन्महाजवम् ।
राज्ञ: कुवलायाश्वस्य कोऽर्थो नृपसुतस्य य ॥११
विश्वावसो: शील गुणोपपन्ना आसीत्पुरन्ध्री सुभगा त्रिलोके।
लावण्यराशि.शशिकान्तितुल्यामदालसा नाममदालसेव ॥१२
सा नन्दनो देवरिपुस्तरस्वी सक्रीडन्ती रूपवती ददर्श ।
पातलकेतुस्तु जहार तन्वी तस्यार्थत. सोऽश्ववर: प्रदत्त: ॥१३
हत्वाऽरिदैत्य नृपतेस्तनूजो लब्ध्वा वरोरूमपि वश्यितोऽभूत् ।
दृष्टो यथा देवपतिर्महेन्द्र. शच्या तथा राजसुतो मृगाक्ष्या ॥१४

उसने उस श्रेष्ठ अश्व को ग्रहण कर शस्त्रास्त्र से सुसज्जित ऋतध्वज को उसी समय योजित कर दिया था । इसके पश्चात् महर्षि अपने तप में ही स्थित हो गये थे । नृप ने आक्रमण करके उस दैत्य का भेदन कर दिया था ॥८॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—हे सुव्रत ! वह श्रेष्ठ अश्व आकाश से किसने निसृष्ट किया था—यह बतलाइये । और विन्त शरीर वाली जो आकाश वाणी हुई थी वह किसके द्वारा हुई थी—यह सब मुझे बतलाइये । मेरे हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥६॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—एक विश्वावसु नाम वाला इन्द्र का गायक गन्धर्वराज था जो बहुत ही बलवान् और यशस्वी था । उसी ने इस भूमण्डल पर ऋतध्वज को वह तुरग छोड़ा था जो शीघ्र ही सुत के लिये था ॥१०॥ नारद जी ने कहा—गन्धर्वराज का क्या प्रयोजन था जिसने महान् वेग वाला अश्व भेजा था और नृप सुत ऋतध्वज राजा का क्या प्रयोजन था ? ॥११॥ पुलस्त्यजी ने कहा—विश्वावसु की शील और गुणों से सम्पन्न त्रिलोक में परम सुभगा पुरन्ध्री थी जो रूप लावण्य की समूह थी तथा चन्द्रमा की कान्ति के तुल्य कान्तिमती थी उसका नाम महालसा था जो मदालसा के ही तुल्य थी ॥ १२ ॥ उसको क्रीडा करती हुई देव शत्रु नन्दन ने देख लिया था जोकि अत्यन्त ही रूपवती थी । उस तन्वी को पाताल केतु ने हरण कर लिया था । उसी प्रयोजन से वह श्रेष्ठ अश्व दिया गया था ॥१३॥ राजा के पुत्र ने उस शत्रु दैत्य को मारकर उस वरोरू को भी प्राप्त किया था और

वह अवस्थित होगया था। वह देवपति महेन्द्र शची के साथ जिस प्रकार से शोभित होता था ठीक उसी भाँति वह राज पुत्र भी उस मृगाक्षी के के साथ दिखाई दिया था ॥१४॥

एवं निरस्ते महिषे तारके च महासुरे ।
हिरण्याक्षसुतो धीमान्किमाचेष्टत वै पुनः ॥१५
तारकं निहतं दृष्ट्वा महिषं च रणेऽन्धकः ।
कोपं चक्रे सुदुर्बुद्धिर्दैत्यानां देवसैन्यहा ॥१६
ततः स्वल्पपरीवारः प्रगृह्य परिघं करे ।
निर्जगामाथ पातालाद्विचचार च मेदिनीम् ॥१७
ततो विचरता तेन मन्दरे चारुकन्दरे ।
दृष्टा गौरी च गिरिजा सखीमध्यस्थिताशुभा ॥१८
ततोऽभूत्कामबाणार्त्तः सहसैवान्धकासुरः ।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं गिरिराजसुतां वने ॥१९
अथोवाचासुरो मूढो वचनं मन्मथान्धकः ।
कस्येयं चारुसर्वाङ्गी वने चरति सुन्दरी ॥२०
इयं यदि भवेन्नैव ममान्तःपुरवासिनी ।
तन्मदीयेन जीवेन क्रियते निष्फलेन किम् ॥२१

देवर्षि नारदजी ने कहा—इस प्रकार से महिषासुर और महासुर तारक के निहत हो जाने पर धीमान् हिरण्याक्ष के पुत्र ने फिर क्या किया था ? ॥१५॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—तारक और महिष को रण स्थल में निहत देख कर अन्धक ने बड़ा क्रोध किया था। यह दैत्यों में बहुत ही दुष्ट बुद्धि वाला था तथा देवों की सेना के हनन करने वाला था ॥१६॥ इसके अनन्तर स्वल्प परीवार वाला वह परिघ को हाथ में ग्रहण करके पाताल से निकल पड़ा था और सम्पूर्ण भूमिपर विचरण करने लगा था ॥१७॥ इसके पश्चात् सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दर गिरि पर विचरण करते हुए उसने एक बार अपनी सखियों के मध्य में स्थित परम शुभा गिरिजा गौरी को देखा था ॥१८॥ उस गौरी को देखने के साथ ही वह अन्धक असुर सहसा ही काम बाण से पीड़ित हो गया था।

परम सुन्दर समस्त अङ्गों वाली गिरिराज की पुत्री उस गौरी को वन में देखकर वह काम वेदना से मूढ़ अन्धकासुर यह वचन बोला—यह किसकी पुत्री है जो बहुत सुन्दरतम अङ्गों वाली है और इस वन में विचरण करती है ॥१६–२०॥ यह सुन्दरी यदि मेरे अन्त पुर के अन्दर निवास करने वाली न हुई तो फिर मेरे इस निष्फल जीवन जीने से ही क्या लाभ है ? अर्थात् मेरी जिन्दगी ही बेकार है ॥२१॥

यदस्यास्तनुमध्याया न परिष्वङ्गवानहम् ।
अतो धिङ्मम रूपेण किं स्थिरेण प्रयोजनम् ॥२२
स मे बन्धुः स सचिवः स भ्राता साम्परायिकः ।
यो मामसितकेशी तां योजयेन्मृगलोचनाम् ॥२३
इत्थं वदति दैत्येन्द्रे प्रह्लादो बुद्धिसागरः ।
पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां शिरःकम्पं वचोऽब्रवीत् ॥२४
मा मैवं वद दैत्येन्द्र जगतो जननी त्वियम् ।
लोकनाथस्य भार्येयं शंकरस्य त्रिशूलिनः ॥२५
मा कुरुष्व सुदुर्बुद्धिं सद्यः कुलविनाशिनीम् ।
भवतः परदारेयं मा निमज्ज रसातले ॥२६
सत्सु कुत्सितमेव हि असत्स्वपि हि कुत्सितम् ।
शत्रवस्ते प्रकुर्वन्तु परदारावगाहनम् ॥२७
किं न श्रुतो दैत्यनाथेह किं नु गीतः श्लोको गाधिनापार्थिवेन ।
दृष्ट्वा सैन्यं विप्रयातं प्रसक्तं पथ्यं तथ्यं सर्वलोकेहितं च ॥२८

अगर मध्यम क्षीण तनु वाली इसका मैंने आलिङ्गन नहीं किया तो फिर मेरे इस रूप को और संसार में स्थिति बनाये रखने को ही धिक्कार है ॥२२॥ वही मेरा बन्धु है और वही मेरा सचिव है, वही भाई और साम्परायिक है जो मेरे लिये इस असित केशों वाली मृग लोचनी को लाकर मुझसे मिला देवे अर्थात् मेरा संयोग इस से करा देवे ॥२३॥ वह दैत्येन्द्र इस प्रकार से जिस समय में बोल रहा था उस समय में बुद्धि का सागर प्रह्लाद हाथों से अपने कानों को ढककर शिर को हिलाते हुए यह वचन बोला ॥२४॥ हे दैत्येन्द्र ! ऐसा वचन अपने

मुख से मत बोलो और कभी भी ऐसा मत कहो—यह तो सम्पूर्ण जगत् की जननी जगदम्बा है। लोकों के स्वामी त्रिशूल धारी भगवान् शङ्कर की यह भार्या है ॥२५॥ ऐसी दुष्ट बुद्धि कभी भी मत करो जो कि तुरन्त ही कुल का विनाश कर देने वाली है। आप के लिये यह पराई स्त्री है। रसातल में निमग्न मत होओ ॥२६॥ सत्पुरुष में तो यह कर्म परम निन्दित है ही किन्तु जो असत् पुरुष है उनमें भी ऐसा कर्म कुत्सित ही माना जाता है। तुम्हारे शत्रु लोग पराई स्त्रियों का अवगाहन करें ॥२७॥ हे दैत्य नाथ ! क्या राजा गाधि के द्वारा गाया हुआ श्लोक आपने यहाँ नहीं सुना है जब कि प्रसक्त और विप्रयात सैन्य को देख कर कहा था। पथ्य और तथ्य ही सब लोकों में हितकारी होता है ॥२८॥

वरं प्राणास्त्याज्या न वत परहिंसा त्वभिमता
वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम् ।
वरं क्लीवैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं
वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनाना हि हरणम् ॥२९

स प्रह्लादवचः श्रुत्वा क्रोधान्धो मदनातुरः ।
इय सा धनुजननीत्येवमुक्त्वा प्रदुद्रुवे ॥३०

ततोऽन्वधावन्दैतेया यन्त्रमुक्ता इवोपलाः ।
तानद्रावीद्वलान्नन्दी चक्रोद्यतकरोऽव्ययः ॥३१
मयतारपुरोगास्ते वारिता द्राविता‌स्तथा ।
कुलिशेनाहतास्तूर्णं जग्मुर्भीता दिशो दश ॥३२
तान्नर्दितान्रणे दृष्ट्वा नन्दिनाऽन्धकदानवः ।
परिघेण समाहत्य पातयामास नन्दिनम् ॥३३
शैलेयं पतितं दृष्ट्वा धावमानं तथाऽन्धकम् ।
शत रूपाऽभवद्गौरी भयात्तस्य दुरात्मनः ॥३४

ततः स देवीगणमध्यसंस्थितः परिभ्रमन्भाति महासुरेन्द्रः ।
यथा वने मत्तकरी परिभ्रमन्करेणुमध्ये मदलोलदृष्टिः ॥३५

प्राणो का त्याग कर देना श्रेष्ठ है किन्तु दूसरो की हिंसा करना कभी भी अभिमत नहीं है। मौन रहना उत्तम है किन्तु मिथ्या वचन बोलना कभी भी अच्छा नहीं है। ससार में नपुंसक होकर जीवन बिताना उत्तम है किन्तु पराई स्त्रियो के साथ गमन करना अच्छा नहीं है। भिक्षा करके जीवनयापन करना कहीं अधिक अच्छा है किन्तु पराये धन का हरण करके सुखोप भोग करना अच्छा नहीं होता है ॥२६॥ उसने प्रह्लाद के इस वचन को श्रवण करके मद्न के कारण अति आतुर होता हुआ क्रोधान्ध हो गया था। यह वही शत्रुओ की जननी है—इतना कहकर उसने धावा कर दिया था ॥३०॥ इसके पीछे२ दैत्य लोग भी यन्त्र से छोटे हुए उपलो की भाँति दौड़ने लगे थे। उन सबको हाथ मे चक्र ग्रहण करके समुद्यत नन्दी ने जो कि अव्यय है बल पूर्वक रोक दिया था ॥३१॥ मय और तार जिनके पुरोगामी थे उन सबको पातित करके भगा दिया था और शीघ्र ही वज्र से आहत कर दिया था जो कि भयभीत होकर दशो दिशाओ में भाग खड़े हुए थे ॥३२॥ नन्दी के उन सबको रण में अत्यन्त समर्दित देखकर अन्धक दानव ने परिघ के द्वारा प्रहार करके नन्दी कोप्यरणी पर गिरा दिया था ॥३३॥ इस शैनेय को गिरा हुआ और अन्धक को धान मान देख कर उस दुरात्मा के भय से जगदम्बा गौरी क्षतरूपा हो गई थी ॥३४॥ इसके उपरान्त वह महान् असुरेन्द्र देवीगण के मध्य में स्थित होकर परि-भ्रमण करता हुआ इस भाँति शोभित हो रहा था जैसे वन मे कोई मस्त हाथी मद से चचल दृष्टि वाला होकर हथिनियों के मध्य मे भ्रमण कर रहा हो ॥३५॥

न परिज्ञातवास्तत्र का तु सा गिरिकन्यका।
नाश्चाश्चर्यं न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि ॥३६
न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो लोभक्रान्तो न पश्यति।
सोऽपश्यमानो गिरिजां पश्यन्नपि तदान्धकः ॥३७

प्रधावन्नाददत्तासा युवत्य इति चिन्तयन् ।
ततो देव्या स दुष्टात्मा शतावर्या निराकृतः ॥३८
कुट्टितः प्रवरैः शस्त्रं निपपात महीतले ।
वीक्ष्याऽधकं निपतितं शतरूपा विभावरी ॥३९
तस्मात्स्थानादपाक्रम्य गताऽन्तर्धानमम्बिका ।
पतितं चान्धकं दृष्ट्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥४०
कुर्वन्तः सुमहाशब्दं प्राद्रवन्त रणार्थिनः ।
तेषा मापततां शब्दं श्रुत्वा तस्थौ गणेश्वरः ॥४१
आदाय वज्रं बलवान्मघवानिव कोपितः ।
दानवान्समयान्वीक्ष्य पराजित्य गणेश्वरः ॥४२

वहाँ पर वह यह नहीं जान सका कि वह गिरि कन्या उनमें कौन सी थी। इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात भी नहीं है क्योंकि ये चार कभी भी नहीं देखा करते हैं ॥३६॥ जो जाति से ही अर्थात् जन्म से ही अन्धा होता है वह भी कुछ नहीं देखा करता है—जो गरा से अन्धे के समान ही होता है उसे भी कुछ नहीं सूझता है—जो किसी प्रकार के मद से अन्धा होता है वह कुछ नहीं देखता है तथा जो लोभाभिभूत होता है वह भी नहीं देखा करता है। उस समय में वह अन्धक देखता हुआ भी गिरिजा को नहीं देख रहा था ॥३७॥ इधर-उधर दौड़ लगाते हुए भी उन्हें अन्य युवतियाँ हैं—ऐसा विचारते हुए उसने ग्रहण नहीं किया था। इसके उपरान्त देवी ने शतावरी से उस दुष्टात्मा को निराकृत किया था ॥३८॥ वह परम श्रेष्ठ शस्त्रों से कुट्टित होता हुआ महीतल में गिर गया था। शतरूपा विभावरी उस स्थान से हटगई थी और फिर अम्बिका अन्तर्धान होगई थी। दैत्य दानवों के यूथ पति लोग अन्धकासुर को पतित देखकर सुमहान् घोर शब्द करते हुए रण करने के लिये उधर की ओर दौड़ उठे थे। उनके उधर आक्रमण करने वालों के शब्द को सुनकर वहाँ गणेश्वर स्थित हो गया था ॥३९-४१॥ परम कुपित इन्द्र की भाँति बलवान् गणेश्वर ने हाथ में वज्र ग्रहण करके

क्रोध करते हुए समागत दानवों को देखकर पराजित कर दिया था ॥४२॥

समभ्येत्याम्बिका दृष्ट्वा ववन्दे चरणौ शुभौ ।
देवी च ता निजा मूर्तीस्त्वाह गच्छध्वमिच्छया ॥४३
विहरध्व महीपृष्ठे पूज्यमाना नरैरिह ।
वसतिर्भवतीना च उद्यानेषु वनेषु च ॥४४
वनस्पतिषु वृक्षेषु गच्छध्व विगत ज्वराः ।
तास्त्वेवमुक्ताः शलेय्या प्रणिपत्याम्बिका क्रमात् ॥४५
दिक्षु सर्वासु जग्मुस्ताः स्तूयमानाश्च किन्नरैः ।
अन्धकोऽपि स्मृति लब्ध्वा अपश्यदद्रिनन्दिनीम् ।
स्वबल निर्जित दृष्ट्वा ततः पातालमाद्रवत् ॥४६
ततो दुरात्मा स तदाऽन्धको मुने
पातालमभ्येत्य दिवा न भुङ्क्ते ।
रात्रौ न शेते मदनेषु ताडितो
गौरी स्मरन्कामबलाभिपन्नः ॥४७

फिर अम्बिका के समीप मे उपस्थित होकर उनका दर्शन किया और परम शुभ उनके चरणों की वन्दना की थी और देवी ने उन अपनी मूर्त्तियो से कहा था कि तुम अब अपनी इच्छा से ही चली जाओ। मनुष्यों के द्वारा पूज्यमान होती हुई भूमितल मे स्वेच्छया विहार करो। आपका निवास स्थान उद्यानो मे और वनों मे होगा ॥४३-४४॥ विगत ज्वर होकर वनस्पतियों में तथा वृक्षो मे चली जाओ। वे सब भी शैलेयी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर सबने अम्बिका के चरणों मे प्रणिपात किया था ॥४५॥ फिर वे किन्नरो के द्वारा स्तूयमान होती हुई सभी दिशाओं में चली गई थी। अन्धक भी स्मरण शक्ति को प्राप्त कर फिर अद्रिनन्दिनी को देखने लगा था। उसने अपने समस्त बल को निर्जित देखा था और फिर वह पाताल लोक मे चला गया था ॥४६॥ हे मुने! तभी से फिर वह दुरात्मा अन्धक पाताल लोक में पहुच कर नहीं खाता था और रात्रि मे शयन नहीं करता था। वह काम से

अत्यन्त पीड़ित था। और काम बल से अभिपन्न होकर हर समय गौरी का ही स्मरण किया करता था ॥४७॥

६०—मुर दानव चरित्र

क्व गतःशंकरो ह्यासीद्येनाम्बा नन्दिना सह।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तु मर्हसि ॥१
यदा वर्षसहस्रं तु महामोहे स्थितो भवः।
तदा प्रभृति निस्तेजा हीनवीर्यः प्रदृश्यते ॥२
स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोंऽश महेश्वरः।
तपोऽर्थाय तदा चक्रे मतिमता वरः ॥३
स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्वास्याम्बिका विभुः।
शैलादिं स्थाप्य गोप्तारं विचचार महीतले ॥४
महामुद्रार्पित ग्रीवो महाहिकृतकुण्डल.।
धारयश्च कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम् ॥५
कपालं दक्षिणे हस्ते सव्ये गृह्य कमण्डलुम्।
एका हवासौ वृक्षाद्रिशैलसानुनदीषु च ॥६
स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः।
वाय्वाहारस्तथा तस्थौ नववर्षशतं क्रमात् ॥७

देवर्षि नारद जी ने कहा—भगवान् शंकर कहाँ पर चले गये थे जिससे कि जगदम्बा ने स्वयं ही नन्दी के साथ मिलकर अंधक से युद्ध किया था—यह मुझे बताने की कृपा करिए ॥१॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा–जिस समय में एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भगवान् भव महामोह में स्थित होगये थे उसी समय से लेकर तेजो विहीन और हीन वीर्य दिखलाई देते थे ॥२॥ महेश्वर ने अपने आपको निस्तेज अंश वाला देख कर मतिमानों में परम श्रेष्ठ देवेश्वर ने उस समय में तपश्चर्या करने के लिये अपना विचार किया था ॥३॥ उस विभु ने महाव्रत को उत्पन्न करके और जगदम्बा को समाश्वासन देकर उसकी रक्षा के लिये शैलादि

को रक्षक नियुक्त करके स्वय महीतल में विचरण करने लगे थे ।।४।। महा मुद्रा ग्रीवा मे अर्पित करने वाले और महान् अहियों (सर्पों) के कुण्डल धारण किये हुए तथा महाशख की मेखला कटि मे धारण करने वाले–दाहिने हाथ में कपाल ग्रहण करके एव बाये हाथ में कमण्डलु लेकर इस महाव्रत मे तत्पर होगये थे। केवल एक ही दिन वृक्ष—अद्रि, शैल शिखर और नदियो मे निवास करने वाले हुए ।।५-६।। सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपना स्थान बनाकर मूल अम्बुका आहार करने वाले होगये थे। तथा कभी २ केवल वायु का आहार करके नौ सौ वर्ष पय्यन्त क्रम से स्थित रहे थे ।।७।।

ततो वीटा मुखे क्षिप्य निरुच्छ्वासो भवेद्यदि ।
निस्तृते हिमवत्पृष्ठे रम्ये समशिलातले ।।८
ततो वीटां विदा यैव कपाल परमेष्ठिनः ।
सार्चिष्मती जटामध्यान्निक्षिप्ता धरणीतले ।।९
वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारित. क्ष्मासमोऽभवत् ।
यावत्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुत ।।१०
ततो हरो वर प्रादात्केदारे वृषभध्वजः ।
पुण्यवृद्धिकर ब्रह्मन्पापघ्न मोक्षसा धनम् ।।११
ये जल तावके तीर्थे पीत्वा सयमिनो नराः ।
मधुमासनिवृत्तास्तु ब्रह्मचारिव्रते स्थिताः ।।१२
षण्मासाद्धार यिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः ।
तेषा हृत्पङ्कजेष्वेव तल्लिङ्ग भविता ध्रुवम् ।।१३
न चास्य पापेषु रतिर्भविष्यति कदा चन ।
पितॄणामक्षय श्राद्ध भविष्यति न सशय: ।।१४

इसके पश्चात् परम विस्तृत अतीव रम्य हिमवान् के पृष्ठ पर सम शिला तल मे वीटा को मुख मे निक्षिप्त करके निरुच्छ्वास हो गये थे। फिर परमेष्ठी के कपाल को विदीर्ण कर वह अचिष्मती वीटा जटा के मध्य से धरणी तल में निक्षिप्त होगई थी ।।८-९।। उस गिरने वाली वीटा से वह अद्रि दारित होकर भूमि के समान हो गया था । तथा

वह परम पुण्य श्रेष्ठ तीर्थ केदार नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१०॥ इसके भगवान् वृषभध्वज शिव ने केदार को वरदान दिया था कि वह पुण्य की वृद्धि करने वाला-पापों का हनन करने वाला और हे ब्रह्मन् ! मोक्ष का का साधन हो जावे ॥११॥ जो मनुष्य संयमशील होकर उसके तीर्थ में जल का पान करेंगे तथा मधुमास से निवृत्त होकर ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहेंगे । इस तरह परपाक से निवृत्त रहते हुए छै मास तक इस व्रत को धारण करेंगे उन मनुष्यों के हृदय कमल में उनका लिंग निश्चय ही हो जायेगा॥१२-१३॥ इस पुरुष की फिर कभी भी पाप कर्मों में रति नहीं होगी और पितृगण का अक्षय श्राद्ध हो जायेगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१४॥

स्नानदानतपासीह होमजप्यादिकाः क्रियाः ।
भविष्यन्त्यक्षया नृणामृतानामपुनर्भवः ॥१५
एतद्वर हरात्तीर्थं प्राप्य मुष्णन्ति देवताः ।
पुनाति पुंसा केदारस्त्रिणेत्रवचनं यथा ॥१६
केदारा य वरं दत्वा जगाम त्वरितो हरः ।
स्नातुं भानुसुता देवी कालिन्दी पापनाशिनीम् ॥१७
अवतीर्य ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि ।
द्रुपदा नाम गायत्री जजपान्तर्जले हरः ॥१८
निमग्ने शंकरे देव्या सरस्वत्यां कलिप्रिय ।
सार्धं संवत्सरो यातो न चोन्मज्जत्तदेश्वरः ॥ १९
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भुवनान्यर्णवास्तथा ।
चेलुः पेतुर्धरण्यां च नक्षत्रं तारकैः सह ॥२०
आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः ॥२१

यहाँ पर स्नान—दान और तप तथा होम एवं जप्य आदि सब क्रियाऐं मनुष्यों की क्षय रहित हो जायगी और मृत हो जाने पर फिर पुनर्जन्म नहीं होगा ॥१५॥ वह तीर्थ इस प्रकार से भगवान् हर से वरदान प्राप्त कर चुका था और देवता भोषण करते थे । जैसा भगवान्

शम्भु का वचन था उसी के अनुसार केदार पुरुषों को पवित्र कर देता था ॥१६॥ केदार को वर देकर फिर शीघ्र ही हर पापों के नाश करने वाली भानु की पुत्री कालिन्दी मे स्नान करने के लिए चले थे ॥१७॥ इसके पश्चात् स्नान करने को जल में भीतर उतर गये और गहरे जल मे निमग्न होगये थे। वह भगवान् हरने द्रुपदा नाम वाली गायत्री का जाप किया था ॥१८॥ हे कलह पर प्यार करने वाले नारद ! देवी सरस्वती मे निमग्न हो जाने पर उन्हें वहाँ पर डेढ साल होगया था किन्तु तब भी ईश्वर उस जल से बाहिर नहीं निकले थे ॥१९॥ इस बीच मे ब्रह्मा-समस्त भुवन, सब अर्णव और तारो के सहित नक्षत्र चलाय मान हो गये थे और पृथिवी पर गिरने लगे थे ॥२०॥ इन्द्र आदि प्रमुख देव गण अपने आसनों से विचलित होगये थे तथा परमर्षि वृन्द ससार का कल्याण होवे—ऐसा जाप करने लगे थे ॥२१॥

क्षुब्धाश्च देवा लोकेषु ब्रह्माणं प्रष्टुमागताः ।
दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः सशयमागताः ॥२२
तानाह पद्मसभूतो व तद्वद्यि च कारणम् ।
तदागच्छत वो युक्तं प्रष्टुं चक्र गदाधरम् ॥२३
पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
पितामह पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः ॥२४
कोऽसौ मुरारिर्दे वर्प देवो यक्षो नु किंनरः ।
दैत्यो वा राक्षसो वाऽपि पार्थिवो वा तदुच्यताम् ॥२५
योऽसौ रज सत्त्व मयो गुणवाश्च तमोमयः ।
निर्गुणः सर्वगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः ॥२६
योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते ।
कथं च निहतः सत्ये विष्णुना तद्वदस्व मे ॥२७
श्रूयता कथयिष्यामि मुरामुरनिवर्हणम् ।
विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यदे पापनाशनम् ॥२८

अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होकर लोकों मे सब देवता ब्रह्मा जी का दर्शन कर उनसे कहा—यह क्या कारण होगया है कि समस्त लोक

अत्यन्त क्षुब्ध होकर संशय को प्राप्त होगये हैं ॥२२॥ परम पिता ने उससे कहा—इसका कारण तो मैं भी नहीं जानता हूँ सो आप लोग सब चलो भगवान् विष्णु से इसका कारण पूछें ॥२३॥ पितामह के द्वारा इस तरह कहे हुए सब देवगण, जिनमें इन्द्रादि प्रधान थे, पितामह को अपना नेता बनाकर भगवान् मुरारि के निवास स्थान पर चल दिये थे ॥२४॥ नारद जी ने कहा—यह मुरारि हे देवर्षे ! कौन हैं ? यह कोई देव हैं, यक्ष या किन्नर है तथा कोई दैत्य—राक्षस अथवा पार्थिव है—यह मुझे बतलाइये ॥२५॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—यह रजोगुण और सत्वगुण से परिपूर्ण—गुणवान् तथा तमोगुण युक्त है। यह बिना गुण वाला—सर्वत्र गमन शील—व्यापक मधुसूदन मुरारि है ॥२६॥ जो यह मुर इस नाम से विख्यात है यह किसका पुत्र कहा जाता है ? विष्णु ने इसको युद्ध में कैसे मार डाला था—यह सब गाथा मुझे बतलाइये ॥२७॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—अब आप श्रवण करो जिस तरह मुर असुर का संहार हुआ था। यह आख्यान बहुत ही विचित्र है, पुण्य प्रदान करने वाला तथा पापों का नाश करने वाला है ॥२८॥

कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनूद्भवः ।
सददर्श रणे भग्नान्दितिपुत्रान्सुरोत्तमैः ॥२६

ततः स मरणाद्भीतस्तप्त्वा वर्ष गणान्बहून् ।
आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम् ॥३०

ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु ।
स च वव्रे वरं दैत्यो वरमेव पितामहात् ॥३१

यं यं करतलेनाहं स्पृशेय समरे विभो ।
स स मद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि म्रियेदज ॥३२

वाढमित्याह भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिंबली ॥३३

समेत्याह्वयते देवं यक्ष किन्नरमेव वाः ।
न कश्चिद्युयुधे तेन समं दैत्येन नारद ॥,४

ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत् ।
नानेन सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः ॥३५

यह मुर नाम वाला कश्यप ऋषि का औरस पुत्र है जो हनु से समुत्पन्न हुआ था। उसने सुरोत्तमों के द्वारा दिति के पुत्रों को रण स्थल में भग्न होते हुए देखा था ॥२९॥ इसके पश्चात् उसे भी मृत्यु से भय हो गया था और बहुत वर्षों तक उसने तपस्या करके अपराजित विभु ब्रह्मा जी की अराधना की थी ॥३०॥ इसके उपरान्त पितामह परम प्रसन्न होगये थे और वरद बोले—हे वत्स ! मुझ से कोई भी वरदान माँगलो उस मुर ने कहा और दैत्य ने पितामह से इस प्रकार वरदान माँगा था ॥३१॥ हे विभो ! समरांगण में मैं जिस-जिस को भी अपने कर तल से स्पर्श करदूं वही-वही मेरे हाथ के संस्पर्श करदूं वही-वही मेरे हाथ के संस्पर्श होने से अज ! मरजावे चाहे वह अमर भी क्यों न हो ॥३२॥ लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी ने 'बहुत अच्छा ऐसा ही हो जायगा'—यह कहा था । इसके पश्चात् वह महान् तेजस्वी और बलवान् मुर मुरागिरि पर चला गया था ॥३३॥ हे नारद ! वह वहाँ पर पहुंच कर देव-किन्नर और यक्ष सबको बुलाता था किन्तु उस दैत्य से कोई भी युद्ध नहीं करता था ॥३४॥ इसके उपरान्त वह अमरावती में क्रुद्ध होकर पहुंच गया था और वहाँ उसने इन्द्र को पुकारा था किन्तु इन्द्र ने भी इसके साथ युद्ध करने का विचार नहीं किया था ॥ ३५॥

ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम् ।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत् ॥३
स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा ।
देहि युद्धं सहस्राक्ष नोचेत्स्वर्गं परित्यज ॥३७
इत्येवमुक्तो दैत्येन ब्रह्मन्हरिहयस्तदा ।
स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत ॥३८
ततो गजेन्द्रकुलिशौ हृतौ शक्रस्य शत्रुणा ।
सकलत्रो महातेजा देवैः सह सुतेन च ॥३९

कालिन्द्या दक्षिणे कूले निविवेश पुरं हरिः ।
मुरश्चापि महाभोगान्बुभुजे स्वर्ग संस्थितः ॥४०
दानवाश्चापरे रौद्रा मयतारपुरोगमाः ।
मुरमासाद्य मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा ॥४१
स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः ।
एकाकी कुञ्जरारूढः सरयूं निम्नगां प्रति ॥४२

इसके अनन्तर वह अपना हाथ उठाकर अमरावती में प्रविष्ट होगया था। प्रवेश करते हुए उसको रोकने के लिये भी किसी का उत्साह और साहस नहीं हुआ था ॥३६॥ वह इन्द्र के निवास स्थान में जाकर उस समय में मुर दैत्य इन्द्र से बोला—हे सहस्राक्ष ! मुझे युद्ध दो अर्थात् मेरे साथ युद्ध करो अन्यथा इस अपने स्वर्ग के सिंहासन को त्याग दो ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! दैत्य के द्वारा इस तरह कहे जाने पर उसी समय हरि इसने स्वर्ग के राज्यासन का परित्याग कर दिया था और भूमि पर भ्रमण करने वाला हो गया था ॥३८॥ फिर उस शत्रु ने इन्द्र के गजेन्द्र और वज्र का हरण कर लिया था। महान् तेजस्वी इन्द्र अपनी भार्या के—देवों के और सुत के साथ वहाँ से चल दिया था ॥३९॥ इन्द्र ने कालिन्दी के दक्षिण तट पर पुर बनाकर रहने लगा था। मुर भी स्वर्ग में स्थित होकर वहाँ के स्वर्गीय महान् भोगों का आनन्द पूर्वक उपभोग करने लगा था ॥४०॥ दूसरे जो दानव थे जिनमें मय, तारक आदि प्रमुख थे मुर के पास में आकर सुकृतियों के भाँति स्वर्ग में परम आनन्द से रहने लगे थे ॥४१॥ वह महान् असुर किसी समय में भूमि पर आगया था। वह अकेला ही कुञ्जर पर समारूढ होकर सरयू नदी की ओर आया था ॥४२॥

स सरय्वास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम् ।
ददर्श रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि ॥४३
तमुपेत्याब्रवीद्दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति ।
नोचेन्निवर्त्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया ॥४४

तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः ।
प्रोवाच बुद्धिमान्ब्रह्मन्वसिष्ठस्तपतां वरः ॥४५

किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजिताननुशासय ।
प्रहर्तुं मिच्छसि यदि त निवारय चान्तकम् ॥४६

स बली शासनं ते वै न करोति महासुर ।
तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वमन्यच्च भूतलम् ॥४७

स तद्वसिष्ठ वचनं निशम्य दनुपुंगवः ।
जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम् ॥४८

तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवध्यं च संयुगे ।
स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत् ॥४९

उस मुर ने सरयू नदी के तीर पर सूर्य वंश में समुत्पन्न परम वीर राजा को देखा था जिनका नाम रघु था और जो यज्ञ कर्म्म में दीक्षित हो रहे थे ॥४३॥ उस राजा के समीप में जाकर दैत्य ने कहा मुझे युद्ध दो। यदि मेरे साथ युद्ध नहीं कर सकते हो तो यज्ञ को बन्द कर दो और तुम को देवताओं का यजन नहीं करना चाहिए ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! महान् तेजस्वी एवं बुद्धिमान् तथा तपस्वियों में परम श्रेष्ठ मित्रावरुण सम्भव वसिष्ठ जी ने उसके समीप में आकर कहा—॥४५॥ हे दैत्य ! मनुष्यों के जीतने से क्या लाभ होगा। जो अजित है उन पर अनुशासन करो। यदि प्रहार करने की ही इच्छा रखते हो तो उस अन्तक (यमराज) को निवारित करो अर्थात् अपने स्थान से दूर करदो ॥४६॥ हे महासुर ! वह बहुत बलवान् भी है और तेरा शासन नहीं करता है। उसके जीत लेने पर फिर सम्पूर्ण भूमण्डल ही जीता हुआ हो जायगा ॥४७॥ वह दनु पुंगव उस वसिष्ठ जी के वचन को सुनकर फिर उस दण्ड पाणि धर्म राज को ही जीतने के लिये चल दिया था ॥४८॥ यम ने उसे आता हुआ श्रवण कर और यह भी मानकर कि वह युद्ध में वध के योग्य भी नहीं है। वह अपने वाहन महिष पर समारूढ़ होकर भगवान् केशव के समीप में गया था ॥४९॥

समेत्य चाभिवाद्यैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम् ।
स चाह गच्छ मामद्य प्रेषयस्व महासुरम् ॥५०
स वासुदेववचनं श्रुत्वा च त्वरयाऽन्वितः ।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः सम्प्राप्तो नगरीमुरः ॥५१
समागतं यमः प्राह किं मुरे कर्त्तुमिच्छसि ।
वदस्व वचनं कर्त्ता त्वदीयं दानवेश्वर ॥५२
यम प्रजासंयमनान्निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि ।
नोचेत्तवाद्यच्छित्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि ॥५३
तमाह धर्मराड् वाक्यं यदि संयमसे महान् ।
मुरो नित्यं गोपिताऽस्मि करिष्ये वचनं तव ॥५४
मुरस्तमाह भवतः कोऽधिकस्तं वदस्व मे ।
अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः ॥५५
यमस्तं प्राह मे विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः ।
श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽव्ययः ॥५६

भगवान् के पास पहुंचकर उनको प्रणाम करके उस यमराज ने उस मुर दैत्य के चेष्टित कर्म को निवेदित किया था। भगवान् केशव ने कहा—जाओ, उस महासुर को मेरे पास भेज दो ॥५०॥ वह वासुदेव के वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर वहां गया और इसी बीच मे वह मुर दैत्य भी यमराज की संयमनी नारी को प्राप्त होगया था ॥५१॥ उसको आया हुआ देखकर यमराज बोले—हे मुर ! आप क्या करना चाहते हैं ? आप वही बात मुझे बतादो। हे दानवेश्वर ! मैं आप के वचन को करने वाला हूं ॥५२॥ मुरने कहा—हे यम ! आप जो सम्पूर्ण प्रजा को दण्ड देकर संयमन किया करते हैं इससे निवृत्त हो जाइये। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो मैं आपके मस्तक को काट कर अभी भूमि पर गिरा दूंगा ॥५३॥ तब धर्मराज ने उससे कहा—यदि आप महान् संयमन करते हैं तो मुर आपतो नित्य हो रक्षक हैं और मैं आपके वचन को अवश्य करूंगा ॥५४॥ मुर दैत्य उससे बोला—यह बताओ, आप से भी अधिक कोई बलवान् है क्या ? और वह कौन है—

यही मुझे बताओ। आज मैं उसी को पराजित करके वारण करूं—इसमें अब कुछ भी संशय नही है ॥५५॥ यमराज ने उससे कहा—विष्णु देव चक्र और गदा के धारण करने वाले हैं। वह श्वेतद्वीप में निवास करते हैं और अविनाशी हैं। वे ही मेरा भी सयमन किया करते हैं ॥५६॥

तमाह दैत्यशार्दूलः क्वासौ वसति कीर्तय।
स्वय तत्र गमिष्यामि तस्य सयमनोद्यत. ॥५७
तमुवाच यमो गच्छ क्षीरोद नाम सागरम्।
तत्रास्ते भगवान्विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः ॥५८
मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम्।
किन्तु त्वया न तावद्धि सयम्या धर्म मानवाः ॥५९
स प्राह गच्छ त्वत्तो वा प्रवर्त्तिष्ये जय प्रति।
सयन्तु वा यथा वाऽपि ततो युक्त समाचरे ॥६०
इत्येवमुक्त्वा वचन दुग्धाब्धिमगमन्मुरः।
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः ॥६१
चतुर्मूर्त्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते।
सर्वगत्वात्कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद ॥६२

यह सुनते ही दैत्यशार्दूल उससे बोला—वह कहा पर रहते हैं शीघ्र बतलाओ। मैं स्वय ही वहाँ पर जाऊंगा और उसका ही सयमन करने के लिये मैं अब उद्यत होगया हूं ॥५७॥ उससे यमराज बोले—सागर मे चले जाओ वहीं पर जगन्मय लोकों के नाथ भगवान् विष्णु रहते हैं ॥५८॥ मुर दैत्य ने यम के इस वाक्य का सुनकर कहा—अच्छा, मैं अब केशव के समीप मे ही जाता हूं किन्तु तब तक तुमको धर्म–मानवों को सयम नहीं करना चाहिए ॥५९॥ वह बोला—आप जाइये, मैं अथवा आप से जय होने के प्रति प्रवृत्ति करूगा। जिस प्रकार से भी होगा मैं सयमन करने का कार्य करूंगा फिर जो भी युक्त हो समाचरण करें ॥६०॥ इस तरह से इतना भर कह कर मुर दैत्य क्षीर सागर को चला गया था। जहाँ पर शेष की शय्या पर चतुर्मूर्त्ति भगवान् जनार्दन

शयन कर रहे थे ॥६१॥ नारद जी ने कहा—विष्णु तो एक ही हैं फिर वे चतुर्मूर्त्ति किस तरह कह जाते हैं ? क्या वे सब जगह गमन शील हैं इसलिये या किसी भी प्रकार से अव्यक्त हैं इसलिये ऐसा कहा जाता है—यह मुझे बतलाइये ।६२।

अव्यक्त सर्वगोऽप्येह एक एव महामुन ।
चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मास्तथा शृणु ॥६३
अप्रतर्क्यमनिर्देश्य शुक्ल शान्त पर पदम् ।
वासुदेवाख्यम व्यक्त स्मृत द्वादशपत्रकम् ॥६४
क्य शुक्ल कथ शा तमप्रतक्यमनिन्दितम् ।
कान्यस्य द्वादशोक्तानि पत्राणि महामुने ॥६५
शृणुष्व वचन गुह्य परमेष्ठिप्रभाषितम् ।
श्रुत सनत्कुमारेण तेनाख्यात च यन्मम ॥६६
कोऽय सनत्कुमारेति यथोक्त ब्रह्मण. स्वयम् ।
तथापि तेन गदित वद मामनुपूर्वशः ॥६७
धर्मस्य भार्याऽहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम् ।
सजात मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम् ॥६८
ज्येष्ठ. सनत्कुमारोऽभूद्द्वितीयश्च सनातन ।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः ॥६९

हो आपको बतलाया है—यह सम्पूर्ण गाथा मुझे क्रम से बतलाइये ॥६७॥ पुलस्त्यजी ने कहा—धर्म्म की भार्य्या हिंसा नाम वाली थी उस मे ये चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे मुनि शार्दूल! ये सब योग शास्त्र के विचार करने वाले ही उत्पन्न हुए थे ॥६८॥ जो सब मे बड़ा था वह सनत्कुमार नाम वाला था—दूसरा सनातन था—तृतीय सनक और चौथा सनन्दन था ॥६९॥

सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं वोढुमासुरिम् ।
दृष्ट्वा पञ्चशिखं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम् ॥७०
नतस्तस्यासनं दद्याज्ज्यायानपि कनीयसे ।
मौनं गुह्यं महायोगं कपिला दीनुवाच सः ॥७१
सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।
अपृच्छद्योगविज्ञानं तमुवाच प्रजापतिः ॥७२
कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रेति मे वचः ।
शृणोपि कुरुषे तच्च ज्ञानं सांख्ययुतो भवान् ॥७३
पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो ।
न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह ॥७४
विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन ।
धर्मकर्मसमायोगे तथापि ग.दतः श्रृणु ॥७५
पुन्नाम्नो नरकात्राति पुत्रस्तेनेह गीयते ।
शेषः पापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥७६
कोऽयं पुन्ना मको देव यस्मात्राति च पुत्रकः ।
तस्माच्छेषं तथा पापं हरेच्छिष्यश्च तद्वद ॥७७
एतत्पुराणं परम महर्षे योगाङ्ग युक्तं च तथा सदैव ।
तथैव चोग्रंभयहारि पुण्यं वदामि ते शाम्यति येन पापम् ॥७८

सांख्य शास्त्र के ज्ञाता कपिल मुनि को परम श्रेष्ठ पञ्चशिख तथा योग युक्त तपोनिधि देखकर दूसरे जो पुत्र थे उनमें बड़े भी ये तो भी छोटे के लिये आसन दिया था और मौन, परम गोपनीय, महायोग कपिलादि को उन्होंने बतलाया था ॥७०-७१॥ सनत्कुमार ने कमल से

उत्पन्न ब्रह्माजी के पास उपस्थित होकर योगविज्ञान पूछा था। प्रजापति ने उनसे कहा–ब्रह्माजी ने कहा–हे पुत्र ! मैं कह तो दूंगा यदि तुम उस का साधन कर सको। मेरे वचन को श्रवण करो और उसको जो ज्ञान मैं हूं क्योंकि आप तो साख्य से संयुत हैं ॥७२ ७३॥ सनत्कुमार ने कहा—हे देवेश ! मैं तो आपका ही पुत्र हू। हे विभो ! मैं आपका शिष्य भी हूं। हे पितामह ! पुत्र और शिष्य मे कुछ भी विशेषता तो नही है अर्थात् दोनो ही समान ही हे ॥७४॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे धर्म नन्दन ! शिष्य और पुत्र दोनों मे विशेषता होती है और वह धर्म तथा कर्म योग म है। मैं बतलाता हूं उसे आप मुझसे सुनिए ॥७५॥ पु नाम वाले नरक से त्राण करता है इसीलिये उसको पुत्र कहते हैं। उससे भी शेष जो पाप हो उस पाप को शिष्य हरण किया करता है इसलिये वह शिष्य कहा जाता है—यह वैदिकी श्रुति है ॥७६॥ सनत्कुमार ने कहा—यह पुन्नाम वाला कौन सा नरक है जिससे पुत्र त्राण किया करता है ? उससे शेष क्या पाप है जिसको शिष्य हरता है–यह सब कुछ मुझे कृपा कर बतलाइये ॥७७॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षे ! यह परम पुराण है तथा सदा ही योमार्ग से युक्त है। यह उसी प्रकार से उग्र भी है—भय का हरण करने वाला है–परम पुण्यमय अर्थात् पवित्र है। मैं तुमको बतलाता हूं जिससे पाप की शान्ति होती है ॥७८॥

६१—मुर दानव वध वर्णन

परदाराभिगमन पापिनामुपसेवनम् ।
पारुष्य सर्वभूताना प्रथम नरक मतम् ॥१
फलस्तेय महापाप फलहीन तथाऽटनम् ।
छेदनं वृक्षजातीना द्वितीय नरक स्मृतम् ॥२
वर्ज्यादान तथा दुष्टमथ व्यवबन्धनम् ।
विप्राद्रोऽराध्यवैः सार्धं तृतीय नरक मतम् ॥३

भयद सर्वसत्त्वानां भवभूतिविनाशनम् ।
भ्रंशनं निजधर्माणां चतुर्थं नरकं स्मृतम् ॥४
मारणं मित्रकौटिल्यं मिथ्याभिशंसनं च यत् ।
मिष्टैकाशनमित्युक्तं पञ्चमं तु नृयातनम् ॥५
यात्रा फलादिहरणं यमनं योगनाशनम् ।
यानयुग्मस्य हरणं षष्ठमुक्तं नृयातनम् ॥६
राजभागहरं मूढं राजजायानिषेवणम् ।
राज्ञामहितकर्त्तृत्वं सप्तमं नरकं स्मृतम् ॥७

परमपिता ब्रह्माजी ने कहा—पराई स्त्रियों का अभिगमन करना पापी पुरुषों के साथ रहकर उनका उप सेवन करना तथा समस्त प्राणियों के साथ कठोरता का व्यवहार करना—यही प्रथम नरक माना गया है ॥१॥ फलों की चोरी करना महान् पाप है तथा फलहीन अटन और वृक्ष जातियों का छेदन करना दूसरा नरक कहा गया है ॥२॥ जो वर्जित हैं उनका ग्रहण करना–दुष्ट अर्थात् दोष युक्त वस्तु का लेना और जो अवध्य हैं उनका वध एवं वन्धन करना और जो अवान्धव हैं उनके साथ विवाद करना–यह तृतीय नरक है ॥३॥ सब प्राणियों को भय देना तथा भव की भूति का विनाश करना–अपने धर्मों का भ्रंश करना–यह चतुर्थ नरक माना गया है ॥४॥ किसी को मारना-मित्र के साथ कुटिल व्यवहार करना–झूठी बातें कहना अर्थात् मिथ्या बोलना और मिष्ट पदार्थ को अकेले में आप ही खाजाना–यह पञ्चम नरक है ॥५॥ यात्रा फल प्रभृति का हरण करना-यमन, योग नाशन तथा यान युग्म का हरण—यह छटवा नरक होता है ॥६॥ राजा के भाग का हरण करना—मूढता, राजा की स्त्री का सेवन तथा राजाओं के अहित कर्म्म को करना, यह सातवाँ नरक होता है ॥७॥

लुब्धत्वं लोलुपत्वं च लब्धधर्मार्थनाशनम् ।
लालासक्तीणमेवोक्तमष्टमं नरकं स्मृतम् ॥८
विप्रोक्तं ब्रह्महरणं ब्राह्मणानां विनिन्दनम् ।
विरोधं बन्धुभिश्चोक्तं नवमं नरयातनम् ॥६

शिष्टाजारविनाशं च शिष्टद्वेष शिशोर्वधम् ।
शास्त्रस्तेय धर्मस्तेय दशमं परिकीर्तितम् ॥१०

षडङ्गनिधन घोर षाड्गुण्यप्रतिषेधनम् ।
एकादशं तथैवोक्तं नरकं सद्भिरुत्तमम् ॥११

सत्सु निन्दा सदाचौरमनाचारमसत्क्रिया ।
संस्कारपरिहीनत्वमिद द्वादशमुच्यते ॥१२

हानिधर्मार्थकामानामपवर्गस्य हारणम् ।
सवेदः सविदामेतत्त्रयोदशमुच्यते ॥१३

क्षपणं धर्महीनं च यद्वर्ज्यं यच्च वह्निदम् ।
चतुर्दश तथैवोक्त नरकं तद्विगर्हितम् ॥१४

लुब्धता—लोलुपत्व—साध धर्म और अर्थ का नाश कर देना तथा जलाना अग्नीर्णता—यह अष्टम नरक कहा गया है ॥८॥ द्विज के वचन को नमानना—ब्राह्मण के धन का हरण, ब्राह्मणो की बुराई करना और बन्धुओं के साथ विरोध करना—यह नवम नरक होता है ॥९॥ शिष्टाचार का विनाश करना—शिष्ट पुरुषो के साथ द्वेष करना—शिशु का वध करना, शास्त्रों की चोरी तथा धर्म की चोरी करना यह दशवाँ नरक है ॥१०॥ षडङ्ग का घोर निधन—षाड्गुण्य का प्रतिषेध करना अर्थात् छं सद्गुणों का त्यागना—इसको सत्पुरुषो ने ग्यारहवाँ नरक बतलाया है ॥११॥ सत्पुरुषो मे निन्दा, सदा चोरी करना, आचार से रहित रहना, असत्कर्म करना और संस्कारों से हीन रहना, यह बारहवाँ नरक होता है ॥१२॥ धर्म, अर्थ, और काम की हानि, अपवर्ग (मोक्ष) के प्राप्त करने की चेष्टा न करना तथा सविदों का सवेद, यह तेरहवाँ नरक है ॥१३॥ क्षपण, धर्म से हीनता, जो वर्ज्य है और जो वह्नि का देने वाला है, यह चौदहवाँ नरक कहा गया है जोकि विगर्हित है ॥१४॥

अज्ञान चाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम् ।
रमृत सत्यन्दशकममात्मवधनानि ह ॥१५

आलस्य वै पोडश क सक्रोध च विशेषतः ।
सर्वस्य चाततायित्यमावासेष्वग्निदीपनम् ॥१६
इच्छा च परदारेषु नरकाय निगद्यते ।
ईर्ष्याभा वश्च शास्त्रेषु उद्धतत्व विगर्हितम् ॥१७
एतैस्तु पापैः पुरुषः पुन्नाम्नेन संशयः ।
संयुक्तः प्रीणयेद् व सन्तत्या जगत पतिम् ॥१८
प्रीतः सृष्टचा तु शुभया समभ्यास्ते तमच्युतम् ।
पु नाम नरक घोर विनाशयति सर्वतः ॥१९
एतस्माकारणात्साध्य तत. पुत्रेति गद्यते ।
अतः पर प्रवक्ष्यामि शेषपापस्य लक्षणम् ॥२०
देय देवर्षिभूताना मनुजाना पितृनय ।
लिप्सा पर धनेष्वेव सर्ववर्णेषु चैकता ॥२१

अज्ञान, असूया, अशौच, अशुभ का करना या कहना, गह तथा अनृत वचन बोलना पन्द्रहवा नरक होता है ॥१५॥ आलस्य, पोडशक, क्रोधयुक्त रहना अर्थात् विशेष क्रोध करना—सबके लिय आततायी होना तथा आवास स्थानो मे अग्नि लगा देना, पराई स्त्रियो में इच्छा रखना नरक ही कहा जाता है। शास्त्रों मे उद्धतता, ईर्ष्या का भाव रखना, विशेष गर्हित कर्म करना यह सभी नरक कहे गये हैं ॥१६-१७॥ पुरुष इन पुन्नामाद्य पापों से युक्त होता है—इसमे सशय नही है। इनसे सयुक्त पुरुष सन्तति के द्वारा ही जगत् के पति दव को प्रसन्न किया करता है ॥१८॥ शुभ सृष्टि के द्वारा प्रसन्न होकर उन भगवान् अच्युत का समभ्यासन किया करता है और पुन्नाम जो घोर नरक है उसका सभी ओर से मनुष्य विनाश कर दिया करता है ॥ १९ ॥ इस कारण से ही वह साध्य होता है इसीलिये उसे 'पुत्र' यह कहा जाया करता है। इससे आगे अब हम शेष पाप का लक्षण बतलाते हैं ॥२०॥ देवर्षि भूत, मनुज और पितृगण का देय—पराये धन मे लिप्सा, और समस्त वर्णों मे एकी भाव रखना यह सब पाप कारक ही होते हैं ॥२१॥

ओंकारादपि निवृत्तिः पापकारी स्मृतश्च सः ।
गुरोर्वादो महापापमगम्यागमनं तथा ॥२२
घृतादिविक्रयो घोरश्चण्डालादिपरिग्रहः ।
स्वदोषच्छादन पाप परदोषप्रकाशनम् ॥२३
मत्सरित्वंवाग्दुष्टत्वं निष्ठुरत्वं तथाऽपरे ।
टौकित्वं तालवादित्वं नान्मा वाचऽप्यधर्मजम् ॥२४
दारुणत्वमधर्मित्वं नरकावहमुच्यते ।
एतैश्च पापैः सयुक्तः प्रीण येद्यदि शंकरम् ॥२५
ज्ञानाधिकमशेषेण शेष पाप जयेत्ततः ।
शारीरं वाचिकं यच्च मानसं साधिकं च यत् ॥२६
पितृ मातृकृत यच्च कृत यच्चाश्रितैर्नरैः ।
भ्रातृभिर्बान्धवैश्चापि तस्मिञ्जन्मनि धर्मज ॥२७
तत्सर्वं विलय याति स धर्मः सुतशिष्ययो. ।
विपरीते भवेत्साध्य विपरीत: पदक्रमः ॥२८
तस्माच्च पुत्रशिष्यौ हि विधातव्यौ विपश्चिता ।
एतदर्थमभिघ्या येच्छिष्याच्छ्रेष्ठतरः सुतः ।
शेषांस्तारयते शिष्यः सर्वतोऽपि हि पुत्रकः ॥२९

ओंकार से भी निवृत्ति कर लेना भी पाप करने वाला माना गया है। गुरु के साथ विवाद करना महान् पाप है—तथा जो गमन करने के योग्य नहीं है उस स्त्री के साथ गमन करना भी महान् पाप होता है ॥२२॥ घृत आदि वस्तुओं का विक्रय करना घोर पाप होता है—चाण्डाल आदि का परिग्रह ग्रहण करना, अपने दोषों का आच्छादन करना (छिपाना) तथा पराये दोषों को प्रकाश में लाना,मत्सरता से युक्त रहना—दुष्ट वाणी का मुख से बोलना, निष्ठुरता रखना, टौकित्व, ताल वादिता,वाणी से भी अधर्म के उत्पन्न होने वाले का नाम लेना—दारुणता, अधर्मी होना—ये सब नरक देने वाले कहे जाते हैं। इन पापों से युक्त मनुष्य यदि भगवान् शंकर की समाराधना से उन्हें प्रसन्न कर लेवे ॥२३-२५॥ अशेष रूप से ज्ञान की अधिकता का होना शेष पापों

को जीत लेता है। शरीर से होने वाला—वाचिक और अधिकता से युक्त जो भी मानस पाप होता है। माता-पिता के द्वारा जो किया गया है और जो अपने समाश्रित व्यक्तियो के द्वारा किया गया है, हे धर्मज्ञ ! भाइयों के द्वारा तथा बान्धवो के द्वारा भी जो पाप कर्म किया गया है और उस जन्म में जो किया गया है वह सभी पाप विलय को प्राप्त हो जाता है ऐसा यह सुत और शिष्य का धर्म होता है। विपरीत पद क्रम विपरीत होने पर ही साध्य होता है ॥२६-२८॥ इसलिये विद्वान् पुरुष को अवश्य ही पुत्र और शिष्य करना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये शिष्य से भी सुत अधिक श्रेष्ठ होता है। सब पापो से शिष्य तार देता है पुत्र तो सभी पापो से तार दिया करता है ॥२९॥

श्रुत्वा साध्यः प्राह तपोधनः ।
निसत्य तव पुत्रोऽहं देव योगं वदस्व मे ॥३०
तमुवाच महायोगी त्वन्मातापितरौ यदि ।
दास्यते च ततो योगं दायादो ह्यसिपुत्रक ॥३१
सनत्कुमारः प्रोवाच दायादपरिकल्पना ।
येय हि भवता प्रोक्ता ता मे त्व व्यातुमर्हसि ॥३२
तदुक्तं साध्यमुख्येन वाक्यं श्रुत्वा पितामह. ।
प्राह प्रहस्य भगवाञ्छृणु वत्सेति नारद ॥३३
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवास्तु षट् ॥३४
अमीषु षट्सु पुत्रेषु ऋणपिण्डधनक्रियाः ।
गोत्रसाम्य कुले वृत्तिः प्रतिष्ठा शाश्वती तथा ॥३५

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—पितामह के इस वचन का श्रवण कर साध्य तपोधन बोला—यह निसत्य है, हे देव ! मैं तो आपका पुत्र ही हूँ, मुझे अब आप योग बतलाइये ॥३०॥ वह महायोगी बोले—हे पुत्र ! तेरे माता पिता यदि योग दे देंगे तो दायाद है ॥३१॥ सनत्कुमार ने कहा जो यह दायाद की परिकल्पना आपने इस समय में कही है उसे आप मुझे कहने के लिये योग्य होते हैं ॥३२॥ साध्यों में प्रमुख के द्वारा

उस कथित वाक्य को सुनकर भगवान् पितामह ने हँसकर हे नारद ! कहा था हे वत्स ! अब श्रवण करो ॥३३॥ औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध—ये छै बान्धव दायाद होते हैं ॥३४॥ इन छै प्रकार के पुत्रों में ऋण पिण्ड और धन क्रियाऐं होती हैं। गोत्र की समता, कुल में वृत्ति और शाश्वती प्रतिष्ठा होती है ॥३५॥

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयदत्तः पारशवः षट् पुत्रास्तु प्रकीर्तिताः ॥३६
क्षमीपामृणपिण्डादिकथा नैवेह विद्यते ।
नामधारक एवेह गोत्रे च कुलसंमतः ॥३७
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः सनकाग्रजः ।
उवाचैनं विशेषं हि ब्रह्मन्मे ख्यातुमर्हसि ॥३८
ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्विशेषं शृणु पुत्रक ।
औरसो यः स्वयं जातः प्रतिबिम्बमिवात्मनः ॥३९
क्लीबोन्मत्ते व्यसनिनि प.यौ तस्या ज्ञया तु यः ।
भार्या ह्यनातुरा पुत्रं जनयेत्क्षेत्रजस्तु सः ॥४०
मातापितृभ्यां यो दत्तः स दत्तः परिगीयते ।
मित्रपुत्रं मित्रदत्तं कृत्रिमं प्राहुरुत्तमाः ॥४१
न ज्ञायते गृहे केन जातस्त्विति स गूढकः ।
बाह्यतः स्वयमानीतः सोऽपविद्धः प्रकीर्तितः ॥४२

कानीन—सहोढ़—क्रीत–पौनर्भव–स्वयदत्त—पारशव ये छै पुत्र कहे जाते हैं ॥३६॥ इन छै प्रकार के पुत्रों में ऋण पिण्ड आदि की कथा नहीं होती है। यहां पर संसार में ये पुत्र केवल नाम धारक होते हैं और गोत्र में कुल संमत होते हैं ॥३७॥ सनक के बड़े भाई ने ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर इनसे कहा—हे ब्रह्मन् ! इसकी विशेष व्याख्या मेरे सामने आप करके मुझे बतलाइये ॥३८॥ इसके अनन्तर देवपति ने कहा—हे पुत्र ! अब विशेष को सुनो। औरस पुत्र तो वह होता है जो अपनी धर्म प्रणीता स्त्री के उदर से अपने ही वीर्य से समुत्पन्न हुआ हो। यह तो अपनी आत्मा के प्रतिबिम्ब के ही समान हुआ करता

है ॥३९॥ पति के नपुंसक—उन्मत्त—व्यसनी होने पर उस अपने पति की आज्ञा प्राप्त कर जो भार्या आतुर न होती हुई पुत्र को जन्म देवे वह पुत्र दोत्रज कहा जाता है ॥४०॥ माता—पिता ने जिसको दे दिया है वही दत्तक पुत्र कहा जाया करता है। मित्र के द्वारा दिया हुआ जो मित्र का पुत्र है उसे उत्तम पुरुष कृत्रिम पुत्र कहते हैं। जो यह नहीं जाना जाता है कि गृह में किस के द्वारा यह उत्पन्न हुआ है वही पुत्र गूढ़-हत्र नाम से कहा गया है। बाहिर से जो लाया गया हो उसको ही अपविद्ध पुत्र कहा जाता है ॥४१-४२॥

कन्याजातस्तु कानीनः सगर्भोढः सहोढजः।
मूल्यैगृंहीतः क्रीतः स्याद्द्विविधः स्यात्पुनर्भवः ॥४३
दत्ताऽप्येकस्य या कन्या भूयोऽन्यस्य प्रदायते।
तज्जातस्तनयो ज्ञेयो लोके पौनर्भवः स्मृतः ॥४४
दुर्भिक्षे व्यसने चापि येनात्मा विनिवेदितः।
स स्वयं दत्त इत्युक्तस्तथाऽन्यः कारणान्तरैः ॥४५
ब्राह्मणस्य सुतः शूद्रचा जायते यस्तु सुव्रत।
ऊढाया चाप्यनूढाया स पार शव उच्यते ॥४६
एतस्मात्कारणात्पुत्र न स्वय दातुमर्हसि।
स्वमात्मान गच्छ शीघ्रं पितरौ समुपाह्वय ॥४७
ततः स माता पितरौ सस्मार वचनाद्विभोः।
तावाजग्मतुरीशान द्रष्टुं वै दम्पती मुने ॥४८
प्रणिपत्य तु ब्रह्माणमादेशो देव दीयताम्।
उपविष्टौ सुखासीनौ साध्यो वचनमब्रवीत् ॥४९

कन्या से जो पुत्र हो वह 'कानीन' कहा जाता है। गर्भ के सहित जिसका विवाह किया गया है उससे जो पुत्र उत्पन्न हो वह 'सहोढज' नाम वाला होता है मूल्य देकर जिसको खरीद लिया जावे वह क्रीत कहलाता है। पुनर्भव पुत्र दो प्रकार का होता है ॥४३॥ जो कन्या पहिले तो एक पुरुष को देदी जावे और फिर किसी दूसरे पुरुष को जावे। उस स्त्री से जो पुत्र पैदा होता है वह पौनर्भव—इस

कहा जाता है ॥४४॥ दुर्भिक्ष में अथवा किसी महान् व्यसन में जिसने अपने आपको स्वयं ही समर्पित कर दिया हो वह पुत्र स्वयं दत्त—इस नाम से पुकारा जाता है। तथा दूसरे कुछ कारणों से पुत्र बना लिया गया हो वह अन्य कहलाता है ॥४५॥ हे सुव्रत ! ब्राह्मण का पुत्र जो किसी शूद्र वर्ण वाली स्त्री से पैदा हो चाहे वह विवाहित स्त्री हो या बिना ही विवाह की हुई हो, वह पुत्र पारशव—इस नाम वाला होता है ॥४६॥ इस कारण से तुम स्वयं ही अपने को देने के योग्य नहीं होते हो। जाओ, शीघ्र ही अपने माता-पिता को बुला लाओ॥४७॥ इसके उपरान्त उसने विभु के वचन से अपने माता पिता का स्मरण किया था। हे मुने ! वे दोनों ही दम्पती ब्रह्माजी के दर्शन करने के लिये वहाँ पर आगये थे ॥४८॥ उनने ब्रह्माजी को प्रणाम करके प्रार्थना की थी—हे देव ! हमको अपना आदेश प्रदान कीजिये। वे दोनों ही वहाँ पर सुख पूर्वक उपविष्ट हो गये थे,तब उस साध्य ने यह वचन कहा था ॥४९॥

योग जिगमिषुस्तात ब्रह्माण समचूचुदम् ।
मामुक्तवांस्तु पुत्रार्थे तस्मात्त्वं दातुमर्हसि ॥५०
सावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम् ।
उक्तवन्तौ प्रभोऽय हि आवयोस्तनयोऽस्ति च ॥५१
अद्यप्रभृत्ययं पुत्रस्तव ब्रह्मन्भविष्यति ।
इत्युक्त्वा जग्मतुः स्वर्गं येनैवाभ्यागतौ यथा ॥५२
पितामहोऽपि तं पुत्रं साध्यं च विनयान्वितम् ।
सनत्कुमारं प्रोवाच योग द्वादशपत्रकम् ॥५३
शिखासंस्थस्तु ओंकारो मेषोऽस्य शिरसि स्थितः ।
पत्रं वैशाखमासे हि प्रथमं परिकीर्तितम् ॥५४
नकारो मुखसंस्थोऽपि वृषस्तत्र प्रकीर्तितः ।
ज्येष्ठमासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥५५
मोकारो भुजयोर्युग्म मिथुनस्तत्र संस्थितः ।
आषाढ इति विख्यातस्तृतीयं पत्रकं स्मृतम् ॥५६

देकारश्चाङ्घ्रियुगले तत्रस्थमिदच्यते ।
मासो माघेति विख्यातो दशमं पत्रकं स्मृतम् ॥६३

भकार नेत्र युगल है। वहां पर कर्कटक स्थित है। मास श्रावण—ऐसा कहा गया है—यही चतुर्थ पत्रक कहा गया है ॥५७॥ गकार हृदय कहा गया है, वहा पर सिंह वास करता है। मास भाद्रपद कहा गया है—इसे ही पञ्चम पत्रक कहा जाता है ॥५८॥ वकार कवच जानना चाहिए। वहां पर कन्या प्रतिष्ठित है। मास आश्वयुजि कहा गया है—यही षष्ठ पत्रक बतलाया गया है ॥५९॥ तेकार मन में कहा गया है। वहां पर तुला संस्थित है और इसका माम कार्त्तिक नाम बाना है—यह सप्तम पत्रक कहा जाता है ॥६०॥ वाकार नाभि से संयुक्त है। वहां पर वृश्चिक स्थित है। मास इसका मार्गशिरा है—इसको ही अष्टक पत्र बताया गया है ॥६१॥ सुकार जघन बताया गया है और वहा पर धनुर्धर संस्थित है। इसका मास पौष कहा गया है—यह नवम पत्रक कहा गया है ॥६२॥ देकार दोनों अंघि हैं। वहां पर स्थित तिमि (मकर) कहा जाता है। इसका मास माघ-इस नाम से विख्यात है—यह दशम पत्रक कहा जाता है ॥६३॥

बाकारो जानुयुग्मं च कुम्भस्तत्रादिसंस्थितः ।
पत्रकं फाल्गुनः प्रोक्तं तदेकादशमुत्तमम् ॥६४
पादौ यकारो मीनोऽपि स चैत्रे वसते मुने ।
इद तु द्वादशं प्रोक्तं पत्रं वै केशवस्य हि ॥६५
द्वादशारं तथा चक्रं षण्णाभिद्वियुतं तथा ।
त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः ॥६६
तव चोक्तं तु देवस्य रूपं द्वादशपत्रकम् ।
यस्मिञ्ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं लभेत् ॥३७
द्वितीयं मुक्त सत्वाद्यं चतुर्वर्णं चतुर्मुखम् ।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं श्रीवत्सधरमव्ययम् ॥६८

तृतीयस्तामसो नाम शेषमूर्तिः सहस्रधा।
सहस्रवदनः श्रीमान्प्रजाप्रलयकारकः ॥६९
चतुर्थो राजसो नाम रक्तवर्णश्चतुर्मुखः।
द्विभुजो धारयन्माला सृष्टिकृत्त्वादिपूरुषः ॥७०
अव्यक्तात्म भवन्त्येते त्रयो व्यक्ता महामुने।
अतो मरीचिप्रमुखास्तथाऽन्येऽपि सहस्रशः ॥७१

वाकार जानुयुग्म है वहा पर कुम्भ संस्थित है माम फाल्गुन है—यही एकादश पत्रक कहा गया है ॥६४॥ दोनों पाद यकार हैं वहां पर मीन संस्थित है। हे मुने! वह चैत्र में वास करता है। ये द्वादश पत्र भगवान् केशव के कहे गये हैं ॥६५॥ तथा द्वादश आर वाला चक्र है और पण्णाभिद् त्रियुत है। त्रिव्यूह तथा एक मूर्ति परमेश्वर बताये गये हैं ॥६६॥ यहा पर देव का द्वादश पत्रक रूप बताया गया है। हे मुनि श्रेष्ठ! जिसके ज्ञान प्राप्त कर लेने पर फिर पुनः मरण प्राप्त नहीं होता है ॥६७॥ द्वितीय सत्वाख्य, चतुर्वर्ण और चतुर्मुख, चतुर्बाहु, उदार अंगों से समन्वित, श्रीवत्स को धारण करने वाले और अव्यय बताये गये हैं ॥६८॥ तृतीय तामस नाम धारी शेष मूर्ति हैं जो सहस्र प्रकार के एक सहस्र मुखों वाले हैं, श्री सम्पन्न तथा इस सम्पूर्ण प्रजा के प्रलय करने वाले हैं ॥६९॥ चतुर्थ राजस नामधारी-रक्तवर्ण वाले, चतुर्मुख, दो भुजाओं से संयुत—माला धारण करने वाले—एवं सृष्टि के करने वाले आदि पुरुष हैं॥७०॥हे महामुने! उन अव्यक्त से ही ये तीनों स्वरूप व्यक्त होते हैं। इसी लिये इनसे मरीचि आदि प्रमुख ऋषि तथा अन्य भी सहस्रों स्वरूप उत्पन्न होते हैं ॥७१॥

एतत्तवोक्तं मुनिवर्य रूपं विष्णोः पुराणं मतिपुष्टिवर्धनम्।
चतुर्भुजं चापि मुरो दुरात्माक्रान्त्वावाक्यात्पुनराससाद ॥७२
समागतं प्राह मुने मधुघ्नः प्राप्तोऽसि केनासुर कारणेन।
स प्राह योद्धुं सह वै त्वयाऽद्य तं प्राहभूयोऽसुरसूदनहन्ता ॥७३
यदीह मां योद्धुमुपागतोऽसि तत्कम्पते ते हृदयं किमर्थम्।
ज्वरातुरस्येव सहस्रं दुर्वृत्तस्ते न योत्स्ये सह कातरेण ॥७४

इत्येवमुक्तो मधुसूदनेन मुरस्तदाऽस्यद्धृदये स्वहस्तम् ।
कथं क्व कस्येति मुरस्तदोक्त्वा निपातयामासविपन्नबुद्धिः ॥७५
हरिश्च चक्रं मृदुलाघवेन मुमोच तद्धस्तकमलं च शत्रोः ।
चिच्छेद देवास्तु गतव्यथाभवन्देव प्रशंसन्ति च पद्मनाभम् ॥७६
एतत्तवोक्तं मुरदैत्यनाशनं कृतं हि युक्त्या शितचक्रपाणिना ।
अन. प्रसिद्धं समुपाजगाम मुरारित्येव विभुर्नृहिंसः ॥७७

हे मुनि वर्ग ! भगवान् विष्णु के ये स्वरूप हमने आपको बतला दिये है जो पुराण हैं तथा मति एवं बुद्धि के वर्धन करने वाले हैं। वह दुष्ट मुर दैत्य भी यमराज के कहने से फिर वहाँ पर आकर समुपास्थित हो गया था ॥७२॥ हे मुने ! आये हुए उसको देखकर मधु दैत्य के हनन करने वाले प्रभु ने उससे कहा—हे असुर ! किस कारण से आप यहाँ पर आये हैं ? उसने कहा—मैं तो आपके साथ युद्ध करने के लिये ही यहाँ पर आया हूँ। तब असुरों के समूह के हनन करने वाले प्रभु ने पुनः उससे कहा था ॥७३॥ यदि मुझसे ही युद्ध करने के लिये आप यहा पर समागत हुए हैं तो फिर आपका यह हृदय क्यो कम्पित हो रहा है ? जैसे कोई ज्वर से आतुर पुरुष कप कपाता रहता है वही दशा इस समय मे आपकी है कि बारम्बार कम्पित हो रहे हैं। तो फिर मैं ऐसे कातर पुरुष से कभी भी युद्ध नही करूँगा। ॥७४॥ इस प्रकार से कहे जाने पर जो कि मधु सूदन प्रभु ने उससे कहा था, उसी समय में मुर ने अपना हाथ हृदय पर रक्खा था और कहा—किसका—कहाँ कैसे—यह कहते हुए ही उस समय मे विपन्न बुद्धि ने उसे निपातन किया था ॥७५॥ भगवान् हरि ने चक्र को मृदुलाघव से छोड दिया था और शत्रु का हस्तकमल छिन्न कर दिया था। देवगण उस समय मे व्यथा से रहित हो गये थे। पद्म नाभ देव की सब प्रशंसा कर रहे थे ॥७६॥ यह मुर दैत्य का निपातन मैंने आपको बतला दिया है जो कि शित चक्र पाणि ने युक्ति से किया था। इसी लिये विभु नृसिंह मुरारि—इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये थे ॥७७॥

६२— विष्णु-हृदय में शिव दर्शन

तनो मुरारिभुवनं समभ्येत्य सुरास्ततः ।
ऊचुर्देवं नमस्कृत्य जगत्संक्षोभकारणम् ॥१
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह गच्छामो हरमन्दिरम् ।
सावेत्स्यति महाज्ञानी जगत्क्षुब्धं चराचरम् ॥२
तथोक्ता वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
जनार्दनं पुरस्कृत्य जग्मुर्मन्दरभूधरम् ।
न तत्र देवं वृषभं न देवीं च न नन्दिनम् ॥३
शून्यं गिरिमपश्यन्त ह्यज्ञानतिमिरावृताः ।
तान्मूढदृष्टीन्सप्रेक्ष्य देवो विष्णुर्महाद्युतिः ॥४
प्रोवाच किं न पश्यध्वं महेशं पुरतः स्थितम् ।
तमूचुर्नैव देवेश पश्यामो गिरिजापतिम् ॥५
न विद्मः कारणं तत्र येन दृष्टिर्हता हि नः ।
तानुवाच जगन्मूर्तिर्यूयं देवस्य सागसः ॥६
पापिष्ठा गर्भहन्तारो मृडान्याः स्वार्थतत्पराः ।
तेन ज्ञानं विवेको वा हृतो देवेन शूलिना ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने ने कहा—इसके उपरान्त समस्त देवगण भगवान् मुरारि के भुवन में जाकर उपस्थित हुए थे और देव को नमस्कार करके उन्होंने जगत् के सक्षोभ का कारण निवेदन किया था ॥१॥ यह सुनकर भगवान् ने कहा—शिव के मन्दिर में चलें। वे महाज्ञानी हैं और इस चराचर जगत् के क्षोभ को जान लेंगे ॥२॥ इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् जनार्दन को नायक बनाकर इन्द्र के सहित सब देवता मन्दराचल पर गये थे किन्तु वहाँ पर देव, वृषभ, नन्दी, देवी कोई भी नहीं था ॥३॥ वह गिरि सर्वथा शून्य था। ऐसा देखकर सब अज्ञानान्धकार से समावृत हो गये थे। महाद्युति से युक्त भगवान् विष्णु ने उन सबको मूढ़ दृष्टि वाले देखा था ॥४॥ विष्णु देव ने कहा—क्या आप लोग नहीं देख रहे हैं भगवान् महेश्वर सामने आगे ही संस्थित हैं। उन्होंने कहा—हम लोग

देवेश्वर गिरिजापति का दर्शन नहीं कर रहे हैं ॥५॥ हमलोग इसका कोई कारण भी नही जान पा रहे हैं जिससे कि यह हमारी दृष्टि हृत हो गई है। जमदग्नि ने उनसे कहा—आप लोग देवेश्वर के अपराधी हैं ॥६॥ आप महान् पापिष्ट हैं स्वार्थ मे ही तत्पर रहते हैं। आपने मृडानी जगदम्बा के गणों का हनन किया है। इसी कारण से शूलपाणि देवेश्वर ने आपका ज्ञान और विवेक नष्ट कर दिया है ॥७॥

येनाग्रतः स्थितमपि पश्यन्तोऽपि न पश्यथ ।
तस्मात्कायविशुद्ध्यर्थं देवदृष्ट्यर्थमादरात् ॥८
तप्तकृच्छ्रेण संशुद्धा कुरुध्व ज्ञानमीश्वरे ।
क्षीरस्नानं प्रयुञ्जीत साग्रकुम्भशत पुरा ॥९
दधिस्नाने चतुः षष्टिर्द्वात्रिंशद्धविषोऽर्हणे ।
पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य कुम्भा षोडश कीर्तिताः ॥ १०
मधुनोऽष्टौ जलस्योक्ताः सर्वे ते द्विगुणा सुराः ।
ततो रोचनया देवमष्टोत्तरशतेन हि ॥११
अनुलिम्पेत्कुङ्कुमेन चन्दनेन च भक्तितः ।
बिल्वपत्रैः सकमलैः कर्पूरागरुचन्दनैः ॥१२
मन्दारैः पारिजातैश्च अतिमुक्तैस्तथाऽर्चयेत् ।
अगरुं सहकालेय चन्दनेनापि धूपयेत् ॥१३
जप्तव्यं शतरुद्रीयमृग्वेदोक्तं पदक्रमैः ।
एवं कृते तु देवेश पश्यध्व नेतरेण हि ॥१४

यही कारण है कि बिल्कुल समक्ष मे स्थित होते हुए भी देवेश्वर का आप दर्शन नही कर रहे हैं। इसलिये बड़े आदर से देव दृष्टि के निमित्त काम की शुद्धि के लिये तप्तकृच्छ व्रत से शोधन करो और ईश्वर मे ज्ञान प्राप्त करो। क्षीर से स्नान करो जो पहिले शत कुम्भो द्वारा सम्पन्न किया जावे ॥८-९॥ फिर दधि स्नान चौंसठ कुम्भो से करो। हवि के बत्तीस कलश होवें तथा शुद्ध पञ्चगव्य के सोलह कलश होने चाहिए ॥१०॥ मधु के आठ और सबसुरों को जल के द्विगुणित कुम्भो से स्नान करना चाहिए। इसके पश्चात् रोचना से अष्टोत्तर शत के द्वारा देव का

अनुलेपन करो। और कुंकुम तथा चन्दन से भक्तिभाव पूर्वक प्रलेपन करो। इसके पश्चात् कमल, बिल्वपत्र, कर्पूर, अगरु, चन्दन, मन्दार के पुष्प, पारिजात पुष्प और अति मुक्तों के द्वारा देवेश्वर का अर्चन करना चाहिए। अगरु, महवानेय और चन्दन से भी धूप का आघ्राण करावे ॥११-१३॥ पद क्रमों के द्वारा ऋग्वेदोक्त सम रुद्रीय का पाठ करना चाहिए। ऐसा कर लेने पर आप लोग देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करेंगे। अन्य कोई भी इसका उपाय नहीं है ॥१४॥

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः केशवमब्रुवन् ।
विधानं तप्तकृच्छ्रस्य कथ्यतां मधुसूदन ।
यस्मिश्चीर्णेकाय शुद्धिर्भे विता सार्वकालिकी ॥१५
त्र्यहमुष्णाः पिबेत्त्वापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥१६
पला द्वादश तोयस्य पलाष्टौ पयसः सुराः ।
षट् पलाःसर्पिषः प्रोक्ता दिवसे दिवसे पिबेत् ॥१७
इत्येवमुक्ते वचने सुराः कायविशुद्धये ।
तप्तकृच्छ्ररहस्य वै चक्रुः शक्रपुरोगमाः ॥१८
ततो व्रते सुराश्चीर्णे विमुक्ताःपापतोऽभवन् ।
विमुक्तपापा देवेशं वासुदेवमथाब्रुवन् ॥१९
क्वासौ वद जगन्नाथ शंभुस्तिष्ठति केशव ।
यं क्षीराद्यभिषेकेण स्नापयामो विधानतः २०
अयोवाच सुरान्विष्णुरेष तिष्ठति शंकरः ।
मद्देहे किं न पश्यध्व योग प्राप्य प्रतिष्ठितम् ॥२१

भगवान् वासुदेव के द्वारा इस तरह कहने पर देवगण ने भगवान् केशव से कहा—हे मधुसूदन ! तप्त कृच्छ्र व्रत का क्या विधान है उसे बतलाइए जिसके करने से और जिस व्रत के पूर्ण हो जाने पर काय शुद्धि सार्वकालिकी हो जायगी ॥१५॥ वासुदेव ने कहा—तीन दिन पर्यन्त उष्ण जल पीवे—तीन दिन उष्ण पय का पान करे—तीन दिन

तक गर्म घृत पीवे और फिर अन्त मे तीन दिन तक वायु का ही भक्षण करके रहे ।।१६।। हे सुरगण ! जल बारह पल लेवे । पय आठ पल ग्रहण करे । सर्पि (घृत) के छः पल ग्रहण करे । ये दिन-दिन में पान करे । ।।१७।। पुलस्त्य मुनि ने कहा—ऐसा कहने पर सुरगण काया की शुद्धि के लिये इन्द्र प्रभृति सबने तप्तकृच्छ्र रहस्य को किया था ।।१८।। इसके उपरान्त व्रत के पूर्ण हो जाने पर समस्त देवता पाप से मुक्त होगये थे। जब पाप रहित होगये तो उन देवों ने भगवान् वासुदेव से कहा— ।।१९।। हे जगन्नाथ ! भगवान् शम्भु कहां पर स्थित हैं जिनको कि हम अब क्षीर आदि के अभिषेक के द्वारा विधि पूर्वक स्नान करावें ।।२०।। इसके पश्चात् विष्णु सुरों से बोले शंकर यहाँ पर स्थित हैं। क्या प्रतिष्ठित योग को प्राप्त कर मेरे देह में नहीं देखते हैं ? ।।२१।।

तमूचुर्नैव पश्यामः स्वत्तो वै त्रिपुरान्तकम् ।
सत्य वद सुरेशान महेशान. क्वतिष्ठति ।।२२
ततोऽव्ययात्मा स हरि स्वहृत्पङ्कजशायिनम् ।।
दर्शयामास देवाना मुरारिर्लिङ्गमैश्वरम् ।।२३
ततोऽमरा.क्रमेणैव क्षीरादिभिरनुत्तमैः ।
स्नापयाञ्चक्रिरे लिङ्गं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।।२४
आलिप्य गोरोचनया चन्दनेन सुगन्धिना
बिल्वपत्राम्बुजैर्देव पूजयामासुरञ्जसा ।।२५
धूपयित्वाऽगुरुं भक्त्या निवेद्य परमौषधी. ।
जप्त्वाऽष्टशतनामानि प्रणाम चक्रिरे ततः ।।२६
इत्येव चिन्तयन्तस्त ववदेवौ हराच्युतौ ।
कथ योग समापन्नौ सत्त्वेन तमसा वृतो ।।२७
सुराणा चिन्तित ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः ।
सर्वलक्षणसयुक्तः सर्वायुधरोऽव्ययः ।।२८

देवगण ने उनसे कहा—हम स्वतः त्रिपुरान्तक को नहीं देखते हैं। हे सुरों के स्वामी ! सत्य बतलाइये महेश्वर कहाँ पर सस्थित हैं ।।२२।। इसके पश्चात् भगवान् हरि मुरारि ने ईश्वर के लिंग को अपने हृदय

कमल मे शयन किये हुए देवों को दिखला दिया था ॥२३॥ इसके उपरान्त देवो ने क्रम से ही उत्तम क्षीरादि के द्वारा उस शाश्वत-अव्यय और ध्रुव लिंग का स्नपन कराया था ॥२४॥ गोरोचन और सुगन्धित चन्दन से समालेपन करके फिर विल्व पत्र आदि से देवेश्वर की सब ने पूजा की थी ॥२५॥ भक्ति से अगरु से धूप घ्रापन कराकर परमोपधी निवेदित करके अष्टोत्तर शत नाम का जप किया और प्रणाम किया था ॥२६॥ नारद जी ने कहा—वे देवगण इस प्रकार से चिन्तन कर रहे थे उसी समय मे हर और अच्युत देवो के भी देव सत्व और तमोगुण से समावृत रहने वाले उस योग को कैसे प्राप्त हुए ? ॥२७॥ पुलस्त्य जी ने कहा—सुरवृन्द का चिन्तन जान कर विभु विश्व मूर्ति होगये थे जो सर्व लक्षणो से समन्वित, समस्त आयुधों को धारण करने वाले और अविनाशी थे ॥२८॥

साद्धं द्विनेत्रं कनकाहिकुण्डलं जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम् ।
समाधव हारभुजङ्गभूषणं पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम् ॥२९
चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्ग पाणि पिनाकशूलाजगवान्वितं च ।
कपर्द्दखट्वाङ्गकपालघण्टं सशङ्खटङ्कारवं महर्षे ॥३०
दृष्ट्वं व देवा हरिशंकरं तं नमोऽस्तु ते सर्वगताव्ययेति ।
प्रोक्तप्रणामाः कमलासनाद्याश्चक्रुर्मतिं चैकतरानियुज्य ॥३१
तानेकचित्तान्विज्ञाय देवान्देवपतिर्हरिः ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्तूर्णं कुरुक्षेत्रं स्वमाश्रमम् ॥३२
ततोऽपश्यन्त देवेशं स्थाणुभूतं जले स्थितम् ।
दृष्ट्वा नमः स्थाणवे तु प्रोक्त्वा सर्वेऽप्युपाविशन् ॥३३
ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्हरिर्हि नो दीयतां वरः ।
क्षुब्धं जगज्जगन्नाथ उन्मज्जस्व प्रियातिथे ॥३४
ततस्तां मधुरां वाणीं शुश्राव वृषभध्वजः ।
श्रुत्वोत्तस्थौ च वेगेन सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥३५

दाई नेत्रो वाले-सुवर्ण के अहि कुण्डल धारण करने वाले, जटा से युक्त गुडाकेश की प्रावाज गामियो श्रेष्ठ ध्वजा वाले, माधव के सहित,

भुजङ्गों के हार से भूषित, पीत चर्म से कटिभाग के समावृत करने वाले, चक्र और असि हस्त मे लिये हुए, हरा तथा शार्ङ्ग धनुष को ग्रहण करने वाले, पिनाक एव त्रिशूल के धारी,कपर्द खट्वाङ्ग तथा कपाल और घण्टा से समन्वित, शख की टङ्कार ध्वनि वाले हरि और शकर को हे महर्षे ! समस्त देवों ने दर्शन करते ही कहा—हे सर्वगत एव अव्यय ! आपको हमारा नमस्कार है ब्रह्मा आदि सब देवगण प्रणाम निवेदित करके एक ही बुद्धि हृदय मे स्थित करने वाले हुए थे ।।२८-३१।। देवों के स्वामी भगवान् हरि ने उन सबको एकचित्त वाले जान कर ग्रहण करते हुए शीघ्र ही अपने आश्रम कुरुक्षेत्र मे चले गये थे ।।३२।। इसके अनन्तर जल मे स्थित स्थाणुभूत देवेश्वर को उन्होंने वहीं देखा था । ऐसा देख कर सबने स्थाणु के लिये हमारा नमस्कार है—यह कहा और वहीं पर सब बैठ गये थे ।।३३।। इसके उपरान्त सुरपति ने कहा—हे जगन्नाथ ! आप तो अतिथियों को प्यार करने वाले हैं, आइये, वरदान प्रदान कीजिए और क्षुब्ध जगत् का उन्मज्जन करिए ।।३४।। इसके अनन्तर वृषभध्वज ने उस मधुर वाणी का श्रवण किया था और फिर सर्व व्यापी निरञ्जन प्रभु शीघ्रता से उठ खड़े हुए थे ।।३५।।

नमोऽस्तु देवदेवभ्यः प्रोवाच प्रहसन्हरः ।
स चागतः सुरं सेन्द्रं प्रणतो विनयान्वितः ।।३६
तमूचुर्देवताः सर्वास्त्यज्यता शकर द्रुतम् ।
महाव्रतं त्रयो लोकाः क्षुब्धास्ते तेजसाऽहिताः ।।३७
अथोवाच महादेवो मयात्यक्तो महाव्रतः ।
ततः सुरा दिव जग्मुर्हृष्टाः प्रयतमानसाः ।।३८
ततो विकम्पते पृथ्वी साब्धिद्वीपा महामुने ।
ततो ह्यचिन्तयद्रुद्रः किमर्थं क्षुभिता मही ।।३९
ततः पर्यचरच्छूली कुरुक्षेत्र समन्ततः ।
ददर्शौघवतीतीरे उशनस तपोनिधिम् ।।४०
ततोऽब्रवीत्सुर पतिः किमर्थं तप्यते तपः ।
जगत्क्षोभकरं विप्र तच्छीघ्र कथ्यता मम ।।४१

भगवान् हर हँसते हुए बोले—देवदेवों के लिये नमस्कार है जो इन्द्र और सब देवगण के साथ प्रणत एवं विनय से अन्वित होकर यहाँ पर आये हुए हैं ॥३६॥ समस्त देवताओं ने उनसे कहा—हे शंकर ! अब आप शीघ्र ही इस महा व्रत का त्याग कर दीजिए । आपके तेज से अर्दित होकर तीनों लोक क्षुब्ध होगये हैं ॥३७॥ इसके पश्चात् महादेव ने कहा—मैंने महा व्रत को त्याग दिया है । इसके उपरान्त सब देवगण परम प्रसन्न होते हुए प्रयत मन वाले स्वर्ग लोक को चले गये थे ॥३८॥ हे महा मुने ! इसके पश्चात् सागर और पर्वतों के सहित समस्त पृथ्वी विकम्पित हुई थी और भगवान् रुद्र ने सोचा था कि यह भूमि किस कारण से क्षुभित हुई है ॥३९॥ इसके उपरान्त भगवान् शूली कुरुक्षेत्र के चारों ओर परिचरण करने लगे थे। तब उन्होंने ओघवती के तट पर तपोनिधि उशना को देखा था ॥४०॥ तब सुरपति ने उससे कहा—यह तपस्या आप किसलिये कर रहे हैं ? इससे सम्पूर्ण जगत् को बड़ा क्षोभ हो रहा है । हे विप्र ! इसका कारण आप हमको शीघ्र ही बतलाइये ॥४१॥

तवाराधनकामाय तप्यते हि महत्तपः ।
तस्मात्सञ्जीविनी विद्या ज्ञातुमिच्छे त्रिलोचन ॥४२
तपसा परितुष्टोऽस्मि सुतप्तेन तपोधन ।
तस्मात्सं जीविनी विद्या भवाञ्ज्ञास्यति तत्त्वतः ॥४३
वरं लब्ध्वा ततः शुक्रस्तपसः संन्यवर्तत ।
तथापि चलते पृथ्वी साब्धिभूभृद्गणा वृता ॥४४
ततोऽगमन्महादेवः सप्तसारस्वतं शुचि ।
ददर्श नृत्यमानं च ऋषिं मङ्कणसञ्ज्ञितम् ॥४५
भावेन पोप्लूयति बाल वत्स भुजौ प्रसार्यैव ननर्त्त वेगात् ।
तस्यैव वेगेन समाहता तु चचाल भूमिः गिरिभिः सहैव ॥४६
तं शंकरोऽभ्येत्य करे निगृह्य प्रोवाच वाक्यं प्रहसन्महर्षे ।
किं भावितो नृत्यसि येन हेतुना वदस्वमामत्र किमत्र तुष्टिः ॥४७

स ब्राह्मणः प्राह ममाद्य तुष्टिर्येनेह जाताशृणु तद्द्विजेन्द्र ।
तपस्यतो मे बहवो गता हि ॥ वत्सराः कायविशोधनार्थम् ।।४८
ततोऽनु पश्यामि करात्क्षतोत्थं निर्गच्छते शाकरसं ममेह ।
तेनातितुष्टोऽस्मि भृशद्विजेन्द्रयेनास्मिनृत्यामिसुभावितात्मा ।।४६

उशना ने कहा—यह महान् तप तो आपके ही समाराधन करने के लिये किया है। हे त्रिलोचन! मैं तो संजीविनी विद्या को जानना चाहता हूँ ।।४२।। भगवान् हर ने कहा—हे तपोधन! आपकी इस तपस्या से जो बहुत ही भली भाँति की है मैं परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गया हूँ। अतएव आप संजीविनी तात्त्विक रूप में आप अब जान लेंगे ।।४३।। शुक्र इस प्रकार का वरदान प्राप्त करके तप से निवृत्त हो गये थे तो भी यह पृथ्वी समुद्र और पर्वतों के सहित चलायमान हो रही थी ।।४४।। (इसके पश्चात् शम्भु परम शुचि सप्त सारस्वत पर गये और वहाँ पर मङ्कण नाम वाले ऋषि को नृत्यमान देखा था ।।४५।। बड़े भाव से पोप्लूयमान होता है और भुजाओं को फैलाकर वेग से नाच रहा है उसी के वेग से समाहत होकर यह भूमि पर्वतों के सहित चलायमान हो गई है ।।४६।। भगवान् शंकर उसके पास पहुँच कर उसे हाथ से पकड़कर हे महर्षे! हँसते हुए बोले—किस हेतु से इतना भावित होकर नृत्य कर रहे हो? मुझे आज बतलाओ। क्या इसमें तुम्हारी तुष्टि होती है? ।।४७।। उस ब्राह्मण ने कहा—आज यहाँ पर जिससे मुझे तुष्टि हुई है हे द्विजेन्द्र! उसे आप सुनिए। तपस्या करते हुए मुझे बहुत वर्ष बीत गये थे जो कि काया के विशोधन करने के लिए की थी ।।४८।। इसके पश्चात् यहाँ मेरे कर से क्षत से निकला हुआ शाकरस बहता है। इससे मैं बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हुआ हूँ। द्विजेन्द्र! जिससे मैं भावित आत्मा वाला होकर नृत्य कर रहा हूँ ।।४६।।)

त प्राह शर्भुर्द्विज पश्य मह्यं भस्म प्रवृत्तं करतोऽतिशुक्लम् ।
सताडनादेव न च प्रहर्षो ममास्ति नूनं हि भवान्प्रमत्तः । ५०
श्रुत्वाऽथ वाक्यं वृषभध्वज तं नत्वा मुनिर्मङ्कणको महर्षे ।
नृत्यं परित्यज्य सुविस्मितोऽथ ववन्द पादौ विनयावनम्रः।।५१

तमाह शम्भुर्द्विज गच्छ लोकं त्वं ब्रह्मणो दुर्गम एव यश्च ।
इदं च तीर्थं प्रवरं पृथिव्या पृथूदकं स्यात्सुमहत्फलं हि ॥५२
सान्निध्यमत्रैव सुरासुराणां गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणाम् ।
सदाऽस्तु धर्मस्य निधानमग्र्यं सारस्वतं पापमलापहारि ॥५३
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च सुवेणु विमलोदका ।
महोदरा चौघवती विशाला च सरस्वती ॥५४
एताः सप्त सरस्वत्यो निवसिष्यन्ति नित्यशः ।
सोमपानफलं सर्वा प्रयच्छन्ति सुपुण्यदाः ॥५५

भगवान् शम्भु ने उमसे कहा—हे द्विज ! देखो मुझे, मेरे कर में अत्यन्त शुक्ल भस्म प्रवृत्त है जो सताडन से ही होनी है किन्तु मुझे इसका कोई भी प्रदर्प नहीं हो रहा है । आप तो निश्चय ही प्रमत्त हैं ॥५०॥ हे महर्षे ! इस वाक्य का श्रवण कर उस वृषभध्वज को उस मङ्कणक मुनि ने प्रणाम किया था और नृत्य का त्याग करके वह विस्मयान्वित हो गया था तथा विनय से अति विनम्र होकर उसने शिव के चरणों की वन्दना की थी ॥५१॥ शम्भु ने उमसे कहा—हे द्विज ! आप अब उस लोक को चले जाओ जो ब्रह्मा को भी बड़ा दुर्गम है । यह तीर्थ लोक में बहुत ही श्रेष्ठ और पृथूदक नाम वाला पृथ्वी मे होगा जिसका सुमहान फल होगा ॥५२॥ यहां पर ही सुरासुरों का तथा गन्धर्व विद्याधर और किन्नरों का सदा सान्निध्य होगा । यह धर्म का निधान परम श्रेष्ठ एवं प्रमुख सारस्वत तीर्थ पापों के मलों का अपहरण करने वाला होगा ॥५३॥ सुन्दर प्रभा वाली, काञ्चनाक्षी सुवेणु और विमल जल वाली तथा महान् उदर से युक्त, ओघ से सयुत एवं विशाला और सरस्वती ये सात सरस्वती यहाँ पर नित्य ही निवास करेंगी । ये सुपुण्य प्रदान करने वाली नदियाँ सब सोमपान का फल देंगी ॥५५॥

भवानपि कुरुक्षेत्रे मूर्तिं स्थाप्य गरीयसीम् ।
गमिष्यति महापुण्यं ब्रह्मलोकं सुदुर्गमम् ॥५६

इत्येवमुक्तो देवेन शंकरेण तपोधन ।
मूर्त्ति स्थाप्य कुरुक्षेत्रे ब्रह्मलोकमगाद्वशी ॥५७
गते मङ्कणके पृथ्वी निश्चला समजायत ।
अथागान्मन्दरं शम्भुर्निजनावसथं शुचि ॥५८
एवं तवोक्त द्विज शंकरस्तु गतस्तदाऽऽसीत्तपसन्तु शैले ।
शून्येऽप्ययाद्द्रष्टु मतिर्हिदेव्या स योजितोयेनहि कारणेन ॥५६

आप भी कुरुक्षेत्र में एक गरीयसी मूर्त्ति को स्थापित करके सुदुर्गम महापुण्य से युक्त ब्रह्मलोक को गमन करेंगे ॥५६॥ हे तपोधन ! इस प्रकार से भगवान् शंकर के द्वारा कहे जाने पर वह वशी मङ्कण कुरुक्षेत्र में एक मूर्त्ति को स्थापित करके ब्रह्मलोक को चले गये थे ॥५७॥ मङ्कण के चले जाने पर यह पृथ्वी निश्चल हो गई थी। इसके पश्चात् भगवान् शम्भु निज आवास स्थल शुचि मन्दर गिरि पर चले गये थे ॥५८॥ हे द्विज ! इस प्रकार से यह आपको बता दिया है। भगवान् शंकर उस समय में शैल पर तप के लिये गये थे। देवी के द्वारा जिस कारण से उनको योजित किया था शून्य में वह देखने की मति वाले होकर चले गये थे ॥५६॥

६३—अंधक-प्रह्लाद संवाद वर्णन

गतोऽन्धकस्तु पाताले किमचेष्टत दानवः ।
शंकरो मन्दरस्थोऽपि यच्चकार तदुच्यताम् ॥१
पातालस्थोऽन्धको ब्रह्मन्बाढंघते मदनाग्निना ।
सतप्तविग्रहः सर्वान्दानवानिदमब्रवीत् ॥२
स मे सुहृत्स मे बन्धुः स भ्राता स पिता मम ।
यस्तामद्रिसुतां शीघ्रं ममान्तिकमुपानयेत् ॥३
एवं ब्रुवति दैत्येन्द्रे ह्यन्धके मदनातुरे ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं प्रह्लादो वाक्यमब्रवीत् ॥४

येयं गिरिसुता वीर सा माता धर्मतस्तव ।
पिता त्रिनयनो देवःश्रूयतां मत्र कारणम् ॥५
तव पित्रा त्वपुत्रेण धर्मनित्येन दानव ।
आराधितो हरो देवः पुत्रार्थाय पुरा किल ॥६
तस्मै त्रिलोच नेनासीद्दत्तोऽन्धोऽप्येव दानवः ।
पुत्रकः पुत्रकामस्य प्रोक्तवेत्थं वचनं विभो ॥७

देवर्षि नारद जी ने कहा—अन्धक तो पाताल में चला गया था। वहाँ फिर उस दानव ने क्या चेष्टा की थी ? मन्दराचल पर से स्थित भगवान् शंकर ने भी जो कुछ किया था उसे भी बतलाइये ॥१॥ पुलस्त्य जी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! पाताल में स्थित अन्धक मदन की अग्नि से बाधित हो रहा था। वह अतीव सतप्त शरीर वाला होकर समस्त दानवों से यह बोला ॥२॥ मेरा वही मित्र है—वह ही बन्धु है—वही भाई है और मेरा वही पिता है जो उस अद्रि पुत्री को शीघ्र ही मेरे पास प्राप्त करा देवे ॥३। दैत्येन्द्र अन्धक के ऐसा कहने पर जो कि काम से अत्यन्त ही आतुर हो रहा था प्रह्लाद मेघ के घोष के तुल्य गम्भीरता युक्त यह वाक्य बोले—हे वीर ! जो यह गिरि की तनया है वह धर्म से तेरी माता है और त्रिनयन देवेश्वर तेरे पिता हैं। इसमें जो भी कारण है उसका श्रवण तुम मुझसे कर लो ॥४-५॥ हे दानव ! नित्य ही धर्माचरण करने वाले बिना पुत्र वाले तुम्हारे पिता ने पहिले पुत्र की प्राप्ति के लिये देवेश्वर हर का समाराधन किया था ॥६॥ पुत्र की कामना करने वाले को पुत्र होगा—यह वचन कहकर उसके लिये अन्ध दानव ही पुत्र दिया था ॥७॥

नेत्रत्रयं हिरण्याक्ष सनर्मसुतया मम ।
पिहित योगसंस्थस्य ततोऽध्वंममवत्तमः ॥८
तस्माच्च तमसो जातो भूतो नीलघनस्वनः ।
तदिदं गृह्यतां दैत्य तवौपयिकमात्मजम् ॥९
यदा तु लोकविद्विष्ट कर्म चाय करिष्यति ।
सैलोक्यजननीं चापि त्वभिवाञ्छिष्यतेऽधमः ॥१०

घातयिष्यति वा विप्रं यदा प्रक्षिप्य चासुर ।
तदाऽस्य स्वयमेवाहं करिष्ये कायशोपणम् ॥११
एवमुक्त्वा गतःशम्भुः स्वस्थानं मन्दराचलम् ।
त्वत्पिताऽपि समभ्यागात्त्वामादाय रसातलम् ॥१२
एतेन कारणेनाम्बा शैलजा तव दानव ।
सर्वस्यापीह जगतो गुरुः शम्भुः पिता ध्रुवम् ॥१३
भवानपि तथा युक्तः शास्त्रवेत्ता गुणाढ्यतः ।
नेदृशे पापसंकल्पे मतिं कुर्याद्भवद्विधः ॥१४

योग मे सस्थित मेरे हिरण्याक्ष की सनमें सुता ने नेत्रत्रय पिहित कर दिये थे । तभी से ऊपर की ओर तम छा गया था ।।८।। उस तम से नील घन स्वनभूत उत्पन्न हुआ था । सो हे दैत्य ! इसे तुम ग्रहण करो । यह तुम्हारौपयिक आत्मज है ॥९॥ जिस समय मे यह लोक का विद्वेष युक्त कर्म करेगा और त्रैलोक्य जननी को भी यह अधम चाहेगा तथा विद्र का घात करेगा हे असुर ! उसी समय मे मैं स्वय ही इसके काया का शोपण कर दूँगा ॥१०–११॥ इस प्रकार से कह कर भगवान् अपने स्थान मन्दराचल पर चले गये थे और तुम्हारे पिता भी तुमको लेकर रसातल मे चले आये थे ॥१२॥ हे दानव ! इस कारण से शैलजा तुम्हारी माता है । इस सम्पूर्ण जगत् के भगवान् शम्भु गुरु तथा पिता हैं ॥१३॥ आप भी परम योग्य और इस प्रकार से समुत्पन्न हुए हैं । आप शास्त्रो के वेत्ता तथा अद्भुत गुण गण से समन्वित भी हैं । अतएव इस प्रकार के पाप युक्त संकल्प मे आप जैसो को कभी भी मति नहीं करनी चाहिए ॥१४॥

त्रैलोक्यप्रभुरव्यक्तो भवः सर्वैर्नमस्कृतः ।
अजेयस्तस्य भार्येयं न त्वमर्होऽमरार्दन ॥१५
न चापि शक्तः संप्राप्तुं शैलराजात्मजां शुभाम् ।
अजित्वा सगणं रुद्रं स च कामोऽस्य दुर्लभः ॥१६
यस्तरेत्सागरं दोर्भ्यां पातयेद्भुवि भास्करम् ।
मेरुमुत्पाटयेद्वाऽपि स जयेच्छूलपाणिनम् ॥१७

उताहोस्विदिमां शक्तः क्रिया कर्तुं महाबलः ।
न च शक्यो हरो ज्ञातुं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥१८

किं त्वया न श्रुतं दैत्य यथा दण्डो महीपतिः ।
परस्त्रीकामनामूढः सराष्ट्रो नाशमाप्तवान् ॥१९

आसीद्दण्डो नाम नृपः प्रभूत बलवाहनः ॥
स च वव्रे महातेजाः पौरोहित्याय भार्गवम् ॥२०

ईजे च विविधैर्यज्ञैर्नृपतिः शुक्रपालितः ।
शुक्रस्यासीच्च दुहिता अरजा नाम नामतः २१

त्रैलोक्य के स्वामी—अव्यक्त भगवान् शम्भु सभी के द्वारा वन्दित हैं । वे अजेय भी हैं । उनकी ही यह भार्य्या है हे अमरों के मर्दन करने वाले ! आप इस कर्म करने के योग्य नहीं हैं ॥१५॥ शैलराज की आत्मजा जो परम शुभ हैं आप प्राप्त करने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हैं । गणों के सहित भगवान् रुद्र को बिना जीते हुए यह सम्भव भी नहीं है और वह काम अत्यन्त दुर्लभ है ॥१६॥ जो महासागर को हाथों से ही तैर कर पार करदे—जो भगवान् भास्कर को भूमण्डल में गिरा देवे—जो मेरु पर्वत को उखाड़ कर फेंक देवे वही शूलपाणि को जीत सकता है ॥१७॥ कोई महान् बलवान् भले ही इस समस्त क्रिया को भी कर देवे किन्तु भगवान् हर जानने के योग्य नहीं हो सकते हैं । यह मैंने बिल्कुल ही सत्य-सत्य कह दिया है ॥१८॥ हे दैत्य ! क्या तुमने नहीं सुना कि महीपति दण्ड पराई स्त्री की कामना से महामूढ़ राष्ट्र के सहित नाश को प्राप्त होगया था ॥१९॥ एक दण्ड नाम वाला राजा अत्यधिक बल तथा वाहनों वाला था । महान् तेज वाले उसने भार्गव से पौरोहित्य कर्म करने के लिये कहा था ॥२०॥ उस शुक्र के द्वारा परिपालित नृप ने अनेक यज्ञों के द्वारा भी यजन किया था । शुक्राचार्य्य जी की एक अरजा नाम वाली पुत्री थी ॥२१॥

शुक्रः कदाचिद्‌गमद्वृषपर्वाणमासुरम् ।
तेनाचिरात्रिर तत्र तस्थौ भार्गवसत्तमः ॥२२

अरजा. स्वगृहे वह्नि शुश्रूषन्ती महासुर।
अतिष्ठत सुचार्वङ्गी ततोऽभ्यागान्नराधिपः ॥२३
स पप्रच्छ क्व शुक्रोऽस्ति तमूचु. परिचा रिकाः ।
गत स भगवाञ्छुक्रो याजनाय दनो सुतम् ॥२४
पप्रच्छ नृपतिः का तु तिष्ठते भार्गवाश्रमे ।
तास्तमूचुर्गुरो पुत्री सतिष्ठत्यरजा नृप ॥२५
तामाश्रमे शुक्रसुता द्रष्टुमिक्ष्वाकुनन्दन. ।
प्रविवेश महाबाहुर्ददर्शारजस ततः ॥२६
ता दृष्ट्वा कामसतप्तस्तत्क्षणादेव पार्थिवः
सजातोऽन्धक दण्डश्च कृतान्तबलचोदितः ॥२७
विसर्जयामास तदा भृत्यान्भ्रातॄन्सुहृत्तमान् ।
शुक्रशिष्यानपि बली एकाकी पृष्ठ आव्रजत् ॥२८

एक बार शुक्रापर्वा वृषपर्वा असुर के यहाँ चले गये थे। उसके द्वारा अर्चा की गई थी और वह वहीं पर अधिक समय पर्यन्त स्थित हो गये थे ॥२२॥ हे महासुर ! अरजा अपने घर में वह्नि की सेवा करती हुई वह सुन्दर अंगों वाली रहा करती थी। उसी समय राजा वहाँ पर आगया था ॥२३॥ उस राजा ने उससे पूछा—भगवान् शुक्राचार्य कहाँ पर हैं। परिचारिकाओं ने उससे कहा—भगवान् शुक्र दनु के पुत्र को याजन कराने के लिये गये हुए हैं ॥२४॥ फिर राजा ने पूछा—भार्गव के आश्रम में कौन रहती है। उन परिचारिकाओं ने उससे कहा—हे नृप ! गुरु जी की पुत्री अरजा घर मे रहती है ॥२५॥ वह इक्ष्वाकुनन्दन राजा उसको शुक्राचार्य की पुत्री को देखने के लिये आश्रम में प्रवेश कर गया था और उसने उस अरजा को देख लिया था ॥२६॥ उस परम सुन्दरी गुरु पुत्री को देखकर वह काम से अत्यन्त सतप्त हो गया था। हे अन्धक ! कृतान्त के बल से प्रेरित होकर उसी क्षण में काम से महा मोहित हो उठा था ॥२७॥ उसने उसी समय में भृत्यों को—भाइयों को और अपने सुहृदों को भी निसर्जित कर दिया था तथा

जो शुक्राचार्य के शिष्य थे उनको भी त्याग दिया । वह बलवान् अकेला ही उसके पीछे चल दिया था ॥२८॥

तमागत शुक्रसुता प्रत्युत्थाय यशस्विनी ।
पूजयामास सहृष्टा भ्रातृभावेन दानव ॥२६
ततस्तामाह नृपतिर्बाले कामाग्नितापिनम् ।
मा समाह्लादयस्वाद्य स्वपरिष्वङ्गवारिणा ॥३०
साऽपि प्राह नरश्रेष्ठं सुविनीता तमासुरम् ।
पिता मम महाक्रोधी त्रिदशानपि निर्दहेत् ॥३१
मूढबुद्धे भवान्भ्राता ममापि स्वयमागतः ।
भगिनीधर्मतस्तेऽहं भवाञ्छिष्यः पितुर्मम ॥३२
सोऽब्रवीद्भीरु मा शुक्रः कालेन परिधक्ष्यति ।
कामाग्निर्निर्दहति मामद्यैव तनुमध्यमे ॥३३
सा प्राह दण्ड नृपतिं मुहूर्तं परिपालय ।
तमेव याचस्व गुरुं स ते दास्यत्यसंशयम् ॥३४
दण्डोऽब्रवीन्मुत्तन्वङ्गि कालक्षेपो न मे क्षमः ।
हृतावसरकर्तृं त्वे विघ्नमायाति सुन्दरि ॥३५

शुक्राचार्य की पुत्री ने जो परम यशस्विनी थी उसको अपनी ओर समागत देखकर उठ खड़ी हुई और परम प्रसन्न होकर हे दानव ! भाई के भाव से उसने उसका सत्कार किया था ॥२६॥ इसके पश्चात् वह राजा उससे बोला—हे बाले ! कामाग्नि से सतप्त मुझको आज परिष्वङ्गरूपी जल से समाह्लादित कर दो ॥३०॥ वह भी परम विनीत होकर उस असुर से जो कि नरश्रेष्ठ था बोली—मेरे पिताजी महान् क्रोधी हैं । वे देवों को भी जला देते हैं ॥३१॥ हे मूढ बुद्धि वाले ! आप भी मेरे भाई हैं और स्वय यहाँ आये हैं । मैं तो धर्म की रीति से आपकी बहिन हूँ क्योंकि आप मेरे पिताजी के शिष्य हैं ॥३२॥ वह बोला—हे भीरु ! वह शुक्राचार्य तो कुछ समय के बाद ही मुझे जला देंगे किन्तु यह कामाग्नि तो हे तनुमध्यमे ! मुझे अब ही जला रही है ॥३३॥ वह दन्ड राजा से बोली—थोड़ी देर प्रतीक्षा करो । तुम उन्हीं अपने गुरुजी से

मेरी याचना करना। वे निश्चय ही मुझे आपको दे देंगे ॥३४॥ दण्ड राजा ने कहा—हे सुनम्वङ्गि ! मैं तो थोड़ा सा भी समय सहन नहीं कर सकता हूँ। हे सुन्दरि ! हुतावसर कर्त्तव्य में विघ्न आ जाता है ॥३५॥

ततोऽब्रवीच्च विरजा नाहं त्वां पार्थिवात्मज।
दातुं शक्ता तथाऽऽत्मानमस्वतन्त्रा हि योषितः ॥३६
किं वा ते बहुनोक्तेन द्राक् त्वं नाश नराधिप।
गच्छस्व शुक्रशापेन सभृत्यज्ञातिबान्धवः ॥३७
ततोऽब्रवीन्नरपतिः सुतनु शृणु चेष्टितम्।
चित्राङ्गदाया यद्वृत्तं पुरा देवयुगे शुभे ॥३८
विश्वकर्मसुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत्।
रूपयौवनसंपन्ना पद्महीना तु पद्मिनी ॥३९
सा कदाचिन्महारण्यं सखीभिः परिवारिता।
जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना ॥४०
सा स्नातुमवतीर्णा च अथाभ्यागान्नरेश्वरः।
सुदेवतनयो धीमान्सुरथो नाम नामतः ॥४१
सवृता सा सखीः प्राह वचनं सत्त्वसंयुतम्।
असौ नराधिपसुतो मदनेन कदर्थ्यते ॥४२

इसके अनन्तर विरजा ने कहा—हे पार्थिवात्मज ! मैं अपने आप को तुम्हें समर्पित करने के लिये समर्थ नहीं हूँ क्योंकि योषित कभी स्वतन्त्र नहीं होती हैं ॥३३॥ तुम अब मुझसे अधिक कुछ भी मत कहो—कभी कहते हैं। हे नराधिप ! आप बहुत ही शीघ्र शुक्राचार्य के शाप से भृत्य-ज्ञाति और बांधवों के सहित नाश को प्राप्त हो जाओगे ॥३७॥ इसके पश्चात् वह राजा बोला—हे सुतनु ! पहिले समय में परम शुभ देव युग में चित्राङ्गदा का जो चेष्टित हुआ था उसे सुनो।३८।विश्वकर्मा की पुत्री परम साध्वी चित्राङ्गदा हुई थी। वह रूप और यौवन से सम्पन्न साक्षात् पद्मिनी ही थी ॥३९॥ वह किसी समय में सखियों से परिवारित होकर महारण्य में गई थी। वह कमल के समान नेत्रों

वाली निमिष में स्नान करने को गई थी ॥४०॥ वह स्नान करने को तीर्थ में नीचे उतरी थी और सुदेव का पुत्र परम धीमान सुरथ नाम वाला राजा वहाँ आगया था ॥४१॥ सवृत होकर उसने सत्व संयुत वचन सखियों से कहा—यह नराधिप का पुत्र काम से पीड़ित हो रहा है ॥४२॥

यदर्थं च क्षम मेऽस्य स्वप्रदान सुरूपिणः ।
सख्यस्तामब्रुन्वबाला अप्रगल्भाऽसि सुन्दरि ॥४३
अस्वातन्त्र्य नवास्तीह प्रदाने स्वात्मनोऽनघे ।
पिता तवास्ति धर्मिष्ठ सर्वशास्त्रविशारदः ॥४४
न ते युक्तमिहात्मान दातु नरपते स्वयम् ।
एतस्मिन्नन्तरे राजा सुरथः सत्यकः शुचिः ॥४५
समभ्येत्याब्रवीदेना कन्दर्पशरपीडितः ।
त्व मुग्धे मोहयसि मा दृष्टच व मदिरेक्षणे ॥४६
त्वद्दृष्टिशरबाणेन स्मरेणाभ्येत्य ताडितः ।
तस्मा कुचतले तल्पे अभिशाययितुमर्हसि ॥४७
नोचेत्प्रधक्ष्यते कामो भूयो भूयोऽतिदर्शनात् ।
ततः सा चारुसर्वाङ्गी राज्ञो राजीवलोचना ॥४८
वार्यमाणा सखीभिस्तु प्रादादात्मानमात्मना ।
एव पुरा तया तन्व्या परिणीत. स भूपतिः ॥४९

सुन्दर स्वरूप वाले इसको मुझे अपना प्रदान करने की सामर्थ्य है। सखियों ने उस बाला से कहा—हे सुन्दरि ! आप तो बहुत ही अप्रगल्भ हैं ॥४३॥ यहाँ पर आपको अपने आप का प्रदान कर देने की स्वतन्त्रता नहीं है। हे अनघे ! आपके पिता परम धर्मिष्ठ हैं और सब शास्त्रों के महापण्डित भी हैं ॥४४॥ आपको यह उचित नहीं है कि आप स्वय ही अपनी आत्मा को राजा को समर्पित स्वय करदें। इसी बीच में राजा सुरथ जो सत्यक और शुचि था उसके समीप में आगया और उससे बोला था, क्योंकि वह काम से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था। हे मदिरेक्षणे ! हे मुग्धे ! आप तो अपनी दृष्टि से ही मुझे मोहित कर

रही है ॥ ४५-४६ ॥ आपकी दृष्टि रूपी बाण से मैं काम के द्वारा अत्यन्त ताडित होगया हूं। इसलिये आप शय्या पर अपने कुचतल के समीप शयन करा देने के आप योग्य हैं ॥४७॥ नहीं तो यह काम मुझे भस्म कर देगा। बारम्बार अत्यन्त दर्शन से यह काम मुझे सता रहा है। इसके पश्चात् वह सुन्दर अंगो वाली और राजीव लोचना ने, सखियों के द्वारा निवारित किये जाने पर भी अपने आप ही अपने को राजा को समर्पित कर दिया था। इस प्रकार से पुराने समय में उस तन्वंगी ने उस राजा का परित्राण किया था ॥४८-४९॥

तस्मात्त्वमपि सुश्रोणि मां परित्रातुमर्हसि ।
अरजस्काऽयवोचद्वं तस्या यद्वृत्तमुत्तमम् ॥५०
किं त्वया न परिज्ञातं तस्मात्तत्कथयाम्यहम् ।
तदा तया तु तन्वङ्ग्या सुरथस्य महीपतेः ॥५१
आत्मा प्रदत्तः स्वातन्त्र्यात्ततस्तामशपत्पिता ।
यस्माद्धर्मं परित्यज्य स्त्रीभावान्मन्दचेतसे ॥५२
आत्मा प्रदत्तस्तस्माद्धि न विवाहो भविष्यति ।
विवाहरहिता नैव सुखं लप्स्यसि भर्तृतः ॥५३
न च पुत्रफलं नैव पतिना योगमेष्यसि ।
उत्सृष्टमात्रे शापे तु ह्यपोवाह सरस्वती ॥५४
अहृतार्थं नरपतिं योजनानि त्रयोदश ।
अपकृष्टे नरपतौ साऽपि मोहमुपागता ॥५५
ततस्ताः सिषिचुः सर्वाः सरस्वत्या जलेन हि ।
सा सिच्यमाना सुतरां शिशिरेणाथ वारिणा ॥५६
मृतनिद्रा हतोत्साहा विश्वकर्मसुताऽभवत् ।
तां मृतामिव विज्ञाय जग्मुः सख्यस्त्वरान्विताः ॥५७

इसलिये हे सुश्रोणि ! आप भी मेरा परित्राण करने के लिये योग्य है। अरजा ने उस स्वच्छ राजा से कहा था जो कि उसका उत्तम वृत्त था ॥५०॥ क्या आप नहीं जानते हैं ? अतएव मैं ही तुम से कहती हूं। उस समय में उस तन्वङ्गी ने सुरथ राजा को अपना समर्पण करके

दिया था और स्वतन्त्रता का प्रदर्शन किया था फिर उसके पिता ने उसको शाप दे दिया था। पिता ने कहा—हे मन्दचेतसे ! क्योंकि धर्म का परित्याग करके स्त्री भाव से तूने अपने आपको समर्पित कर दिया है इसलिये अब तेरा विवाह नहीं होगा। विवाह से रहित होती हुई भर्त्ता से सुख प्राप्त नहीं करेगी ॥५१-५३॥ और पुत्र का फल भी नहीं होगा और पति के साथ भी तेरा योग नहीं होगा। शाप के उत्सृष्ट कर हो जाने पर सरस्वती का अपोवाहन किया। त्कुनार्थ नरपति को अयोदश योजन अपकृष्ट होने पर वह भी मोह को प्राप्त हो गई थी ॥५४-५५॥ इसके उपरान्त उन सब ने सरस्वती के जल से सेचन किया था। वह शीतल जल से सुतरा सिच्यमाना होती हुई वह विश्वकर्मा की सुता मृत के समान और हतोत्साह हो गई थी। उसको मरी हुई समझ कर सभी सखियां शीघ्रता से युक्त होकर चली गई थी ॥५६-५७॥

आहर्त्तुमपरा: काष्ठं वह्निमानेतुमाकुला: ।
सा च तास्वपि सर्वासु गतासु वनमुत्तमम् ॥५८
सज्ञा लेभे सुचार्वङ्गी दिशश्चैवावलोक्य च ।
अपश्यन्ती नरपतिं तथा स्निग्धं सखीजनम् ॥५९
निपपात सरस्वत्या पयोभिस्तरलेक्षणा ।
ता वेगात्काञ्चनाक्षी तु महानद्या नरेश्वर ॥६०
गोमत्या च प्रचिक्षेप तरङ्गकुटिले जले ।
तयाऽपि तस्यास्तद्भाव्य विदित्वाऽव्य विशा पते ॥६१
महावने परिक्षिप्ता सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
एवं तस्याः स्वयं तत्र या त्ववस्था श्रुता मया ॥६२
तस्मात्र दास्याम्यात्मानं रक्षन्ती शीलमुत्तमम् ।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दण्डः शक्रसमो बली ।
विहस्य त्वरजां प्राह स्वार्थमङ्गक्षयंकरम् ॥६३

दूसरी काष्ठ लाने के लिये तथा अग्नि लाने के लिये समाकुल हो रही थी। वह उन सबके चले जाने पर उस उत्तम वन मे सज्ञा को प्राप्त हुई थी। जब होश मे उस चार्वंगी ने सभी दिशाओं की ओर देखा था उसने

उस समय मे देखते हुए भी राजा को तथा स्निग्ध सखियो को नही देखा था ।।५८-५६।। वह तरलेक्षण ! जोकि जल से हो रही थी सरस्वती मे गिर पडी थी । काञ्चनाक्षी ने हे नरेश्वर ! वेग से महानदी गोमती के कुटिल जल मे उसे प्रक्षिप्त कर दिया था । हे विशांपते ! उसने भी उसके तद्भाव्य को समझकर सिंह और व्याघ्रों से समाकुल एक महान् वन मे प्रक्षिप्त कर दिया था । इस प्रकार से अहा पर उसकी स्वय जो अवस्था हुई थी वह मैंने सब श्रवण की है ।।६०-६२।। इस लिये मैं अपने उत्तम शील का सरक्षण करती हुई अपने आपको समर्पित नही करूंगी । उसके इस वचन को सुनकर इन्द्र के समान बलवान् राजा दण्ड ने हँस कर अंग के क्षय करने वाले स्वार्थ को ही अरजा से कहा ।।६३।।

तस्या यदुत्तर वृत्त तच्छृणुष्व कृशोदरि ।
सुरथस्य तथा राज्ञस्तच्छ्रोतु मतिमादधे ।।६४
यदा प्रकृष्टे नृपतौ पतिता सा महावनम् ।
तदा गगनसचारी दृष्टवान्गुह्यको जनः ।।६५
ततः सोऽप्ये ता बाला परिभाव्य प्रयत्नतः ।
प्राह चागच्छ सुभगे नयामि सुरथ प्रति ।।६६
ध्रुवमेष्यसि तेन त्व सयोगमसितेक्षणे ।
तस्माद्गच्छस्व शीघ्र त्व द्रष्टु श्रीकण्ठमीश्वरम् ।।६७
इत्येवमुक्त्वा सा तेन गुह्यकेन सुलोचना ।
श्रीकण्ठमागता तूर्ण कालिन्द्या दक्षिणोत्तरम् ।।६८
दृष्ट्वा महेश श्रीकण्ठ स्नात्वा रविसुताजले ।
आतष्ठन् शिरोनम्रा यावन्मध्ये स्थितो रविः ।।६९
अथाजगाम देवस्य स्नान कर्तु तपो धनः ।
शुभः पाशुपताचार्यः सामवेदी ऋतुध्वजः ।।७०

दण्ड राजा ने कहा—हे कृशोदरि ! उसके बाद मे जो कुछ हुआ था उसके पिता और राजा सुरथ का जो हुआ था उसे श्रवण करने की मति करो ।।६४।। जब राजा उससे दूर हो गया था और महान्

वन में गिर गई थी उस समय व आकाश में विचरते एक गुह्यक ने उसे देखा था ॥६५॥ फिर वह आकर उस बाला से प्रयत्न पूर्वक भाषण करके उससे उसने कहा—हे सुभगे ! आओ, मैं तुमको सुरथ के समीप ले चलता हूँ ॥६६॥ हे असितेक्षणे तुम निश्चय ही उस राजा का सयोग प्राप्त कर लोगी । इसलिये तू शीघ्र ही श्री कण्ठ ईश्वर का दर्शन करने के लिये चलो ॥६७॥ इस तरह से उसके द्वारा कहे जाने पर वह सुलोचना उस गुह्यक के साथ श्री कण्ठ के समीप में कालिन्दी के दक्षिणोत्तर भाग में शीघ्र ही आ गई थी ॥६८॥ महेश श्री कण्ठ का दर्शन करके और रविसुता के जल में स्नान करके जब तक रवि मध्य में स्थित रहे वह शिर के नीचा करके वहाँ स्थित रही थी ॥६९॥ इसके अनन्तर तपोधन देव के स्नान करने को आ गये थे । वह परम शुभ सामवेदी पाशुपताचार्य ऋतुध्वज थे ॥७०॥

रुदतीमिव स्थिता तामनङ्गपरिवर्जिताम् ।
तां दृष्ट्वा स मुनिर्ध्यानं मगमत्केयमित्यथ ॥७१
अथ सा तमृषिं वन्द्य कृताञ्जलिरुपस्थिता ।
तां प्राह पुत्रि कस्यासि सुता सुरसुतोपमा ॥७२
किमर्थमागताऽसीह निर्मनुष्यमृगे वने ।
ततः सा प्राह तमृषिं याथातथ्यं कृशोदरी ॥७३
श्रुत्वर्षिः कोपमगमदशपच्चित्रलेखिनां वरम् ।
यस्मात्स्वतनुजातेयं परदयाऽपि पापिना ॥७४
योजिता नैव पतिना तस्माच्छाखामृगोऽस्तु सः ।
इत्युक्त्वा स महाभागो भूयः स्नात्वा विधानतः ॥७५
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयामास शंकरम् ।
संपूज्य देवदेवेशं यथोक्तविधिनाहरम् ॥७६
उवाचागम्यतां सुभ्रू रुदन्ती पनिलालसाम् ।
गच्छस्व सुभगे देशं सप्तगोदावरं शुभम् ॥७७

वहाँ पर स्थित अनंग परिवर्जित रोदन करती हुई उसे उन्होंने देखा था । उस मुनि ने ध्यान लगाया कि यह कौन है ॥७१॥ इसके

उसने उस ऋषि की वन्दना की थी और हाथों को जोड कर उनके समक्ष में उपस्थित हुई थी। मुनि ने उससे कहा—हे पुत्रि! तू सुर-सुता के समान है। किसकी पुत्री है? यहाँ किसलिये आई है? यह तो निर्जन वन है। इसके बाद वह वोनी-कृशोदरी उसने उस ऋषि से जो सत्यर बात थी वह सब कह दी थी ॥७२-७३॥ ऋषि ने सुनकर कोप किया और शाप दिया कि क्यो कि स्वकीय तनु से समुत्पन्ना यह दूसरे को भी पापी के द्वारा देय है ॥७४॥ पति के साथ योजित नहीं की गयी थी। इसी कारण से वह शाखामृग (बन्दर) है। इतना भर कह कर उस महाभाग ने पुनः विधि-विधान के साथ स्नान किया था ॥७५॥ फिर पश्चिमा सन्ध्या करके भगवान् शङ्कर का पूजन किया था। यथोक्त विधि से देवो के भी देव हर का भली भांति पूजनार्चन करके उसने सुभ्रू और पति के लिये लालसा रखने तथा रुदन करने वाली से कहा—आओ और हे सुभगे! सप्त गोदावर परम शुभ देश को चली जाओ ॥७६॥७७॥

तत्रोपास्य महादेव महान्त हाटकेश्वरम्।
तत्र स्थिताया रम्भोरु ख्याता देववती शुभा ॥७८
आगमिष्यति दैत्यस्य पुत्री कन्दरमालिनः।
तथाऽन्या गुह्यकसुता दमयन्तीति विश्रुता ॥७९
अञ्जनस्यापि तत्रापि समेष्यति तपस्विनी।
तथाऽपरा वेदवतीपर्जन्यदुहिता शुभा ॥८०
यदा तिस्रः समेष्यन्ति सप्तगोदावरे जले।
हाटकाख्ये महादेवे तदा सयोगमेष्यसि ॥८१
इत्येवमुक्ता मुनिना वाला चित्राङ्गदा तदा।
सप्तगोदावर तीर्थमगमत्त्वरिता ततः ॥८२
संप्राप्य तत्र देवेश पूजयन्ती त्रिलोचनम्।
समध्यास्ते शुचिपरा फलमूलाशनाऽभवत् ॥८३
स चर्षिर्शनसपरः श्रीकण्ठाय ततोऽलिखत्।
श्लोक त्वेक महात्मान तस्याश्च प्रियकाम्यया ॥८४

विश्वकर्माऽपि मुनिना शप्तो वानरतां गतः ।
न्यपतन्मेरुशिखराद्भूपृष्ठे विधिनोदितः ॥२
वनं घोरं सुगुल्माढ्यं नदीं शालूकिनीमनु ।
स त्वेव पर्वतश्रेष्ठे समावसति सुन्दरि ॥३
तत्रासतोऽस्य सुचिरं फलमूलान्यथादनतः ।
कालोऽत्यगाद्वरारोहे बहुवर्षगणो वने ॥४
एकदा दैत्यशार्दूल कन्दरारव्य सुतां प्रियाम् ।
प्रतिगृह्य समभ्यागात्ख्याता देववती दिवि ॥५
तां च तद्वनमायातां समं पित्रा वराननाम् ।
ददर्श वानरश्रेष्ठः प्रजग्राह बलात्करे ॥६
ततो गृहीतां कपिना स दैत्यः स्वसुतां शुभे ।
कन्दरो वीक्ष्य सक्रुद्धः खड्गमुद्यम्य चाद्रवत् ॥७

दण्ड ने कहा—हे अरजे ! वहाँ पर वीर सुरथ का स्मरण करने वाली सुख पूर्वक उस सती चित्रांगदा का महान् काल व्यतीत हो गया था ॥१॥ मुनि के द्वार शाप दिया गया विश्व कर्मा भी वानर योनि को प्राप्त होगया था। विधि के द्वारा उदित होता हुआ वह मेरु की चोटी से भूमि के पृष्ठ पर निपतित हो गया था ॥२॥ हे सुन्दरि ! सुन्दर गुल्मों (झाड़ियों) से युक्त घोर वन वाले शालूकिनी नदी के साथ उस श्रेष्ठ पर्वत पर वह इसी तरह से निवास करता था ॥३॥ वहां पर बहुत समय तक फलमूलों का अशन करते हुए हे वरारोहे ! वन में बहुत अधिक वर्षों का समय उसे व्यतीत हो गया था ॥४॥ एक बार दैत्यों में शार्दूल के समान कन्दर नाम वाला अपनी प्रिय पुत्री को लेकर वहां पर आया था जो दिवलोक में देववती के नाम से प्रसिद्ध थी ॥५॥ अपने पिता के साथ में उस वन में आयी हुई उस वरानना को उस वानर श्रेष्ठ ने देखा था और बलपूर्वक उसे हाथ से पकड़ लिया था ॥६॥ हे शुभे ! उस दैत्य ने अपनी पुत्री को कपि के द्वारा बलात् ग्रहण की हुई देखा तो कन्दर अत्यन्त क्रुद्ध होगया और खड्ग उठा कर उस पर उसने आक्रमण किया था ॥७॥

पुत्री के साथ जाकर वहाँ मे गमन करने की इच्छा वाला होगया था ॥१४॥

ता दृष्ट्वाऽमन्यत श्रीमान्सेय देववती ध्रुवम् ।
तन्मे वृथा श्रमो जातो जलमज्जनसभवः ॥१५
इति संचिन्तयन्नेव समाद्रवत सुन्दरि ।
सा तद्भयाच्च न्यपतन्नदीं चैव हिरण्वतीम् ॥१६
गुह्यको वीक्ष्य तनया पतितामापगाजले ।
दुःखशोकसमायुक्तो जगामाञ्जनपर्वतम् ॥१७
तत्रासौ तप आस्थाय मौनव्रतधरः शुचिः ।
समास्ते वै महातेजाः संवत्सरगणान्बहून् ॥१८
दमयन्त्यपि वेगेन हिरण्वत्याऽपवाहिता ।
नीता देशं महापुण्यं कोसलं साधुभिर्युतम् ॥१९
गच्छन्ती सा च रुदती ददृशे वटपादपम् ।
प्ररोहप्रावृततनुं जटाधरमिवेश्वरम् ॥२०
त दृष्ट्वा विपुलच्छाय विशश्राम वरानना ।
उपविष्टा शिलापट्टे ततो वाच प्रशुश्रुवे ॥२१

उस श्रीमान् ने उसको वहाँ देखकर यह समझ लिया था कि यह वही देववती है । इसलिये मैंने जो जल मे मज्जन करने का घोर श्रम किया था वह सब व्यर्थ ही होगया ॥१५॥ हे सुन्दरि ! ऐसा चिन्तन करते हुए ही उसने उसकी ओर वेग से गमन किया था और वह भय-भीत होकर हिरण्वती नदी मे गिर गई थी ॥१६॥ गुह्यक अपनी पुत्री को नदी के प्रवाह मे गिरी हुई देखकर अत्यन्त दुःख और शोक से समन्वित होकर अञ्जन पर्वत को चला गया था ॥१७॥ वहाँ पर यह मौन व्रत धारण करते हुए शुचि होकर तपश्चर्या मे समास्थित हो गया था । वह महा तेजस्वी बहुत से वर्षों तक उसी तपस्या में स्थित रहा था ॥१८॥ दमयन्ती भी हिरण्वती नदी के वेग से अपवाहित होकर साधुओं से युक्त, परम पवित्र कोसल देश मे पहुँचादी गई थी॥१९॥वहा जाती और रोती हुई उसने एक वट के वृक्ष को देखा था जो प्ररोहों से एकदम ढके हुए

बंदेशों को मानेगा। भूमि शय्या में शयन और कदम्ब का भोजन होगा ॥३३॥ इस प्रकार से पिता के द्वारा कहा गया बालक मैं अति पाँच वर्ष का हूँ हिरण्वती में स्नान करने को गमन करता हुआ मही के पृष्ठ पर विचरण करता हूँ ॥३४॥ इसके पश्चात् मैंने कपिवर को देखा था उसने मुझसे पूछा था कि तुम कहाँ जारहे हो ? और गूढ आश्रम में व्यस्त इस देवती को ग्रहण करके जा रहे हो ॥३५॥

ततोऽसौ मा ममादाय विस्फुरन्तं शिशुं ततः ।
वटाग्रेऽस्मिन्नुद्बबन्ध जटाभिरपि सुन्दरि ॥३६
तथा च रक्षा कपिना कृता भीरु निरन्तरैः ।
लतापाशैर्महायन्त्रमध्यस्या दुष्टबुद्धिना ॥३७
अभेद्योऽयमनाक्रम्य उपरिष्टात्तथा वधः ।
दिशा मुखेषु सर्वेषु कृतं यन्त्रं लतामयम् ॥३८
सयम्य मां कपिवरः प्रयातोऽमरपर्वतम् ।
यथेच्छया मया दृष्टमेतत्ते गदितं शुभे ॥३९
भवती का महारण्ये ललना पतिवर्जिता ।
समायाता सुचार्वङ्गी केन कार्येण मां वद ॥४०
साऽब्रवीदञ्जनो नाम गुह्यकेन्द्रः पिता मम ।
दमयन्तीति मे नाम प्रम्लोचागर्भसंभवा ॥४१
तत्र मे जातके प्रोक्तमृषिणा मुद्गलेन हि ।
इयं नरेन्द्रमहिषी भविष्यति न संशयः ॥४२

इसके उपरान्त विस्फुर्यमाण शिशु मुझको लाकर इस वट वृक्ष के अग्रभाग में जटाओं से उद्बन्धन कर दिया है ॥३६॥ हे भीरू ! इस दुष्ट बुद्धि वाले कपि ने निरन्तर लतापाशों के द्वारा महायन्त्र के मध्य में स्थित मेरी रक्षा की है ॥३७॥ यह लतामय यन्त्र सब दिशाओं के मुखों में ऐसा बना दिया है कि जो अभेद्य और आक्रमण करने के अयोग्य है। ऊपर में इसका ऐसा ही वध है ॥३८॥ वह कपिवर मुझे यहाँ पर इस प्रकार से संयमित करके अमर पर्वत पर चला गया था। मैंने यथेच्छया उसे देखा था। हे शुभे ! मैंने यह तुमको सब बता दिया

है ॥३६॥ आप कौन हैं। इस महारण्य में पति से रहित ललना सुन्दर अंगों वाली किस कार्य से यहाँ समागत हुई हो? यह मुझे आप बतलाइये ॥४०॥ उस ललना ने उत्तर दिया था कि ऋतुध्वज नाम वाला गुह्यकों का स्वामी मेरा पिता है मेरा नाम दमयन्ती है। मैं प्रम्लोचा के गर्भ से समुत्पन्न हुई हूँ ॥४१॥ मेरे जातक में मुद्गल ऋषि ने यह स्पष्ट बतलाया है कि यह किसी नरेन्द्र की चक्रवर्ति की महिषी होगी— इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४२॥

तद्वाक्यसमकालं तु न्यनदद्दिवि दुन्दुभिः ।
शिवाश्चाशिवनिर्घोषास्ततो भूयोऽब्रवीन्मुनिः ॥४३
न संदेहो नरपतेर्महाराज्ञी भविष्यति ।
महान्तं संशयं घोरं कन्याभावे समेष्यसि ॥४४
ततो जगाम स ऋषिरेवमुक्त्वा वचो द्रुतम् ।
पिता मामपि चादाय समागन्तुमथैच्छत ॥४५
तीर्थं ततो हिरण्वत्यास्तीरात्कपिरथोत्पतत् ।
तद्भयाच्च मया ह्यात्मा क्षिप्तः सागरगाजले ।
तयास्मि देशमानीता इमं मानुषवर्जितम् ॥४६
श्रुत्वा जाबालिरथ तद्वचनं वै तयोदितम् ।
प्राह सुन्दरि गच्छस्व श्रीकण्ठं यमुनातटे ॥४७
तत्रागच्छति मध्याह्ने मत्पिता शिवमर्चितुम् ।
तस्मै निवेदयाशु त्वं ततः श्रेयोऽभिलप्स्यसे ॥४८
ततस्तु त्वरिता काले दमयन्ती तपोनिधिम् ।
परित्राणार्थमगमद्धिमाद्रौ यमुनानदीम् ॥४९

उसके वाक्य के सम काल में ही दिव लोक में दुन्दुभि बजी थी। शिव और अशिव निर्घोष हुए। तब पुनः मुनि ने कहा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम नरपति की महारानी बनोगी। कन्या के अभाव में महान् घोर संशय को प्राप्त होगी ॥४३-४४॥ इसके पश्चात् वही ऋषि इस वचन को कहकर शीघ्र चले गये थे। मेरे पिता भी मुझको लेकर तीर्थ का समागमन करने की इच्छा करने लगे थे ॥४५॥ इसके

अनन्तर हिरण्वती के तट से कपि ने उत्खनन किया था। उसके भय से अपने श्राप को सागर के जल में प्रक्षिप्त कर दिया था। उसी नदी के द्वारा मैं इस मनुष्यों से रहित देश में ले आयी गयी हूँ ॥४६॥ दण्ड ने कहा—इसके उपरान्त जाबालि ने उसने जो कुछ कहा था उस वचन को सुनकर कहा था—हे सुन्दरी ! यमुना तट पर श्री कण्ठ के समीप में चली आओ ॥४७॥ वहाँ पर मध्याह्न में मेरे पिता भगवान् शिव की अर्चना करने के लिये आया करते हैं। उनसे तुम यह सब निवेदन करना। इसके पश्चात् तुम कल्याण की प्राप्ति करोगी ॥४८॥ इसके उपरान्त उस समय में तुरन्त ही शीघ्र गामिनी होती हुई परित्राण पाने के लिये हिमाचल में यमुना नदी पर तपोनिधि के समीप में गई थी ॥४९॥

सा स्वदीर्घेण कालेन कन्दमूलफलाशना ।
सम्प्राप्ता शङ्करस्थानं यत्रागच्छति तापसः ॥५०
ततः सा देवदेवेशं श्रीकण्ठं लोकवन्दितम् ।
प्रनिबन्ध्य ततोऽपश्यदक्षराणि महामुने ॥५१
तेषामर्थं हि विज्ञाय सा तदा चारुहासिनी ।
जापमात्युदितं श्लोकमलिखच्चात्मनात्मनः ॥५२
मुद्गलेनास्मि गदिता राजपत्नी भविष्यति ।
सा चावस्थामिमां प्राप्ता कश्चिन्मात्रानुमीश्वरः ॥५३
इत्युल्लिख्य शिलापट्टे गता स्नातुं यमानुजाम् ।
ददर्श चाश्रमवरं मत्तकोकिलनादितम् ॥५४
अतो मध्यमसावृषिर्नन तिष्ठति सत्तमः ।
इत्येव चिन्तयन्ती सा सविष्टा महाश्रमम् ॥५५
ततो ददर्श देवानां स्थिता देववतीं शुभाम् ।
शुष्कास्या चलनेत्रां तु परिम्लानामिवाब्जिनीम् ॥५६

वह थोड़े ही समय में कन्द-मूल फलों का अशन करती हुई भगवान् शङ्कर के स्थान पर प्राप्त हुई थी जहाँ पर वह तापस आया करते हैं ॥५०॥ इसके बाद में वह लोक वन्दित देव देवेश श्री कण्ठ भगवान्

की वन्दना करके हे महामुने ! फिर उसने अक्षरों को देखा था ॥५१॥ उनके प्रयोजन को उस समय में समझ कर उस चारु हासिनी ने अपना आप मास्युदित अन्य श्लोक लिखा था ॥५२॥ मुद्गल मुनि ने कहा था कि तू राजा की पत्नी होगी। वह मैं अब इस अवस्था को प्राप्त हो गई हूँ कौन मेरी रक्षा करने को समर्थ है ॥५३॥ एक पत्थर की शिला पर यही लिखकर वह यमुना नदी में स्नान करने के लिये चली गई थी। और वहाँ पर एक परम श्रेष्ठ आश्रम देखा था जिसमें मत्त कोयलों का निनाद हो रहा था ॥५४॥ इसलिये इसके मध्य में निश्चय ही यह श्रेष्ठतम ऋषि स्थित होंगे—ऐसा चिन्तन करती हुई उसने उस महान् आश्रम में प्रवेश किया था ॥५५॥ इसके पश्चात् देवों की उस शुभा देववती को संस्थित देखा था जिस का मुख शुष्क था और नेत्र चपल हो रहे थे जैसे कोई परिम्लान पद्मिनी हो ॥५६॥

सा चापश्यी ददृशे यक्षजां दैत्यनन्दिनीम् ।
दैयमित्येव सञ्चिन्त्य समुत्थाय स्थिराऽभवत् ॥५७
ततोऽन्योन्यं समाश्लिष्य गाढं गाढं मुहुर्मुहुः ।
पर्यपृच्छतदाऽन्योन्यं कथयामासतुस्ततः ॥५८
ते परिज्ञानतस्त्वार्थे अन्योन्यं ललनोत्तमे ।
समासाते कथाभिस्ते नानारूपाभिरादरात् ॥५९
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः मुनिः श्रीकण्ठमर्चितुम् ।
ऋतध्वजो मुनिश्रेष्ठस्ततोऽपश्यदथाक्षरान् ॥६०
स दृष्ट्वा वाचयित्वा च तदर्थमधिगम्य च ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय व्यजानाच्च तपोनिधिः ॥६१
ततः सपूज्य देवेशं त्वरया स ऋतध्वजः ।
अयोध्यामगमत्क्षिप्रं द्रष्टुमिक्ष्वाकुमीश्वरम् ॥६२
स दृष्ट्वा नृपतिश्रेष्ठं तापसो वाक्यमब्रवीत् ।
श्रूयतां नरशार्दूल विज्ञप्तिर्मम पार्थिव ॥६३

और उसने भी आती हुई यक्ष-पुत्री को देखा। यह कौन है ऐसा सोचती हुई वह स्थिर हो गई ॥५७॥ फिर एक दूसरी को सौहार्द भाव से खूब

अच्छी तरह समाश्लेषण करके एक दूसरी ने आश्रम में उस समय में पूछा था और क्रमशः हाल बताया था ॥५८॥ वे दोनों अत्युत्तम ललनाओं ने आपस में एक दूसरी का पूरा हाल जान लिया था और फिर अनेक रूप वाली कथाओं को कहती हुई आदर पूर्वक वे दोनों वहाँ पर बैठ गई थीं ॥५९॥ इसी बीच में मुनि वहाँ पर भगवान् श्री कण्ठ की अर्चना करने के लिये प्राप्त हुए थे और मुनि श्रेष्ठ ऋतध्वज ने फिर उन अक्षरों को देखा था ॥६०॥ उसने देखा और बाँचा तथा उनके अर्थ को भी भली भाँति समझ लिया था। थोड़ी देर तक ध्यान में समास्थित होकर उस तपोनिधि ने विशेष रूप से समझ लिया था ॥६१॥ इसके पश्चात् उस ऋतध्वज ने शीघ्रता से देवेश्वर का पूजन करके वह शीघ्र ही ईश्वर इक्ष्वाकु से मिलने के लिये अयोध्या पुरी में आ गये थे ॥६२॥ उस नृपति श्रेष्ठ से मिल कर तापस ने उस से यह वाक्य कहा था—हे नर शार्दूल ! हे राजन् मेरी विज्ञप्ति का श्रवण करो ॥६३॥

मम पुत्रो गुणैर्युक्तः सर्वशास्त्रविशारदः ।
उद्बद्धः कपिराजेन विषयान्ते तवैव हि ॥६४
तं हि मोचयितुं नान्यः शक्तस्त्वत्तनयादृते ।
शकुनिर्नाम राजेन्द्र स ह्यस्त्र विधिपारगः ॥६५
तन्मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य पिता मम कृशोदरि ।
आदिदेश प्रियं पुत्रं शकुनिं नामशान्तये ॥६६
ततः स प्रहितः पित्रा भ्राता मम महाभुजः ।
सम्प्राप्तोऽथ वनोद्देशं सम हि परमर्षिणा ॥६७
दृष्ट्वा न्यग्रोधमत्युच्चं प्ररोहश्वेतदिङ्मुखम् ।
ददर्श वृक्षशिखरे उद्बद्धमृषिपुत्रकम् ॥६८
ततश्चलतापाशं दृष्टवान्स समन्ततः ।
दृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं स्वजटासंयतं वटे ॥६९
धनुरादाय बल्लभान्निश्चित्य स चकार ह ।
लाघवादृषिपुत्रस्य समं चिच्छेद मार्गणैः ॥७०

मेरा पुत्र सभी सद्गुणो से युक्त और परम विद्वान है जिसे सभी शास्त्रों का पाडित्य है। वह तुम्हारे ही देश के अन्त उरुद्ध हो रहा है जिसको कपिराज ने बाँध दिया है ॥६४॥ वह आपके लड़के के बिना अन्य किसी के द्वारा भी उन्मोचन प्राप्त करने मे समर्थ नहीं है। हे राजेन्द्र ! वह यहाँ पर शकुनि नाम वाला विधि का पारगामी है ॥६५॥ हे कृशो हरि ! फिर मेरे पिता ने उस मुनि के वाक्य का श्रवण कर अपने प्रिय पुत्र शकुनि को उसकी शान्ति के लिये आदेश दे दिया था ॥६६॥ इसके पश्चात् मेरे पिता ने महा भुज मेरा भाई भेजा था। इसके अनन्तर वह परर्षि के साथ वनोद्देश में प्राप्त हुआ था ॥६७॥ उसने प्ररोहरवेश रिहमुक्त अत्यन्त ऊँचे वट के वृक्ष को देखा था और फिर उस वृक्ष की चोटी पर उरुद्ध ऋषि के पुत्र को देखा था ॥६८॥ इसके पश्चात् उसने चारो ओर चवल लताओं के पाश को देखा था। उसने वट वृक्ष मे अपनी जटाओ से सुसवद्ध मुनि पुत्र को देखकर उसने फिर धनुप उठाकर बलवान् ने उसे अधिज्य किया था। फिर बहुत ही लाघव से वाणो के द्वारा ऋषि पुत्र के सम का छेदन किया था ॥६९-७०॥

कपिना यत्कृत पूर्वं लतापाशं चतुर्दिशम् ।
पञ्चवर्षशते काले गते कृत्त तदा शरैः ॥७१
लताच्छन्न ततस्तूर्णमारुरोह मुनिर्वटम् ।
प्राप्त स्वपितर दृष्ट्वा जावालिः प्रयतोऽपि सन् ॥७२
आदरातिशयान्मूर्च्छा ववन्दे तु विधानतः ।
सपरिष्वज्य स मुनिमूर्ध्न्याघ्राय समन्ततः ॥७३
उन्मोचयितुमारब्धो न शशाक सुयन्त्रितः ।
ततस्तूर्णं धनुर्न्यस्य वाणांश्च शकुनिर्वली ॥७४
आरुरोह वट तूर्णं समुन्मोचयितुं जटा ।
:

जग्राह च धनुर्वाणांश्चकारशरमण्डपम् ।
लाघवादर्धचन्द्राभ्यां शाखां चिच्छेद स त्रिधा ॥७७
शाखया कृत्तया चासौ भारवाही तपोधनः ।
शरसोपानमार्गेण अवतीर्णोऽथ पादपात् ॥७८
तस्मिंस्तथा स्वतनये ऋतध्वजस्ततो नरेन्द्रस्य सुतेन धन्विना ।
जावालिना भारवहेन पुनःसमाजगामायनदीम सूर्यजाम् ॥७९

कपि ने पहिले जो लताओं का पाश चारों दिशाओं में बना दिया था उसे पाँच सौ वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था अब इस समय में वह काट दिया गया था जो कि वाणों के द्वारा छिन्न हुआ है ॥७१॥ जिसकी लताएँ छिन्न हो गई हैं उस वृक्ष पर फिर मुनि बहुत ही शीघ्र आरोहण कर गये थे। जावालि ने अपने पिता को वहाँ पर समागत देख कर मुमधत होते हुए भी आदर की अत्यधिकता होने से विधि पूर्वक शिर के द्वारा उनकी वन्दनायें की। उस मुनि ने भी भली भाँति समालिङ्गन करके उसके मस्तक का घ्राण किया था ॥७२-७३॥ मुझे उन्मोचन करने का कार्य आरम्भ तो किया था किन्तु सुयन्त्रित कर न सका। इसके उपरान्त शीघ्र ही धनुष से नमित करके बली शकुनि वाणों को छोड़ा था ॥७४॥ फिर तुरन्त ही जटाओं का उन्मोचन करने के लिये उस बट के वृक्ष पर वह चढ़ गया था। किन्तु कपिवर द्वारा अत्यन्त दृढ़ सयन्त्र वह खोल न सका था उसी समय में शकुनि परमर्षि के साथ उस वृक्ष से नीचे उतरा था ॥७५-७६॥ उसने धनुष वाणों को ग्रहण किया था और शरमण्डप किया था। फिर उसने लाघव से अर्द्ध चन्द्रों से तीन स्थानों शाखा का छेदन कर दिया था ॥७७॥ काटी हुई शाखा से वह भार वाही तपस्वी शरों के सोपान मार्ग के द्वारा उस वृक्ष से नीचे उतरा था ॥७८॥ इसके पश्चात् अपने तनय के नीचे उतरने पर धन्वी नरेन्द्र के सुत के साथ ऋतध्वज भार वह जावालि के सहित वह यमुना नदी तट पर आ गया था ॥७९॥

चित्राङ्गदा विवाह वर्णन

एतस्मिन्नन्तरे वाले यक्षासुरसुते मुने ।
समागते हरं द्रष्टुं त मुनिं योगिनां वरम् ।।१
ददृशाते परिम्लान सशुष्ककुसुम विभुम् ।
बहुनिर्माल्यसयुक्त गते तस्मिन्नृतध्वजे ।।२
ततस्तु वीक्ष्य देवेश ते उभे वर कन्यके ।
स्नापयेते विधानेन पूजयेते अहर्निशम् ।।३
ताभ्या स्थिताभ्या तत्रैव ऋषिरभ्यागमद्वनम् ।
द्रष्टुं श्रीकण्ठमव्यक्त गालवो नाम नामतः ।।४
स दृष्ट्वा कन्यकायुग्म कस्येदमिति चिन्तयन् ।
प्रविवेश मुनिः स्नात्वा कालिन्द्या विमले जले ।।५
ततोऽनु पूजयामास श्रीकण्ठं गालवो मुनिः ।
गायेते सुस्वर गीत यक्षासुरसुते तत ।।६
ततः संगीतमाकर्ण्य गालवो ह्यं अजानत ।
गन्धर्व कन्यके चैव सदेहो नात्र विद्यते ।।७

दण्डक ने कहा—हे मुने ! इसके पश्चात् हे बाले ! इसी बीच मे यक्षासुर सुता के समागत होने पर भगवान् शंकर का दर्शन करने के लिये योगियो मे श्रेष्ठ उस मुनि को बहुत निर्माल्य से युक्त परिम्लान और सशुष्क कुसुम वाले विभु को देखा था जब कि वह ऋतध्वज चला गया था ।।१-२।। इसके उपरान्त उन दोनो श्रेष्ठ कन्याओ ने देवेश्वर का दर्शन किया और सविधि स्नपन कराया था तथा अहर्निश पूजन किया था ।।३।। उन दोनों के वहीं पर स्थित रहते हुए गालव नाम वाले भगवान् अव्यक्त श्री कण्ठ का दर्शन करने के लिये उस वन में आये थे ।।४।। उसने उन कन्याओ के जोडे को देखकर मनमे विचार किया था कि ये दोनो कन्याएं किसकी हैं । मुनि ने स्नान करने को कालिन्दी के विमल जल मे प्रवेश किया था ।।५।। इसके अनन्तर गालव मुनि ने श्रीकण्ठ का पूजन किया था। फिर यक्षासुर के सुताओ ने

सुन्दर स्वर मे गीतो का गायन किया था ॥६॥ इसके पश्चात् उस सुन्दर सगीत को सुनकर गालव मुनि ने उन दोनो को जान लिया था कि ये गन्धर्व की दोनो कन्याऐं हैं—इसमे कुछ भी सदेह नही है ॥७॥

सपूज्य देवमीशान गालवस्तु विधानतः ।
कृतजप्यः समध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादितः ॥८
ततः पप्रच्छ स मुनिः कन्यके कस्य कथ्यताम् ।
कुलालङ्कारकरणे भक्तियुक्ते भवस्य हि ॥६
तमूचतुर्मु निश्रेष्ठ याथातथ्य शुभानने ।
जातो विदितवृत्तान्तो गालवस्तपता वरः ॥१०
समुष्य तत्र रजनी ताभ्या सपूजितो मुनिः ।
प्रातरुत्थाय गौरीश सपूज्य च विधानतः ॥११
ते उपेत्याब्रवीद्यास्ये पुष्करारण्यमुत्तमम् ।
आमन्त्रयामि वा तन्व्यौ मामनुज्ञातुमर्हथ ॥१२
ततस्ते ऊचतुर्ब्रह्मन्दुर्लभ दर्शन तव ।
किमर्थं पुष्करारण्ये भवान्यास्यत्ययादरात् ॥१३
ते उवाच महातेजा अहङ्कारसमन्वितः ।
कार्तिकी पुण्यदा भावि पुष्करेष्वेव कार्तिके ॥१४

गालव मुनि ने विधि से ईशान देव की समर्चा करके जप करके वही पर बैठ गये और उन दोनो कन्याओ ने उनको प्रणाम किया था ॥८॥ इसके अनन्तर उस मुनि ने पूछा—हे कन्याओ, तुम किसकी हो—यह हमको बतलाओ । तुम अपने कुल की अलकार स्वरूपा हो और भगवान् शिव की परम भक्ति से युक्त भी हो ॥६॥ हे शुभानने ! उन दोनो ने उस मुनि से जो यथार्थ बात थी वही सब सत्य २ कहदी थी । तपस्वियो मे श्रेष्ठ गालव ने फिर सभी वृत्तान्त जान लिया था ॥१०॥ उस रात्रि मे वही पर निवास करके मुनि उन दोनो कन्याओ के द्वारा भली भाँति पूजित हुए थे । प्रात.काल मे उठकर विधि पूर्वक गौरीश्वर की पूजा करके उन दोनो के पास आकर वह बोले-अब मैं उत्तम पुष्कर वन मे जाऊँगा । आप दोनों को भी मैं आमन्त्रित

करता है। हे तन्वियो ! अब आप दोनों मुझे विदाई दो ॥११ १२॥ इसके उपरा त उन दोनो ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपका दर्शन तो बहुत दुर्लभ है। अब आप पुष्कर अरण्य में किस लिये जारहे हैं—यह बड़े आदर के साथ इन्होंने जानने की इच्छा की थी॥१३॥ उस महा तेजस्वी ने अहंकार से युक्त होकर उन दोनों से कहा—कार्तिकी पूर्णिमा परम पुण्य देने वाली होगी जोकि कार्तिक मास म पुष्करो म हा होती है ॥१४॥

ते ऊचतुर्वय यामो भवान्यत्र गमिष्यति ।
न त्वया स्म विना ब्रह्मन्निह स्थातु समुत्सहे ॥१५
बाढमाह मुनिश्रेष्ठस्ततो नत्वा महेश्वरम् ।
गन्तु च ऋषिणा साध पुष्करारण्यमादरात् ॥१६
तथाऽ ये ऋषयस्तत्र समायाता सहस्रश ।
पार्थिवा वा जानपदा मुक्त्वक तु ऋतध्वजम् ॥१७
तत स्नातु च कार्तिक्यामृषय पुष्करेष्वथ ।
राजानश्च महाभागा नानागेक्ष्वाकुसयुता ॥१८
गालवोऽपि सम ताभ्या कन्यकाभ्यामवातरत् ।
स स्नातु पुष्करजले मध्यमे ह्यनुपा प्लतो ॥१९
निमग्नश्चापि ददृशे महामत्स्य जलेशयम् ।
बह्वीभिमत्स्यकन्याभि प्रीयमाण मुहुं मुहु ॥२०
स तादवाह विनिर्मुक्ता इम धर्मं न जानथ ।
जनापवाद घोर हि न शक्त सोढुमुल्वणम् ॥२१

उन दोनो ने कहा—जहाँ आप जायग वहाँ पर हम जाती है। हे ब्रह्मन् ! आपके बिना हम यहाँ रहन की इच्छा नही रखती हैं ॥१५॥ मुनि ने कहा—बहुत अच्छा है फिर महेश्वर को प्रणाम किया। फिर बड़े आदर म ऋषि क साथ पुष्करारण्य म चले जाने पर उसी भाँति वहाँ अन्य सहस्रों ऋषिगण आये थ। राजा भी आये और जानपद भी आये थे केवल एक ऋतध्वज ही नहीं आये थे ॥१६-१७॥ ऋषि वृन्द पुष्करों म कार्तिकी पूर्णिमा के दिन स्नान करन को आये थे—महा

भाग वाले राजा लोग जिनमें नाभाग और इक्ष्वाकु भी थे ॥१८॥ गालव मुनि भी उन दोनों कन्याओं के साथ स्नान करने को उतरे थे। धनुषों की प्लुति में मध्यम पुष्कर जल में स्नान करने को जैसे ही निमग्न हुए तो उन्होंने जल में शयन करने वाले एक महान् मत्स्य को देखा था जो बहुत सी मत्स्य कन्याओं के द्वारा बारम्बार प्रीयमाण हो रहा था ॥१९-२०॥ उसने विनिर्मुक्त उनसे कहा—इस धर्म को तुम नहीं जानते हो। इस महान् उल्वण घोर जनापवाद को सहन करने के लिये समर्थ नहीं हूँ ॥२१॥

तास्ता ऊचुर्महामत्स्य किं न पश्याम गालवम् ।
तापस कन्यकाभ्यां वै विचरन्त यथेच्छया ॥२२
यद्यसावपि धर्मात्मा न विभेति तपोवनः ।
जनापवादात्तत्किं त्वं विभेषि जलमध्यगः ॥२३
ततश्चाप्याह स निमिर्नेष वेत्ति तपोधनः ।
रागान्धो नापि च मम विजानाति मुर्वालिशः ॥२४
तच्छ्रुत्वा मत्स्यवचनं गालवो व्रीडया युतः ।
नोत्ततार निमग्नोऽपि तस्थौ स विजितेन्द्रियः ॥२५
स्नात्वा द्वे तेऽपि रम्भोरू समुत्तीर्य तटे स्थिते ।
प्रतीक्षन्त्यौ मुनिवरं तद्दर्शनसमुत्सुके ॥२६
वृत्ता तु पुष्करे यात्रा गतो लोको यथागतम् ।
ऋषयः पार्थिवाश्चान्ये नानाजनपदास्तथा ॥२७
तत्र स्थितैका सुदती विश्वकर्मतनूरुहा ।
चित्राङ्गदा सुचार्वङ्गी वीक्षन्ती तनुमध्यमा ॥२८

ही नहीं है ।।२४।। इस मत्स्य के वचन का श्रवण करके गालव लज्जा से समन्वित हो गया था। वह निमग्न होते हुए भी उत्तरण नहीं किया तथा विजितेन्द्रिय होकर वह वहीं पर स्थित हो गया था ।।२५।। वे दोनों रम्भोरू भी स्नान करके समुत्तरण करके तट पर स्थित होगई थीं और उस मुनि वर की प्रतीक्षा कर रही थी क्योंकि मुनि के दर्शन करने को वे अति उत्सुक थीं ।।२६।। पुष्कर की यात्रा पूर्ण होगई थी। जो लोग जहाँ से आये थे वहीं पर चले गये थे। सभी ऋषिगण-राजा तथा अनेक जनपद निवासी सभी चले गये थे ।।२७।। वहाँ पर सुन्दर दाँतों वाली एक अकेली विश्वकर्मा की पुत्री स्थित रह गयी थी जो कृश मध्य भाग वाली तथा परम सुन्दर अंगों वाली चित्रांगदा थी और वह इधर-उधर देख रही थी ।।२८।।

ते स्थिते चापि वीक्षन्त्यौ गालवं मुनिसत्तमम् ।
सस्थिते निजने तीर्थे गालवोऽन्तर्जले तथा ।। २९
ततोऽभ्यगाद्वेदवती नाम्ना गन्धर्वकन्यका ।
पर्जन्यतनया साध्वी घृताची गर्भसम्भवा ।।३०
कूले पुण्ये समभ्येत्य स्नात्वा मध्यमपुष्करे ।
ददर्श कन्यात्रितयमुभयोस्तटयोः स्थितम् ।।३१
चित्राङ्गदा समभ्येत्य पर्यपृच्छदनिष्ठुरम् ।
कासि केन च कार्येण निर्जने स्थितवत्यसि ।।३२
सा तामुवाच पुत्री मा विन्दस्व सुरवर्धके ।
चित्राङ्गदेति सुश्रोणि विख्याता विश्वकर्मणः ।।३३
साऽहमभ्यागता भद्रे स्नातुं पुण्यां सरस्वतीम् ।
नैमिषेकाञ्चनाक्षीं तु विख्यातां धर्ममातरम् ।।३४
तत्रागता सुराहोह दृष्टा वैदर्भकेण हि ।
सुरथेन ॥ कामार्तो मामेव शरणं गतः ।।३५

वहाँ आयी थी जो पर्जन्य की पुत्री थी और परम साध्वी थी तथा घृताची के गर्भ से समुत्पन्न हुई थी। उसने उस पुण्य कूल पर आकर और मध्य पुष्कर में स्नान करके दोनो तटों पर स्थित तीनों कन्याओं को देखा था ॥३०-३१॥ चित्रांगदा के समीप में आकर बहुत ही मृदुता से पूछा था—आप कौन है? जिस कार्य से इस निर्जन वन में आप स्थित हैं ॥३२॥ वह उससे बोली—हे सुरवर्णके ! मुझे विश्वकर्मा की हे सुश्रोणि ! विद्यमान पुत्री चित्रांगदा समझो ॥३३ हे भद्रे ! मैं इस परम पुण्यमयी सरस्वती में स्नान करने के लिये यहाँ पर आयी हुई हूँ। और नैमिष में धर्ममाता परम विख्यात काञ्चनाक्षी में स्नान करने आयी थी ॥३४॥ वहाँ पर आई हुई मैं सुराष्ट्र देवमंक के द्वारा पूछा गयी थी। जिसका नाम सुरथ था। वह इतना कामार्त्त हो गया था कि मेरी ही शरण उसने ग्रहण करली थी ॥३५॥

मयाऽऽत्मा तस्य दत्तश्च सखीभिर्वार्यमाणया।
ततः शप्ताऽस्मि तातेन वियुक्ताऽस्मि च भूभुजा ॥३६
मर्तुं कृतमतिर्भद्रे वारिता गुह्यकेन च।
श्रीकण्ठमगम द्रष्टुं ततो गोदावरीजलम् ॥३७
तस्मादिद समायाता तीर्थप्रवरमुत्तमम्।
न चापि दृष्टः सुरथः स मनोह्लादनः पतिः ॥३८
भवतो चात्र का वाले वृत्ते यात्राफलेऽधुना।
समागता हि तच्छस मम सत्येन भामिनि ॥३९
साऽब्रवीच्छ्रूयता याऽस्मि मन्दभाग्या कृशोदरी।
यथा यात्राफले वृत्ते समायाताऽस्मि पुष्करम् ॥४०
पर्जन्यस्य घृताच्या तु जाता वेदवतीति हि।
रममाणा वनोद्देशे दृष्टाऽस्मि कपिना सखि ॥४१
स चाभ्येत्याब्रवान्मा तु यासि वेदवति क्व हि।
आनीताऽस्याश्रमात्केन भूपृष्ठान्मेरुपर्वतम् ॥४२

सखियों के द्वारा मुझे वारित किया गया था तो भी मैंने अपनी आत्मा उसको समर्पित करदी था। इसके पश्चात् मेरे पिताजी ने मुझे

शाप देदिया था और मैं उस राजा से वियुक्त होगई थी ॥३६॥ हे भद्रे मैं मरने को एक दम तयार होगई थी किंतु गुह्यक ने मुझे मरने से रोक दिया था। इसके पश्चात् मैं श्रीकण्ठ भगवान् के दर्शन करने तथा गोदावरी के जल मे स्नान करने के लिये चली आयी हूँ ॥३७॥ इसलिये इस परमोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ मे यहाँ आयी हूं। वह मेरे मन को आह्लाद देने वाला पति सुरथ मैंने नहीं देखा ॥३८॥ हे बाले ! आप यहाँ पर कौन हैं ? अब यात्रा का फल पूर्ण होने पर मैं आई हूँ। आप हे भामिनि ! मुझे सत्य २ कहो ॥३६॥ वह बोली—आप सुनिये कि जो मैं मन्द भाग्य वाली कृशोदरी हूँ। जैसे ही यात्रा फल वृत्त हुआ, मैं पुष्कर मे आगई थी ॥४०॥ पर्जन्य की घृताची मे उत्पन्न वेदवती मैं मनोद्देश मे रमण करती हुई हे सखि ! एक कपि के द्वारा देखी गई थी ॥४१॥ और उसने मेरे पास आकर मुझसे कहा—हे वेदवति ! कहा जारही है। भूमि पृष्ठ आश्रम से तुम किसके द्वारा इस मेरु पर्वत पर लाई गई हो ? ॥४२॥

ततो मयोक्तं नास्मीति कपे वेदवतीत्यहम् ।
नाम्ना वेदवतीत्येव मेरावपि कृताश्रया ॥४३
ततस्तेनातिदुष्टेन वानरेणाभिविद्रुता ।
समारूढाऽस्मि सहसा बन्धुजीवं नगोत्तमम् ॥४४
तेनापि वृक्षस्तरसा पादाक्रान्तस्त्वभज्यत ।
ततोऽस्य विपुलां शाखां समालिङ्ग्य स्थिता त्वहम् ॥४५
ततः प्लवङ्गमो वृक्षं प्राक्षिपत्सागराम्भसि ।
सह तेनैव वृक्षेण पतिताऽस्म्यहमाकुला ॥४६
ततोऽम्बरतलाद्वृक्षं निपतन्तं यदृच्छया ।
ददृशुः सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥४७
ततो हाहाकृतं लोकैर्मां पतन्तीं निरीक्ष्य हि ।
ऊचुश्च सिद्धगन्धर्वाः कष्टं सेयं महात्मनः ॥४८
इन्द्रद्युम्नस्य महिषी गदिता ब्रह्मणा स्वयम् ।
मनोः पुत्रस्य वीरस्य सहस्रक्रतुयाजिनः ॥४९

फिर मैंने कहा—हे कपे ! मैं वेदवती ही हूँ और नाम से वेदवती हूँ इसी प्रकार से मेरु मे भी आश्रय करने वाली हूँ ॥४३॥ इसके पश्चात् उस दुष्ट वानर ने मेरा पीछा किया था और मैं सहसा बन्धु जीव श्रेष्ठ वृक्ष पर चढ़ गई थी ॥४४॥ उसने भी वेग के साथ वह वृक्ष पादाक्रान्त कर लिया था। इसके पश्चात् मैं उस वृक्ष की विपुल शाखा का समाश्रय कर स्थित होगई थी ॥४५॥ फिर उस वानर ने सागर के जल मे उसे प्रक्षिप्त कर दिया था। मैं भी उसी वृक्ष के साथ बहुत ही आकुल होती हुई गिर गई थी ॥४६॥ फिर अम्बर तल से यदृच्छा से गिरते हुए उस वृक्ष को समस्त प्राणियों ने तथा स्थावर एवं चरो ने देखा था।४७। तब तो गिरती हुई मुझे देख कर सभी लोगो ने बड़ा हा हा कार किया था। सिद्ध और गन्धर्वों ने कहा था—अरे, बड़े दुःख की बात है यह तो महात्मा इन्द्रद्युम्न की महिषी है। ऐसा ही ब्रह्माजी ने भी स्वयं कहा था कि मनु के पुत्र महान् वीर और एक सहस्र क्रतुओ के यजन करने वाले की महिषी है ॥४८॥

ता वाणी मधुरा श्रुत्वा मोहमस्म्यागता ततः ।
न च जाने स केनापि वृक्षश्छिन्नः सहस्रधा ॥५०
ततोऽस्मि वेगाद्बलिना हृताऽनलसखेन हि ।
समानीताऽस्म्यहमिम त्व दृष्ट्वा चाद्य सुन्दरि ॥५१
तत उत्तिष्ठ गच्छावः के उभे संस्थिते वरे ।
कन्यके अनुपश्येह पुष्करस्योत्तरेतटे ॥ ५२
एवमुक्त्वा वराङ्गीसा तया सुतनुकन्यया ।
जगाम कन्यके द्रष्टुं प्रष्टु काय तु कौतुकात् ॥५३
ततो गत्वा पर्यपृच्छत्त कन्तुरुभे अपि ।
याथातथ्यं तयोस्ताभ्यां स्वमात्मान निवेदितम् ॥५४
ततस्ताश्चतुरोऽप्योह सप्तगोदावर जलम् ।
सप्राप्य तीरे तिष्ठन्ति अचन्त्यो हाटकेश्वरम् ॥५५
ततो बहून्वर्षगणान्व्यभ्रमुस्ते जनाश्रयः ।
तासामर्थाय शकुनिर्जाबालिः स ऋतध्वजः ॥५६

उस अति मधुर वाणी को सुनकर फिर मैं मोह को प्राप्त हो गई हूँ। मैं नहीं जानती उस वृक्ष के सहस्रों टुकडे छिन्न कर के किसने कर दिये थे ॥५०॥ इसके बाद वेग पूर्वक अति बली अनल सखा के द्वारा मैं हृत हुई और यहाँ पर ले आयी गई हूँ। हे सुन्दरि ! आज मैंने तुमको देखा है ॥५१॥ सो अब उठो, चलें—ये दोनो परम श्रेष्ठ कौन कन्याएँ संस्थित हैं जो कि पुष्कर के उत्तर तट पर हैं चलो इन्हे देखें ॥५२॥ इस प्रकार से कह कर वराणी वह उस सुतनु कन्या के साथ उन दोनों कन्याओ को देखने के लिये तथा कौतुक से ये कौन हैं—यह पूछ ताछ करने को चली गई थी ॥५३॥ फिर वहाँ पर जाकर उनसे पूछा था और उन दोनो ने भी जो कि ठीक२ उनका अपना आत्म निवेदन था सब कह दिया था ॥५४॥ इस के अनन्तर वे चारो ही सप्त गोदावर जल पर पहुँच कर हाटकेश्वर प्रभु का अर्चन करती हुई वहा तीर पर स्थित हैं ॥५५॥ इसके पश्चात् उनको प्राप्त करने के लिये शकुनि—जाबालि और ऋतध्वज ये तीनो जन बहुत वर्षों तक भ्रमण करते रहे थे ॥५६॥

भारवाही ततो भिन्नो दशाब्ददशतिके (?) गते ।
काले जगाम निर्वेदारसम पित्राऽनु शाकलम् ॥५७
तस्मिन्नरपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्नो मनोः सुतः ।
समध्यास्ते स विज्ञाय साधपाद्यो विनिर्ययौ ॥५८
सम्यक्सम्पूजितस्तेन स जाबालिर्ऋतध्वजः ।
॥ चेक्ष्वाकुसुतो धीमाञ्शकुनिर्भ्रातृजोऽर्चितः ॥५९
ततो वाक्य मुनिः प्राह इन्द्रद्युम्नसुतध्वजः ।
राजभ्रष्टा सुताऽस्माकं दमयन्तीतिविश्रुता ॥६०
तदर्थं चैव वसुधा अस्माभिरटिता नृप ।
तस्मादुत्तिष्ठ मागस्य माहात्म्य कर्तुं महसि ॥६१
अथोवाच नृपो ब्रह्मन्ममापि सन्नोत्तमा ।
नष्टा कृतध्वजस्यापि यस्याः कथयामि ताम् ॥६२

आकाशात्पर्वताकार. पतमानो नगोत्तमः ।
सिद्धाना वाक्यमाकर्ण्य वाणैश्छिन्न. सहस्रधा ॥६३

फिर दशान्दशतिक (कोशल) मे जाने पर मार वाही भिन्न हो गया था। उस काल मे निर्वेद से पिता के साथ शाकल में चले गये थे ॥५७॥ उसमे मनुका पुत्र श्रीमान् इन्द्रद्युम्न नरपति रहता था जो जानकर अर्घपाद्य के सहित निश्चल कर आ गया था ॥५८॥ उसने भली भाँति से ब्रह्म जाबालि और ऋतध्वजा का पूजन किया था और इक्ष्वाकु का पुत्र भ्रातृज परमश्रीमान् शकुनि भी समर्चित हुआ था ॥५९॥ इसके बाद मुनि ऋतध्वज ने इन्द्रद्युम्न से यह वाक्य कहा था—हे राजन्! दमयन्ती—इस नाम से प्रख्यात हमारी पुत्री नष्ट हो गई है ॥६०॥ उसके लिये यह सम्पूर्ण पृथ्वी हे नृप! अब तक खोज डाली है। अतएव आप उठिए, इस मार्ग मे आप हमारी कुछ सहायता करने के योग्य होते हैं ॥६१॥ इसके अनन्तर वह राजा भी बोला—हे ब्रह्मन! मेरी परमोत्तम ललना नष्ट हो गई है। मैंने भी बहुत कुछ श्रम किया था। मैं उसके लिये किस से क्या कहूँ ॥६२॥ आकाश से पर्वत के समान आकार वाला वृक्ष श्रेष्ठ था जो कि सिद्धों के वाक्य को सुन कर सहस्रो टुकड़े काट कर कर दिया गया है ॥६३॥

ते चैव सा वरारोहा विभिन्ना लाघवान्मया ।
न च जानामि सा कुत्र तस्माद्गच्छामि मार्गितुम् ॥६४

इत्येवमुक्त्वा स नृप. समुत्थाय त्वरान्वितः ।
स्यन्दनानि द्विजाभ्या स भ्रातृपुत्राय चार्पयत् ॥६५

तेऽधिरुह्यरथास्तूर्णं मार्गन्ते वसुधा क्रमात् ।
बदर्याश्रममासाद्य ददृशुस्तपसा निधिम् ॥६६

तपसा कर्शित दीन मल पङ्कजटाधरम् ।
नि.श्वासायासपरम प्रथमे वयसि स्थितम् ॥६७

तमुपेत्याब्रवीद्राजा इन्द्रद्युम्नो महाभुजः ।
तपस्वियोन्वने घोर आस्थितोऽसि सुदुश्चरम् ॥६८

याऽसौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे ।
सप्तगोदावरे तीर्थे सा मयैव विवर्जिता ॥७५

आगच्छ चागमिष्यामस्तस्मादेव हि कारणात् ।
तत्रास्माक समेष्यन्ति कन्यास्तिस्रस्तथाऽपराः ॥७६

इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य सुदेवजाम् ।
शकुनि पुरतः कृत्वा सेन्द्रद्युम्नः सपुत्रकः ॥७७

स्यन्दनेनाश्वयुक्तेन गन्तुं समुपचक्रमे ।
सप्तगोदावर तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः ॥७८

मैं मनु का पुत्र और इक्ष्वाकु का प्रिय भाई हूँ—यह आपको बतला दिया है । उस नृप ने अपना पूर्व सम्पूर्ण चरित कह सुनाया था ॥७१॥ यह सुनकर वह राजर्षि बोला—शरीर का त्याग मत करो । तुम मेरे भ्रातृज हो । उस तन्वङ्गी को खोजने के लिये आआऊंगा ॥७२॥ इतना कहकर उसने धर्म मे सुमयत नृप को भली भाँति परिष्वजन कर फिर शीघ्र ही रथ मे बिठाकर तापसो मे निवेदन किया ॥७३॥ पुत्र युक्त ऋतध्वज ने उस राजा को देखकर कहा था—हे राजन् ! आओ, आओ, मैं तुम्हारा प्रिय करूंगा ॥७४॥ जो यह चित्राङ्गदा नाम वाली तुमने नैमिष मे देखी थी वह सप्त गोदावर तीर्थ मे मैंने ही विवर्जित की है ॥७५॥ आओ, इसी कारण से आयेंगे । वहाँ पर दूसरी भी तीन कन्याऐं हमारे पास आयेंगी ॥७६॥ इतना भर कह कर उस ऋषि ने सुदेवजा को समाश्वासन देकर आगे शकुनि को करके अपने पुत्र और इन्द्रद्युम्न के साथ अश्व से युक्त रथ के द्वारा वहाँ जाने का उपक्रम किया था जहाँ सप्त गोदावर तीर्थ था और जहाँ पर वे कन्याऐं गयी हुई थी ॥७७-७८॥

एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकसंयुता ।
विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती सुतां निजाम् ॥७९

तमासमाद च कपि पर्यपृच्छद्यथाऽप्सराः ।
किं याला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व मे ॥८०

तपः किमर्थं तच्छंम किमभिप्रेतमुच्यताम् ।
सोऽब्रवीत्को भवान्ब्रूहि ममात्मान सुहृत्तया ॥६८
परिपृच्छसि शोकार्तं परिद्यून तपोऽन्वितम् ।
स प्राह राजाऽस्मि बली तपस्विन्शाकले पुरे ॥७०

वे और वह वरारोहा लाघव के कारण मुझ से भिन्न हो गई है। मैं नहीं जानता हूं कि वह इस समय में कहाँ पर है। इसीलिये मैं उसे खोजने के लिये जा रहा हूँ ॥६४॥ बस इतना ही कह कर वह राजा त्वरा (शीघ्रता) से युक्त होकर उठ खड़ा हुआ था और द्विजों से युक्त स्पन्दनों (रथों) को भाई के पुत्र को दे दिये थे ॥६५॥ वे उन रथों पर अधिरूढ़ होकर शीघ्र ही क्रम से पृथ्वी की खोज कर रहे थे। बदरी आश्रम में आकर उन्होंने तपोनिधि को देखा था ॥६६॥ वह प्रथम अवस्था में स्थित होता हुआ भी तपश्चर्या से अत्यन्त कृश-क्षीण और मल पङ्क तथा जटा के धारण करने वाला था ॥६७॥ महान् भुजाओं वाला इन्द्रद्युम्न राजा उसके समीप में आकर बोला—आप तपस्वियों के इस घोर वन में आस्थित हो रहे हैं। यह अत्यन्त सुदुश्चर तप किस लिये कर रहे हैं ? वह मुझे बतलाइये। आपका अभिप्रेत क्या है—यह भी कहिए। उसने मुझसे कहा—आप कौन हैं। सौहार्द भाव से मुझे अपने आपका परिचय दीजिए ॥६८-६९॥ आप क्यों इस परद्यून शोक में अतीव दुःखित तपोनिधि को पूछ रहे हैं ? उसने कहा—हे तपस्विन् ! शाकल पुर में मैं एक बलवान् राजा हूँ ॥७०॥

मनोः पुनः प्रियो भ्राता इक्ष्वाकोः कथित तव ।
स चास्मै पूर्वचरित सर्वं कथितवान्नृप ॥७१
श्रुत्वा प्रोवाच राजर्षिर्मा मुञ्चस्व कलेवरम् ।
आगमिष्यामि तन्वङ्गी विचेतुं भ्रातृजोऽसि मे ॥७२
इत्युक्त्वा सपरिष्वज्य नृप धर्मे सुसयतम् ।
समारोप्य रथ तूर्णं तापसाभ्या न्यवेदयत् ॥७३
ऋतध्वजः सपुत्रस्तु त दृष्ट्वा पृथिवीपतिम् ।
प्रोवाच राजन्नेह्यहि करिष्यामि तव प्रियम् ॥७४

याऽसौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे ।
सप्तगोदावरे तीर्थे सा मयैव विवर्जिता ॥७५

आगच्छ चागमिष्यामस्तस्मादेव हि कारणात् ।
तवास्माकं समेष्यन्ति कन्यास्तिस्त्रस्तथाऽपराः ॥७६

इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य तु देवजाम् ।
शकुनिं पुरतः कृत्वा सेन्द्रद्युम्नः सपुत्रकः ॥७७

स्यन्दनेनाश्वयुक्तेन गन्तुं समुपचक्रमे ।
सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः ॥७८

मैं मनु का पुत्र और इक्ष्वाकु का प्रिय भाई हूँ—यह आपको बतला दिया है । उस नृप ने अपना पूर्व सम्पूर्ण चरित वह सुनाया था ॥७१॥ यह सुनकर वह राजर्षि बोला—शरीर का त्याग मत करो । तुम मेरे भ्रातृज हो । उस तन्वङ्गी को खोजने के लिये आजाऊंगा ॥७२॥ इतना कहकर उसने धर्म मे सुमग्न नृप को भली भाँति परिष्वजन कर फिर शीघ्र ही रथ मे बिठाकर तापसो से निवेदन किया ॥७३॥ पुत्र युक्त ऋतध्वज ने उस राजा को देखकर कहा था—हे राजन् ! आओ, आओ, मैं तुम्हारा प्रिय करूंगा ॥७४॥ जो यह चित्राङ्गदा नाम वाली तुमने नैमिष मे देखी थी वह सप्त गोदावर तीर्थ मे मैंने ही विवर्जित की है ॥७५॥ आओ, इसी कारण से आयेंगे । वहाँ पर दूसरी भी तीन कन्याऐं हमारे पास आयेंगी ॥७६॥ इतना भर कह कर उस ऋषि ने सुदेवजा को समाश्वासन देकर आगे शकुनि को करके अपने पुत्र और इन्द्रद्युम्न के साथ अश्व से युक्त रथ के द्वारा वहाँ जाने का उपक्रम किया था जहाँ सप्त गोदावर तीर्थ था और जहाँ पर वे कन्याऐं गयी हुई थी ॥७७-७८॥

एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकसयुता ।
विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती सुतां निजाम् ॥७९

तमासमाद च कपि पर्यपृच्छद्यथाऽप्सराः ।
किं वाला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व मे ॥८०

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स कपिः प्राह बालिकाम् ।
दृष्ट्वा देववती नाम सा च न्यस्ता महाश्रमे ॥८१
कालिन्द्या विमले तीरे मृगपक्षिसमन्विते ।
श्रीकण्ठायतनस्याग्रे मया सत्यं तवोदितम् ॥८२
सा प्राह वानरवरं नाम्ना वेदवतीति सा ।
न हि देववती ख्याता तदागच्छ व्रजावहे ॥८३
घृताच्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानरस्त्वरितक्रमः ।
पृष्ठतोऽस्याः समागच्छन्नदीमन्वेव कौशिकीम् ॥८४

इसी बीच में तन्वी घृताची शोक से युक्त होकर अपनी पुत्री को खोज करती हुई उदय गिरि पर विचरण कर रही थी ॥७६॥ उस कपि के समीप में प्राप्त हुई थी। उस अप्सरा ने पूछा—हे कपे ! क्या आपने वह बाला देखी है ? मुझे सत्य २ बतलादो ॥८०॥ उसके इस वचन को श्रवण कर वह कपि उस बालिका से बोला—देववती नाम धारिणी को देखा है और उसे एक महान् आश्रम में न्यस्त कर दिया है ॥८१॥ कालिन्दी के विमल तट पर जहाँ मृग और पक्षी गण विद्यमान् हैं। भगवान् श्रीकण्ठ के आयतन के आगे मैंने आपको बिलकुल सच बतला दिया है॥८२॥उसने उस श्रेष्ठ वानर से कहा—वह नाम से देववती है। सो देववती तो विख्यात नहीं है सो आओ, वहीं पर चलें ॥८३॥ घृताची के इस वचन को सुनकर वानर बहुत शीघ्रगामी होकर इसके पीछे ही कौशिकी नदी पर आगया था ॥८४॥

प्राप्ता राजर्षिप्रवरास्त्रयस्ते चापि कौशिकीम् ।
द्वितयं तापसाभ्यां च रथाः पश्चाश्ववेगिभिः ॥८५
अवतीर्य रथेभ्यस्ते स्नातुमभ्यागमन्नदीम् ।
घृताच्यपि नदीं स्नातुं सुपुण्यामाजगाम ह ॥८६
तामन्वेव कपिः प्रायादृष्टो जाबालिना तथा ।
दृष्ट्वं च पितरं प्राह पार्थिवं च महाबलम् ॥८७
स एष पुनरायाति वानरस्तात वेगवान् ।
पूर्वं जटास्वेव बलाद्येन बद्धोऽस्मि पादपे ॥८८

तज्जावालिवचः श्रुत्वा शकुनिः क्रोधसंयुतः ।
सशर धनुरानम्य इद वचनमब्रवीत् ॥८६

ब्रह्मन्प्रदीयता मह्यमाज्ञा तात वदस्व माम् ।
यावदेन निहन्म्यद्य शरेणैकेन वानरम् ॥६०

इत्येवमुक्ते वचने सर्वभूतहिते रतः ।
महर्षिः शकुनि प्राह हेतयुक्त वचोमहत् ॥६१

वे तीनो राजर्षि प्रवर भी कौशिकी नदी पर प्राप्त हो तपस्वी और अति वेग वाले घोडो तथा वेग वाले अश्वों से युक्त रथ भी वहाँ आगये थे ॥८५॥ वे सब रथ से नीचे उतर कर नदी मे स्नान करने के लिये गये थे तह घृताची भी परम पुण्यमयी उस नदी मे स्नान करने के लिये आगई थी ॥८६॥ उसके पीछे ही वह कपि भी आगया था तथा उसे जाबालि ने देखा । उसे देखने ही महान् बलवान् पिता राजा से उमने कहा—॥८७॥ हे तात ! यह वेग से समन्वित वानर फिर यहाँ आरहा है जिसने पहिले बलपूर्वक जटाओ मे इस पादप मे मुझे बाँध दिया था । ॥८८॥ जाबालि के उस वचन को सुनकर शकुनि अत्यन्त क्रोध से युक्त होगया था और बाण से युक्त धनुष को खींचकर यह वचन कहा था ॥८६॥हे ब्रह्मन् ! मुझे आप अपनी आज्ञा प्रदान कीजिये । हे तात ! मुझे आप बतलाइये । मैं आज अपने एक बाण से इस वानर को मार डालता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार के वचन के कहने पर फिर समस्त प्राणियो के हित मे रति रखने वाले महर्षि शकुनि हेतु मे युक्त परम महान् वचन बोले ॥६१॥

न कश्चित्तात केनापि वध्यते वध्यतेऽपि वा ।
वधवन्धौ पूर्वकर्मवशौ नृपतिनन्दन ॥६२

इत्येवमुक्तः शकुनिरर्थपि वचनमब्रवीत् ।
ममाज्ञा दीयता ब्रह्मन्शाधि कि करवाण्यहम् ॥६३

इत्युक्तः प्राह स मुनिस्त वानरपति वचः ।
मम पुत्रस्त्वयोद्बद्धो जटाभिर्वटपादपे ॥६४

न चेन्मोचयितुं वृक्षाच्छक्नुयाच्चापि यत्नतः ।
तदनेन नरेन्द्रेण त्रिधा कृत्वा तु शाखिनम् ॥६५
शाखां वहति मत्सूनुः शिरसा तां विमोचय ।
दशवर्षशतान्यस्य शाखां वै वहतो गताः ॥६६
न चास्ति पुरुषः कश्चिद्यो ह्युन्मोचयितुं क्षमः ।
स ऋषेर्वचनं श्रुत्वा कपिर्जाबालिनो जटाः ॥६७
शनैरुन्मोचयामास क्षणादुन्मोचिताश्चताः ।
ततः प्रीतो मुनिश्रेष्ठो वरदोऽभूदृतध्वज ॥६८

हे तात ! किसी के द्वारा भी कोई बाँधा नहीं जाया करता है अथवा बाँधा भी जाता है तो यह बन्धन दोनों पूर्व जन्म में किये हुए कर्म के अधीन ही हुआ करते हैं । हे नृपति नन्दन ! अन्यथा न तो, कोई मारा जाया करता है और न बाँधा ही जाता है ॥६२॥ इस भाँति से कहे हुए भी शकुनि ऋषि से यही वचन बोला—हे ब्रह्मन् ! मुझे आप आदेश प्रदान कीजिए और शासन करिये कि मैं क्या करूँ ॥६३॥ इस प्रकार से कहे जाने पर वह मुनि उस वानरपति से बोला—तुमने मेरे पुत्र को वृक्ष में जटाओं से बाँधा था ॥६४॥ यत्न करने पर भी उस वृक्ष से उन्मोचन नहीं कर सका था । सो इस नरेन्द्र ने उस शाखी के तीन भाग कर दिये थे॥६५ ।मेरा पुत्र सिर में अभी भी उसकी, शाखा का वहन कर रहा है । उस शाखा को दूर करदो । एक हजार वर्ष इस शाखा को वहन करते व्यतीत होगए हैं ॥६६॥ कोई भी ऐसा पुरुष, नहीं है जो इससे उसका उन्मोचन करने में समर्थ हो सके । वह कपि, ऋषि के इस वचन को सुनकर जाबालि की उन जटाओं को क्षण भर में उन्मोचित कर दिया था । इसके पश्चात् वह श्रेष्ठ मुनि परम प्रसन्न, हुआ था और ऋतध्वज वरद होगया था ॥६८॥

कपिं प्राह वृणीष्व त्वं वरं यन्म मेप्सितम् ।
ऋतध्वजवचः श्रुत्वा इमं वरमयाचत ॥६६
विश्वकर्मा महातेजा कपित्वे प्रतिसंस्थितः ।
यद्गृहमत्वान्वरं मह्यं यदि दातुं यथेच्छसि ॥१००

तत्र दत्तो महाघोरो मम शापो निवर्त्यताम् ।
चित्राङ्गदायाः पितरं मां त्वष्टारं तपोधनम् ॥१०१
अभिजानीहि भवतः शापाद्वानरतां गतम् ।
सुबहूनि च पापानि मया यानि कृतानि हि ॥१०२
कपिचापल्यदोषेण तानि मे यान्तु सक्षयम् ।
ऋतध्वजस्ततः प्राह शापस्यान्तो भविष्यति ॥१०३
यदा घृताच्या तनयं जनिष्यसि महाबलम् ।
इत्येवमुक्तः संहृष्टः स तदा कपिसत्तमः ॥१०४
स्नातुं तूर्णं महानद्यामवतीर्णः कृशोदरि ।
ततस्तु सर्वे क्रमशः स्नात्वा च पितृदेवताः ॥१०५

वह उस कपि से बोला—तू अब मुझसे जो भी तुम अभीष्ट हो वरदान माँगले । ऋतध्वज के वचन को सुन कर उसने यह वरदान माँगा था ॥९९॥ महान् तेजस्वी विश्व कर्म्मा कपिन्द्र मे प्रति संस्थित हो जावे । हे ब्रह्मन् ! आप यदि मुझे कोई वरदान देना ही चाहते हैं तो यही वरदान देवें ॥१००॥ और मुझे दिया हुआ महान् घोर वह शाप निवृत्त हो जावे । चित्राङ्गदा पिता त्वष्टा तपोधन मुझको जान लेवे कि आपके शाप से वानरता को प्राप्त हुआ है । जो बहुत से पाप मैंने किये हैं और कपि के चपलता के स्वभाव के वशीभूत होकर किये हैं वे सभी मेरे क्षय को प्राप्त हो जावे । फिर ऋतध्वज ने कहा—शाप का अन्त होगा ॥१०१-१०३॥ जिस समय में घृताची में महान् बलवान् तनय को तुम समुत्पन्न करोगे तभी शाप की समाप्ति होगी । इस प्रकार से कहा गया वह श्रेष्ठ कपि अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ॥१०४॥ हे कृशोदरि ! फिर वह उस महानदी में स्नान करने के लिये अवतीर्ण हुआ था । इसके पश्चात् सभी पितृगण और देव वृन्द ने क्रमशः स्नान किया था ॥१०५॥

जग्मुर्हृष्टा रथेभ्यस्ते घृताची दिवमुत्पतत् ।
तामन्वेव महावेगः स कपिः प्लवतां वरः ॥१०६

छोड़ दिया था। वे घोड़े घास वाले वन के मार्गों में थोड़ी देर प्रचरण कर रहे थे ॥११२॥

तृप्ताः समाद्रवन्सर्वे देवालयमनुत्तमम् ।
तुरङ्गखुरनिर्घोषं श्रुत्वा ता योषितां वराः ॥११३
किमेतदिति चोक्त्वैव प्रजग्मुर्हाटकेश्वरम् ।
आरुह्य वलभी तास्तु समुदैक्षन्त सर्वशः ॥११४
अपश्यस्तीर्थसलिल आप्लुनाङ्गान्नरोत्तमान् ।
ततश्चित्राङ्गदा दृष्ट्वा जटा मण्डलधारिणम् ।
हसन्ती सुरथं प्राह सरोहत्पुलका सखीम् ॥११५
योऽसौ युवा नीलघनप्रकाशः सलक्ष्यते दीर्घभुजः सुरूपः ।
स एव नूनं नरदेवसूनुर्वृतो मया पूर्वपतिः पतिर्यः ॥११६
यश्चैष जाम्बूनदतुल्यवर्णः श्वेतं जटाभारमधारयिष्यत् ।
स एष नून तपता वरिष्ठश्चतध्वजो नात्रविचारणाऽस्त ॥११७
ततोऽब्रवीदथो हृष्टा दमयन्ती सखीजनम् ।
एषोऽपरोऽस्यैव सुतो जाबालिर्नात्र संशयः ॥११८
इत्येवमुक्त्वा वचनं वलभ्या अवतीर्य च ॥११९
समासन्नाऽग्रतः शम्भोर्गायन्ती गीतकान्शुभान् ॥१२०

वे सब वन तृप्त होगये, उस परमोत्तम देवालय में दौड़कर पहुँच गये थे। उन अश्वों की टापों की ध्वनि श्रवण करके उन नारी रत्नों को परम आश्चर्य हुआ था ॥११३॥ यह क्या मामला है—ऐसा कह कर ही वे सब हाटकेश्वर के निकट चली गयी थीं। बलभी पर चढ़ कर उन सब ने देखा ॥११४॥ उन्होंने उस तीर्थ के जल में गोता लगाते हुए नरोत्तमों को देखा था। इसके पश्चात् चित्राङ्गदा ने जटामण्डल के करने वाले का देखा था। सुरथ को हँसती हुई उसने स्वयं पुलकायमान होकर सखी से कहा—॥११५॥ जो यह नील मेघ के समान प्रकाश वाला—दीर्घ भुजाओं से युक्त सुन्दर स्वरूप से सम्पन्न युवा दिखाई देता है निश्चय ही यह वही नरदेव का पुत्र है जिसको मैंने प्रथम पति वरण किया था ॥११६॥ और जो यह जाम्बूनद के समान वर्ण वाला

है और जिसने श्वेत जटाओं के भार को धारण किया है। वही तपस्वियों में परम श्रेष्ठ ऋतध्वज निश्चय ही है—इसमें कुछ भी विचार की आवश्यकता नहीं है ।।११७।। इसके उपरान्त परम प्रसन्न दमयन्ती सखीजन से बोली—यह दूसरा जो है वह इसी का पुत्र जाबालि है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।।११८।।इतना कह कर ही वलभी से उतर फिर भगवान् शम्भु के आगे समीप में आकर उपस्थित होगई और परम शुभ गीतों का गान करने लगी थी ।।११९-१२०।।

समारूढाश्च सुस्नाता ददृशुर्योषितः शुभाः ।
स्थितास्तु पुरतस्तस्य गायन्त्यो गेयमुत्तमम् ।।१२१
ततः सुदेवतनयो विश्वकर्मं सुता प्रियाम् ।
दृष्ट्वा हर्षितचित्तस्तु सरोहरपुलको बभौ ।।१२२
ऋतध्वजोऽपि तन्वङ्गी दृष्ट्वा चित्राङ्गदा स्थिताम् ।
प्रत्यभिज्ञाय योगात्मा बाला मुदितमानसः ।।१२३
ततस्तेऽपि समभ्येत्य देवेश हाटकेश्वरम् ।
सपूजयन्तस्त्र्यक्ष ते सस्तुवन्तः क्रमात्ततः ।।१२४
चित्राङ्गदाऽपि तान्दृष्ट्वा ऋतध्वजपुरोगमान् ।
सम ताभिः कृशाङ्गीभिरभ्युत्थायाभ्यवादयत् ।।१२५
स च ताः प्रतिनन्द्यथ सम पुत्रेण तापसः ।
सम नृपतिभिर्हृष्टः संविवेश यथासुखम् ।।१२६

वे सब समारूढ होकर तथा भली भाँति स्नानादि करके शिव के आगे गेयुत्तम गीतों को गाती हुई उन परम शुभ योषितों को देखने लगे थे ।।१२१।। इसके पश्चात् सुदेव के पुत्र ने विश्वकर्मा की प्रिय पुत्री को देखकर परम हर्षित चित्त वाला हो गया था और पुलकायमान होकर शोभित हुआ था ।।१२२।।ऋतध्वज भी वहाँ पर संस्थित तन्वङ्गी चित्राङ्गदा को देखकर योगात्मा ने उसे भली भाँति पहिचान लिया था तब मन में अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ।।१२३।। इसके पश्चात् वे सब भी वहाँ पर आ गये थे और देवेश्वर भगवान् हाटकेश्वर की पूजा करते हुए त्रिलोचन प्रभु की क्रम से स्तुति करने लगे थे ।।१२४।। चित्रांगदा ने भी ऋतध्वज

जिनमे अग्रगामी था उन सब को देखकर उन सब कृशांगियो के साथ खडी होगई थी और फिर आदर पूर्वक सबको अभिवादन किया था ॥१२५॥ और उसने भी जोकि एक तापस था पुत्र के सहित उनका प्रत्यभिनन्दन किया था तथा सब राजाओ के साथ परम प्रसन्न होकर सुख पूर्वक वहाँ बैठ गया था ॥१२६॥

ततः कपिवरः प्राप्तो घृताच्या सह सुन्दरि ।
स्नात्वा गोदावरीतीर्थे दिदृक्षुर्हाटकेश्वरम् ॥१२७
ततोऽपश्यञ्च तां तन्वीं घृताची शुभदर्शनाम् ।
साऽपि तां मातरं दृष्ट्वा हृष्टाभूद्वरवर्णिनी ॥१२८
ततो घृताची स्वां पुत्रीं परिष्वज्य न्यपीडयत् ।
स्नेहात्सवाष्पनयना मुहुस्तां परिजिघ्रती ॥१२९
ऋतध्वजस्ततः श्रीमान्कपिं वचनमब्रवीत् ।
गच्छानेतुं गुह्यक त्वमञ्जनाद्रौ महाजनम् ॥१३०
पातालादपि दैत्येश वीर कन्दरमालिनम् ।
स्वर्गाद्गन्धर्वराजानं पर्जन्यं शीघ्रमानय ॥१३१
इत्येवमुक्ते मुनिना प्राह देववती कपिम् ।
गालव वानरश्रेष्ठ इहानेतुं त्वमर्हसि ॥१३२
इत्येवमुक्ते वचने कपीन्द्रोऽमितविक्रमः ।
गत्वाऽञ्जनं समामन्त्र्य जगामामरपर्वतम् ॥१३३

इसके पश्चात् वह कपि श्रेष्ठ भी वहाँ पर घृताची के साथ हे सुन्दरि ! प्राप्त हो गया था । वह भी गोदावरी तीर्थ में स्नान करके भगवान् हाटकेश्वर के दर्शन करने की इच्छा वाला होगया था ॥१२७॥ इसके पश्चात् परम शुभ दर्शन वाली तन्वी घृताची को देखा था । वह भी उस अपनी माता को देख कर वर वर्णिनी अत्यन्त हर्षित होगई थी ॥१२८॥ इसके पश्चात् उस घृताची ने अपनी पुत्री का आलिंगन किया था । स्नेह के कारण उसके नेत्रों में अश्रु आगये थे और बारम्बार उसका घ्राण कर रही थी ॥१२९॥ इसके अनन्तर ऋतध्वज ने उस कपि से यह वचन कहा था—तुम अञ्जनाद्रि में चले जाओ और उस

महाजन गुह्यक को लिवा लाओ ॥१३०॥ पाताल से भी परम वीर कन्दर माली दैत्येश्वर को तथा स्वर्ग से गन्धर्वों के राजा पर्जन्य को अति शीघ्र लिवा लाओ ॥१३१॥ इस प्रकार से मुनि के द्वारा कहने पर देवव्रती ने उस कपि से कहा—हे कपिश्रेष्ठ ! तुम गालव को भी यहाँ लाने के योग्य हो ॥१३२॥ इस तरह वचन के कहे जाने पर अमित बल विक्रम वाला वह कपीन्द्र अञ्जन पर्वत पर समाश्रित करके अमर पर्वत पर चला गया था ॥१३३॥

पर्जन्य तत्र चामन्त्र्य प्रेषयित्वा महाश्रमे ।
सप्तगोदावरीतीर्थे पातालमगमत्कपि ॥१३४
तत्रामन्त्र्य महावीर्यं कपि कन्दरमालिनम् ।
पातालादतिनिष्क्रम्य मही पर्यचरज्जवी ॥१३५
गालव तपसो योनि दृष्ट्वा माहिष्मतीमनु ।
तमुत्पत्यानयच्छीघ्र सप्तगोदावरीजलम् ॥१३६
तत्र स्नात्वा विधानेन सप्राप्तो हाटकेश्वरम् ।
ददृशे दमयन्ती ता स्थिता वेदवतीमपि ॥१३७
दृष्ट्वा गालव चैव समुत्थायाभ्यवादयत् ।
ते चापि नृपतिश्रेष्ठास्त सपूज्य तपोधनम् ॥१३८
प्रहर्षमतुल गत्वा उपविष्टा यथा सुखम् ।
तेषूपविष्टेषु तदा वानरेण निमन्त्रिताः ॥१३९
समायाता महात्मानो यक्षगन्धर्वदानवा ।
तानागतान्समीक्ष्यैव पुष्यरता: पृथुलोचना: ॥१४०

पि
म

वहा विधान पूर्वक स्नान करके भगवान् हाटकेश्वर के समीप में प्राप्त हो गया था। वहा पर उसने उस दमयन्ती और वेदमती को सुस्थित देखा था ।।१३७।। उस गालव मुनि का दर्शन करके उठकर अभिवादन किया था। सब श्रेष्ठ नृपतियों ने भी उस तपोधन का भली भाति पूजन किया था ।।१३८।। सब को अत्यन्त ही हर्ष प्राप्त हुआ था और फिर सब सुखपूर्वक बैठ गये थे। उन सबके बैठ जाने पर उस वानर के द्वारा निमन्त्रित महात्मा यक्ष, गन्धर्व और दानव वहा समायात हो गये थे। उन सब को वहा पर आये हुए देखकर ही वे सब पुत्रियाँ विकसित नेत्रो वाली होगई थी ।।१३९-१४०।।

स्नेहार्द्रनयनास्ता वै तदा सस्वजिरेपितॄन् ।
दमयन्त्यादिका दृष्ट्वा पितृयुक्ता वरानना ।।१४१
सबाष्पनयना जाता विश्वकर्मसुता तदा ।
अथ तामाह स मुनिः सत्य सत्यध्वजो वचः ।।१४२
मा विषाद कृथाः पुत्रि पिताऽस्य तव वानरः ।
सा तद्वचनमाकर्ण्य व्रीडोपहतचेतना ।।१४३
कथं तु विश्वकर्माऽसौ वानरत्व गतोऽधुना ।
दुष्पुत्र्या मयि जाताया तस्मात्त्यक्ष्ये कलेवरम् ।।१४४
इति सञ्चिन्त्य मनसा ऋतध्वजमुवाच ह ।
परित्रायस्व मा ब्रह्म-पापोपहृतचेतसम् ।।१४५
पितृघ्नी मर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ।
अथोवाच मुनिस्तन्वी मा विषाद कृथाधुना ।।१४६
सभाव्येन विनाशोऽस्ति तन्मात्याक्षीः कलेवरम् ।
भविष्यति पिता तुभ्य भूयोऽप्यमरवर्द्धकि. ।।१४७
जातेऽपत्ये घृताच्या तु नात्र कार्या विचारणा ।
इत्येवमुक्ते वचने मुनिना भावितात्मना ।।१४८

स्नेह से आर्द्र नेत्रो वाली उन सबने उस समय मे अपने पिताओ का स्नेहालिगन किया था। दमयन्ती आदि सभी वरानना देख कर पिता से युक्त हो गई थी ।।१४१।। उस समय मे विश्वकर्मा की सुता बाष्प युक्त

नेत्रों वाली होगई थी। इस पश्चात् वह सत्यध्वज मुनि उससे सत्य वचन बोला—॥१४२॥ हे पुत्रि ! अब तुम कुछ भी हृदय में विषाद मत करो,तुम्हारा पिता यह वानर है। उसने ऋतध्वज के उस वचन को जैसे सुना था कि वह पीडा से उपहत चेतना वाली हो गई थी ॥१४३॥ वह विश्वकर्मा क्यों अब वानर योनि को प्राप्त हो गया है। मैं एक ऐसी दुष्ट पुत्री उत्पन्न हुई हूँ इस लिये अब मैं तो अपने इस शरीर का त्याग कर दूंगी ॥१४४॥ उसने अपने मन में ऐसा चिन्तन करके फिर वह ऋतध्वज से बोली—हे ब्रह्मन्! आप मुझ पाप से उपहत चित्त वाली का परित्राण करो ॥१४५॥ मैं तो पिता का हनन करने वाली हूँ—मैं अब मरना चाहती हूँ—आप मुझे अपनी आज्ञा दीजिए। इसके पश्चात् वह मुनि बोला–हे तन्वि ! इस समय में तुम विषाद मत करो सम्भाव्य से विनाश है। इसलिये तुम अपने शरीर का त्याग मत करो। यह तुम्हारा पिता फिर भी वैसा ही अमर वर्द्धकि हो जायगा ॥१४६-१४७॥ जब घृताची में सन्तान की उत्पत्ति हो जायगी तो यह वैसा ही हो जायगा—इसमे कुछ भी सन्देह का अवसर नहीं है। इस वचन के भावितात्मा मुनि के द्वारा कहे जाने पर घृताची चित्रांगदा के समीप में आगयी थी ॥१४८॥

घृताची तां समभ्येत्य प्राह चित्राङ्गदां वचः।
परित्यजस्व शोकं त्वं मासैर्दशभिरात्मजः ॥१४९
भविष्यति पितुस्तुल्यो मत्सकाशान्न संशयः।
इत्येवमुक्ता सहृष्टा बभौ चित्राङ्गदा तदा ॥१५०
स्व प्रत्यंक्षत चार्वङ्गी विवाहं पितृदर्शनम्।
सर्वास्ता अपि तावन्तं कालं सुतनुकन्यकाः ॥१५१
प्रत्यंक्षन्त विवाहं हि तस्या एव प्रियेप्सया।
ततो दशसु मासेषु समतीतेष्वथाप्सराः ॥१५२
तस्मिन्गोदावरीतीरे प्रसूता तनयं नलम्।
जातेऽप्सरे सपरिवात्त विश्वकर्माऽप्यमुच्यत ॥१५३

समभ्येत्य प्रियां पुत्रीं पर्यष्वजत चादरात् ।
ततः प्रीतेन मनसा सस्मार सुरवर्द्धकिः ॥१५४

फिर घृताची ने चित्राङ्गदा से यह वचन कहा—तुम अब शोक का त्याग करदो । दश मासों में आत्मज होगा और अपने पिता के तुल्य ही मेरे उदर से समुत्पन्न होगा—इसमें संशय नहीं है । इस तरह से जब घृताची के द्वारा वह कही गयी तो फिर उसी समय मे चित्राङ्गदा बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर शोभित हुई थी ॥१४६-१५०॥ वह चारुतम अंगों वाली अपना विवाह और पिता के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगी थी । और सब भी सुतनु कन्यकाऐं उस काल तक की प्रतीक्षा मे थीं कि उसके विवाह मे उसके प्रिय की अभिलाषा पूर्ण हो। इसके पश्चात् दश मासों के व्यतीत हो जाने पर उस अप्सरा ने गोदावरी के तट पर तनय नल का प्रसव किया था । उस सन्तान के समुत्पन्न होने पर विश्वकर्मा भी कपित्व से मुक्त होगया था ॥१५१-१५३॥ उसने फिर आकर अपनी प्रिय पुत्री का स्नेहालिंगन किया था और बहुत कुछ आदर भी किया था । फिर प्रसन्न मन से सुर वर्द्धकि ने स्मरण किया था ॥ १५४ ॥

सुराणामधिप शक्रं सहैव सुरकिन्नरैः ।
त्वष्ट्राऽथ संस्मृतः प्राप्तः शक्रोऽमरगणैर्वृतः ॥१५५
सुरैर्महेन्द्रः सम्प्राप्तस्तत्तीर्थं हाटकाह्वयम् ।
समायातेषु देवेषु गन्धर्वेष्वप्सरस्सु च ॥१५६
इन्द्रद्युम्नो मुनिश्रेष्ठमृतध्वजमुवाच ह ।
जाबालेर्दीयता ब्रह्मन्सुता कन्दरमालिनः ॥१५७
गृह्णातु विधिवत्पाणिं दत्तेय तनया तव ।
दमयन्ती च शकुनिः परिणेता स्वरूपवान् ॥१५८
ममेयं वेदवत्यस्तु हुत्वा हव्य विधानतः ।
बाढमित्यब्रवीत्सोऽपि मुनिर्मनुसुतं नृपम् ॥१५९
ततोऽनुजज्ञे स्त दृष्टा विवाहविधिमुत्तमम् ।
ऋत्विजो गालवाद्याश्च हुत्वा हव्य विधानतः ॥१६०

सद्दृष्टा: समुख तस्थुर्भुञ्जाना विषयेन्द्रियान् ।
चित्राङ्गदायाः कल्याणि पूर्ववृत्त पुरा किल ।
तस्मात्कमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे ॥१६७

इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनुस्ता भूमिदेवस्य सुता वरोरुम् ।
स्तुव-मृगाक्षीमृदुनाक्रमेण सा चापि वाक्य नृपतिवभाषे ॥१६८

इसके पश्चात् विधि पूर्वक इन्द्रद्युम्न ने वेदवती का पाणि ग्रहण किया था। तत्पश्चात् शकुनि ने यक्ष की कन्या का पाणि ग्रहण किया था ॥१६२॥ हे कल्याणि ! फिर चित्रांगदा का पाणिग्रहण सुरथ ने किया था। हे तनुमध्यमे ! इसी क्रम से विवाह निवृत्त हो गया था ॥१६३॥ विवाह के सम्पन्न हो जाने पर मुनि ने इन्द्र आदि से कहा जिनमे दानव गण भी थे। इस तीर्थ मे आप सदा सप्त गोदावर मे यहीं आवें ॥१६४॥ और विशेष करके इस उत्तम माधव मास मे यही पर ठहरा करें। तब देवो ने कहा—ऐसा ही होगा। यह कह कर सब देवगण परम सन्तुष्ट होते हुए दिवलोक को चले गये थे ॥१६५॥ मुनिगण ऋतुध्वज मुनि को लेकर आदर पूर्वक चले गये थे। राजा लोग भी अपनी भार्याओं को लेकर अपने नगरो को चले गये थे ॥१६६॥ सब लोग अत्यन्त हर्षित थे और विषयेन्द्रियों का उपभोग करते हुए स्थित रहने लगे थे। हे कल्याणि ! चित्रांगदा का पहिले यही वृत्त था। इसलिये हे कमल पत्रों के समान नेत्रों वाली ! हे उत्तम ललने ! अब तुम मेरा सेवन करो ॥१६७॥ इतना ही कहकर वह नरदेव का पुत्र उस भूमि देव की वरोरु सुता की स्तुति कर रहा था। वह मृगाक्षी भी क्रम से बहुत ही मृदुस्वर मे नृपति से यह वाक्य बोली—॥१६८॥

६६—दण्ड का भस्म होना

~ तव दास्यामि बहुनोक्तेन किं तव ।
... शापादात्मान च महीपत ॥१

गायन्ति तत्र गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ।
आदौ जाबालिनः पाणिर्गृहीतो दैत्यकन्यया ॥१६१

सुर किन्नरों के सहित सुरों के अधिप इन्द्र को स्वष्टा ने स्मरण किया था और अमर गणों के साथ इन्द्र वहीं पर हो गया था ॥१५५॥ सुरों के साथ महेन्द्र भी उस तीर्थ हाटकेश्वर नाम वाले पर सम्प्राप्त हो गये थे। सब देव-गन्धर्व और अप्सराओं के वहाँ पर समायात हो जाने पर इन्द्रद्युम्न मुनिश्रेष्ठ ने ऋतध्वज से कहा था—हे प्रह्लाद ! अब कन्दरमाली की पुत्री को जाबालि को दे देना चाहिए ॥१५६-१५७॥ हे दैतेय ! आपकी पुत्री विधि पूर्वक पाणिग्रहण करे। इसके पश्चात् शकुनि दमयन्ती का परिणेता हो जावे ॥१५८॥ मेरी यह वेदवती तो विधान से हव्य का हवन करके मनुसुत नृप का वरण करे। उस मुनि ने भी—बहुत ठीक है—यही कह दिया था ॥१५९॥ इसके उपरान्त सब ने प्रसन्न होकर विवाह की उत्तम विधि का पालन किया था। गालव आदि सब ऋत्विज थे जिन्होंने विधि पूर्वक हव्य का हवन किया था ॥१६०॥ वहाँ पर उस समय में गन्धर्व लोग गान कर रहे थे और अप्सराओं ने नृत्य किया था। सबसे आदि में जाबालि ने दैत्य की कन्या के साथ पाणि ग्रहण किया था ॥१६१॥)

इन्द्रद्युम्नेन तदनु वेदवत्या विधानतः ।
ततः शकुनिना पाणिर्गृहीतो यक्षकन्यया ॥१६२
चित्राङ्गदायाः कल्याणि सुरथः पाणिमग्रहीत् ।
एवं क्रमाद्विवाहस्तु निर्वृत्तस्तनुमध्यमे ॥१६३
वृत्ते मुनिर्विवाहे तु शक्रादीन्प्राहदानवान् ।
अस्मिंस्तीर्थे भवद्भिस्तु सप्तगोदावरे सदा ॥१६४
स्थेयं विशेषतो मासमिमं माधवमुत्तमम् ।
बाढमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा दिवं क्रमात् ॥१६५
मुनयो मुनिमादाय सपुत्रं जग्मुरादरात् ।
भार्याश्चादाय राजानः स्वस्वं नगरमागताः ॥१६६

सहृष्टाः समुख तस्थुर्भुञ्जाना विषयेन्द्रियान् ।
चित्राङ्गदायाः कल्याणि पूर्ववृत्त पुरा किल ।
तस्मात्वमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे ॥१६७

इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनुस्ता भूमिदेवस्य सुता वरोरुम् ।
स्तुवन्मृगाक्षीमृदुनाक्रमेण सा चापि वाक्य नृपतिंग्रभाषे ॥१६८

इसके पश्चात् विधि पूर्वक इन्द्रद्युम्न ने वेदवती का पाणि ग्रहण किया था। तत्पश्चात् मङ्गनि ने यक्ष की कन्या का पाणि ग्रहण किया था ॥१६२॥ हे कल्याणि ! फिर चित्रांगदा का पाणिग्रहण सुरथ ने किया था। हे तनुमध्यमे ! इसी क्रम से विवाह निर्वृत्त हो गया था ॥१६३॥ विवाह के सम्पन्न हो जाने पर मुनि ने इन्द्र आदि से कहा जिनमें दानव गण भी थे। इस तीर्थ में आप सदा सप्त गोदावर में यहाँ आवें ॥१६४॥ और विशेष करके इस उत्तम माधव मास में यहीं पर ठहरा करें। सब देवों ने कहा—ऐसा ही होगा। यह कह कर सब देवगण परम सन्तुष्ट होते हुए दिवलोक को चले गये थे ॥१६५॥ मुनिगण ऋतुज मुनि को लेकर आदर पूर्वक चले गये थे। राजा लोग भी अपनी भार्याओं को लेकर अपने नगरी को चले गये थे ॥१६६॥ सब लोग अत्यन्त हर्षित थे और विषयेन्द्रियों का उपभोग करते हुए स्थित रहने लगे थे। हे कल्याणि ! चित्रांगदा का पहिले यही वृत्त था। इसलिये हे कमल पत्रों के समान नत्रों वाली ! हे उत्तम ललने ! अब तुम मेरा सेवन करो ॥१६७॥ इतना ही कहकर वह नरदेव का पुत्र उस भूमि देव की वरोरु सुता की स्तुति कर रहा था। वह मृगाक्षी भी क्रम से बहुत ही मृदुस्वर में नृपति से यह वाक्य बोली—॥१६८॥

६६—दण्ड का भस्म होना

नात्मान तव दास्यामि बहुनोक्तेन किं तव ।
रक्षन्तीः भवत शापादात्मान च महीपत ॥१

इत्थं विवदमानां तां भार्गवेन्द्र सुतां वलात् ।
कामोपहतचित्तात्मा व्यध्वंसयत मन्दधीः ॥२
तां कृत्वा च्युतचारित्रां मदान्धः पृथिवीपतिः ।
निश्चक्रामाश्रमात्तस्माद्गतश्च नगरं निजम् ॥३
साऽपि शुक्रप्लुता तन्वी अरजा रजसा प्लुता ।
आश्रमादथ निर्गत्य बहिस्तस्थावधोमुखी ॥४
चिन्तयन्ती स्वपितरं रुदती च मुहुर्मुहुः ।
महाग्रहोपरुद्धेव रोहिणी शशिनः प्रिया ॥५
ततो बहुतिथे काले समाप्ते यज्ञ कर्मणि ।
पातालादागमच्छुक्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥६
आश्रमान्ते च ददृशे सुतामेत्य रजस्वलाम् ।
मेघलेखामिवाकाशेसंध्यारागेण रञ्जिताम् ॥७

अरजा ने कहा—आपके अत्यधिक कथन से कोई भी लाभ नहीं है। मैं अपने आपको आपकी सेवा में समर्पित नहीं करूंगी। हे महीपते! आपके शाप से मैं अपनी आत्मा का संरक्षण भी करती रहूँगी ॥१॥ प्रह्लाद ने कहा—इस प्रकार से विवाद करती हुई उस भार्गव की कन्या को बलपूर्वक पकड़ कर उस कामदेव से उपहृत आत्मा वाले मन्द बुद्धि ने विध्वंस कर दिया था ॥२॥ मद से अन्धा वह पृथिवीपति उसको चरित्र से च्युत करके उस आश्रम से अपने नगर को निकल कर चला गया था ॥३॥ वह भी शुक्र से लुप्त हुई अरजा रज से भी लुप्त हो गई थी। वह फिर आश्रम से बाहर निकल कर नीचे की ओर मुख किये हुए ही एक स्थल पर बाहर ही स्थित हो गई थी ॥४॥ वह अपने पिता का चिन्तन करती हुई बारम्बार रुदन करती जा रही थी और ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे किसी महान् ग्रह से

देखा था जिस प्रकार से आकाश में सन्ध्या के राग से रञ्जित कोई मेघ की लेखा हो ॥७॥

तां दृष्ट्वा परिपप्रच्छ पुत्रि केनासि धर्षिता ।
क. क्रीडति सरोषेण सममाशविषेण हि ॥८
क्वाद्यैव यामि क्व गतः पापकृत्स सुदुर्मतिः ।
कस्त्वा शुद्धसमाचारां विध्वंसयति पापकृत् ॥९
ततः स्वपितरं दृष्ट्वा कम्पमाना पुनः पुनः ।
रुदन्ती व्रीडयोपेता मन्दं मन्दमुवाच ह ॥१०
तव शिष्येण दण्डेन वार्यमाणेन चासकृत् ।
बलादनाथा रुदती नीताऽहं वचनीयताम् ॥११
एतत्पुत्र्या वचः श्रुत्वा क्रोधसरक्तलोचनः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१२
यस्मात्तेनाविनीतेन ममाज्ञाभयमुत्तमम् ।
गौरवं च तिरस्कृत्य च्युतधर्माऽरजाः कृता ॥१३
तस्मात्सराष्ट्रः सबलः सभृत्यो वाहनैः सह ।
सप्तरात्रान्तराद्भस्म नग्ना दृष्ट्वा भविष्यति ॥१४

उस अपनी बेटी को इस भांति देख कर भार्गव मुनि ने उससे पूछा था—हे पुत्रि! किसने तुझे धर्षित किया है? ऐसा कौन पुरुष है जो रोष में भरे हुए सर्प के साथ क्रीडा करता है? ॥८॥ आज ही मैं कहां पर जाऊँ! वह दुष्ट बुद्धि वाला पापात्मा अब कहां चला गया है? ऐसा कौन है पाप करने वाला जो इस परम शुद्ध आचार वाली तुझको विध्वस्त करता है? ॥९॥ इसके पश्चात् वह अरजा अपने पिता को देख कर बारम्बार काँपती हुई—रुदन करती हुई लज्जा से युक्त होकर बहुत ही धीमे स्वर में बोली ॥१०॥ आपके शिष्य दण्ड ने बार-बार वारित किये जाने पर भी बल पूर्वक अनाथ रुदन करती हुई मुझे वचनीयता को प्राप्त कर दिया था ॥११॥ अपनी पुत्री के इस वचन को सुन कर क्रोध से लाल नेत्रों वाले शुक्राचार्य ने शुद्ध होकर उपस्पर्शन किया और यह वचन कहा—क्यों कि जिस अविनीत ने मेरी आज्ञा-भय

और उत्तम गौरव का तिरस्कार करके मेरी पुत्री अरजा को च्युत धर्म वाली कर दिया है इसी कारण वह नरना को देखकर स्वयं अपने राष्ट्र-बल भृत्य तथा वाहन आदि सबके साथ सात रात्रि के अन्तर मे भस्म हो जायगा ।।१२-१४।।

इत्येवमुक्त्वा मुनिपुङ्गवोऽसौ शप्त्वा स दण्ड स्वसुतामुवाच ।
त्व पापमोक्षार्थमिहैव पुत्रि तिष्ठस्व कल्याणि तपश्चरन्ती ।।१५
शप्त्वेत्थ भगवाञ्छुक्रो दण्डमिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
जगाम स हि पाताल दानवालयमुत्तमम् ।।१६
दण्डोऽपि भस्मसाद्भूतः सराष्ट्रबलवाहनः ।
महता बलगर्वेण सप्तरात्रान्तरे तदा ।।१७
एव ते दण्डकारण्य परित्यक्ष्यन्ति देवताः ।
आलय राक्षसाना तु कृत देवेन शभुना ।।१८
एव परकलत्राणि नयन्ति सुकृतादपि ।
भस्मभूतान्प्राकृतास्तु महान्त च पराभवम् ।।१९
तस्माद्दण्डक दुर्बुद्धिन कार्या भवतास्वियम् ।
प्राकृताऽपि दहेन्नारी किमुताहोऽद्रिनन्दिनी ।।२०
शकरोऽपि न दैत्येश शक्यो जेतु सुरासुरैः ।
न द्रष्टुमपि शक्योऽसौ किमु योधयितु रणे ।।२१

भी भस्मभूत प्राकृतों को और महान् पराभव को प्राप्त करा देती है ॥१९॥ इस कारण से हे अन्धक ! आपको ऐसी दुष्ट बुद्धि कभी नहीं करनी चाहिए। प्राकृत नारी ही मनुष्य को दग्ध कर दिया करती है फिर जगदम्बा अद्रि नन्दिनी के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ॥२०॥ हे दैत्येश ! भगवान् शंकर भी सुर–असुरों के द्वारा नहीं जीते जा सकने के योग्य हैं। इनकी ओर दृष्टि उठा कर कोई भली भाँति तेज की अधिकता के कारण देख भी नहीं सकता है फिर रण क्षेत्र में युद्ध करना तो बहुत दूर की बात है ॥२१॥

इत्येवमुक्ते वचने क्रुद्धस्ताम्रेक्षणः श्वसन् ।
वाक्यमाह महातेजाः प्रह्लादं चान्धकासुरः ॥२२
किं मयाऽसौ रणे योद्धुं शक्तस्त्रिणयनोऽसुर ।
एकाकी धर्मरहितो भस्मारुणितविग्रहः ॥२३
नान्धको बिभियादिन्द्राद्वानरेभ्यः कथंचन ।
स कथं वृषणक्षाग्याद्बिभेति पुरवीक्षणात् ॥२४
तच्छ्रुत्वाऽस्य वचो घोरं प्रह्लादः प्राह नारद ।
सह्यं गर्ह्यं न भवता विरुद्धं धर्मतोऽर्थतः ॥२५
हुताशनपतङ्गाभ्यां सिंहक्रोष्टुकयोरिव ।
गजेन्द्रमशकाभ्यां च रुक्मपाषाणयोरपि ॥२६
एतेषामिव गदितं यावदन्तरमन्धक ।
तावदेवान्तरं नास्ति भवतो हि हरस्य च ॥२७
वारितोऽसिमया वीर भूयोभूयश्च वार्यसे ।
शृणुष्व वाक्यं देवर्षेरसितस्य महात्मनः ॥२८

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इस भाँति कहे जाने पर अन्धकासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया था, उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे और वह गर्म श्वास छोड़ता हुआ प्रह्लाद से बोला—॥२२॥ हे असुर ! क्या यह तीन नेत्रों वाला मेरे साथ युद्ध करने के लिये समर्थ है ? यह अकेला है, धर्म से रहित है और अपने शरीर को भस्म से अरुणित किये रहता है ॥२३॥ यह अन्धक इन्द्र से अथवा मनुष्यों से किसी भी प्रकार भय-

भीत नहीं होता है। फिर वह वृष पत्राकष से आगे देख कर कैसे डर सकता है ॥२४॥ हे नारद! उसके इस अति घोर वचन को सुन कर प्रह्लाद ने कहा—धर्म से और अर्थ से भी विरुद्ध एवं गर्हित कर्म को आप को ही सहना होगा ॥२५॥ आपका भगवान् शकर से भिड़ना हुताशन और पतंग के समान है तथा शेर और गीदड़ के तुल्य है एवं गजेन्द्र और मच्छड़ के समान है। आप और शकर में सुवर्ण एवं पाषाण के समान महान् अन्तर विद्यमान है ॥२६॥ हे अन्धक! इनका जो अन्तर बतलाया गया है आपका और हर का उतना भी अन्तर नहीं है ॥२७॥ हे वीर! मैंने तुमको वारित किया है और बारम्बार अब भी वारण किया जा रहा है। महात्मा देवर्षि असित का वाक्य श्रवण करो ॥२८॥

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जं न तस्य लोके भयमस्ति किंचित् ॥२९
यो धर्महीनः कलहप्रियः सदा परोपतापी श्रुतशास्त्रवर्जितः।
परार्थदारेप्सुरवर्णसंगमी सुखं स विन्देन्न परत्र चेह ॥३०
धर्मान्वितोऽभूद्भगवान्प्रभाकरःसत्यक्तरोषश्च मुनिः स वारुणिः।
विद्यान्वितोऽभून्मनुरर्कपुत्रः स्वदारसंतुष्टमनास्त्वगस्त्यः ॥३१
एतानि पुण्यानि कृतान्यमीभिर्नं पाप बद्धानि कुलक्रमोपरया।
तेजोऽन्विताः पापवरक्षमाश्च जातास्तु सर्वे सुरसिद्धपूज्याः ॥३२
अधर्मयुक्तोऽङ्गमितो बभूव विभुश्च निरयं कलहप्रियोऽभूत्।
परोपतापी नमुचिर्दुरात्मा परावलेपी सनको हि राजा ॥३३
परार्थलिप्सुर्दितिजो हिरण्यदृङ् मूर्खश्चसत्स्यान्यनुजःसुदुर्मतिः।
सुपर्णहारी यदुरुत्तमौजा एते विनेशुर्ह्यनयात्पुरा हि ॥३४
तस्माद्धर्मो न सत्याज्यो धर्मो हि परमा गतिः।

भय नहीं होता है ॥२६॥ जो धर्म से रहित हो-कलह से प्यार करने वाला हो-सर्वदा दूसरों को उपताप देने वाला हो-श्रुत और शास्त्र से वर्जित हो-पराई स्त्री से प्रेम करने वाला हो तथा पराये धन का इच्छुक हो और अवर्ण के साथ संगम करने वाला हो ऐसा पुरुष परलोक में और इस लोक में सुख प्राप्त नहीं किया करता है ॥३०॥ भगवान् प्रभाकर धर्म से समन्वित हुए थे-वारुणि मुनि क्रोध को त्यागने वाले हुए थे अर्क के पुत्र मनु विद्या से संयुक्त हुए थे और अगस्त्य मुनि अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट मन वाले हुए थे ॥३१॥ इन लोगों ने ये सब पुण्य कर्म किये थे और कुल क्रम की उक्ति से कोई भी पाप बद्ध कर्म नहीं किये थे। इसी कारण से ये सभी तेज से समन्वित तथा शाप और वरदान देने में समर्थ हुए थे जिनको कि समस्त सुर और सिद्धों ने पूज्य माना था ॥३२॥ अधर्म से युक्त से उद्गमित और विभु नित्य ही कलह से प्यार करने वाला हुआ था, नमुचि परोपतापी और दुरात्मा था तथा राजा सनक दूसरों का अवलेपन करने वाला था ॥३३॥ दितिज हिरण्यदृक् पराये अर्थ की लिप्सा वाला था और उसका छोटा भाई भी मूर्ख एवं दुष्ट बुद्धि वाला हुआ था। उत्तमौजा सुवर्ण का हरण करने वाला था—ये सभी अनय के कारण पहिले नष्ट हो गये थे ॥३४॥ इसलिये धर्म का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म ही परम गति होती है। जो धर्म से हीन मनुष्य होते हैं वे महान् घोर नरक को जाया करते हैं ॥३५॥

धर्मस्तु गदितः पुंभिस्तारण दिवि चेह च।
पतनाय तथाऽधर्म इह लोके परत्र च ॥३६
त्याज्य धर्मान्वितैर्नित्य परदारोपसेवनम्।
नयन्ति परदारास्तु नरकानेकविंशतिम्।
सर्वेषामेव वर्णानामेष धर्म इहोच्यते ॥३७
परार्थपरदारेषु यस्तु वाञ्छा करिष्यति।
स याति नरक घोर रौरव बहुलाः समाः ॥३८

एवं पुरा सुरपते देवर्षिरसितोऽव्ययः।
प्राह धर्मव्यवस्थानं खगेन्द्रायारुणाय हि ॥३९

तस्मात्तु दूरतो वजत्परदारान्विचक्षणः।
नयन्ति निकृतप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥४०

इत्येवमुक्ते वचने प्रह्लादं प्राह चान्धकः।
भवान्धर्मपरस्त्वेको नाहं धर्मं समाचरे ॥४१

इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादमन्धकः प्राह शम्बरम्।
गच्छ शम्बर शैलेन्द्रं मन्दरं वद शंकरम् ॥४२

मनीषी पुरुषों ने धर्म को दिवलोक और इस लोक मे तारने वाला बताया है। तथा अधर्म इस लोक और परलोक दोनों मे ही पतन कराने वाला हुआ करता है ॥३६॥ जो धर्म से युक्त पुरुष होते हैं उनके द्वारा नित्य ही पराई दारा का सेवन त्याज्य किया गया है। पराई स्त्री इक्कीस नरकों मे पुरुषो को ले जाया करती हैं। सभी वर्णों का यही धर्म यहाँ पर कहा जाता है ॥३७॥ पराया अर्थ और पराई दारा इनमे जो भी कोई पुरुष इच्छा रखता है वह बहुत से वर्षों तक अत्यन्त घोर रौरव नरक में जाकर पड़ता है ॥३८॥ हे असुरपते! इसी भाँति पहिले अविनाशी देवर्षि असित ने खगेन्द्र और अरुण के लिये धर्म की व्यवस्था बतलाई थी ॥३९॥ इसलिये विचक्षण पुरुष पराई दाराओं को दूर से ही त्याग दिया करता है। पराई दारा विकृत प्रज्ञा वाले को पराभव को प्राप्त करा दिया करती हैं ॥४०॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—इस तरह से इन वचनों के कहने पर अन्धक ने प्रहलाद से कहा—आप ही एक धर्म मे परायण हैं और बने रहें, मैं तो इस धर्म का समाचरण नहीं करता हूँ॥४१॥प्रह्लाद से यही इस तरह कह कर अन्धक शम्बर बोला—हे शम्बर! तुम मन्दराचल पर चले जाओ और उस शैलेन्द्र पर पहुँच कर शंकर से कहो ॥४२॥

मिक्षो किमर्थं शैलेन्द्रं स्वर्गतुल्यं सकन्दरम्।
परिरक्षसि केनाद्य केन दत्तो वदस्व माम् ॥४३

तिष्ठन्ति शासने मह्यं देवाः शक्रपुरोगमाः ।
तत्किमर्थं निवससे मामनादृत्य मन्दरे ॥४४
यदीष्टस्तव शैलेन्द्रः क्रियतां वचनं मम ।
येयं हि भवतः पत्नी सा मे शीघ्रं प्रदीयताम् ॥४५
इत्युक्तः स तदा तेन शम्बरो मन्दरं द्रुतम् ।
जगाम तत्र यत्रास्ते सह देव्या पिनाकधृक् ॥४६
गत्वोवाचान्धकचरो याथातथ्य दनोः सुतः ।
तमुत्तरं हरः प्राह शृण्वत्या गिरिकन्यया ॥४७
ममायं मन्दरो दत्तः सहस्राक्षेणधीमता ।
तन्न शक्तोऽस्मि संत्यक्तुं विनाऽऽज्ञां वृत्रवैरिणः ॥४८
यच्चाब्रवीद्दीयतां मे गिरिपुत्रीति दानवः ।
तदेषा यातु स्वं कामं नाहं धारयितुं क्षमः ॥४९

हे भिक्षो ! कन्दराओं से युक्त स्वर्ग के तुल्य इस शैलेन्द्र की किस लिये तुम रक्षा करते हो ? यह शैलेन्द्र तुमको किसने दिया था । अब यह हमको स्पष्ट बतलाये ॥४३॥ मेरे शासन में ही सब लोग संस्थित है इन्द्र आदि सभी देवगण भी मेरा ही शासन मानते हैं । तुम मेरा अनादर करके इस मन्दराचल पर किस लिये रहते हो ॥४४॥ यदि तुमको इसी शैलेन्द्र से प्रेम है और यही पर रहना चाहते हो तो मेरा जो भी वचन हो उसे करो । जो यह तुम्हारी पत्नी है उसे शीघ्र मुझे दे दो ॥४५॥ इस प्रकार से उसके द्वारा कहा गया वह शम्बर उसी समय में शीघ्र ही मन्दर गिरि पर चला गया था । जहाँ पर वह पिनाक को धारण करने वाले भगवान शम्भु अपनी देवी के साथ रहते थे ॥४६॥ दनु का पुत्र वह दूत अन्धक का वहाँ पहुंच कर जो भी अन्धक ने जिस तरह भी कहा था वह सभी उसी तरह शम्भु से कहा था । गिरि कन्या के सुनते हुए भगवान् हर ने उसको उत्तर दिया था ॥४७॥ यह मन्दराचल पर्वत मुझे सहस्राक्ष ने दिया है जो कि बड़ा बुद्धिमान् है सो मैं इसको वृत्रासुर के वैरी इन्द्र की आज्ञा के बिना इसको नहीं छोड़ सकता हूँ ॥४८॥ दानव ने जो यह कहा है कि गिरि पुत्री को मुझे दे दो सो

अपनी ही इच्छा से भले ही चली जावे, मैं इसे रोक कर रखने में समर्थ नहीं हूँ ॥४६॥

ततोऽब्रवीद्‌गिरिसुता शम्बरं मुनिसत्तम ।
ब्रूहि गत्वाऽन्धक वीर मम वाक्यं विपश्चितम् ॥५०
अहं पदातिः सग्रामे भवानीशस्तदा हि नो ।
प्राग्दूत परिस्तीर्य यो जेष्यति स लप्स्यते ॥५१
इत्येवमुक्तो मतिमाञ्शम्बरोऽन्धकमागमत् ।
समागम्याब्रवीद्वाक्य सर्वं गौर्या च भाषितम् ॥५२
तच्छ्रुत्वा दानवपतिः क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन् ।
समाहूया ब्रवीद्वाक्य दुर्योधनमिद वचः ॥५३
गच्छ शीघ्रं महाबाहो भेरी साम्राहिकी दृढाम् ।
ताडयस्वाद्य विश्रब्ध दुःशीलामिवयोषितम् ॥५४
समादिष्टोऽन्धकेनाथ भेरी दुर्योधनो बलात् ।
ताडयामास वेगेन यथा प्राणेन भूयसा ॥५५
सा ताडिता बलवता भेरी दुर्योधनेन हि ।
सस्वान भैरवाकारं रौरव रासभी यथा ॥५६

हे मुनि सत्तम ! इसके पश्चात् उस गिरि तनया ने शम्बर से कहा- अन्धक को जाकर हे वीर ! मेरे इस परम विपश्चित वाक्य को कह देना ॥५०॥ मैं संग्राम मे पदाति (पैदल) और उसी समय यह भवानीश भी होंगे हम दोनों को अपना प्राग्दूत परिस्तीर्ण करके जो भी इन दोनों मे जीत जायगा वही मुझे प्राप्त कर लेगा ॥५१॥ इस प्रकार से कहा गया मतिमान् वह शम्बर अन्धक के समीप मे आगया था और वहाँ पर आकर उसने गौरी के द्वारा कहा हुआ सब भाषण उस अन्धक से कह दिया था ॥५२॥ दानवो के पति ने यह सुनकर बहुत ही अधिक क्रोध किया और उसके नेत्र एक दम रक्तवर्ण के होगये थे। गर्म श्वास लेते हुए दुर्योधन को बुला कर उससे यह वचन कहा था ॥५३॥ हे महाबाहो ! शीघ्र ही जाकर साम्राहिकी भेरी को आज बजादो जिस तरह किसी दुष्ट स्वभाव वाली स्त्री को विश्रब्ध होकर ताड़ित किया जाता

है ॥५४॥ इस प्रकार से अन्धक के द्वारा समादेश प्राप्त कर दुर्योधन ने बल पूर्वक बड़े ही वेग के साथ और बहुत ही जोर के साथ उस बलवान् दुर्योधन ने उस भेरी को ताड़ित किया था। उस ताड़ित हुई भेरी से भी गर्दभी की भाँति बहुत ही भैरव आकार वाली रौरव ध्वनि निकली थी ॥५५-५६॥

तथा तं स्वरमाकर्ण्य सर्व एव महासुराः ।
समायाताः सभां तूर्णं किमेतदिति वादिनः ॥५७
याथातथ्यं च तान्सर्वानाह सेनापतिर्बली ।
ते चापि बलिनां श्रेष्ठाः सन्नद्धा युद्धकाङ्क्षिणः ॥५८
सहान्धका निर्ययुस्ते गजैरुष्ट्रैर्हयैः रथैः ।
अन्धको रथमास्थाय पञ्चनल्वं प्रमाणतः ॥५९
त्र्यम्बकं स पराजेतुं कृतबुद्धिर्विनिर्ययौ ।
जम्भः कुजम्भो हुण्डश्च तुहुण्डः शम्बरो बलिः ॥६०
बाणः कार्तस्वरो हस्ती सूर्यशत्रुर्महोदरः ।
अयःशङ्कुः शिविः शाल्वो वृषपर्वा विरोचनः ॥६१
हयग्रीवः कालनेमिः संह्लादः कालनाशनः ।
सरभश्चैव सबलो बलो वृत्रश्च वीर्यवान् ॥६२
दुर्योधनश्च पाकश्च विपाकः कालशम्बरौ ।
एते चान्ये च बहवो महावीर्या महाबलाः ।
प्रजग्मुरुत्सुका योद्धुं नानाप्रहरणा रणे ॥६३

थे। अन्धक भी प्रमाण में पांचतत्व रथ में समास्थित होकर त्र्यम्बक को पराजित करने के लिये ऐसी ही अपनी बुद्धि स्थिर कर निकल गया था। उसके साथ में बहुत से अन्य दानव भी थे जिनके नाम ये हैं—जम्भ—कुजम्भ, हुण्ड, तुहुण्ड, शम्बर, बलि, बाण, कार्त्तस्वर, हस्ती, सूर्य्यशत्रु, महोदर, अयः शंकु, शिबि, शाल्व, वृषपर्वा, विरोचन, हयग्रीव कालनेमि, संह्लाद, कालनाशन, सरभ, शलभ, बल, वृत्र- वीर्यवान्, दुर्योधन, पाक, विपाककाल, शम्बर! ये सब बहुत से महान वीर्य वाले तथा बल वाले थे। सभी अत्यन्त उत्सुक होकर अनेक तरह के आयुध धारण करके रण स्थल मे युद्ध करने के लिये चल दिये थे ॥५६-६३॥ इस प्रकार से दुष्ट आत्मा वाला दनुदैत्यपाल अन्धक भगवान् शंकर से युद्ध करने के मन वाला उस महान् गिरि मन्दर पर प्राप्त होगया था। वह मन्द बुद्धि वाला काल के पाश से सवशित हो गया था ॥६४॥

६७—सदाशिव दर्शन वर्णन

हरोऽपि समरासन्नः समाहूयाथ नन्दिनम्।
प्राहाऽमन्त्र्य शैलादिमान्ये स्थितास्तव शासने ॥१
ततो महेशवचनान्नन्दी तूर्णतरं गतः।
उपस्पृश्य जल श्रीमान्सस्मार गणनायकान् ॥२
नन्दिना संस्मृताः सर्वे गणनाथाः महायशः।
समुत्पत्य त्वरायुक्ताः प्रणताश्रिदशेश्वरम् ॥३
आगतांश्च गणान्नन्दी कृताञ्जलिपुटोऽव्ययः।
सर्वान्निवेदयामास शंकराय महात्मने ॥४
येन तान्पश्यसे शंभो त्रिनेत्राञ्जटिलान्शुचीन्।
एते रुद्रा इति ख्याताः कोट्यरवेकादशैव तु ॥५
वानराख्यान्पश्यसे यान्शार्दूलसमविक्रमान्।
एतेषां द्वारपालाश्च नत्रयाना यशोधना. ॥६

षण्मुखान्पश्यसे यांश्च शक्तिपाणीञ्छिखिध्वजान् ।
षट् च षष्टिस्तथा कोट्यः स्कन्दनाम्न कुमारकान् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—भगवान् शंकर भी समर करने के लिये आसन्न होगये थे। उन्होंने नन्दी को बुला कर कहा था कि शैलाद्य जो भी तुम्हारे शासन में संस्थित हैं उन सब को आमन्त्रित करो ॥१॥ इसके उपरान्त महेश्वर के वचन से नन्दी बहुत ही शीघ्र चला गया था। श्रीमान् ने जल का उपस्पर्शन करके गण नायकों का स्मरण किया था ॥२॥ नन्दी के द्वारा स्मरण किये गये सहस्रों गण नायक सभी शीघ्रता से उपस्थित हो गये थे और उन्होंने त्रिदशेश्वर को प्रणाम किया था ॥३॥ समागत हुए गणों को नन्दी ने जो कि अव्यय है, हाथ जोड़ कर सब को महात्मा शंकर के सामने निवेदित किया था ॥४॥ नन्दी ने कहा—ये इसीलिये आपके सामने हैं शम्भो ! उपस्थित किये हैं कि आप इन्हें देख लेवें—ये त्रिनेत्र, जटिल और शुचि रुद्र नाम से ख्यात हैं और एकादश करोड़ हैं ॥५॥ जो ये वानर के समान मुखों वाले हैं जिनको कि आप देख रहे हैं ये शार्दूल के समान विक्रम वाले हैं। इनके यशोधन द्वारपाल भी सज्जमान हैं ॥६॥ जिन षड्मुखों वालों को आप देख रहे हैं जिनके हाथों में शक्तियां हैं और शिखिध्वज हैं ये स्कन्द नाम वाले कुमार छियासठ करोड़ हैं ॥७॥

एतावत्यस्तथा कोट्यः शाखनाम्न षडानना ।
विशालास्तावदेवोक्ता नैगमेयाश्च शंकर ॥८
सप्तकोटिशत शंभो अमी वै प्रमथोत्तमा ।
एकैकं प्रति देवेश तावत्यो ह्यपि मातरः ॥९
भस्मारुणितदेहाश्च त्रिनेत्रा शूलपाणयः ।
एते शैवा इति प्रोक्तास्तव भक्ता गणेश्वरा ॥१०
तथा पाशुपताश्चान्ये भस्मप्रहरणा विभो ।
एते गणास्त्वसंख्याता साहाय्यार्थं समागता ॥११
पिनाकधारिणो रौद्रा गणा कालमुखा परे ।
तव भक्ताः समायाता जटामण्डलिनोऽद्भुता ॥१२

खट्वाङ्गयोधिनो वीरा रक्तचन्दनभूषिताः ।
इमे प्राप्ता गणा योद्धुं महाव्रतिन उत्तमाः ॥१३
दिग्वाससो मौलिनश्च घण्टाप्रहरणाः परे ।
निराश्रया नाम गणाः समायाताश्च हे विभो ॥१४

इतनी ही करोड़ षाख नाम वाले षडानन हैं । हे शंकर ! ये सभी परम विशाल और नैगमेय बतलाये गये हैं ॥८॥ हे शम्भो ! सात सौ करोड़ ये प्रमथोत्तम हैं । हे देवेश ! इन एक के प्रति उतनी मातृगण हैं ॥९॥ भस्म से अवगुंठित देह वाले—तीन नेत्रों से युक्त और हाथों में त्रिशूल धारण करने वाले हैं । ये सब शैव इस नाम से कहे गये हैं । और उनमें गणेश्वर भी बतला दिये गये हैं ॥१०॥ हे विभो ! भस्म प्रहरण वाले अन्य पाशुपत हैं, ये सब गण असंख्य हैं जो इस समय सहायता के लिये यहा पर समागत हुए हैं ॥ ११ ॥ दूसरे गण पिनाक धारण करने वाले—कालमुख रौद्रगण हैं । आपके भक्त अब जटामण्डली वाले आगये हैं ॥१२॥ खट्वाङ्ग से युद्ध करने वाले तथा रक्त चन्दन से भूषित वीर महाव्रतों वाले अति उत्तम गण युद्ध करने को प्राप्त होगये हैं ॥१३॥ अन्य दिगम्बर-मौली और घण्टा प्रहरण वाले हैं । निराश्रय नाम वाले गण भी हे विभो ! आगये हैं ॥१४॥

सार्धद्विनेत्राः पद्माक्षाः श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ।
समायाताः खगारूढा वृषभध्वजिनोऽव्ययाः ॥१५
महापाशुपता नाम चक्रशूलधरास्तथा ।
भैरवो विष्णुना सार्द्धमभेदेनार्चितो हि यैः ॥१६
इमे मृगेन्द्रवदनाः शूलबाणधनुर्धराः ।
गणास्त्वद्रोमसम्भूता वीरभद्रपुरोगमाः ॥१७
एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः ।
साहाय्यार्थं तवायाता यथा प्रीत्याऽ
ततोऽभ्येत्य गणाः सर्वे प्रणेमुर्वृषकेत
त्सत्कारेणैव च गणान्समाभाष्य योपवे

महापाशुपतान्दृष्ट्वा समुत्थाप्य महेश्वरः ।
संपर्यष्वजताध्यक्षांस्ते प्रणेमुर्महेश्वरम् ॥२०

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा सर्वे गणेश्वराः ।
सुविस्मितास्तदा ह्यासन्किमिद चिन्तयंस्त्विति ॥२१

ढाई नेत्रों वाले—पद्माक्ष और श्रीवत्स से अङ्कित वक्षः स्थलों वाले आये हुए हैं। तथा खग पर समारूढ और वृषभ की ध्वजा वाले अव्यय हैं ॥१५॥ महा पाशुपत नाम वाले जो हैं वे चक्रों और शूलों को धारण करने वाले हैं जिन्होंने भगवान् विष्णु के साथ भैरव का अभेद भाव से अर्चन किया है ॥१६॥ ये मृगेन्द्र (सिंह) के समान मुखो वाले हैं जो शूलों बाणों और धनुषों को धारण किये हैं। ये गण भी हैं जो आपके रोमों से ही समुद्भूत हुए हैं जिनमें वीरभद्र आदि पुरोगामी हैं ॥१७॥ ये तथा अन्य सैकड़ों और सहस्रों ही बहुत से गण हैं जो आपकी युद्ध मे सहायता करने के लिये यहाँ पर आये हुए हैं। आप अब प्रेम से उनको अपना आदेश प्रदान कीजिए ॥१८॥ इसके पश्चात् सभी गणों ने वहाँ आकर भगवान् वृषकेतन को प्रणाम किया था। शम्भु ने बड़े सत्कार से उन गणों को समाश्वासन देकर वहाँ पर बिठा दिया था ॥१६॥ महा पाशुपतों को देख कर महेश्वर ने उठ कर उनके अध्यक्षों से स्नेहालिंगन किया था और उनने महेश्वर को प्रणाम किया था ॥२०॥ इसके पश्चात् सभी गणेश्वरों ने उस एक अतीव अद्भुत घटना को देख कर बहुत ही विस्मय किया था और वे आश्चर्यान्वित उस समय मे हो गये थे कि यह क्या है और इस पर वे चिन्तन भी करने लगे थे ॥२१॥

विस्मिताक्षान्गणान्दृष्ट्वा शैलादिर्योगिनां वरः ।
प्राह प्रहस्य देवेश शूलपाणि गणाधिपम् ॥२२

विस्मिता हि गणा देव सर्व एव महेस्वर।
महापाशुपतानां यद्वृत्तमालिङ्गनं यतः ॥२३

जातं तेषां महादेव स्फुटं त्रलोक्यबृंहकम् ।
रूपं ज्ञानं विवेकं च तद्वदस्वेच्छया विभो ॥२४

आच्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्घनाभै-
राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः ।
नीलाजिनाततनुः शरदभ्रवर्णो
यद्वद्विभाति बलवान्वृषभो हरस्य ॥३२

हम दोनों में कुछ भी विशेषता नहीं है। यो समझिये एक ही मूर्ति के ये दो स्वरूप हैं। सो इन नर व्याघ्रों ने भक्तिभाव से युक्त होकर हे गणो ! जिस प्रकार मुझे जान लिया है उस रीति से हरि को भी समझ लिया है किन्तु आप लोगों ने ऐसा नहीं जान पाया है। इसी कारण से मूढ़ बुद्धि आप लोगों ने भगवान् हरि की विशेष निन्दा की है ॥२८-२६॥ पुलस्त्यमुनि ने कहा—शिव ने कहा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। और फिर उन सब को निष्पाप कर दिया था। इसके पश्चात् उन सभी गणों के साथ प्रभु ने भली भाँति निष्पाप ही बाने के कारण परिष्वजन किया था ॥३०॥ इस प्रकार से प्रणतों की आर्त्ति के हरण करने वाले प्रभु ने गणपतियों के पाप को दूर किया और फिर सहयोपिध मेघ रथ से जो श्रतिगदितात्मगम था और विबुधावतस था गिरि पर आ गये थे ॥३१॥ वह गिरि श्रेष्ठ भी घनों के तुल्य आभा वाले प्रमथों से एकदम समाच्छादित हो गया था और फिर वह ईश्वर के चरणों से जुष्ट शुक्ल तनु वाला परम शोभित हुआ था। नील अजिन से आतत शरीर वाला शरद काल के बादलों के समान वर्ण वाला हर का बलवान् वृषभ जैसा हो उसी भाँति, शोभा दे रहा था ॥३२॥

६८—अन्धक सैन्य पराजय वर्णन

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः समं दैत्यैस्तथाऽन्धकः ।
मन्दर पर्वतश्रेष्ठ प्रमथाश्रितकन्दरम् ॥१
प्रमथा दानवान्दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम् ।
प्रमथाश्चापि सरब्धा जघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः ॥२

प्रमथाधिपतेर्वाक्यं विदित्वा भूतभावन ।
बभाषे तान्गणान्सर्वान्भावाभावविचारिण ॥२५
भवद्भिर्भक्तिसयुक्तैर्हरो भावेन पूजितः ।
अहकार विमूढैश्च निन्दद्भिर्वैष्णव पदम् ॥२६
तेन ज्ञानेन भवता सादृश्य हि निवारितम् ।
योऽह स भगवान्विष्णुर्यश्चासो सोऽहमव्यय ॥२७

उन सब गणों को अत्यन्त विस्मित देख कर योगियों में श्रेष्ठ शैलादि हँस कर शूलपाणि गणाधिप देवेश से बोला—॥२२॥ हे देव ! हे महेश्वर ! ये सब गण बहुत ही विस्मित हो रहे हैं क्यो कि आपने महा पाशुपतो को अपना आलिंगन दिया था ॥२३॥ उनको हे महादेव ! स्पष्ट ... उत्पन्न हो गया है सो हे विभो ! आप अपनी इच्छा से ही रूप-ज्ञान और विवेक बतलाइये ॥२४॥ भूत भावन प्रभु ने उस प्रमथो के अधिपति का वाक्य श्रवण कर भाव-अभाव के विचार करने वाले उन समस्त गणो से शिव ने कहा—॥२५॥ श्री रुद्र ने कहा—आप लोगों ने भक्ति से सयुत होकर एक भाव से हर का पूजन किया है। आप अहकार से विमूढ हैं और वैष्णव पद की आपने हमेशा निन्दा ही की है ॥२६॥ उस ज्ञान से आप लोगों का सादृश्य निवारित हो गया है। जो मैं हूं वही भगवान् विष्णु हैं और जो विष्णु हैं वही अव्यय मैं हूं। भेद कुछ भी हम दोनो मे नही है ॥२७॥

नावाभ्यां वै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता ।
तदमीभिर्नरव्याघ्रभक्तिभावयुतैर्गणा ॥२८
यथाऽहं वै परिज्ञातो न भवद्भिस्तथा हरिः ।
मया विनिन्दितो ह्यस्माद्भवद्भिर्मूढबुद्धिभि ।
तेन ज्ञान हि वो नष्ट नातस्त्वालिङ्गता मया ॥२९
बाढमित्यब्रवीच्छर्वश्चक्रे निर्धूतकल्मषान् ।
सपर्यध्वजताऽभ्यक्तस्तान्सर्वान्गणयूथपान् ॥३०
इति विभुना प्रणतार्तिहरेण गणपतय सहयोगिपमेघरथेन
श्रुतिगदिताश्च (?) गमेनविबुधावतसेन गिरिमवेश्य ॥३१

आच्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्घनाभैं-
राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः ।
नीलाजिनाततनुः शरदभ्रवर्णो
यद्वद्विभाति बलवान्वृषभो हरस्य ॥३२

इन दोनों में कुछ भी विशेषता नहीं है। यों समझिये एक ही मूर्ति के ये दो स्वरूप हैं। सो इन नर व्याघ्रों ने भक्तिभाव से युक्त होकर हे गणो ! जिस प्रकार मुझे जान लिया है उस रीति से हरि को भी समझ लिया है किन्तु आप लोगों ने ऐसा नहीं जान पाया है। इसी कारण से मूढ़ बुद्धि आप लोगों ने भगवान् हरि की विशेष निन्दा की है ॥२८-२९॥ पुलस्त्यमुनि ने कहा—शिव ने कहा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। और फिर उन सब को निष्पाप कर दिया था। इसके पश्चात् उन सभी गणों के साथ प्रभु ने भली भांति निष्पाप हो जाने के कारण परिष्वजन किया था ॥३०॥ इस प्रकार से प्रणतो की आर्त्ति के हरण करने वाले प्रभु ने गणपतियों के पाप को दूर किया और फिर सहयोगिप मेघ रथ से जो अतिगदितान्तगम था और विघुधावर्तस था गिरि पर आ गये थे ॥३१॥ वह गिरि श्रेष्ठ भी घनो के तुल्य आभा वाले प्रमथों से एकदम समाच्छादित हो गया था और फिर वह ईश्वर के चरणों से जुष्ट शुक्ल तनु वाला परम शोभित हुआ था। नील अजिन से आतत शरीर वाला शरद काल के बादलों के समान वर्ण वाला हर का बलवान् वृषभ जैसा हो उसी भांति, शोभा दे रहा था ॥३२॥

६८—अन्धक सैन्य पराजय वर्णन

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः समं दैत्यैस्तथाऽन्धकः ।
मन्दर पर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकन्दरम् ॥१
प्रमथा दानवान्दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम् ।
प्रमथाश्चापि सरब्धा जघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः ॥२

स चावृणोन्महानादो रोदसी प्रलयोपमः ।
शुश्राव वायुमार्गस्थो विघ्ननाथो विनायकः ॥३

समभ्ययात्सम क्रुद्धः प्रमथैरभिसंवृतः ।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं ददृशे पितरं तथा ॥४

प्रणिपत्य तथा भक्त्या वाक्यमाह महेश्वरम् ।
किं तिष्ठसि जगन्नाथ समुत्तिष्ठ रणोत्सुक ॥५

ततो विघ्नेश्वरवचो जगन्नाथोऽम्बिका प्रति ।
प्राह यामोऽन्धकं हन्तुं स्वयमेवाप्रमत्तया ॥६

ततो गिरिसुता देवं समालिङ्गय पुनः पुनः ।
हरं निरीक्ष्य सस्नेहं प्राह गच्छ तयाऽन्धकम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसी बीच में दैत्यों के साथ अन्धक पर्वतों में श्रेष्ठ तथा प्रमथों के द्वारा समाश्रित कन्दराओं वाले मन्दराचल पर प्राप्त हो गया था ॥१॥ प्रमथों ने जब दानवों को देखा तो किल किला ध्वनि करने लगे। प्रथम भी सन्नद्ध हो रहे थे उन्होंने अनेक तूर्यों का हनन कर दिया था ॥२॥ उस समय उस रण स्थल में दोनों ओर से जो ध्वनियाँ हुईं उनका एक महा नाद हो गया था जो रोदसी में प्रलय काल के नाद के समान था। उसको वायु मार्ग में स्थित विघ्नों के स्वामी विनायक ने श्रवण किया था ॥३॥ वह भी अत्यन्त क्रोधित होकर प्रमथ गणों से अभिसंवृत होकर उस मन्दर गिरि पर आ गये थे और अपने पिता का दर्शन किया था ॥४॥ भक्ति भाव से पिता के चरणों में प्रणिपात करके फिर महेश्वर से यह वाक्य कहा—हे जगत् के स्वामिन्! आप कैसे बैठे हुए हैं। अब तो रण करने के लिये समुत्सुक होकर खड़े हो जाइये ॥५॥ इसके पश्चात् उस विघ्नेश्वर (गणेश) के वचन को अम्बिका से कहा—स्वयं ही अप्रमत्त होकर अन्धक को मारने के लिये चलो ॥६॥ इसके अनन्तर गिरि सुता ने बारम्बार देव का समालिंगन करके और हर को देखकर स्नेह के साथ कहा—अन्धक को मारने के लिये आप जाइए ॥७॥

ततोऽमरगुरोर्गौरी चन्दनं रोचनोज्ज्वलम् ।
प्रतिवन्द्य सुसंप्रीता पादावेव त्ववन्दत ॥८
ततो हरः प्राह वचो वयस्यां मालिनीमिति ।
जयां च विजया चैव जयन्ती चापराजिताम् ॥६
युष्माभिरप्रमत्ताभिः स्थेयं गेहे सुरक्षिते ।
रक्षणीया प्रयत्नेन गिरिपुत्री प्रमादतः ॥१०
इति संदिश्य ताः सर्वाः समारुह्य वृष प्रभुः ।
निर्जगाम गृहाद् हृष्टो जग्मुस्ते पृष्ठतो गणाः ॥११
अगच्छंस्तस्य भवनादीश्वरस्य गणाधिपाः ।
समायाताः परीवार्य जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥१२
रणाय निर्गच्छति लोकपाले महेश्वरेशूलधरे महर्षे ।
शुभानिसौम्यानिसुमङ्गलानिचिह्नानिशंसन्ति जयं हि तस्य॥१३
शिवा स्थिता वामतरे च भागे प्रायात्तयाऽग्रे सुरसंनदन्ती ।
क्रव्यादसंघाश्चतथाऽऽमिषैषिणःप्रयान्ति हृष्टास्तृषितामृगयें ॥१४

इसके पश्चात् गौरी ने अमरों के गुरु भगवान् महेश्वर के चरणों की रोचन से समुज्ज्वल चन्दन से वन्दना करके फिर परम प्रसन्न होकर उनके चरणों में प्रणिपात किया था ॥८॥ इसके पश्चात् हर ने वयस्या-मालिनी-जया-विजया-जयन्ती और अपराजिता से कहा—॥६॥ आप सब अप्रमत्ता होकर इसी परम सुरक्षित घर में ठहरें और प्रयत्न पूर्वक गिरि सुता की रक्षा करें तथा किसी प्रकार का भी प्रमाद न होवे ॥१०॥ इस प्रकार से उन सबको सन्देश देकर प्रभु स्वयं वृष पर समारूढ हो गये थे। फिर परम प्रसन्न होते हुए घर से निकल दिये थे। उनके पीछे वे गण भी सब चल दिये थे ॥११॥ ईश्वर के भवन से सभी गणाधिप चले गये थे। परिवारित होकर वहाँ पर आ गये थे और सब जय जयकार का शब्द करने लगे थे ॥१२॥ हे महर्षि ! लोकों के पालक महेश्वर शूलधारी के रण करने के लिये निकलने पर परम शुभ चिह्न और अतीव सौम्य एवं सुमंगल लक्षण हुए थे जो उनके विजय की सूचना दे रहे थे ॥१३॥ शिवाओं के समूह वाम भाग में

स्थित थे जो आगे की ओर सुरों का संवाद करते हुए चले गये थे। क्रव्यादों के साथ जो आमिष की इच्छा वाले थे परम प्रसन्न होते हुए जा रहे थे जो रक्तपान करने के लिये अत्यन्त तृषित हो रहे थे ॥१३-१४॥

दक्षिणाङ्गं नखान्तं वै समकम्पत शूलिनः।
शकुनिश्चापि हारीतो मौनी याति पराङ्मुखः ॥१५
निमित्तमीदृशं दृष्ट्वा भूतभव्यभवो विभुः।
शैलादिं प्राह वचनं सस्मितं शशिशेखरः ॥१६
नन्दिञ्जयो भाव्यतेऽद्य न कथञ्चित्पराजयः।
निमित्तानीह दृश्यन्ते सम्भूतानि गणेश्वरः ॥१७
तच्छम्भुवचनं श्रुत्वा शैलादिः प्राह शङ्करम्।
सन्देहः को महादेव जय त्वं शात्रवान्बहून् ॥१८
इत्येवमुक्त्वा वचनं नन्दी रुद्रगणास्तथा।
समादिदेश युद्धाय महापाशुपतैः सह ॥१९
तेऽभ्येत्य दानवबलं विनिघ्नन्तश्च वेगिनः।
नानाशस्त्रधरा वीरा वृक्षानशनयो यथा ॥२०
ते भिद्यमाना बलिभिः प्रमथैर्दैत्यदानवाः।
प्रवृत्ताः प्रमथान्हन्तुं कूटमुद्गरपाणयः ॥२१

भगवान् शूली का दक्षिणांग नखान्त तक कम्पित हो रहा था। हारीत पक्षी भी मौनी होकर पराङ्मुख होता हुआ जा रहा था ॥१५॥ इस प्रकार के निमित्त को देख कर भूत और भव्य के प्रभु विभु शशिशेखर स्मित पूर्वक शैलादि से बोले—॥१६॥ शशिशेखर ने कहा—हे नन्दिन् ! आज तो विजय ही होने वाला दिखलाई देता है। किसी प्रकार से भी पराजय तो होगा ही नहीं ये सब निमित्त यहाँ पर दिखलाई दे रहे हैं। हे गणेश्वर ! जो भी लक्षण यहाँ पर हुए हैं वे सब विजय के सूचक हैं ॥१७॥ शम्भु के इस वचन का श्रवण कर शैलादि भगवान् शंकर से बोला—हे महादेव ! क्या सन्देह है। आप बहुत से शत्रुओं पर निश्चय ही विजय प्राप्त करेंगे ॥१८॥ इतना भर कह रुद्र

नन्दी ने रुद्र गणों को महाव्रतों के सहित युद्ध करने के लिये आदेश दे दिया था ॥१९॥ वे सब वहाँ आकर बड़े वेग से युक्त होकर दानवों की सेना का निहनन करने लगे थे। सब नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के धारण करने वाले थे। शत्रुओं को ऐसी रीति से नियमित कर रहे थे जैसे वज्र वृक्षों को नष्ट कर दिया करता है ॥२०॥ वे दैत्य दानव बलशाली प्रमथों के द्वारा विद्यमान होकर प्रमथों का हनन करने के लिये कूट और मुग्दर हाथों में ग्रहण कर प्रवृत्त हो गये थे ॥२१॥

ततोऽम्बरतले देवाः सेन्द्रविष्णुपितामहाः।
ससूर्याग्निपुरोगाश्च समायाता दिदृक्षवः ॥२२
ततोऽम्बरतले घोषः सस्वनः समजायत।
गीतवाद्यादिसंमिश्रो दुन्दुभीनां कलिप्रिय ॥ २३
ततः पश्यत्सु देवेषु महापाशुपतादयः।
गणास्तद्दानवं सैन्यं निघ्नन्ति स्म सुकोपिताः ॥२४
चतुरङ्गबलं दृष्ट्वा वध्यमानं गणेश्वरैः।
क्रोधान्वितस्तु दण्डस्तु वेगेनाभिससार ह ॥२५
आदाय परिघं घोरं पट्टोद्वद्धमयस्मयम्।
राजते तस्य हस्तस्थमिन्द्रध्वजमिवोद्धृतम् ॥२६
तं भ्रामयानो बलवान्निजघान रणे गणान्।
रुद्रादीन्स्कन्दपर्यन्तांस्तेऽभज्यन्त भयातुराः ॥२७
तच्च भग्नं बलं दृष्ट्वा गणनाथो विनायकम्।
समाद्रवत वेगेन तुहुण्ड दनुपुङ्गवम् ॥२८

इसके पश्चात् आकाश में इन्द्र-विष्णु और पितामह के सहित समस्त देवगण देखने की इच्छा वाले होकर सूर्य को अग्रगामी बना कर आ गये थे ॥२२॥ इसके पश्चात् अम्बर तल में बड़ी ही ध्वनि से परिपूर्ण घोष हुआ था। वह घोष कलिप्रिय और गीत वाद्यादि से समिश्रित दुन्दुभियों का था ॥२३॥ इसके अनन्तर उन समस्त देवों के देखते हुए महा पाशुपतादिक गण अत्यन्त कुपित होकर दानवों की सेना को मारने लगे थे ॥२४॥ गणेश्वरों के द्वारा चतुरंगिणी अपनी सेना

को वध्यमान होती हुई देखकर क्रोध से युक्त होते हुए दण्ड ने बड़े वेग के साथ आक्रमण किया था ॥२५॥ अयस्मय (लोह निर्मित) पद से उद्दद्ध परिघ उसने लिया था और वह उसके हाथ में स्थित उद्धृत इन्द्र ध्वज की भाँति शोभित हो रहा था ॥२६॥ उस बलवान् ने उसे घुमाते हुए रण स्थल में गणों का हनन किया था। रुद्रादि स्कन्द पर्यन्त सभी गणेश्वर भय से आतुर हो गये थे ॥२७॥ गण नाथ ने उस विनायक बल को भग्न देखकर बड़े भारी वेग से हुतुण्ड नामक दनु श्रेष्ठ पर आक्रमण किया था ॥२८॥

आपतन्त गणपति दृष्ट्वा दैत्यो दुरात्मवान् ।
परिघ पातयामास कुम्भमध्ये महाबलः ॥२९
विनायकस्य मिपतः परिघ वज्रभूषणम् ।
शतधाऽगवमद्ब्रह्मन्मेरोः कूटमिवाशनिः ॥३०
परिघ विफलं दृष्ट्वा समायातं च पार्षदम् ।
ववन्ध बाहुपाशेन बलादाकृष्य दानवः ॥३१
त जघा नाथ शिरसि मुद्गरेण महोदरम् ।
परश्वधेन दैत्येन्द्रं गणेशो हि महोदरः ॥३२
काष्ठवत्स द्विधाभूतो निपपात धरातले ।
तथाऽपि नात्यजद्बाहुं बलवान्दानवेश्वरः ॥३३
मोक्षार्थमकरोद्यत्नं न शशाक महोदरः ।
विनायक संयतमीक्ष्य बाहुना कुण्डोदरो नाम गणेश्वरोऽथ।
प्रगृह्य तूर्णं मुशलं महात्मा बाहुं समन्लास जघान तस्य ॥३४
ततो गणेशः कलशध्वजस्तु प्रासेन राहुं हृदये बिभेद ।
हते तु हुण्डे विमुखे तु राहौ गणेश्वराःक्रोधविषं मुमुक्षवः ॥३५

उस दुष्ट आत्मा वाले दैत्य ने अपने ऊपर धावा बोलने वाले गणपति को देखकर महान् बल वाले ने कुम्भों के मध्य में परिघ गिरा दिया था ॥२९॥ हे ब्रह्मन् वज्र के भी भूषण स्वरूप उस परिघ के प्रहार को खाने वाले विनायक के प्रभाव से उस परिघ के सैकड़ों खण्ड होगये थे ॥३०॥ अपने इस परिघ को विफल देखकर समायात पार्षद को उस दानव ने

बल पूर्वक खींचकर बाहु पाश से बाँध लिया था ॥३१॥ उसके मस्तक में मुद्गर से महोदर का हनन कर रहा था और महोदर गणेश ने भी दैत्येन्द्र को परवश से हनन किया था ॥३२॥ वह एक काष्ठ की भाँति दो टुकड़े होकर भूतल पर गिर गया था। इतना होने पर भी उस बलवान् दानवेश्वर ने बाहु को नहीं छोड़ा था। महोदर ने उससे मोक्ष पाने के लिये बहुत सा यत्न किया था किन्तु महोदर छुड़ा न सके थे ॥३३॥ विनायक को बाहु से सयत देख कर कुण्डोदर नाम वाले गणेश्वर ने वहाँ आकर शीघ्र मुशल लेकर महात्माने उसकी बाहु को सब ओर से हनन कर दिया था ॥३४॥ इसके पश्चात् कलशध्वज गणेश ने प्रास से राहु को हृदय में भेदन किया था। हुण्ड के हत होने पर और राहु के विमुख हो जाने पर गणेश्वर क्रोध रूपी विष के छोड़ने की इच्छा वाले थे ॥३५॥

पर्वकंककालानलसन्निकाशाविशन्ति सेनां दनुपुंगवानाम्।
ता वध्यमानां स्वचमूं समीक्ष्य वलिवली मारुतवेगतुल्यः ॥३६
गदां समाविध्य जघान मूर्ध्नि विनायकं कुम्भकटे करे च।
कुण्डोदर भग्नकरं महोदर शीर्णं शिरस्कन्महाकपालम् ॥३७
कुम्भध्वज घूर्णितसधिवन्धघटोदर चोरुविपन्नसधिम्।
गणाधिपांस्तान्विमुखांस्तु दृष्ट्वाबलान्वितोवीरतरः सुरेन्द्रः ॥३८
समेत्यधावंस्त्वरितोनिहन्तुं गणेश्वरान्स्कन्दविशाखमुख्यान्।
तमापतन्तं भगवान्समीक्ष्य महेश्वरः श्रेष्ठतमं गणानाम् ॥३९
शैलादिमामन्त्र्य तदा बभाषे त्वं गच्छ दैत्य जहि वीर युद्धे।
इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन चक्रं समादाय शिलादसूनुः ॥४०
वलिं समभ्येत्य जघान मूर्ध्नि समोहितश्चावनिमाससाद।
समोहित भ्रातृसुतं विदित्वा बली कुजम्भं मुसल प्रगृह्य ॥४१
सम्भ्रामयन्घूर्णनर स वेगात्ससर्ज नन्दिं प्रति आतकोपः।
तमापतन्तं मुसलं प्रगृह्य करेण तूर्णं भगवान्स नन्दी ॥४२

पर्वक का लानल के सदृश वे गणेश्वर दनु श्रेष्ठों की सेना में वेश कर गये थे। फिर बलवान् बलि ने जोकि मारुत के समान वेग

वाला था अपनी सेना को भरती हुई देखा था ।।३६।। उसने अपनी गदा ग्रहण करके विनायक के मस्तक में—कुम्भकट में और कर में प्रहार किया था । कुण्डोदर को टूटे हुए हाथ वाला—महोदर को शिरस्कन्ध महा कपाल एव शीर्ण—कुम्भध्वज को घूर्णित सन्धि बन्धों वाला—घटोदर को अरुस्थाम मे विपन्न सन्धि वाला और गणाधियों को विमुख देखकर बल से सम्पन्न वीर सुरेन्द्र वहाँ उपस्थित हो गया था ।।३७-३८।। वहाँ आकर धावमान होकर शीघ्रता वाले स्कन्द विशाख आदि प्रमुख गणेश्वरों को मारने के लिये प्रयत्न किया था भगवान् महेश्वर ने उसको आता हुआ देखकर गणों मे जो परम श्रेष्ठ शैलादि था उसको बुलाया और उसी समय मे उससे कहा—तुम जाओ, हे वीर ! युद्ध मे दैत्य को मार डालो । इस प्रकार कहे जाने पर वृषभ ध्वज की आज्ञा से शिलादिसूनु ने वज्र का ग्रहण किया था ।।३९-४०।। बलि के समीप मे आकर उसके मस्तक में प्रहार किया था और वह बे होश होकर भूमि पर गिर गया था । बलवान् ने अपने भाई के पुत्र कुजम्भ को बेहोश देख कर स्वय मुसल ग्रहण किया था ।।४१।। उसने बड़े वेग से घुमाकर अति क्रोधित होकर नन्दि पर उसका प्रहार किया था । अपने ऊपर आते हुए उस मुसल को भगवान् उस नन्दी ने शीघ्र ही उसे हाथ से पकड़ लिया था ।।४२।।

जघान तेनैव कुजम्भमाहवे स प्राणहीनो निपपात भूम्याम् ।
हत्वा कुजम्भ मुसलेन नन्दी वज्रेण नन्दी शतशो जघान ।।४३
ते वध्यमाना गणनायकेन दुर्योधन वै शरण प्रपन्ना ।
दुर्योधनः प्रेक्ष्य गणाधिपेन वज्रप्रहारैर्निहतान्दितीशान् ।।४४
पाश समाविध्य तडित्प्रकाशर्नान्दिप्रचिक्षेप हलेस्त्विविप्र वन् ।
तमापतन्त कुलिशेन नन्दी बिभेद गुह्य पिशुनो यथा नरः ।।४५
स पाशमालक्ष्य तदा तु वृत्त सवत्य मुष्टि गणामाससाद ।
ततोऽस्यवज्रीकुलिशेन तूर्णं शिरोऽच्छिनत्तालफलप्रकाशम् ।।४६
हतोऽथ भूमौ निपपात वेगाद् त्याश्च भीता विगता दिशोदश ।
ततो हत स्व तनय निरीक्ष्य हस्ती तदा नन्दिनमाजगाम ।।४७

प्रगृह्य वाणाशनिमुग्रवेग विभेद वाणैर्यमदण्डकल्पैः ।
गणान्सनन्दीन्वृषभध्वजास्तान्धाराभिरेवाम्बुधरास्तुशैलम् ॥
ते छाद्यमाना दनु वाणजालैर्विनायकाद्या वलिनोऽपि वीराः ।
सिंहप्रणुन्ना वृषभा यथैव भयातुरा दुद्रुविरे समन्तात् ॥४९

उस युद्ध भूमि में उसी मुसल से नन्दि ने कुम्भज पर फिर प्रहार किया था और वह प्राणों से रहित होकर भूतल पर गिर गया था। उसी मुसल से नन्दी ने कुम्भज का हनन करके फिर वज्र से सैकड़ों ही दैत्यों का भी हनन किया था ॥४३॥ गणों के नायक के पिटे हुए एवं मरते हुए उन दैत्यों ने दुर्योधन की शरण ग्रहण की थी। दुर्योधन ने देखा था कि गणाधिप नन्दी ने वज्र के प्रहारों से बहुत से दैत्यों को मार दिया है ॥४४॥ उसने फिर पाश ग्रहण किया था जो विद्युत के समान प्रकाश वाला था। उसको नन्दी पर फेंका था और यह मुंह से बोल भी रहा था कि—अब मर गया है। उस पाश को आते हुए देख कर नन्दी ने वज्र से टुकड़े करके छिन्न कर दिया था जिस तरह किसी गुप्त विषय को पिशुन पुरुष भेद युक्त कर दिया करता है ॥४५॥ उस पाश को उस समय में कटा हुआ देखकर उस दैत्य ने मुष्टि बांधकर गणेश्वर पर हमला किया था। इसके पश्चात् वज्रधारी नन्दी ने वज्र से इसका शिर काट डाला था और वह शीघ्र ही ताल फल के समान भूमि पर गिर गया था ॥४६॥ जब वह मर गया तो भूमि में गिर गया और समस्त दैत्य भयभीत होकर वेग से दशों दिशाओं में भाग खड़े हुए थे। इसके पश्चात् हस्ती ने अपने पुत्र को निहत देख कर उसी समय नन्दी पर धावा बोल दिया था ॥४७। उसने उग्रवेग वाले वाण और अशनि को ग्रहण कर यम के दण्ड के समान वाणों से भेदन किया था जिस तरह अम्बुधर अपनी जल की धाराओं से शैलक भेदन कर दिया करते हैं उसी भाँति नन्दी आदि गणों को—वृषभध्वजों को उसने भेद दिया था ॥४८॥ विनायक आदि बड़े बलवान् भी वीर दनुज के वाणों से छाद्यमान होकर सिंह से प्रणुन्न वृषभ की भाँति भय से आतुर होकर चारों ओर भागने लगे ॥४९॥

परस्परान्प्रेक्ष्य गणान्कुमारः शक्तिं निशातामथ धारयित्वा।
तूर्णं समभ्येत्यरिपुंगवेषु प्रगृह्य शक्तिं हृदयं बिभेद ॥५०
शक्तिर्निर्भिन्नहृदयो हस्तीभूम्या पपात ह।
समरे चापि पृतनामध्येऽसौ दनुपुंगवः ॥५१
तमरातिगणं दृष्ट्वा मग्नं क्रुद्धा गणेश्वराः।
पुरतो नन्दिनं कृत्वा जिघांसन्तश्च दानवान् ॥५२
ते वध्यमानाः प्रमथैर्दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः।
भूयो निवृत्ता बलिनः कुर्वन्तश्च पुरोगणान् ॥५३
तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन्।
नन्दिषेणो व्याघ्रमुखो निवृत्तश्चापि वेगवान् ॥५४
तस्मिन्निवृत्ते गणपे पट्टिशाग्रकरे तदा।
कान्तस्वरो निववृते गदामादाय नारद ॥५५
समापतन्तं ज्वलनप्रकाशं गणः समीक्ष्यैव महासुरेन्द्रम्।
स पट्टिशं भ्राम्य जघान मूर्ध्नि कान्तस्वरं विस्वरमुन्नदन्तम् ॥५६

हुए देख कर ही जोकि महान् असुरेन्द्र था। उस पट्टिश को घुमाकर विस्वर-उन्मदन्त कान्तस्वर के मस्तक में हनन किया था ॥५६॥

तस्मिन्हते भ्रातरि मातुलेये पाश समाविध्य तुरङ्गकध्वजः।
बबन्ध वीर सह पट्टिशेन गणेश्वरं चाप्यथ नन्दिषेणम् ॥५७

नन्दिषेण तथा बद्धं समीक्ष्य बलिनां वरः।
विशाखः कुपितोऽभ्येत्य शक्तिपाणिरुपस्थितः ॥५८
त दृष्ट्वा बलिनां श्रेष्ठः पाशपाणिरय:शिराः।
संयोधयामास बलि विशाखं कुक्कुटध्वजम् ॥५९
विशाख संनिरुद्धं वै रणे दृष्ट्वा गणोत्तमाः।
शाखश्च नैगमेयश्च तूर्णं दुद्रुवतु रिपुम् ॥६०
एकतो नैगमेयेन भग्नः शक्त्या त्वयःशिराः।
एकतश्चैव शाखेन ! वक्ष खप्रियकाम्यया ॥६१
स त्रिभिः शकरसुतैः पाड्य मानो जहौ रणम्।
संप्राप्य शम्बर तूर्णं रक्ष मा हि गणेश्वरात् ॥६२
पाश शक्त्या समाहृत्य चतुर्भिः शकरात्मजैः।
जगाम निलयं तूर्णमाकाशादिव भूतलम् ॥६३
पाशे निकृत्ते याते च शम्बरः कातरेक्षणः।
दिशोऽप्य भेजे देवर्षे कुमारः सैन्यमार्दयत् ॥६४
सा वध्यमाना पृतना महर्षे सदानवा शर्वसुतैर्गणैश्च।
विवर्णरूपा भयविह्वलाङ्गी जगाम शुक्रं भयार्ता ॥६५

उस मातुलेय भाई के हत हो जाने पर तुरंगकध्वज ने पाश को समाविद्ध करके उस पट्टिश से वीर गणेश्वर को और नन्दिषेण को बाँध लिया था ॥५७॥ नन्दिषेण को उस भाँति बद्ध देख कर बलवानों में श्रेष्ठ विशाख कुपित होकर हाथ में शक्ति ग्रहण करके वहा पर आकर उपस्थित हो गया था ॥५८॥ बल वानों में श्रेष्ठ हाथ में पाश ग्रहण करे हुए अय: शिरा ने उसको देख कर बलि–विशाख और कुक्कुटध्वज से युद्ध किया था ॥५९॥ गणोत्तमों ने विशाख को रण में देख कर शाख और नैगमेय ने तुरन्त ही शत्रु पर आक्रमण

शुक्रोऽन्धकवचः श्रुत्वा सान्त्वयन्परमो गुरुः ।
वचन प्राह देवर्षे हर्षयन्दानवेश्वरम् ।
तद्धि तीर्थं गमिष्यामि करिष्यामि तव प्रियम् ॥६
इत्येवमुक्त्वा वचन विद्या सजीवनी कविः ।
आवर्तयामास तदा विद्यात्तेन शुचिव्रतः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके पश्चात् कुजम्भ के यमालय चले जाने पर और प्रमथों के द्वारा समस्त सेना पर वह महारथी अन्धक भय भीत होकर गुरु शुक्राचार्य के समीप मे पहुचा और उस समय मे बहुत ही विनय के साथ यह वचन बोला—॥१॥ हे भगवन्! आपके चरणों का समाश्रय ग्रहण करके भी हम इन देवताओ से बाधित हो रहे हैं तथा कष्ट भी हे विप्रर्षे! सुर-गन्धर्व और किन्नर हमको सताते हैं ॥२॥ हे भगवन्! मेरी गुप्त इस सेना को आप देखिये। जिस तरह कोई अनाथ नारी हो उसी भाँति प्रमथों के द्वारा मारी एव सताई जारही है ॥३॥ हे भार्गव! कुजम्भ आदि जो मेरे भाई थे वे सभी मारे गये हैं। वे प्रमथ असह्य हैं जैसे कुरुक्षेत्र धाम का फल होता है ॥४॥ इसलिये अब ऐसा करिये जिसे अन्य कोई भी न जानने पावे। मैं शत्रुओं को युद्ध में जीत लू आप ऐसा सब कुछ करने के योग्य हैं ॥५॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—शुक्राचार्य ने अन्धक के इस वचन का श्रवण कर परम गुरु ने उसको सान्त्वना प्रदान की और हे देवर्षे! प्रसन्न होते हुए उसने दानवेश्वर से यह वचन कहा—मैं उस तीर्थ पर जाऊंगा और जो तेरा प्रिय होगा उसे करूंगा ॥६॥ इस प्रकार से यही कहकर कवि ने (शुक्राचार्य ने) अपनी सजीवनी विद्या का आवर्त्तन किया था और बहुत कुछ विधि विधान से परम पवित्र होकर उसे उस समय में आरम्भ करने लगे ॥७॥

तस्यामावर्तमानया विद्यायामसुरेश्वराः ।
ये हता प्रमथैर्युद्धे ते च सर्वे समुत्थिता ॥८
कुजम्भादिषु दैत्येषु भूय एवोत्थितेष्वथ ।
योद्धुं समागतेष्वेव नन्दी शङ्करमब्रवीत् ॥९

॥ ६० ॥ एक ओर तो नैगमेय के द्वारा अधः शिरा भग्न हुआ था जो कि शक्ति से किया गया था और एक ओर विशाख के प्रिय की कामना से शाख ने उसे भग्न किया था ॥६१॥ वह तीनों शंकर के पुत्रों से पीड़ित होकर रण स्थल को त्याग कर शम्बर के समीप में पहुँच गया और उसने प्रार्थना की थी गणेश्वर से मेरी शीघ्र रक्षा करो ॥६२॥ शक्ति से पाश को समाहृत करके चारों शंकर के पुत्रों से युद्ध करके लिये वह शीघ्र निलय पर आकाश से भूतल की भाँति गया था ॥६३॥ पाश के निकृत हो जाने पर शम्बर कातर दृष्टि वाला होगया था। हे देवर्षे ! कुमार ने दिशाओं का सेवन किया था और सेना को अर्दित कर दिया था ॥६४॥ हे महर्षे ! वह सेना वध्यमान होती हुई जोकि शंकर के पुत्रों के द्वारा तथा गणेश्वरों के द्वारा दानवों के सहित मारी जारही थी विवर्ण रूप वाली तथा-भय से विह्वल अंगों वाली होगई थी और अत्यन्त ही भय से दुःखित होकर शुक्राचार्य की शरण में प्राप्त हुई थी ॥६५॥

६८—जम्भ-कुजम्भ वध वर्णन

ततः कुजम्भे तु यमालय गते हृते च सैन्ये प्रमथैर्महारथः।
त्रस्तोऽन्धकोऽभ्येत्य गुरुं च शुक्रमिदंवचःसानुनयस्तदाऽब्रवीत् ॥१

भगवंस्त्वा समाश्रित्य वयं बाधाम देवताः।
अथान्यानपि विप्रर्षे गन्धर्वसुरकिन्नरान् ॥२

तदिमां पश्य भगवन्मम गुप्तां वरूथिनीम्।
अनाथेव यथा नारी प्रमथैरपि काल्यते ॥३

कुजम्भाद्याश्च निहता भ्रातरो मम भार्गव।
असंख्यातास्ते प्रमथाः कुरुक्षेत्रफलं यथा ॥४

तस्मात्कुरुष्व च तथा यथा न क्षायतेऽपरैः।
जयेम च परान्युद्धे तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥५

समुपेत्याहनन्नन्दी चक्रेणाशनितेजसा ।
सा पपाताय निःसंज्ञो ययौ नन्दी ततस्त्वरन् ।।१६
ततः कुजम्भो जम्भश्च वलो वृत्रश्च राक्षसाः ।
स्वय च रणशार्दूला नन्दिन समुपाद्रवन् ।।१७
तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मयह्लादपुरोगमाः ।
नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभिद्रवन् ।।१८
ततो गणानामधिपं कुटयमानं महाबलैः ।
समपश्यन्त देवास्त पितामहपुरोगमाः ।।१९
त दृष्ट्वा भगवान्प्राह देवाञ्छक्रपुरोगमान् ।
साहाय्य क्रियता शमोरेतदन्तरमुत्तमम् ।।२०
पितामहोक्त वचन श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरात् ।।२१

उस बलवान् और महान् भयकर असुरों मे श्रेष्ठ ने उसको देखा उसका मार्ग वन में पशुओ के मार्ग को सिंह की भाँति रोक दिया था ।।१५।। वहा पहुचकर नन्दी वज्र के समान तेज चक्र से उसका हनन कर दिया था और वह बेहोश होकर गिर गया था फिर शीघ्रता से नन्दी आगे बढ गया था ।।१६।। इसके आगे कुजम्भ, जम्भ, बल, और वृत्र राक्षस मिलगये थे । ये सभी बडे रण शार्दूल थे । इन्होंने नन्दी के ऊपर आक्रमण किया था ।।१७।। इसके पश्चात् और भी मय, ह्लाद आदि प्रमुख दानव श्रेष्ठ अनेक हथियारों से सज्जित होकर युद्ध में उस गण नाथ नन्दी पर टूट पडे थे ।।१८।। इसके पश्चात् महान् बलवान् दैत्यो के द्वारा कुटचमान गणो के स्वामी नन्दी को पितामह जिनमे प्रमुख थे उन सहस्र देवों ने देखा था ।।१९।। उसको ऐसी दशा मे देख कर भगवान् ने इन्द्र आदि सब देवों से कहा—इस उत्तम अन्तर मे आप सभी मिलकर शम्भु की सहायता करो ।।२०।। इन्द्र के सहित समस्त देवों ने पितामह के इस वचन का श्रवण कर बडे वेग से आकाश से उस शिव की सेना मे गये थे ।। २१।।

ये हताः प्रमथैर्दैत्या यथाशक्त्या रणाजिरे ।
ते समुज्जीविता भूयो भार्गवेणाथ विद्यया ॥१०
तदिदं यन्महादेव महत्कर्म कृत रणे ।
न जातं स्वल्पमेवेश शुक्रविद्याबलाश्रयात् ॥११
इत्येवमुक्तं वचने नन्दिन कुलनन्दिनम् ।
प्रत्युवाच प्रभुः प्रीत्या स्वार्थसाधनमुत्तमम् ॥१२
गच्छ शुक्रं गणपते ममान्तिकमुपानय ।
अहं तं संयमिष्यामि यथा योग समेत्य हि ॥१३
इत्येवमुक्तो रुद्रेण नन्दी गणपतिस्ततः ।
समाजगाम दैत्यानां चमूं शुक्रजिघृक्षया ॥१४

उस विद्या के आवर्त्तमान किये जाने पर जो भी असुरेश्वर युद्ध में निहत हुए और प्रमथों ने जिन को मार दिया था वे सबके सब समुत्थित होगये थे ॥८॥ कुजम्भादि दैत्यों के पुनः समुत्थित हो जाने पर और युद्ध करने को समागत होने पर नन्दी ने भगवान् शंकर से कहा ॥९॥ हे भगवन् ! यथा शक्ति जिन दैत्यों को रण स्थल में प्रमथों ने मार दिया था वे तो भार्गव ने पुनः समुज्जीवित कर दिये हैं क्योंकि उनके पास सजीवनी विद्या है उसीसे ऐसा किया है ॥१०॥ हे महादेव ! जो यह एक महान् कर्म्म रण स्थल में किया गया है तो हे ईश ! शुक्राचार्य की विद्या के बल का आश्रय होने से हमारा किया हुआ स्वल्प भी कुछ नहीं हुआ ॥११॥ इस प्रकार के वचन के कहने पर कुल को आनन्द देने वाले नन्दी से प्रभु शंकर ने प्रीति के साथ उत्तम स्वार्थ साधन बतलाया था ॥१२॥ हे गणपते ! तुम शुक्राचार्य के पास चले जाओ और उसे मेरे समीप में ले आओ । मैं यथायोग मिलकर उसे संयमित कर दूंगा ॥१३॥ इस तरह से रुद्र के द्वारा कहे जाने पर फिर गणपति नन्दी शुक्राचार्य के ग्रहण करने की इच्छा से दैत्यों की सेना में पहुंच गये थे ॥१४॥

तं ददर्शासुरश्रेष्ठो बलवांस्तु भयंकरः ।
स रुरोध तदा मार्गं सिंहस्येव पशुर्वने ॥१५

समुपेत्याहनन्नन्दी चक्रेणाशनितेजसा ।
सा पपाताथ निःसंज्ञो ययौ नन्दी ततस्त्वरन् ॥१६
ततः कुजम्भो जम्भश्च बलो वृत्रश्च राक्षसाः ।
स्वय च रणशार्दूला नन्दिन समुपाद्रवन् ॥१७
तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मयह्लादपुरोगमाः ।
नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभिद्रवन् ॥१८
ततो गणानामधिपं कुट्यमानं महाबलैः ।
समपश्यन्त देवास्त पितामहपुरोगमाः ॥१९
त दृष्ट्वा भगवान्प्राह देवाञ्छक्रपुरोगमान् ।
साहाय्यं क्रियतां शमोरेतदन्तरमुत्तमम् ॥२०
पितामहोक्तं वचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरात् ॥२१

उस बलवान् और महान् भयकर असुरो मे श्रेष्ठ ने उसको देखा उसका मार्ग वन मे पशुओ के मार्ग को सिह की भांति रोक दिया था ॥१५॥ वहा पहुचकर नन्दी वज्र के समान तेज चक्र से उसका हनन कर दिया था और वह बेहोश होकर गिर गया था फिर शीघ्रता से नन्दी आगे बढ गया था ॥१६॥ इसके आगे कुजम्भ, जम्भ, बल, और वृत्र राक्षस मिलगये थे। ये सभी बडे रण शार्दूल थे। इन्होंने नन्दी के ऊपर आक्रमण किया था ॥१७॥ इसके पश्चात् और भी मय, ह्लाद आदि प्रमुख दानव श्रेष्ठ अनेक हथियारों से सज्जित होकर युद्ध मे उस गण नाथ नन्दी पर टूट पडे थे ॥१८॥ इसके पश्चात् महान् बलवान् दैत्यो के द्वारा कुट्यमान गणो के स्वामी नन्दी को पितामह जिनमे प्रमुख थे उन सहस्र देवों ने देखा था ॥१९॥ उसको ऐसी दशा मे देख कर भगवान् ने इन्द्र आदि सब देवों से कहा—इस उत्तम अन्तर मे आप सभी मिलकर शम्भु की सहायता करो ॥२०॥ इन्द्र के सहित समस्त देवों ने पितामह के इस वचन का श्रवण कर बडे वेग से आकाश से उस शिव की सेना मे समापतित हो गये थे ॥ २१॥

तेषामापतता वेगः प्रमथाना बले बभौ ।
आपगाना महावेग. पतन्तीना महार्णवे ॥२२
ततो हलहलाशब्दः समजायत चोभयो ।
बलयोर्घोरसङ्काशोऽसुरप्रमथयोरथ ॥२३
तदन्तरमुपागम्य नन्दी संगृह्य वेगवान् ।
त भार्गव समाक्रामत्सिहो वनमृग यथा ॥२४
तमादाय हराभ्याशमागमद्गणनायकः ।
निपात्य रक्षिण सर्वानिथ शुक्र न्यवेदयत् ॥२५
समानीतं कवि शर्वः प्राक्षिपद्वदने प्रभुः ।
भार्गव व्यापृत तुण्डे ददृशुस्ते सुरारय ॥२६
स शभुना कवि श्रेष्ठो ग्रस्तो जठरमास्थितः ।
तुष्टाव भगवन्त त वाग्भिर्भार्गव आदरात् ॥२७
वरदाय नमस्तुभ्य हराय गुणशालिने ।
शकराय महेशाय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥२८

उन देवों के ऊपर से नीचे आने का जो वेग था वह प्रमथो की सेना में बहुत ही शोभित हुआ था जैसे महानदियों का महान् वेग जब कि वे महार्णव मे गिरा करती हैं होता है वैसा ही यह प्रतीत होरहा था ॥२२॥ फिर उस समय में दोनो सेनाओं में एक दम हलहला शब्द समुत्पन्न हो गया था और असुर तथा प्रमथो मे घोर सकाश होगया था ॥२३॥ उसी अन्तर मे नन्दी उपगमित होकर वेग के साथ पहुँच कर उस भार्गव के पास प्राप्त हो गये थे जैसे कोई सिंह मृगों के वन में समाक्रान्त हो जाया करता है ॥२४॥ गण नायक ने उस शुक्राचार्य को लेकर भगवान् हर के समीप मे पहुँचा दिया था। नन्दी ने सभी रक्षा करने वालों को मारकर शुक्र से कहा था ॥२५॥ भगवान् शंकर ने उस समानत कवि को मुख में प्रक्षिप्त कर दिया था। सभी सुरारि गण ने तुण्ड में व्याप्त उस भार्गव को देखा था ॥२६॥ शम्भु के द्वारा वह कवि श्रेष्ठ ग्रस्त कर लिया गया था और वह जठर मे समास्थित होगया था। वहीं पर भार्गव ने बड़े आदर से अपनी वाणियों के द्वारा

भगवान् शिव का संस्तवन किया था ॥२७॥ शुक्राचार्य ने कहा—वरदान देने वाले-गुणशाली हर, शंकर, महेश और त्रिनेत्र के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार समर्पित है ॥२८॥

जीवनाय नमस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे ।
मदनाग्ने काल शत्रो वामदेवाय ते नमः ॥२६
सवित्रे विश्वरूपाय वामनाय सदागते ।
महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः ॥३०
त्रिनयन हर भव शंकर उमापते जीमूतकेतो गुहाश्मशाननिरत भूतविलेपन शूलपाणे पशुपतेगोपते तत्पुरुष सत्तम नमो नमस्ते ।
इत्थंस्तुतःकविवरेणहरोऽप्रमेयःप्रीतोवरंवरयभार्गवइत्युवाच ।
सप्राहदेहिभगवंस्तुवरममाद्यद्वैसर्वैवजठरान्ममनिर्गमोऽस्तु ॥३१
ततो हरोऽक्षीणि तदा निरुध्य प्राह द्विजेन्द्रं किल निर्गमस्व ।
इत्युक्तमात्रो विभुना चचार देवोदरे भार्गव पुङ्गवस्तु ॥३२
परिक्रमन्ददर्शासौ शङ्करोदरकोटरे ।
भुवनार्णवपातालान्स्थितान्स्थावरजङ्गमैः ॥३३
आदित्यवसुरुद्रांश्च विश्वे देवगणांस्तथा ।
यक्षान्किपुरुषांश्चैव गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३४
मुनीन्मनुजसाध्यांश्च पशुकीटपिपीलिकाः ।
सरीसृपान्वृक्षगुल्मफलमूलौषधानि च ॥३५

हे लोकनाथ ! हे वृषाकपे ! आप जीवन स्वरूप के लिये मेरा प्रणाम है। मदनाग्नि के काल स्वरूप शत्रु-वामदेव आपके लिये हमारा नमस्कार समर्पित है ॥२६॥ सविता, विश्वरूप, वामन, सदागति, महादेव, सर्व और ईश्वर आप की सेवा में पुनः पुनः मेरा प्रणाम निवेदित है ॥३०॥ हे त्रिनयन ! हर, भव, शंकर, उमापते, जीमूत केतु, गुहाश्मशान निरत, हे भूति विलेपन ! शूलपाणि, पशुपति, गोपति, तत्पुरुष और हे सत्तम ! आपको मेरा नमस्कार अर्पित है। इस प्रकार से कविवर के द्वारा सस्तुत होने पर भगवान् हर भक्ति से प्रसन्न हुए थे और उन्होंने कहा—हे भार्गव ! वर की याचना करलो। भार्गव ने प्रार्थना की

हे भगवन् ! आप मुझे सर्व प्रथम तो यही वरदान देवें कि मेरा आपके उदर से बाहिर निकास हो जावे ॥३१॥ इसके अनन्तर हरने अक्षियों को निरुद्ध करके कहा था कि द्विजेन्द्र ! निकल जाओ । इतना भर विभु के द्वारा कहे गये उस भार्गव श्रेष्ठ ने देवोदर में सञ्चरण किया था ॥३२॥ इसने शङ्कर के उदर-कोटर में परिभ्रमण करते हुए स्थावर, जङ्गमों के सहित भुवन, समुद्र और पाताल लोकों को देखा था ॥३३॥ उसने वहाँ पर आदित्य, वसु रुद्रों को, विश्व में देव गणों को, यक्ष, किम्पुरुषों को और गन्धर्व तथा अप्सराओं के गणों को देखा था ॥३४॥ मुनियों को—मनुओं को—साध्यों को और पशु, कीट तथा पिपीलिकाओं को देखा था। सरी सृपों को, गुल्म, फल, मूल और औषधों को देखा था ॥३५॥

जलस्थाश्चस्थलस्थांश्चानिमेषान्निमिषानपि ।
अव्यक्तांश्चैव व्यक्तांश्च द्विपदोऽथ चतुष्पदः ॥३६
स दृष्ट्वा कौतुकाविष्टः परिबभ्राम भार्गवः ।
तत्रास्यतो भार्गवस्य दिव्यः संवत्सरो गतः ॥३७
न चैवान्तमसौ लेभे ततः श्रान्तोऽभवत्कविः ।
स श्रान्तं वीक्ष्य चात्मानं न च लेभेऽथ निर्गमम् ।
भक्तिनम्रो महादेव ततस्तसमुपागमत् ॥३८
विश्वरूप महारूप विश्वरूपाक्ष रूपधृक् ।
सहस्राक्ष महादेव त्वामहं शरणं गतः ॥३९
नमोऽस्तु ते शङ्कर शर्व शम्भो सहस्रनेत्राङ्घ्रिभुजङ्गभूषण ।
दृष्ट्वैव सर्वंभुवन तवोदरे भ्रान्तो भवं त्वां शरणं प्रपन्न. ॥४०
इत्येवमुक्ते वचने महात्मा शम्भुर्वचः प्राह तदा विहस्य ।
निर्गच्छ पुत्रोऽसि ममाधुनात्वंशिश्नेनमोभार्गववंशचन्द्र ॥४१
नाम्ना तु शुक्रः शिवरायवस्त्वान्नोत्पदिनवैचात्रविचारणात्वात् ।
इत्येवमुक्त्वा भगवान्मुमोच शिश्नेन शुक्र. सच निर्जगाम ॥४२

जल में रहने वाले-स्थल में रहने वाले-अनिमेष-निमिषों को-अव्यक्तों व्यक्तों को द्विपद और चतुष्पदों को वहाँ देखा था ॥३६॥ वह

भार्गव कौतुक में भरकर सबको देखते हुए वहा भ्रमण कर रहा था। वहाँ रहते हुए भार्गव को एक दिव्य वर्ष व्यतीत हो गया था ॥३७॥ इसने वहाँ पर उसका कहीं भी अन्त नहीं प्राप्त किया था और इस के बाद वह कवि श्रान्त हो गया था। वह अपने आपको अत्यन्त श्रान्त हुआ देख कर भी निर्गम नहीं प्राप्त कर रहा था। फिर भक्ति भाव से अत्यन्त नम्र होकर महादेव की शरण में प्राप्त हुआ था ॥३८॥ शुक्राचार्य ने कहा—आप तो विश्व रूप वाले हैं। आपका रूप महान् है। हे विश्वरूपाक्ष ! आप रूप धारण करने वाले हैं। हे सहस्राक्ष ! हे महादेव ! मैं आपको शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ ॥३९॥ हे शंकर ! हे शर्व ! हे शम्भो ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है। हे सहस्र नेत्र और चरण वाले ! आपके भुजग तो भूषण होते हैं। आपके उदर में सम्पूर्ण भुवन को देख कर मैं तो भ्रान्त हो गया हूँ। अब आपकी मैं शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ ॥४०॥ ऐसा वचन कहने पर उस समय में महात्मा शम्भु ने हँसकर यह वचन कहा—हे पुत्र ! तू अब मेरे शिश्न से निकल जा। तू भार्गव वंश को प्रकाशित करने वाला चन्द्रमा के समान है किन्तु सभी चराचर नाम से तुमको 'शुक्र'—यही कह कर स्तवन करेंगे-इस में कुछ भी विचारणा नहीं होनी चाहिए। इतना मात्र कह कर भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया था और वह शुक्र शिश्न के द्वारा निकल गया था ॥४१-४२॥

विनिर्गतो भार्गववंशचन्द्रः शुक्र त्वमासाद्य महानुभावः ।
प्रणम्य शंभुं स जगाम तूर्णं महासुराणावलमुत्तमोजाः ॥४३
भार्गवे पुनरायाते दानवा मुदिताभवन् ।
पुनर्युद्धाय विदधुर्मति सह गणेश्वरैः ॥४४
गणेश्वरास्तानसुरान्सहामरगणैरथ ।
युयुधुः संकुल युद्धं सर्व एव जयेप्सवः ॥४५
ततोऽसुरगणानां च युध्यता द्वन्द्वयुद्धवत् ।
द्वन्द्वयुद्ध समभवद्घोररूपं तपोधन ॥४६

अन्धको नन्दिनं युद्धे शङ्कुकर्णं त्वयःशिराः ।
कुम्भध्वजं बलिर्धीमान्नन्दिषेण विरोचन. ॥४७
अश्वग्रीवो विशाख च शाखो वृत्रमयोधयत् ।
बाण तथा नैगमेयो बल राक्षसपुङ्गवः ॥४८
विनायक महावीर्यं परश्वधधर रणे ।
सक्रुद्धा राक्षसश्रेष्ठा दानवाः प्रमथानथ ॥४९

वह विनिर्गत भार्गवों के वश का चन्द्रमा महानुभाव शुक्रदेव को प्राप्त हो गया था उसने जो कि उत्तम ओज वाला महर्षि था फिर भगवान् शम्भु को प्रणाम किया था और शीघ्र ही महासुरों की सेना में चला गया था ॥४३॥ भार्गव के पुनः समायात हो जाने पर दानव गण बहुत ही प्रसन्न हुए थे और उन्होंने पुनः गणेश्वरों के साथ युद्ध करने की बुद्धि की थी ॥४४॥ गणेश्वर भी महान् अमर गणों के साथ उन असुरों से सकुल युद्ध करने लगे थे और सभी विजय की इच्छा वाले थे ॥४५॥ हे तपोधन ! फिर द्वन्द्व युद्ध की भाँति युद्ध करने वाले असुर गणों का महान् घोर स्वरूप वाला द्वन्द्व युद्ध हुआ था ॥४६॥ अन्धक ने नन्दी के साथ-अयः शिरा ने शङ्कुकर्ण के साथ-धीमान् बलि ने कुम्भध्वज के साथ और विरोचन ने नन्दिषेण के साथ युद्ध किया था ॥४७॥ अश्वग्रीव ने विशाख से और शाख ने वृत्र के साथ युद्ध किया था। राक्षस पुंगव नैगमेय ने बल के साथ युद्ध किया था ॥४८॥ रण स्थल में परशुधारी महान् वीर्य वाले विनायक से युद्ध करते हुए राक्षस श्रेष्ठ दानव बड़े क्रुद्ध हुए और प्रमथों के साथ युद्ध करने लगे थे ॥४९॥

समयोधयन्तो ब्रह्मर्षे दायादाना शतानि षट् ॥५०
शतक्रतुं समाधीत वज्रपाणिमवस्थितम् ।
त चापि दानवश्रेष्ठस्तुहुण्डः समयोधयत् ॥५१
हस्ती च कुण्डजठर ह्लादो वीर घटोदरम् ।
एते हि बलिना श्रेष्ठा दानवाः प्रमथानथ ।
समयोधयन्तो ब्रह्मर्षे दंते याना शतानि षट् ॥५२

गणोत्कट समायान्तं वज्रपाणिमवस्थितम् ।
वारयामास बलवाञ्जम्भो नाम महासुरः ॥५३
शम्भुर्नामासुरपतिः स ब्रह्माणमयोधयत् ॥५४
मायामयः कुजम्भश्च विष्णुं दैत्याधिपस्त्वियात् ।
वैवस्वतं रणे सोल्को वरुण त्रिशिरास्तथा ॥५५
द्विमूर्धा पवनं सोमं सहमित्र विरूपधृक् ।
एकहृक् स रणे रौद्रः कालनेमिर्महासुरः ॥५६

हे महार्षे ! दायादो द्वै सो लोग बली भाँति वहाँ पर युद्ध कर रहे थे ॥५०॥ शतक्रतु को जो कि वज्र हाथ मे ग्रहण किये वहाँ अव स्थित था उसको देखा और उसमे भी दानवो मे श्रेष्ठ तुहुण्ड ने युद्ध किया था ॥५१॥ हस्ती ने कुण्ड जठर से और ह्राद ने वीर घटोदर से युद्ध किया था । ये सभी बली दानवों में परम श्रेष्ठ थे जो प्रमथो के साथ वहा युद्ध कर रहे थे । हे महार्षे ! दैत्यों के छै सो लोग वहा युद्ध कर रहे थे ॥५२॥ वहाँ पर अवस्थित और समायात होने वाले गणोत्कट को जिसके हाथ मे वज्र था महान् असुर बलवान् जम्भ ने वारित किया था ॥५३॥ शम्भु नाम वाले असुरो के पति ने ब्रह्माजी के साथ युद्ध किया था ॥५४॥ मायामय दैत्यो के अधिप कुजम्भ विष्णु के समीप युद्ध करने को आया था । सोल्क ने वैवस्वत से और त्रिशिरा ने रण स्थल में वरुण से युद्ध किया था ॥५५॥ द्विमूर्धा ने पवन से और विरूप धृक् ने सह मित्र सोम से युद्ध किया था । उस रण भूमि मे एक हृक् महान् असुर कालनेमि परम रौद्र स्वरूप वाला था ॥५६॥

एकादशैव रुद्रास्तु यच्चैकोऽपि रणोत्कटः ।
योधयामास तेजस्वी विद्युन्माली महासुरः ॥५७
द्वावश्विनौ च नरको भास्करानेव शम्बरः ।
साध्यान्मरुद्गणाश्चैव निवातकवचादयः ॥५८
एवं द्वन्द्वसहस्राणि प्रमथानां च दानवैः ।
सजातानां सुरान्दाना पट्छतानि महामुने ॥५९

यदा योद्धुं न शक्तास्ते दानवैरमरादयः।
मुखं व्यादाय वेगेन ग्रसन्ते क्रमशोऽमरान् ॥६०
ततोऽभवच्च तत्सैन्य शून्य प्रमथदैवतैः।
आवृत वर्जित सर्वैः प्रमथैरमरैरपि ॥६१
दृष्ट्वा शून्य गिरिप्रस्थ ग्रस्तांश्च प्रमथामरान्।
क्रोधादुत्पादयामास रुद्रो जृम्भाम्बिका वशी ॥६२
यया ऽऽकृष्टा दनुसुता अलसा मन्दभाषिणः।
वदन विकृत कृत्वा मुक्तशस्त्रा विजृम्भिरे ॥६३

एकादश रुद्रों के साथ एक ही रणोत्कट युद्ध कर रहा था। महासुर तेजस्वी विद्युन्माली ने वहाँ युद्ध किया था ॥५७॥ नरक ने दानों अश्विनी कुमारों से तथा शम्बर ने भास्करों से युद्ध किया था। साध्यवृन्द और मरुद्‌गणों से निवात कवचादि ने युद्ध किया था ॥५८॥ इस प्रकार से प्रमथों का दानवों के साथ सहस्रों द्वन्द्व युद्ध हुए थे। हे महामुने! दिव्य वर्षों के छैः सौ वर्ष तक ये युद्ध होते रहे थे ॥५९॥ जब अमर गण दानवों के साथ युद्ध करने को समर्थ नहीं रहे थे तब वे दैत्य अपना मुख फैलाकर क्रम से अमर गणों के बड़े वेग से ग्रसने लगे थे ॥६०॥ इसके उपरान्त वह सेना प्रमथ और देव गणों से सूनी हो गई थी। सब प्रमथ और देवगण आवृत एवं वर्जित वह रण स्थल हो गया था ॥६१॥ उस गिरि प्रस्थ को सूना और प्रमथों को ग्रस्त हुए देखकर वशी रुद्र ने क्रोध से जृम्भाम्बिका को उत्पादित किया था ॥६२॥ उसके द्वारा समाकृष्ट हुए मन्दभाषी-आलसी दनु के पुत्र शस्त्रों को छोड़, मुख को विकृत करते हुए जँभाई लेने लगे ॥६३॥

विजृम्भमाणेषु तदा दानवेषु गणेश्वराः।
सुराश्च निर्ययुस्तूर्णं दैत्यदेहेभ्य आकुलाः ॥६४
मेघप्रभेभ्यो देहेभ्यो निर्गच्छन्तोऽमरोत्तमाः।
शोभन्ते पद्मपत्राक्षा मेघेभ्य इव विद्युत ॥६५
ततोऽमरगणाः सर्वे निर्गताश्च तपोधन।
अयुध्य त महात्मानो भूय एवाभिकोपिता ॥६६

ततो देववरैः सर्वे दानवाः शर्वपालितैः ।
पराजीयन्त संग्रामेभूं योभूयस्त्वहर्निशम् ॥६७
तत्र त्रिणेत्रः स्वां संध्यां सप्ताष्टशतिके गते ।
काले ह्यु पासत तदा सोऽष्टादशभुजोऽव्ययः ॥६८
संस्पृश्यापः सरस्वत्याः स्नात्वा च विधिना हरः ।
कृतार्थो भक्तिमान्मूर्ध्नि पुष्पाञ्जलिमथाक्षिपत् ॥६६
ततो ननाम शिरसा ततश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थे जजाप ह ॥७०

उस समय में उनके (दानवों के) विजृम्भमाण होने पर समस्त गणेश्वर और सुरगण आकुल होकर शीघ्र ही दैत्यों के शरीरों से बाहिर निकल आये थे ॥६४॥ मेघों के समान प्रभा वाले देहों से निकलते हुए अमर गण जिनके नेत्र पद्म पत्रों के समान थे मेघों से विद्युत की भाँति शोभित हो रहे थे॥६५॥हे तपोधन ! फिर सभी देववृन्द निकल आये थे। फिर पुनः क्रोधित होकर वे महात्मा युद्ध करने लगे थे ॥६६॥ इसके उपरान्त शिव के द्वारा पालित देववरों के द्वारा समस्त दानव संग्रामों से बारम्बार अहर्निश पराजित हुए थे ॥६७॥ इसके पश्चात् सप्ताष्ट शतिक काल के हो जाने पर उस समय में भगवान् त्रिनेत्र प्रभु ने अपनी सन्ध्या की उपासना की थी और उस काल में वह अविनाशी अठारह भुजाओं वाले थे ॥६८॥ भगवान् हरि ने विधि पूर्वक सरस्वती के जल का संस्पर्श करके तथा उसमें स्नान करके परम कृतार्थ हुए थे और भक्तिमान् ने इसके अनन्तर मस्तक पर पुष्पाञ्जलि प्रक्षिप्त की थी ॥६६॥ इसके उपरान्त शिर से प्रणाम किया था और फिर प्रदक्षिणा की थी। हिरण्यगर्भ—इत्यादि का उपस्थान किया और जाप किया था ॥७०॥

द्रष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु सम्यगुच्चार्य शूलधृक् ।
ननर्त भावगम्भीरो दोर्द् ण्ड भ्रामयन्बली ॥७१
परिनृत्यति देवेशे गणाश्चैव सुरास्तथा ।
नृत्यन्ति भावयुक्तास्तु हरस्यानुविधायिनः ॥७२

सध्यामुपास्य देवेशः परिनृत्य यथेच्छया ।
युद्धाय दानवैः सार्धं मति भूयः समादधे ॥७३

ततः सुरगणैः सर्वैस्त्रिणेत्रभुजपालितैः ।
दानवा निर्जिताः सर्वे बलिभिर्भयवर्जितैः ॥७४

स्वबल निर्जित दृष्ट्वा मत्वाऽजेय च शकरम् ।
अन्धकः सुन्दमाहूय वचन चेदमब्रवीत् ॥७५

सुन्द भ्राताऽसि मे वीर विश्वास्यः सर्ववस्तुषु ।
तत्वा वदामि यद्वाक्य तच्छ्रुत्वा कुरुयत्क्षमम् ॥७६

दुर्जयोऽसौ रणपटुर्महात्मा कारणान्तरैः ।
ममास्ति चापि हृदये पद्माक्षी शैलनन्दिनी ॥७७

(शूलधारी शिव ने 'द्रष्टा के लिये बारम्बार नमस्कार है'—ऐसा भली भाँति उच्चारण करके भाव मे अत्यन्त गम्भीर होकर बलशाली प्रभु दोदण्ड का भ्रमित करते हुए नृत्य करने लगे थे ॥७१॥ देवेश्वर के नृत्य करने पर सभी गण और सुर वृन्द भी भाव युक्त होकर हरके अनुविधायी होते हुए नृत्य करने लगे थे॥७२॥देवेश ने सन्ध्या की उपासना करके और यथेच्छा से नृत्य समाप्त करके फिर दानवो के साथ युद्ध करने की बुद्धि की थी ॥७३॥) इसके अनन्तर त्रिनेत्र प्रभु के द्वारा पालित—बलशाली और भय से रहित समस्त सुरगणो ने सभी दानवो को निर्जित कर दिया था ॥७४॥ अन्धक ने अपनी सेना को निर्जित देख कर तथा भगवान् शकर को अजेय मानकर सुन्द को बुलाकर यह वचन कहा था ॥७५॥ अन्धक ने कहा—हे सुन्द ! आप बड़े वीर है और मेरे भाई हैं। सभी बातों मे विश्वास करके मैं आप से जो भी वाक्य कहता हूँ उसे श्रवण करके जैसा भी हो सके करिये ॥७६॥ महात्मा अन्य कारणों से दुर्जय हैं क्योकि रण मे बहुत कुशल है। मेरे हृदय मे पद्माक्षी शैलनन्दिनी समाई हुई है ॥७७॥

तदुत्तिष्ठस्व गच्छावो यत्रास्ते चारुहासिनी ।
तत्रैना मोहयिष्यामि शम्भुरूपेण दानव ॥७८

भवान्भवस्यानुचरो भव नन्दी गणेश्वरः ।
ततो गत्वाऽथ भुक्त्वा ता जेष्यामि प्रमथान्सुरान् ॥७६

इत्येवमुक्ते वचने वाढं सुन्दोऽप्यभाषत ।
समजायत शैलादिरन्धकःशंकरोऽप्यभूत् ॥८०

नन्दिरुद्रौ ततो भूत्वा महासुरचमूपती ।
सप्राप्तौ मन्दरगिरि प्रहारैः कृतविग्रहौ ॥८१

नन्दिनो हस्तमालम्ब्य ह्यन्धको हरमन्दिरम् ।
विवेश निर्विशङ्केन चित्तेनासुरसत्तमः ॥८२

ततो गिरिसुता दूरादायान्त वीक्ष्य चान्धकम् ।
महेश्वरवपुश्छन्नं प्रहारैर्जर्जरच्छविम् ॥८३

सुन्दं शैलादिरूपस्थमवष्टम्याविशत्ततः ।
त दृष्ट्वा मालिनी प्राह यश स्या विजयां जयाम् ॥८४

सो आप खड़े हो जाओ वहाँ वह चारुहासिनी है वहा पर चलें हे दानव ! मैं शम्भु का स्वरूप धारण करके उसे मोहित करूंगा ॥७८॥ आप भव का अनुचर गणेश्वर नन्दी वन जाना । फिर वहाँ जाकर उसका उपभोग करके सभी प्रमथों और सुरों को जीत डालूंगा ॥७९॥ इतना वचन इस तरह कहने पर सुन्द ने भी 'बहुत अच्छा'—यही कहा था । फिर शैलादि बन गया था और अन्धकने शंकर का स्वरूप धारण कर लिया था ॥८०॥ वे दोनों महासुर चमूपति नन्दी और रुद्र बनकर मन्दर गिरि पर प्राप्त हो गये थे । वे दोनों प्रहारों से अपने विग्रह वाले बन गये थे अर्थात् ऐसे शरीर बनाये कि जिनमें प्रहारों के चिह्न थे ॥८१॥ वह असुर श्रेष्ठ अन्धक नन्दी के हाथों का अवलम्ब ग्रहण करके निर्विशंकित्त चित्त से हर के मन्दिर में प्रविष्ट हो गया था ॥८२॥ फिर गिरि सुताने दूर से ही आते हुए अन्धक को देखा था जोकि महेश्वर के स्वरूप में छिपा हुआ था और प्रहारों से जर्जरित छवि वाला बना हुआ था ॥८३॥ शैलादि के रूप में अब स्थित सुन्द का अवलम्ब लेकर जिसने वहा प्रवेश किया था पार्वती ने देखा था और

उसको देखकर वह मालिनीय सखा–विजया और जया से बोली ॥ ८४ ॥

जये पश्यस्व देवस्य मदर्थे विग्रह कृतम् ।
शत्रुभिर्दारुणतरैस्तदुत्तिष्ठस्व सत्वरम् ॥८५
घृत मानय पौराण चीर च लवण दधि ।
व्रणभङ्ग करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः ॥८६
कुरुष्व शीघ्रमस्य त्व भर्तुर्व्रणविनाशनम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचन समुत्थाय वरासनात् ॥८७
अभ्युद्ययौ तदा भक्त्या मन्यमाना वृषध्वजम् ।
शरपत्रेण तच्छित्वा भूयश्चिह्नानि यत्नतः ॥८८
अन्विषेप तदाऽपश्यत्तावुभौ पार्श्वतः स्थितौ ।
सा ज्ञात्वा दानव रौद्रं मायाच्छादितविग्रहम् ॥८९
अपयान तदा चक्रे गिरिराजसुता मुने ।
देव्याश्चिन्तितमाज्ञाय मुन्द त्यक्त्वाऽन्धकोऽसुरः ॥९०
समाद्रवत वेगे न हरकान्ता विभावरीम् ।
समाद्रवत दैतेयो येन मार्गेण सा गता ॥९१

हे जये ! देखो, मेरे लिये देवेश्वर का इस दुष्ट ने शरीर बनाया है क्योंकि इसके शत्रु तो परम दारुण थे उनको जीत नही सका था । सो तुम शीघ्र खडी हो जाओ ॥ ८५ ॥ पुराना घृत–चीर–लवण और दधि लाओ । मैं स्वय ही पिनाकी के व्रणो का भग करूगी ॥८६॥ तुम शीघ्र ही इस भर्त्ता के व्रणो का विनाश करो । इतना मात्र वचन कह कर वह गिरि सुता अपने वरासन से खडी हो गई थी ॥८७॥ उस समय मे भक्ति से वृषध्वज को मानती हुई सामने गई थी । शर पत्र से पुन. चिह्नो को यत्न पूर्वक छेदन करने की इच्छा की थी । उस समय मे वे दोनों ही पार्श्व भाग मे स्थित थे—यह देखा था । उस गिरि सुता ने माया से छादित विग्रह वाले रौद्र दानव को पहिचान कर हे मुने ! गिरिराज की पुत्री ने वहां से अपयान किया था । देवी के चिन्तित को जानकर मुन्द का त्याग करके असुर अन्धक ने विभावरी हर की कान्ता

के ऊपर बड़े वेग से आक्रमण किया था जिस मार्ग से वह गयी थी दैतेय भी उसी से पीछे दौड़ा था ॥८८-९१॥

कुर्वती च तिरस्कारं पादप्लुतिनिराकुला ।
तमापतन्त दृष्ट्वैव गिरिजा प्राद्रवद्भयात् ॥९२
गृह त्यक्त्वा ह्य ुपवन सखीभिः सहिता तदा ।
तत्राप्यनुजगामासौ मदान्धो मुनिपुंगव ॥९३
तथापि न शशापेन तपसो गोपनाय यत् ।
तद्भयादाविशद्गौरी श्वेतार्ककुसुमं शुचि ॥९४
विजयाद्या महागुल्म सम्प्रयाता लय मुने ।
नष्टायामथ पार्वत्या भूयो हैरण्यलोचनिः ॥९५
सुन्द हस्ते समादाय स्वसैन्य पुनरागमत् ।
अ धके पुनरायाते स्वबल मुनिसत्तम ॥९६
प्रावर्तत महायुद्ध प्रमथासुरयोरथ ।
ततो रणे सुरश्रेष्ठो विष्णुश्चक्रगदाधरः ॥९७
निजघानासुरबलं शंकरप्रियकाम्यया ।
शार्ङ्गचापच्युतर्वाणै सस्यूता दानवर्पभाः ॥९८

गिरिजा ने पादप्लुति से निराकुल होती हुई उसका तिरस्कार किया था । अब उसने उसको अपने ऊपर एक दम आते हुए ही देखा तो वह गिरिजा भय से वहा से भाग खडी हुई थी ॥९२॥ हे मुनि पुगव ! उस समय में अपने घर को छोड़कर सभी सखियो के साथ वह उपवन मे चली गयी थी किन्तु वहाँ पर भी मद मद से अन्धा असुर पीछे २ ही लगा हुआ पहु च गया था ॥९३॥ तो भी तपश्चर्या की रक्षा करने के लिये गिरि सुता ने इस दुष्ट को शाप नही दिया था । फिर उसके भय से जगदम्बा और परम शुचि जो श्वेत अर्क का कुसुम था उसमें प्रवेश कर गयी थी ॥९४॥ हे मुने ! विजया आदि जो सखियाँ थी उन्होने महा-गुल्म में सम्प्रयाण कर दिया था और लय को प्राप्त होगई थीं । इस तरह से पार्वती के लुप्त होकर नष्ट हो जाने पर फिर वह हैरण्यलोचनि सुद का हाथ पकड़ कर अपनी सेना मे आगया था । हे मुनिसत्तम !

अन्धक के पुनः आजाने पर प्रमथों और असुरों में महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। इसके उपरान्त चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने जो सभी सुरों में परम श्रेष्ठ थे रण स्थल में भगवान् शंकर को प्रिय करने की कामना से असुरों के बल का हनन किया था और शार्ङ्गचाप से निकले हुए बाणों से दानव श्रेष्ठ सब सद्भूत अर्थात् छिन्न हो गये थे ॥६५-६८॥

पञ्च षट् सप्त चाष्टौ वा वज्रपादैर्घना इव।
गदया कांश्चिदवधीच्चक्रेणान्याञ्जनार्द्दनः ॥६६
खड्गेन च चकर्तान्यान्दृष्ट्याऽन्यानस्मसात्कृतान्।
हलेनाकृष्य चैवान्यान्मुसलेनाप्यचूर्णयत् ॥१००
गरुडः पक्षपाताभ्यां तुण्डेनाप्युरसाऽहनत्।
स चादिपुरुषो धाता पुराणः प्रपितामहः ॥१०१
भ्रामयन्विपुलं पद्ममभ्यषिञ्चत वारिणा।
सस्पृष्टा ब्रह्मतोयेन सर्वतीर्थमयेन हि ॥१०२
गणामरगणाश्चासन्नवा गणशताधिकाः।
दानवास्ते च तोयेन सस्पृष्टाश्चाघहारिणा ॥१०३
सवाहना लयं जग्मुः कुलिशेनेव पर्वताः।
दृष्ट्वा ब्रह्महरी युद्धे घातयन्तौ महासुरान् ॥१०४
शतक्रतुश्च सम्प्राप्तो युद्धाय कृतनिश्चयः।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बली दानव सत्तमः ॥१०५

पाँच-छै-सात अथवा आठ वज्र पादों से घनों की भाँति गदा से भगवान् जनार्दन ने कुछ को और कुछ को चक्र के द्वारा वध किया था ॥६६॥ अन्यों को खग [illegible] काट दिया था तथा दूसरों को दृष्टि से ही भस्मसात् कर डाला था। हल से खींचकर अन्यों को मुसल के द्वारा चूर्ण कर दिया था ॥१००॥ गरुड ने अपनी पंखों के घातों से तथा तुण्ड के द्वारा और उरस्थल से हनन किया था। वह आदि पुरुष-परम पुराण—धाता प्रपितामह ने अपने विपुल पद्म को घुमाते हुए वारि से अभिषेचन किया था। वह ब्रह्म जल सर्व तीर्थमय था। उसका

पाकर गण और अमरगण न्यूनाधिक गण वाले होगये थे। वे दानव भी उस बल का सस्पर्श प्राप्त कर जोकि अघों का हरण करने वाला था वाहनों के सहित कुलिश से पर्वतों की भांति स्तर को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार से शतक्रतु ने ब्रह्माजी और भगवान् हरि को युद्ध भूमि में घात करते हुए देखा था ॥१०१-१०४॥ इन्द्र भी इन्हें देखकर वहाँ पर आगये थे और इनने भी असुरों के साथ युद्ध करने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। उनको आते हुए देखकर दानवों में श्रेष्ठ बल वहाँ पर आगया था ॥१०५॥

नत्वा देवं गदापाणिं विमानस्थं च पद्मजम्।
क्रमेण चाद्रवद्योद्धुं मुष्टिमुद्यम्य नारद।
बलवान्दानवपतिरजेयो देवदानवैः ॥१०६
तमापतन्तं त्रिदशेश्वरस्तु दोष्णा सहस्रेण यथाबलेन।
वज्रं परिभ्राम्यबलस्यमूर्ध्निसन्निपातयामाससुरेश्वरस्तु ॥१०७
बाढं स चाक्षप्रवरोऽपि वज्रो जगाम तूर्णं हि सहस्रधा मुने।
बलोऽद्रवद्दैत्यपतिश्च भीतः पराङ्मुखोऽभूत्सुरराण्महर्षे ॥१०८
तं चापि जम्भो विमुखं निरीक्ष्य भूतावृतो वाक्यमुवाच चेदम्।
तिष्ठस्वराजाऽसिचराचरस्यनराजधर्मेणदितपलायनम् ॥१०९
सहस्राक्षो जम्भवाक्यं निशम्य भीतस्तूर्णं विष्णुमागान्महर्षे।
उपेत्याथश्रूयतांवाक्यमीशत्वर्वैनाथोभूतभव्यस्यविष्णो ॥११०
जम्भस्तजयतेऽत्यर्थं मां निरायुधमादिशन्।
आयुधं देहि भगवंस्त्वामहं शरणं गतः ॥१११
तमुवाच हरिः शक्रं त्यक्त्वा वज्रं व्रजाधुना।
प्रार्थयस्वायुधं वह्निं स ते दास्यत्यसंशयम् ॥११२

इसने सर्व प्रथम गदा पाणि प्रभु को नमस्कार किया और फिर विमान में समवस्थित पद्म योनि को प्रणाम किया था। हे नारद! इनके पश्चात् उसने क्रम से मुष्टि को उठाकर युद्ध करने को आक्रमण किया था। यह दानवों का स्वामी बहुत अधिक बलवान् था और देव-दानवों के द्वारा अजेय था ॥१०६॥ उसको युद्ध भूमि में आया हुआ

देख कर त्रिदशों के स्वामो इन्द्र ने अपने सहस्रों हाथों से यथा बल वज्र को सुरेश्वर ने घुमाकर बल के माथे में मारा था और वह अस्त्रों में श्रेष्ठ भी वज्र शीघ्र ही हे मुने ! सहस्रों टुकड़े हो गया था। फिर बल ने हमला किया तो हे महर्षे ! वह सुरों का राजा डर कर देवपति वहाँ से पराङ्मुख हो गया था ॥१०७॥-१०८॥ जम्भ ने उसको विमुख देखकर भूतों से समावृत होकर यह वचन कहा था। खड़े रहो, राजा चराचर का है। राज धर्म में इस तरह भाग जाना नहीं बताया गया है॥१०९॥ सहस्राक्ष ने जम्भ के इस वाक्य को श्रवण करके भीत होते हुए हे महर्षे ! वह विष्णु के मार्गों को प्राप्त हुआ था और कहा—हे विष्णो ! हे ईश ! आप सुनिये क्यों कि आप भूत-भव्य के स्वामी हैं ॥११०॥ मुझ बिना आयुध वाले को आदेश देता हुआ जम्भ बहुत ही अधिक तर्जित कर रहा है। हे भगवान् ! आप मुझको कोई आयुध दीजिए। मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूं ॥१११॥ हरि ने इन्द्र से कहा—अब तुम वज्र को छोड़ कर वह्निदेव से किसी आयुध की प्रार्थना करो वह आपको निस्सन्देह आयुध देंगे ॥११२॥

जनार्दनवच. श्रुत्वा शक्रस्त्वमितविक्रमः।
शरणं पावकमगादिदं चोवाच नारद ॥११३
निघ्नतो मे बलं वज्रः कृशानो शतधा गतः।
एष चाहूयते जम्भस्तस्माद्ह्यायुधं मम ॥११४
तमाह भगवान्वह्निः प्रीतोऽस्मि तव वासव।
यस्तु दर्पं परीहृत्य मामेव शरणं गतः ॥११५
इत्युच्चाय स्वशक्त्या स शक्तिं निष्क्राम्य भावतः।
प्रादादिन्द्राय भगवान्प्रोचमानो दिवं गतः ॥११६
समादाय तदा शक्तिं शतघण्टां सुदारुणाम्।
प्रत्युद्ययौ तदा जम्भं हन्तुकामोऽरिमर्दनः ॥११७
तयाऽग्निसहितः शक्रः सह सैन्यैरभिद्रुतः।
क्रोधं चक्रे तदा जम्भो निजघान गजाधिपम् ॥११८

जम्भमुष्टिनिपातेन भग्नकुम्भकटो गजः ।
निपपात यथा शैलः शक्रवज्रहतः पुरा ॥११६
जम्भे हते दैत्यबले च भग्ने गणास्तु हृष्टा हरिमर्चयन्तः ।
वीर्यं प्रशसन्ति शक्रतोऽग्न्न स गात्रमिच्छर्वमुपेत्य तस्थौ ॥१२०

जनार्दन के इस वचन को सुनकर अमित बल विक्रम वाला इन्द्र पावक देव के शरण मे गया था और हे नारद ! वहा यह वचन बोला था ॥११३॥ इन्द्र ने कहा—सेना का निहनन करते हुए मेरा वज्र हे कृशानो ! सैकडो टुकडे हो गया है और यह जम्भ युद्ध के लिये मेरा बराबर आह्वान कर रहा है । अतएव मुझे आप कोई उचित आयुध प्रदान कीजिए ॥११४॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—उससे अग्नि देव ने कहा—हे इन्द्र ! मैं तुम पर परम प्रसन्न हु क्यो कि जिस तुमने अपना बलवान् होने का गर्व त्याग दिया है और इस समय मे मेरी ही शरण ग्रहण की है । यह कह कर उस अग्नि देव ने अपनी शक्ति से भावना से शक्ति को निकाल कर इन्द्र को देदी थी और फिर इन्द्र परम रोषमान होते हुए दिवलोक को चले गये थे ॥११५-११६॥ उसी समय मे उस शक्ति को ग्रहण कर जो शत घण्टा और परम सुदारुण थी जम्भ को मारने की इच्छा वाला वह शत्रुओ का मर्दन करने वाला इन्द्र फिर युद्ध स्थल मे पहुंच गया था ॥११७॥ उस शक्ति से अभिसहित इन्द्र सैन्य के साथ आमिट्रत हुआ था । उस समय जम्भ ने क्रोध किया था और गर्जाधिप को मार गिराया ॥११८॥ जम्भ की मुष्टि के निपात से ही गज के कुम्भ कट भिन्न हो गये थे और पहिले इन्द्र के वज्र से निहत शैल गिर गया था वैसे ही यह भी गिर पड़ा था ॥११६॥ शक्ति पात से जम्भ मर गया था और सुरगण परम प्रसन्न हुए सब हरि का अर्चन करने लगे और इन्द्र की प्रशसा करने लगे थे ॥१२०॥

७०—अन्धक पराजय तथा वर प्राप्ति वर्णन

तस्मिंस्तदा दैत्यबले च भग्ने शक्रोऽब्रवीदन्धकमासुरेन्द्रम् ।
एह्य हि वीरायगता महासुरायोत्स्यामभूयोह्रमेत्यशंलम

तमुवाचान्धको ब्रह्मन्सम्यक्च भवतोदितम् ।
रणानैवापयास्यामि कुल व्यपदिशन्स्वयम् ।।२
पश्य त्वं द्विजशार्दूल मम वीर्यं सुदुर्धरम् ।
देवदानवगन्धर्वाञ्जेष्ये सेन्द्रमहेश्वरान् ।।३
इत्येवमुक्त्वा वचन हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
समाश्वास्याब्रवीत्क्रुद्धः सारथि मधुराक्षरम् ।।४
सारथे वाहय रथ हराभ्याशं महाबल ।
यावन्निहन्मि व णौघैः प्रमथानथ वाहिनीम् ।।५
इत्यन्धकवचः श्रुत्वा सारथिस्तुरगांस्तदा ।
कृष्णवर्णान्महाकायान्प्रेरयामास त मुने ।।६
ते यत्नतोऽपि तुरगाः प्रेर्यमाणा हर प्रति ।
जघनेष्वव सीदन्तःकृच्छ्रेणोहुश्च तं रथम् ।।७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—उस समय दैत्य बल के भग्न हो जाने पर असुरेन्द्र अन्धक से इन्द्र ने कहा—हे वीर ! आओ-आ जाओ, आज सभी महासुर सो गये फिर शैल पर पहुँच कर हर के साथ युद्ध करें ।।१।। हे ब्रह्मन् ! अन्धक ने उनसे कहा था कि आपने बहुत ठीक कहा है। मैं स्वय अपने कुल को व्यपदिष्ट करता हुआ रण क्षेत्र मे नहीं जाऊंगा ।।२।। हे द्विज शार्दूल ! अब आप मेरे सुदुर्धर वीर्य को देखिये। मैं सभी देव-दानव-इन्द्र और महेश्वर के सहित जीत लूंगा ।।३।। इतने वचन कह कर ही हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक समाश्वासन देकर बड़ा क्रोधित हुआ और अपने सारथि से मधुर अक्षरों मे बोला ।।४।। हे सारथे ! अब रथ को चलाओ। हे महाबल ! मेरे रथ को हर के समीप में ही ले चलो। जब तक मैं बाणों के समूह से प्रमथों को और सेना को मारता हूँ ।।५।। अन्धक के इस वचन का श्रवण करके सारथि ने उसी समय तुरंगों को जो कि कृष्ण वर्ण वाले और महान् डील डौल के थे हे मुने ! उसके समीप में भेज दिया था ।।६।। वे घोड़े बड़े यत्न से हर की ओर प्रेरित भी किये गये थे किन्तु जघनों में बड़ सीदमान होते हुए बड़ी कठिनाई से उस रथ को वहन कर रहे थे ।।७।।

वहन्तस्तुरगा दैत्यं प्राप्ताः प्रमथवाहिनीम् ।
संवत्सरेण साग्रेण वायुवेगसमा अपि ॥८
ततः कार्मुकमानम्य बालेन्दुसदृशं दृढम् ।
नाराचैः सूदयामास सेन्द्रोपेन्द्रमहेश्वरान् ॥९
बाणैश्छादितमीक्ष्यैव बलं त्रैलोक्यरक्षिता ।
सुरान्प्रोवाच भगवाञ्चक्रपाणिर्जनार्दनः ॥१०
किं तिष्ठध्वं सुरश्रेष्ठा हतेनानेन शोभनम् ।
तस्माद्यत्ता भवन्त्वद्य त्वरिता विजयेप्सवः ॥११
शास्यन्तामस्य तुरगाः समं रथकुटुम्बिना ।
भज्यतां स्यन्दनश्चाय विरथः क्रियतां रिपुः ॥१२
विरथं तु कृतं पश्चादेनं घटयति शंकरः ।
नोपेक्ष्यः शत्रुरुद्रिक्तो देवाचार्येण धीमता ॥१३
इत्येवमुक्ताःप्रमथा वासुदेवेन सामराः ।
चक्रुर्वेगं सहेन्द्रेण समं चक्रधरेण च ॥१४

तुरगों ने उस दैत्य का वहन करते हुए प्रमथों की सेना को प्राप्त किया था। यद्यपि वे वायु के समान वेग वाले थे तो भी डेढ वर्ष में वहाँ पर पहुँचे थे ॥८॥ इसके पश्चात् उस दैत्य ने बाल चन्द्र के समान अति दृढ कार्मुक को खींच कर अपने छोड़े हुए नाराचो से इन्द्र-उपेन्द्र और महेश्वर को सूदित किया था ॥९॥ त्रैलोक्य के रक्षा करने वाले भगवान् चक्रपाणि जनार्दन ने सम्पूर्ण सेना को बाणों से छादित देखकर सुरवृन्द से कहा—॥१०॥ विष्णु भगवान् ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो ! खडे हुए हो ? इस हनन से तो यही अच्छा है। इससे आज यत्ता हो जावें और शीघ्रता से विजय की इच्छा वाले बनो ॥११॥ इसके तुरंगो का शासन करो और रथ कुटुम्बो का भी शासन करो। इस रथ को तोड डालो तथा शत्रु को रथ से रहित बना दो ॥१२॥ जब यह विरथ हो जायगा तो पीछे भगवान् शकर दग्ध कर देंगे। उद्रिक्त शत्रु की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आप तो देवों के आचार्य और धीमान्

हैं ॥१३॥ भगवान् वासुदेव के द्वारा इस प्रकार से इतना कहे गये प्रमथ देवों ने सब के सहित इन्द्र और चक्रधर के साथ वेग किया था ॥१४॥

तुरगाणां सहस्रं तु मेघाभानां जनार्दनः ।
निमिषान्तर मात्रेण गदया स व्यपोथयत् ॥१५
स महास्यन्दनात्स्कन्दः प्रगृह्य रयसारथिम् ।
शक्त्या बिभेद हृदये गतासुर्व्यसृजद्भुवि ॥१६
विनायकाद्या. प्रमथाः समं शक्रेण दैवतैः ।
सध्वजाक्षं रथं तूर्णमभञ्जत तपोधनाः ॥१७
सहसा स महातेजा विरथस्त्यक्तकार्मुकः ।
गदामादाय बलवानभिदुद्राव देवता· ॥१८
ततः सोऽष्टौ क्रमान्गत्वा मेघगम्भीरया गिरा ।
उवाच वाक्यं दैत्येन्द्रो महादेवं स हेतुमत् ॥१९
भिक्षो भवान्सहानीकस्त्वसहायोऽस्मि साम्प्रतम् ।
तथापि त्वा विजेष्यामि पश्यमेऽद्य पराक्रमम् ॥२०
तद्वाक्यं शंकरः श्रुत्वा सेन्द्रान्सुरगणान्गणान् ।
ब्रह्मणा सहितान्सर्वान्स्वशरीरे न्यवेशयत् ॥२१

भगवान जनार्दन ने एक सहस्रतुरगों को जो कि मेघों के समान आभा वाले थे एक निमिष भर मे ही गदा से व्यपोथित कर दिया था ॥१५॥ उस स्कन्द ने महा स्यन्दन से रथ सारथि को पुग्रहीत करके शक्ति से हृदय मे भेदन किया था और वह गत प्राण होकर भूमि पर गिर गया था ॥१६॥ विनायक आदि प्रमथ इन्द्र और देवों के सहित हे तपोधन ! ध्वजाक्ष के सहित उस रथ को शीघ्र ही भग कर दिया था ॥१७॥ सहसा ही वह महा तेजस्वी विरथ होकर अपने कार्मुक को छोड़कर उस बलवान् ने गदा ग्रहण करली थी और फिर देवों पर हमला किया था ॥१८॥ इसके पश्चात् आठ क्रमो को जाकर मेघ के तुल्य गम्भीर वाणी से वह दैत्येन्द्र ने महादेव से हेतुमत् वाक्य कहा था ॥१९॥ हे भिक्षो ! आप तो सेना के सहित हैं और मैं इस समय मे असहाय हूँ तो भी मैं तुझको जीत लूंगा। आज मेरा पराक्रम देखो

॥२०॥ भगवान् शंकर ने उसके इस वाक्य का श्रवण करके इन्द्र के सहित सुरगणों को-गणों को और ब्रह्मा के सहित सबको अपने शरीर में निवेशित कर लिया था ॥२१॥

शरीरस्थांस्तान्प्रमथान्कृत्वा देवांश्च शंकरः ।
प्राह एह्येहि दुष्टात्मन्नहमेकोऽपि संस्थितः ॥२२
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सर्वामरगणक्षयम् ।
दैत्यः शंकरमभ्यागाद्गदामादाय वेगवान् ॥२३
तमापतन्तं भगवान्दृष्ट्वा त्यक्त्वा वृषोत्तमम् ।
शूलपाणिर्गिरिप्रस्थेपदातिः प्रत्यतिष्ठत ॥२४
वेगेनैवापतन्तं च विभेदोरसि भैरवः ।
दारुण सुमहद्युद्धं कृत्वा त्रैलोक्यभीषणः ॥२५
दंष्ट्राकरालं रविकोटिसन्निभं मृगारिचर्माभिवृतंजटाधरम् ।
भुजङ्गहारं मलपङ्कधारिणंशार्दूलबाहुं शिखिलोचनं हरम् ॥२६
एतादृशेन रूपेण भगवान्भूतभावनः ।
विभेद शत्रून्शूलेन शुभदः शाश्वता शिवा ॥२७
स शूलं भैरवं गृह्य भिन्नेऽप्युरसि दानवः ।
विजहाराति वेगेन क्रोशमात्रं महामुने ॥२८

भगवान् शंकर ने उन सब प्रमथों को अपने शरीर में संस्थित करके और देवों को भी शरीर में निविष्ट करके उस दैत्य से कहा—आओ-आओ, हे दुष्टात्मन् ! अब तो मैं एक ही अकेला यहाँ स्थित हूँ ॥२२॥ इस महान् आश्चर्य को देखकर जो कि सब अमर गण का एक दम उस समय में क्षय हो गया था वह दैत्य बड़े वेग वाला होकर गदा को हाथ में लेकर शंकर के ऊपर आक्रमणकारी हुआ था ॥२३॥ उसको अपने ऊपर आते हुए देखकर भगवान् शंकर ने वृषोत्तम को त्याग दिया था और फिर वह शूलपाणि उस गिरि के प्रस्थ पर अकेले ही पदाति स्थित हो गये थे ॥२४॥ वेग से ही आते हुए उसको भैरव ने उसके उरःस्थल में भेदन किया था और त्रैलोक्य में महान् बहुत ही दारुण महान् युद्ध किया था ॥२५॥ दंष्ट्राओं से कर

मरोहो सूर्य के तुल्य-व्याघ्र के चर्म से आवृत-जटा के धारण करने वाला सर्पों के हारों से भूषित-मन के पक को धारण किये हुए-शार्दूल के समान बाहु वाला-त्रिलोचन हर का स्वरूप उस समय में था ।।२६।। भगवान् भूतों पर दया करने वाले ने इस प्रकार के रूप से शूल के द्वारा शत्रुओं का भेदन किया था। शिव तो शाश्वत और शुभ ही प्रदान करने वाले हैं ।।२७।। उस दानव ने उरःस्थल के भिन्न होने पर भी भैरव शूल को ग्रहण करके हे महामुने ! आरति को वेग के साथ एक कोश भर तक हरण किया था ।।२८।।

ततः कथंचिद्भगवान्संस्तंभ्यात्मानमात्मना ।
तूर्णमुत्पाटयामास शूलेन सगदं रिपुम् ।।२६
दैत्याधिपस्तु स गदां हरमूर्ध्नि न्यपातयत् ।
कराभ्यां गृह्य शूलं च समुत्पत्याथ दानवः ।।३०
सस्थितश्च महायोगी सत्वा धारः प्रजापतिः ।
गदापातक्षतादभूरि मूर्ध्नोऽस्यासृगथापतत् ।।३१
पूर्वधारासमुद्भूतो भैरवोऽग्निसमप्रभः ।
विद्याराजेतिविख्यात. पद्ममालाविभूषितः ।।३२
अन्यस्माद्रुधिराज्जातो भैरवः शूलभूषितः ।
रुद्रनाम्ना तु विख्यातः सर्वलोकैस्तु पूजितः ।।३३
अन्यरक्तात्समुद्भूत भैरवाणां चतुष्टयम् ।
चण्डाद्येककपाल्यन्त ख्यात भुवि यथा बुधैः ।।३४
भूमिस्थाद्रुधिराज्जातो भैरव शूलभूषितः ।
ख्यातो ललितराजेति शोभाञ्जनसमप्रभः ।।३५

इसके पश्चात् भगवान् ने अपनी ही आत्मा से अपने आपको किसी तरह से संस्ताम्भित करके उस सगद रिपु को शीघ्र ही शूल से उत्पादित किया था ।।२६।। उस दैत्याधिप ने अपनी गदा को भगवान् के हर के मस्तक मे निपातित किया था। दानव अपने हाथों से शूल को ग्रहण करके समुत्पतित होकर संस्थित हो गया था। महायोगी शंकर सत्व के आधार और प्रजापति थे। गदा पात के क्षत से इनके मस्तक

से अधिक रक्त का पात हो रहा था ॥३०-३१॥ पूर्व धारा से समुद्भूत भैरव अग्नि के समान प्रभा वाले थे। वह विद्या राजा-इस नाम से विख्यात थे और पद्मों की माला से विभूषित थे ॥३२॥ अन्य रुधिर की धारा से शूल से भूषित भैरवे समुत्पन्न हुए थे। वह रुद्र के नाम से विख्यात थे। यह सभी लोगों के द्वारा पूजित हुए थे ॥३३॥ अन्य शंकर के रक्त मे चार भैरव समुत्पन्न हुए थे ये चारों चण्ड-भाग्रेक-कपाली और अन्त–इन नामो से बुधों के द्वारा विख्यात हुए थे जो कि भू मण्डल में परम प्रसिद्ध हुए थे ॥३४॥ भूमिस्थ रुधिर से शूल से विभूषित भैरव समुद्भूत हुए थे जो नन्दिन राज इस नाम से विख्यात हुए थे और इनकी शोभा अञ्जन के समान प्रभा वाली थी ॥३५॥

एव हि सप्तरूपोऽसौ कथ्यते भैरवो मुने।
विघ्न राजोऽष्टमः प्रोक्तो भैरवाष्टकमुच्यते ॥३६
एव महात्मना दैत्यः शूलप्रोतो महासुरः।
छत्रवद्धारितो ब्रह्मन्निन्द्रायुधसमप्रभः ॥३७
तदसृगुल्वण ब्रह्मञ्छूलभेदादवापतत्।
येनाकण्ठ महादेवो मग्नोऽसो सप्तमूर्तिमान् ॥३८
ततः स्वेदोऽभवद्भूरि निःश्रमाच्छकरस्य तु।
ललाटफलकात्तस्माज्जाता कन्यासृगाप्लुता ॥३९
यद्भूम्या न्यपतद्विप्र स्वेदबिन्दुर्विनाशनात्।
तस्मादङ्गारपुञ्जाभो बालकः समजायत ॥४०
स चापि तृषितोऽत्यर्थं पपौ रुधिरमान्धकम्।
कन्या चोत्क्षतसजाता ह्यसृक् चावलिहद् द्रुतम् ॥४१
ततस्तामाह देवेशो बालार्कसदृशप्रभः।
शङ्करी वरदो लोके श्रेयोऽर्थं हि वचो महत् ॥४२

हे मुने! इस प्रकार से यह भैरव सात रूपों वाले कहे जाते हैं। आठवें विघ्नराज कहे जाते हैं। इस तरह यह भैरवों का अष्टक कहा जाता है ॥३६॥ इस प्रकार से वह महासुर दैत्य महात्मा के द्वारा शूल-प्रोत किया गया था। हे ब्रह्मन्! इन्द्रायुध की प्रभा के समान एक

छत्र की भाँति धारण कर दिया गया था ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! शूल के भेद न होने से उसका रुधिर अत्यन्त उल्बण रूप से गिरा था जिससे महादेव कण्ठपर्यंन्त सप्तमूर्त्ति मान् मग्न हो गये थे ॥३८॥ इसके पश्चात् अत्यधिक श्रम से शंकर को पसीना आ गया था। उनके ललाट फलक से रक्त में समाप्लुत एक कन्या समुत्पन्न हुई थी ॥३९॥ हे विप्र ! स्वेद की बिन्दु के विनाश से जो भूमि में गिर गई थी। उससे अङ्गार के पुञ्ज की आभा वाला एक बालक उत्पन्न हुआ था ॥४०॥ वह भी अत्यन्त प्यासा था और उसने अन्धक के रुधिर का पान किया था। तत्क्षण सजात कन्या ने भी शीघ्र ही उस रुधिर को चाटा था ॥४१॥ इसके पश्चात् देवेश्वर ने कहा था कि बालक के तुल्य प्रभा वाला शंकर लोक में वरदान देने वाला है और श्रेय-अर्थ तथा महत् वचन का प्रदाता है ॥४२॥

त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा महर्षि पितरस्तथा ।
यक्षविद्याधराश्चैव मानवाश्च शुभंकरि ॥४३
त्वां स्तोष्यन्ति य सदेहो बलिपुष्पोत्करोत्करैः ।
चर्चिकेति शुभं नाम यस्माद्रुधिरचर्चिता ॥४४
इत्येवमुक्त्वा वरदेन चर्चिका भूयोऽनुयाता गिरिविन्ध्यवासिनीम् ।
महीं समन्ताद्विचचार सुन्दरी स्थानं गता हिङ्गुलकाद्रिमुत्तमम् ॥४५
तस्यां गतायां वरदः कुजस्य प्रादाद्वरं सर्ववरोत्तमं यत् ।
ग्रहाधिपत्यं जगतः शुभाशुभं विदिष्यते ते व्यसनं ग्रहान्तरे ॥४६
हरोऽन्धकं वर्षसहस्रमात्रं दिव्यं स्वनेत्रार्कहुताशनेन ।
चकार तं शुष्कबलत्वशोणितत्वगस्थिशेषं भगवान्सभैरवः ॥४७
तत्राग्निना शंभुसमुद्भवेन स मुक्तपापोऽसुरराड् बभूव ।
ततः प्रजानां बहुरूपमीशं नाथं हि सर्वस्य चराचरस्य ॥४८
ज्ञात्वाऽस्य सर्वेश्वरमीशमव्ययं त्रैलोक्यनाथं वरदं वरेण्यम् ।
सर्वैः सुराद्यैर्नतमीड्यमाद्यं ततोऽन्धकः स्तोत्रमिदं चकार ॥४९

तुमको सभी सुरवृन्द-महर्षि गण और पितर पूजेंगे। हे शुभंकरि ! तुमको यक्ष-विद्याधर और मानव भी पूजेंगे ॥४३॥ तुमको बलि-पुष्पो-

स्तोत्रों के द्वारा स्तवन करेंगे—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम्हारा शुभ नाम 'चर्चिका'-यह होगा क्यों कि तुम रुधिर से चर्चित हुई हो ॥४४॥ इस प्रकार से वरद के द्वारा कह कर वह चर्चिका फिर गिर विन्ध्य वासिनी के पीछे चली गई थी। उसने भूमि पर खूब विचरण किया था और फिर वह सुन्दरी अति उत्तम हिङ्गुलाद्रि पर जो स्थान है वहाँ चली गई थी ॥४५॥ उसके वहाँ से चले जाने पर वह दाता प्रभु ने कुज को सब वरों में परमोत्तम वरदान प्रदान किया था कि ग्रहों का आधिपत्य जगत् का शुभा शुभ होगा और ग्रहान्तरों से तुझे अर्चन होगा ॥४६॥ भगवान् हर ने अपने नेत्र रूपी अर्क की अग्नि से दिव्य एक सहस्र वर्ष तक उस अन्धक को शुष्क बल वाला और रुधिर से रहित कर दिया था। वह केवल त्वचा और अस्थि ही शेष वाला रह गया था। वह भगवान् भैरव थे ॥४७॥ वहाँ पर शम्भु से समुत्पन्न अग्नि से वह असुरों का राजा पापों से मुक्त हो गया था। इसके पश्चात् प्रजा के नाथ-बहुत रूप वाले और इस चराचर सबके ईश को जानकर इसके पश्चात् अन्धक ने सर्वेश्वर-ईश-अव्यय-त्रिलोकी के नाथ-वरद-वरेण्य भव सुरादि के द्वारा वन्दित एवं ईड्य और आद्य प्रभु शङ्कर की यह स्तोत्र किया था ॥४८-४९॥

नमोऽस्तु ते भैरव भीममूर्ते त्रैलोक्यगोप्त्रे सितशूलपाणे।
कपालपाणे भुजगेशहार त्रिणेत्र मां पाहि विपन्नबुद्धिम् ॥५०

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां देवदेवेश सर्वपापहरो भव ॥५१

मम नैवापराधोऽस्ति त्वया चेतादृशोऽप्ययम्।
स्पृष्टः पापसमाचारो मां प्रसन्नो भवेश्वर ॥५२

इत्थं महेश्वरो ब्रह्मन्स्तुतो दैत्याधिपेन तु।
प्रीतियुक्तः पिङ्गलाक्षो हैरण्याक्षमुवाच ह ॥५३

प्रीतोऽस्मि दानवपते परितुष्टोऽस्मि चान्धक।
वरं वरय भद्रं ते यमिच्छसि ददामि तम् ॥५४

अम्बिका जननी मह्यं भवान्वै त्र्यम्बकः पिता।
वन्दामि चरणौ मातुर्माननीयौ ममाधिकम् ॥५५
वरदो हि यदीशानस्तद्यातु विपुल मम।
शारीर मानस वाऽपि दुष्कृत दुर्विचिन्तितम् ॥५६
तथा मे दानवो भावो व्यपयातु महेश्वर।
स्थिरा तु तव भक्तिश्च वरमेत प्रयच्छ मे ॥५७

अन्धक ने कहा—हे भैरव ! भीम मूर्ति वाले ! इस त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। आप तो सित शूल को हाथ मे ग्रहण करने वाले हैं। हे कपाल को अपने हाथ मे ग्रहण करने वाले ! आपके कण्ठ में सो मुण्डों का हार शोभा दिया करता है। हे तीन नेत्रों के धारण करने वाले ! मैं बहुत ही अधिक विपन्न बुद्धि वाला महान् पापी हूँ। आप मेरी अब रक्षा कीजिए। ॥५०॥ मैं महान् पापी हूँ और पापों से परिपूर्ण कर्म्मों को ही अहर्निश करने वाला हूँ। मेरा पूर्ण रूप पाप मय ही है तथा पाप से ही मेरी उत्पत्ति भी हुई है। हे देवो के भी परम देवेश्वर ! आप मेरा परित्राण कीजिए और मेरे सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले होइये ॥५१॥ इसमे मेरा कुछ भी अपराध नहीं है। यह ऐसा भी पापों का समाचरण आपके ही स्पर्श से हुआ है। आप अब मुझ पर प्रसन्न होइये। आप ईश्वर हैं ॥५२॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार से भगवान् महेश्वर उस दैत्यों के अधिप के द्वारा स्तुति किये गये थे। अब त्रिशूल नेत्रों वाले परम प्रीति से समन्वित हो गये और प्रसन्न होकर हैरण्याक्ष से इस प्रकार कहने लगे ॥५३॥ हे दानवों के स्वामिन् ! मैं तुमसे अब बहुत प्रसन्न हूँ। हे अन्धक ! मैं इस समय तुमसे परम सन्तुष्ट हो गया हूँ। अब तू जो भी कुछ चाहता हो वही वरदान मुझ से याचना करले। मैं वही वरदान तुझे दे दूँगा ॥५४॥ अन्धक ने कहा—यह जगत् की माता अम्बिका मेरी जननी हैं और आप त्र्यम्बक प्रभु मेरे पिता हैं। मैं अब अपनी माता गौरी के चरणों की वन्दना करता हूँ क्यों कि माता के चरण मुझे सर्वाधिक माननीय हैं ॥५५॥ यदि ईशान आप

आगे से उस उतार कर अपने ही हाथ से उसका निर्माजन किया था और फिर उस अन्धक को अपना हस्त उसके सम्पूर्ण शरीर पर फेर कर उसे व्रणों से रहित कर दिया था ॥५६॥ इसके पश्चात् उन प्रभु ने सब ब्रह्मा आदि देवों को अपने शरीर से बाहिर बुलाया था। वे सभी महान् आत्मा वाले देवगण बाहिर निकल कर आगये थे और सब ने त्रिलोचन को नमस्कार किया था ॥६०॥ फिर भगवान् शंकर ने नन्दी आदि समस्त गणों को बुलाकर अपने आगे सबको सन्निविष्ट कर दिया था। फिर भगवान् शंकर ने उन सब को भृंगी को दिखलाया था कि यह मेरा एक नवीन गण है और यह वही अन्धक है ॥६१॥ उन दानवों के पति को जो रिपु था और सूखे हुए मांस वाला था सब ने देखा था। सब ने गणों के स्वामित्व को प्राप्त होने वाले उसे देखकर सब ने वृषभ ध्वज की बड़ी प्रशंसा की थी ॥६२॥ इसके उपरान्त भगवान् शंकर ने समस्त देवगण का परिष्वजन करके उनसे कहा था—आप लोग अब अपने-अपने आवास स्थानों को चले जाइये और तीनों प्रकार के सुखों का उपभोग करिये॥६३॥सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र भी मनवाघन पर परम शुभ स्थान को चले जावें। वहाँ पर अपना जो भी कार्य है उसे साग सम्पूर्ण करके पीछे त्रिविष्टप (स्वर्ग) में चले जावें ॥६४॥ इस प्रकार से यह सब कह कर भगवान् शंकर ने त्रिदशों को भली भाँति भाषण करके वहाँ से विसर्जित किया था। फिर पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम करके तथा भगवान् जनार्दन का परिष्वजन करके इन को भी विदा किया था ॥६५॥

महेन्द्रो मलयं गत्वा कृत्वा कार्यं दिवं गतः ।
गतेषु शक्रप्राग्र्येषु भगवान्संस्थितः शिवः ॥६६
विसर्जयामास गणास्तनुमध्यपथाद्धरः ।
गणाश्च शंकरं दृष्ट्वा स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥६७
जग्मुस्ते शुभ लोकाश्च स्वस्वस्थानेषु नारद ।
यत्र कामदुघा गावः सर्वकामफला द्रुमाः ॥६८

नद्यस्त्वमृतवाहिन्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः ।
स्वा स्वा गतिं प्रयातेषु प्रमथेषु महेश्वरः ॥६६

समादायान्धकं हस्ते नन्दीशैलं समागमत् ।
द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां पुनरायाद्धरो गृहम् ॥७०

ददृशे च गिरेः पुत्रीं श्वेतार्ककुसुमस्थिताम् ।
समायातं निरीक्ष्यैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥७१

त्यक्त्वाऽर्ककुसुमं तूर्णं सखीस्ताः समुपाह्वयत् ।
समाहूताश्च देव्या ता जयाद्यास्तूर्णमागमन् ॥७२

महेन्द्र ने मलय पर्वत पर पहुँच कर अपना कार्य किया था और फिर वह दिवलोक को गये थे। जिनमें इन्द्र ही परम प्रमुख थे उन सब के वहा से चले जाने पर केवल भगवान् शंकर ही वहाँ संस्थित रहे थे ॥६६॥ फिर तन्मध्य पथ से हर ने समस्त गणों को भी विसर्जित किया था। अपने-अपने वाहनों पर समास्थित गणों ने भगवान् शंकर का दर्शन किया था ॥६७॥ फिर हे नारद! वे अपने २ स्थानों में परम शुभ लोकों को चले गये थे। जहाँ पर कामनाओं के अनुसार दोहन किये जाने वाली गायें थीं और सब कामों के फलों वाले द्रुम थे ॥६८॥ नदियाँ अमृत का वहन कराने वाली थीं और ह्रद पायस के कर्दम वाले थे। अपनी २ गति को प्रमथों के प्राप्त हो जाने पर केवल एक महेश्वर शेष रह गये थे ॥६९॥ अन्धक को महेश्वर प्रभु ने हाथ मे ग्रहण किया था और नन्दी शैल पर समागत होगये थे। दो सहस्र वर्ष तक वहाँ पर ही रहे थे फिर भगवान् हर अपने घर मे आये थे ॥७०॥ वहा आकर उन्होंने गिरि सुता गौरी को श्वेत आक के कुसुमों मे संस्थित देखा था। जब भगवान् शंकर वहाँ आगये थे तो उनको सभी लक्षणों से समन्वित देखकर ही गिरि सुता ने अर्क कुसुम का त्याग किया था और शीघ्र ही उसने अपनी सखियों का समाहूत किया था। समाहूत हुई वे जया आदि सखियाँ बहुत ही शीघ्र देवी के समीप मे आकर उपस्थित होगई थी ॥७१ ७२॥

याभिः परिवृता तस्थौ हरदर्शन लालसा ।
ततस्त्रिणेत्रो गिरिजां दृष्ट्वा ह्यन्धकदानवम् ।।७३
नन्दिन च तथा हर्षादालिङ्ग्य गिरेः सुताम् ।
अथोवाचैप दासस्ते कृतो देवि मयाऽन्धकः ।।७४
पश्य त्वं प्रतियात हि स्वसुत चारुहासिनि ।
इत्युच्चार्याहान्धक वै पुत्र एह्येहि सत्वरम् ।।७५
व्रजस्व शरणं मातुरेषा श्रेयस्करी तव ।
इत्युक्तो विभुना नन्दी अन्धकश्च गणेश्वरः ।।७६
समागम्याम्बिका पादौ ववन्दतुरुभावपि ।
अन्धकोऽपि तदा गौरी भक्तिनम्रो महामुने ।।७७

उन समस्त सखियों से परिवृत हुई गौरी भगवान् हर के दर्शन करने की लालसा से वहा पर खड़ी हुई थीं। इसके पश्चात् भगवान् त्रिनेत्र प्रभु ने गिरिजा को देखा था और वहीं पर अन्धक दानव को भी देखा था ।।७३।। तथा नन्दी को देखा था। फिर बड़े ही हर्ष से भगवान् शंकर ने गिरि सुता का समालिगन किया था इसके अनन्तर उन्होंने कहा—हे देवि ! यह अन्धक है। इसको मैंने आपका दास बना दिया है ।।७४।। आप प्रतियात्र हुए इसकी ओर अतम्त दृष्टिपात करो हे चारु हासिनि ! यह आपका अपना ही पुत्र है। इतना कह कर फिर अन्धक से कहा—हे पुत्र ! आओ-आओ शीघ्र चले आओ ।।७५।। अपनी इस माता की शरण मे प्राप्त हो जाओ। यह आपका सब प्रकार का श्रेय करने वाली हैं। इस प्रकार से विभु के द्वारा कहे गये गणेश्वर नन्दी और अन्धक वहाँ पर उपस्थित हुए तथा फिर उन दोनों ने जगदम्बा भवानी के चरणों की वन्दना की थी। हे महामुने ! उस समय में अन्धक भी गौरी के सामने भक्ति भाव से अत्यन्त विनम्र हो गया था ।।७६-७७।।

स्तुतिं चक्रे महापुण्या पापघ्नी श्रुतिसमताम् ।
इत्थं स्तुता साऽन्धकेन परितुष्टा विभावरी ।
प्राह पुत्र प्रसन्नाऽस्मि वृणुष्व वरमुत्तमम् ।।७८

पापं प्रशममायातु त्रिविधं मम पार्वति ।
तथेश्वरे च सतत भक्तिरस्तु ममाम्बिके ॥७६

बाढमित्यब्रवीद्गौरी हिरण्याक्षसुतं ततः ।
ममाग्रे पूजयञ्शर्वं गणानामधिपो भव ॥८०

वपुर्दधानस्य तथा च तस्य महेश्वरेणाप्य विरूपदृष्टया ।
कृत्वैवमुच्चैर्भयद तु भैरव भृङ्गित्वमीशेन कृता स्वशक्त्या ॥८१

एतत्तवोक्तं हरकीर्तिवर्धन पुण्यं पवित्रं शुभदं महर्षे ।
सकीर्तनीय द्विजसत्तमेषु धर्मायुरारोग्यधनेप्सिता सदा । ८२

फिर उस अन्धक ने महा पुण्यमयी तथा समस्त पापों का क्षय करने वाली श्रुति से सुसम्मत स्तुति की थी। इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने पर जो कि अन्धक ने भावपूर्ण रीति से की थी विभावरी अम्बिका परम तुष्ट होगई थी और उससे बोलीं—हे पुत्र ! अब मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तू कोई भी मुझ से उत्तम वरदान की याचना करले ॥७८॥ भृगी ने प्रार्थना की थी—हे पार्वति ! मैंने महान् पाप किया है वह मेरा तीनों प्रकार का पाप प्रशम को प्राप्त हो जावे और हे अम्बिके ! मैं यही चाहता हूँ कि भगवान् शंकर में मेरी निरन्तर भक्ति होवे ॥७६॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—तब जगदम्बा गौरी ने उससे कहा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। मेरे समक्ष में भगवान् शङ्कर की पूजा करता हुआ तू समस्त गणों का अधिप हो जावेगा ॥८०॥ उसके उस प्रकार के वपु को धारण करने वाले को महेश्वर ने अविरूप दृष्टि से बहुत ऊँचा भय देने वाला इस प्रकार से भैरव करके फिर ईश ने अपनी ही शक्ति से उसे भृंगित्व को प्राप्त करा दिया था ॥८१॥ हे महर्षे ! यह आपके द्वारा कहा हुआ हर की कीर्ति को बढाने वाला परम पुण्यमय पवित्र और अतीव शुभ आख्यान है। इसका सकीर्तन उनको सदा ही द्विज सत्तमों में करना चाहिए जो धर्म, आयु, आरोग्य और धन की इच्छा रखने वाले हैं ॥८८॥

७१—मरुत उत्पत्ति वर्णन (१)

मलयेऽपि महेन्द्रेण यत्कृत द्विजसत्तम ।
निष्पादित स्वक कार्यं तन्मे त्व ख्यातुमर्हसि ॥१
श्रूयता यन्महेन्द्रेण मलये पवत मुने ।
कृत लोकहिते कार्यमात्मनश्च तथा हितम् ॥२
अघासुरस्य वचनात्मयतारपुरोगमा ।
ते निर्जिता: सुरगणै: पातालगमनात्सुका ॥३
ददृशुर्मलय विप्रसिद्धै: सेवितकन्दरम् ।
लता विमानसच्छन्न मत्तसत्वसमाकुलम् ॥४
चन्दनदरगाक्रान्तै. सुशीतैरतिसेवितम् ।
माधवीकुसुमामोदसुगन्धितमहागिरिम् ॥५
त दृष्ट्वा शीतलच्छाय श्रान्ता व्यायामकर्शिता:
मयतारपुरोगास्ते निवास समरोचयन् ॥६
तेषु तत्र निविष्टेषु घ्राणतृप्तिप्रदोऽनिल. ।
विवाति शीत शनकैदक्षिणो गन्धसयुत: ॥७

देवर्षि नारद ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! महेन्द्र ने मलय पर्वत पर जो कार्य्य किया था और उस अपने कार्य को उसने निष्पादित किया था । वह क्या कार्य था उसे अब आप मुझे बताइये ॥१॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे मुने ! महेन्द्र ने मलय पर्वत पर जो भी कार्य किया था वह लोक के लिये तथा अपने भी हित के लिये ही कार्य्य किया था उसे भी अब आप श्रवण करिये ॥२॥ अघासुर के वचन से मय और तार जिनमे प्रमुख थे वे सब पाताल लोक को गमन करने के लिये समुत्सुक थे और उनको सुरगणो ने जीत लिया था ॥३॥ सिद्ध विप्रों के द्वारा सेवित कन्दराओ वाले मलय पर्वत को उन्होने देखा था । वह मलय बहुत ही शोभा-सम्पन्न था । चारो ओर लता विमानो से सच्छन्न था और महान् सत्वों के द्वारा समाकुल था । परम शीतल उरगो से समाक्रान्त चन्दन पादपो के द्वारा अति सवित था अर्थात् बहुत से

चन्दन के वृक्ष वहाँ पर थे। माधवी लताओं के परम सुगन्धित कुसुमों के आमोद से सभी ओर वह महान् गिरि सुगन्ध से परिपूर्ण था ॥४-५॥ ऐसे उस शीतल छाया से समन्वित पर्वत को देख कर परम श्रान्त और व्याम करने से कर्षित मयतार पुरोगमों ने वहाँ पर कुछ समय तक निवास करने की इच्छा की थी ॥६॥ उन सबके वहाँ निविष्ट हो जाने पर घ्राण को तृप्ति देने वाला वायु वहाँ सदा बहता ही था जो अति शीतल और मन्द था और दक्षिण दिशा से समागत गन्ध से भी युक्त था ॥७॥

तत्रैव च रतिं चक्रुः सर्व एव महासुराः ।
कुर्वन्तो लोकपूज्याना विद्वेषं सर्ववासताम् ॥८
तान्ज्ञात्वा शंकरः शक्रं मलयं प्रैषयत्तदा ।
स चापि ददृशे गच्छन्पथि गोमातरं हरिः ॥९
तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम् ।
ददृशे दानवान्सर्वान्सहृष्टान्भोगसंयुतान् ॥१०
अथाजुहाव वलहा सर्वान् व महासुरान् ।
ते चाप्याययुरव्यग्राः किरन्तश्च शरोत्करान् ॥११
तानागतान्बाणजालं रथस्थोऽद्भुतदर्शनः ।
छादयामास विप्रर्षे गिरिं दृष्ट्वा यथा घनः ॥१२
ततो बाणैरवच्छाद्य मयादीन्दानवान्हरिः ।
पाकं जघान तीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैः कङ्कवाससैः ॥१३
तत्र नाम विभुर्लेभे शासनाच्च शरैर्दृढम् ।
पाकशासन इत्येव सर्वामरपतिर्विभुः ॥१४

सब उन महासुरों ने वहीं पर अपनी रति करली और सर्ववासा लोक पूज्यों से वे द्वेष करने लगे थे ॥८॥ यह जान कर भगवान् शंकर ने उस समय इन्द्र को मलय पर्वत पर प्रेषित किया। उस हरि ने भी मार्ग में जाते हुए गोमाता को देखा ॥९॥ उसकी परिक्रमा करके और सुन्दर प्रभा वाले शैल को देखा। वहाँ पर उसने समस्त दानवों को देखा जो बहुत ही प्रसन्न एवं अनेक भोगों से संयुत थे। १०॥ इसके

को चला गया था ॥१६॥ इसी कार्य के लिये भगवान् शङ्कर ने इन्द्र को मलयाचल पर भेजा था। हे मुनियों मे श्रेष्ठ ! अब बतलाओ, आप अन्य क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ॥१७॥ नारदजी ने कहा—किस लिये यह देवों के पति हरि' गोत्रभित्'—इस नाम से कहे जाते हैं ? यह मुझ एक बहुत बड़ा संशय है। हे ब्रह्मन् ! यह मेरे हृदय मे बना ही रहा करता है ॥१८॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—अब आप मुख से यह भी सुन लीजिए कि जिस कारण से इन्द्र गोत्रभित् कहा गया है। हिरण्य कशिपु के मारे जाने पर अरिमर्दन ने जो भी कुछ किया था ॥१९॥ हे नारद ! पुत्र के विनष्ट हो जाने पर दिति ने अपने स्वामी कश्यपऋषि से प्रार्थना की थी—हे विभो ! आप मेरे नाथ हैं। मुझे अब ऐसा पुत्र प्रदान कीजिए जो इस इन्द्र के मारने वाला जन्म ग्रहण करे ॥२०॥ इसके पश्चात् कश्यप ने उससे कहा—हे असितेक्षणे ! यदि तू शौचाचार से समायुक्त होकर दस दशतों पर्यन्त रहेगी तभी ऐसा हो सकता है ॥२१॥

संवत्सराणां दिव्यानां ततस्त्वं लोकनायकम् ।
जनयिष्यसि तं पुत्रं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये ॥२२
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा दितिर्नियममास्थिता ।
गर्भाधानमृषिः कृत्वा जगामोदयपर्वतम् ॥२३
गते तस्मिन्सुरश्रेष्ठः सहस्राक्षोऽपि सत्वरम् ।
तमाश्रममुपागम्य दितिं वचनमब्रवीत् ॥ ४
करिष्याम्यनुशुश्रूषां भवत्या यदि मन्यसे ।
बाढमित्यब्रवीत्साऽपि भाविकर्मप्रचोदिता ॥२५
समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरंदरः ।
विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भुजङ्गवत् ॥२६
एकदा सा तपोयुक्ता शोके महति संस्थिता ।
दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाता तपस्विनी ॥२७
जानुभ्यामुपरि स्थाप्य मुक्तकेशी निजं शिरः ।
सुष्वाप केशप्रान्तेषु संश्लिष्टचरणाऽभवत् ॥२८

पश्चात् उस बल के हनन करने वाले ने उन सब महासुरों को बुलाया था। वे भी सब अव्यग्र होते हुए शरीरकरों को फैलाते वहाँ पर आगये थे ॥११॥ रथ में स्थित अद्भुत दर्शन वाले उसने उन समागत महासुरों को अपने बाणों के जाल से हे विप्रर्ष ! छादित कर दिया जैसे कोई घन किसी गिरि को छादित कर दिया करता हो ॥१२॥ इसके पश्चात् इन्द्र ने मय आदि सब दानवों को बाणों से समाच्छादित करके अपने कक वामस तीक्ष्ण अग्रभाग वाले बाणों से पाक का हनन कर दिया था ॥१३॥ वहाँ पर विभु ने शरों से दृढ़ शासन करने के कारण ही पाक शासन यह सर्व अमरों के पति विभु ने नाम प्राप्त किया था ॥१४॥

तथाऽन्य पुरनामान वाणा सुरशतं शरैः ।
सुपुङ्खैर्दारयामास ततोऽभूत्स पुरंदरः ॥१५
हत्वेत्थ समरेऽजंपीद्गोत्रभिद्दानवं बलम् ।
तत्रापि विजित ब्रह्मन्रसातलमुपागमत् ॥१६
एतदथ सहस्राक्षः प्रेषितो मलयाचलम् ।
त्र्यम्बकेण मुनिश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७
किमर्थं दैवतपतिर्गोत्रभित्कथ्यते हरिः ।
अथ मे संशयो ब्रह्मन्हृदि सपरिवर्तते ॥१८
श्रूयतां गोत्रभिच्छक्रः कीर्तितो हि यथा मया ।
हते हिरण्यकशिपौ यज्ञकारारिमर्दनः ॥१९
दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं प्राह नारद ।
विभो नाथोऽसि मे देहि शक्रहन्तारमात्मजम् ॥२०
कश्यपस्तामुवाचाथ यदि त्वमसितेक्षणे ।
शौचाचारसमायुक्ता स्यास्यसे दशतीर्दश ॥२१

उसी भाँति अन्य पुर नाम वाले वाणासुर शत को सुपुङ्खशरों से विदारित किया था। तभी से इसका नाम पुरन्दर हो गया था ॥१५॥ इस प्रकार से सबका हनन करके गोत्रभित् ने सम्पूर्ण दानवों के दल पर विजय प्राप्त की थी। हे ब्रह्मन् ! वह विजित भी सब बल रसातल

को चला गया था ॥१६॥ इसी कार्य के लिये भगवान् शंकर ने इन्द्र को मलयाचल पर भेजा था। हे मुनियों मे श्रेष्ठ ! अब बतलाओ, आप अन्य क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ॥१७॥ नारदजी ने कहा—किस लिये यह देवों के पति हरि' गोत्रभित्'—इस नाम से कहे जाते हैं ? यह मुझ एक बहुत बड़ा संशय है। हे ब्रह्मन् ! यह मेरे हृदय मे बना ही रहा करता है ॥१८॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—अब आप मुझ से यह भी सुन लीजिए कि जिस कारण से इन्द्र गोत्रभित् कहा गया है। हिरण्य कशिपु के मारे जाने पर अरिमर्दन ने जो भी कुछ किया था ॥१९॥ हे नारद ! पुत्र के विनष्ट हो जाने पर दिति ने अपने स्वामी कश्यपऋषि से प्रार्थना की थी—हे विभो ! आप मेरे नाथ हैं। मुझे अब ऐसा पुत्र प्रदान कीजिए जो इस इन्द्र के मारने वाला जन्म ग्रहण करे ॥२०॥ इसके पश्चात् कश्यप ने उससे कहा—हे असितेक्षणे ! यदि तू शौचा-चार से समायुक्ता होकर दस दशती पर्यन्त रहेगी तभी ऐसा हो सकता है ॥२१॥

संवत्सराणां दिव्यानां ततस्त्रैलोक्यनायकम् ।
जनयिष्यसि त्त पुत्रं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये ॥२२
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा दितिर्नियममास्थिता ।
गर्भाधानमृषिः कृत्वा जगामोदयपर्वतम् ॥२३
गते तस्मिन्सुरश्रेष्ठः सहस्राक्षोऽपि सत्वरम् ।
तमाश्रममुपागम्य दितिं वचनमब्रवीत् ॥ ४
करिष्याम्यनुशुश्रूषां भवत्या यदि मन्यसे ।
बाढमित्यब्रवीत्सापि भाविकर्मप्रचोदिता ॥२५
समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरंदरः ।
विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भुजङ्गवत् ॥२६
एकदा सा तपोयुक्ता शोके महति सस्थिता ।
दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाना तपस्विनी ॥२७
जानुभ्यामुपरि स्थाप्य मुक्तकेशी निजं शिरः ।
सुष्वाप केशप्रान्तेषु संश्लिष्टचरणाऽभवत् ॥२८

समन्तरममो ज्ञात्वा देवश्चापि सहस्रदृक् ।
विवेश मातुरुदरे नासारन्ध्रेण नारद ॥२९

दिव्य सम्वत्सर दश पर्यन्त नियम पूर्वक रहने पर ही त्रैलोक्य का नायक उस पुत्र को जन्म देगी जो शत्रु का हन्ता होगा । अन्यथा हे प्रिये ! ऐसा नहीं हो सकता है ॥२२॥ भर्ता के द्वारा इस भाँति कही हुई उस दिति ने नियमों में समास्थित होना आरम्भ कर दिया था। ऋषि ने दिति को गर्भ का आधान कर दिया और फिर वह उदय गिरि पर चले गये थे ॥२३॥ उसके चले जाने पर सुर श्रेष्ठ इन्द्र भी उस आश्रम में आकर दिति से यह वचन बोला—॥२४॥ यदि आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान करें तो मैं यहीं पर रहकर आपकी सेवा करता रहूँगा। बहुत अच्छा-यह उसने भी आगे होने वाले कर्म से प्रेरित होकर कह दिया था ॥२५॥ पुरन्दर फिर उसके समिधा आदि लाने का काम करने लगा वैसे ऊपर से देखने में बहुत ही विनम्र था किन्तु इन्द्र उसका कोई छिद्र खोजने में संलग्न रहता था जैसे कोई भुजङ्ग ॥२६॥ एक बार वह तपस्या में सस्थित तो थी किन्तु किसी महान् शोक में स्थित हो गई थी। दश सहस्र वर्ष के अन्त में उसने शिर से स्नान किया था और उस तपस्विनी ने जानुओं पर ऊपर सस्थापित कर केशों को खुले हुए रखकर अपने शिर को वहीं पर शयन कर गई थी ॥२७-२८॥ इस देवेन्द्र ने भी उसी अन्तर को समझ कर हे नारद ! नासिकारन्ध्र से माता के उदर में प्रवेश कर लिया था ॥२९॥

प्रविश्य जठरे वृद्धो दैत्यमातुः पुरन्दरः ।
ददर्शोर्ध्वमुख बालं कटिन्यस्त करं महत् ॥३०
तथैवाऽस्येऽस्य ददृशे मांसपेशी च वासवः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशां कराभ्यां जगृहे स ताम् ॥३१
ततः कोपसमाध्मातो मांसपेशीं शतक्रतुः ।
कराभ्यां मर्दयामास ततः सा कठिनाऽभवत् ॥३२
ऊर्ध्वेनार्धं च ववृधे त्वधोऽर्धं ववृधे तथा ।
शतपर्वा सङ्कुलिशः सजातो मांसपेशितः ॥३३

इत्येवमुक्त्वा तान्बालान्परिसान्त्व्य दितिं स्वरन् ।
देवराजः सहैनास्तु प्रेषयामास भामिनो ॥४१
एवं पुरा स्वानपि सोदरान्स गर्भस्थितान् पातितवान्भयार्तः ।
बिभेद वज्रेणततःसगोत्रभित्ख्यातो महर्षे भगवान्महेन्द्रः ॥४२

इन्द्र ने भी उस बालक से कहा—हे मूर्ख ! अत्यन्त घर्घर होकर तू क्यों रोता है । इतना ही इस प्रकार से कहकर फिर एक-एक के सात टुकड़े छेदन कर दिये थे ॥३६॥ वे फिर मरुत नाम वाले इन्द्र के देव भृत्य समुत्पन्न हुए थे । अनेक सुखों के उपचार से पुरस्कृत होकर वे चलते थे ॥३७॥ फिर कुलिश के सहित इन्द्र जठर से बाहिर निकल आया था । दिति के समक्ष शाप से भयभीत होकर हाथ जोड़कर बोला ॥३८॥ मेरा इसमें कोई अपराध नहीं है क्योंकि यह मेरा शत्रु था । इसीलिये मैंने इनको मार दिया है । हे देवि ! इसलिये आप मेरे ऊपर अब क्रोध करने के योग्य नहीं हैं ॥३९॥ दिति ने कहा—इसमें तेरा तो कोई अपराध नहीं है । मैंने पहिले ही भाग्य को देख लिया था कि जब सम्पूर्ण काल होगा उसी समय यह वध को प्राप्त हो जायगा ॥४०॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इतना इस प्रकार से कहकर देवराज ने उन बालकों को परिसान्त्वना दी थी और फिर इनको भामिनी ने इन्द्र के पास भेज दिया था ॥४१॥ इस रीति से पहिले अपने ही भाइयों को जो कि गर्भ में स्थित थे उस इन्द्र ने पतित किया था और वज्र से उनका भेदन किया था । हे महर्षे ! तभी से वह महेन्द्र गोत्र का भेदन करने से गोत्रभिद्-इस नाम से विख्यात हो गया था ॥४२॥

७२—मरुत उत्पत्ति वर्णन (२)

ये ह्यमी भवता प्रोक्ता मरुतो दितिजोत्तमाः ।
ते के च पूर्वमासन्वै मरुन्मार्गेषु कथ्यताम् ॥१
पूर्वमन्वन्तरे चैव समतीतेषु सत्तम ।
के त्वासन्वायुमार्गस्थास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२

श्रूयतां पूर्वमरुतामुत्पत्तिं कथयामि ते ।
स्वायंभुवं समारभ्य यावन्मन्वन्तर त्विदम् ॥३
स्वायंभुवस्य पुत्रोऽभून्मनुर्नाम प्रियव्रतः ।
तस्यासीत्सवनो नाम पुत्रस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥४
स चानपत्यो देवर्षे नृपः प्रेतगतिं गतः ।
ततोऽरुदत्तस्य पत्नी सुवेदा शोकविह्वला ॥५
न ददाति तथा दग्धुं समालिङ्गय स्थिता पतिम् ।
नाथ नाथेति बहुशो विलपन्ती ह्यनाथवत् ॥६
ततोऽन्तरिक्षादशरीरिणी वाक्प्रोवाच मा राजपत्नीह रोत्सीः
यदस्ति ते सत्यमनुत्तम तत्तदा व्रज त्वं पतिना सहाग्निम् ॥७

देवर्षि नारद जी ने कहा—आपने अभी जो दिति के उदर से जन्मे हुए मरुद्गण बतलाये हैं वे पहिले ये मरुत् मार्ग में कौन थे यह बतलाइये । हे श्रेष्ठतम् ! पहिले व्यतीत हुए मन्वन्तरों में वायु मार्ग में स्थित कौन थे—यह सब मेरे सामने व्याख्यान करने के आप योग्य हैं ॥१-२॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—पहिले जो मरुतों की उत्पत्ति थी उसे मैं बतलाता हूँ आप श्रवण कीजिए । स्वायंभुव से लेकर अब तक जो वह मन्वन्तर है उस सभी को बतलाता हूँ ॥३॥ स्वायम्भुव का पुत्र प्रिय व्रत मनु हुआ था । उसका पुत्र सवन नाम वाला हुआ था जो इस त्रिलोकी में परम प्रसिद्ध हुआ है ॥४॥ हे देवर्षि ! उसके कोई सन्तान नहीं थी और वह राजा प्रेत गति को प्राप्त हो गया था । इसके पश्चात् उसकी पत्नी सुवेदा शोक से अत्यन्त विह्वल होकर रुदन करने लगी थी ॥५॥ वह अपने पति का समालिंगन कर बैठ गई थी और उसके शव को दाह करने के लिये नहीं दे रही थी । हे नाथ, हा नाथ ! इस तरह पुकारर कर अत्यन्त विलाप कर रही थी जैसे कोई अनाथ रुदन किया करता है ॥६॥ इसके पश्चात् आकाश से अशरीरिणी वाणी ने कहा—राज पत्नी रुदन मत करो । यदि तुम में सत्य है तो तुम परम श्रेष्ठ सतीत्व के बल का आश्रय ग्रहण कर पति के शव के साथ ही अग्नि में प्रवेश कर जाओ अर्थात् सती हो जाओ ॥७॥

सातावाणीमन्तरिक्षान्निशम्यप्राहक्लान्ताराजपत्नीसुवेदा ।
शोचाम्येन पार्थिव पुत्रहीनं नैवात्मानं मन्दभाग्य विहङ्ग ॥८
सोऽथाब्रवीन्मा रुदस्वेति बाले पुत्रास्ते वै भूमिपालस्य सप्त ।
भविष्यन्तिर्वह्निमारोहशीघ्रं सत्यप्रोक्तं श्रद्दधस्वत्वमद्य ॥९
इत्येवमुक्ता खचरेण बाला चितां समारोप्य पतिं वराहम् ।
हुताशमासाद्य पतिव्रता सा सञ्चिन्तयन्ती ज्वलनं प्रपन्ना ॥१०
ततोमुहूर्तान्नृपतिः श्रियायुत समुत्थितोऽसौसहितस्तुभार्यया ।
खमुत्पपाताथ स कामकारी सम महिष्याचमुनाभपुत्र्या ॥११
तस्यापरेपार्थिवपुङ्गवस्यजाता रजःस्थामहिषींतु गच्छतः ।
श्रद्धास्तुपुत्राबलवीर्ययुक्ता.त्यातामहान्तो भुविभूमिपाला. ॥१२
स दिव्ययोगात्प्रतिमस्थितोऽम्बरेभार्यासहायोदिवसाश्च पञ्च ।
ततस्तु षष्ठेऽहनि पार्थिवेन ऋतुर्न वन्ध्योऽद्य भवेद्विचिन्त्य ।
रराम तन्व्यासहकामचारीततोऽम्बरात्प्राच्यवतास्यशुक्रम् ॥१३
शुक्रोत्सर्गावसाने तु नृपतिर्भार्यया सह ।
जगाम दिव्यया गत्या ब्रह्मलोक तपोधन ।
पुत्रास्तस्यावसञ्छूर: कृतास्सा: सत्यवादिन: ॥१४

उस विधवा सुवेदा रानी ने उस वाणी का श्रवण करके कहा था जो कि बहुत ही क्लान्त थी—मैं इस राजा की पुत्र हीनता का शोच कर रही हूँ। हे विहंग! अपनी मन्द भाग्यता का शोच नहीं कर रही हूँ ॥८॥ इसके पश्चात् उसने कहा—हे बाले! इस राजा के तो सात पुत्र होंगे। तुम अति शीघ्र चिता पर समारोहण करो। मैं यह सत्य कहता हूँ। आज तुम मेरे वचन पर श्रद्धा रक्खो ॥९॥ इस प्रकार से उस विहंगम के द्वारा कहे जाने पर उस बाला ने वराहपति को चिता पर समारोपित करके अग्नि की प्राप्ति कर वह भली भाति चिन्तन करती हुई अग्नि में प्रवेश कर गई थी ॥१०॥ इसके पश्चात् मुहूर्त भर में वह राजा परम श्री से सुसम्पन्न होकर भार्या के सहित उस चिता से उठ बैठा था। वह कामचारी अपनी भार्या के ही साथ जो सुनाम की पुत्री थी आकाश में उड़कर चला गया था ॥११॥ जब वह महिषी रजोगुण

वाली हुई तो उसका गमन करने पर उसी राजा के दूसरे परम श्रेष्ठ पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो बल वीर्य से युक्त थे और भूमण्डल मे महान् ख्याति प्राप्त करने वाले भूमिपाल हुए थे ।।१२।। वह दिव्ययोग मे आकाश मे भार्या के सहित पाँच दिन तक संस्थित रहा था। फिर छटवें दिन आज ऋतु काल का समय है उसे रोकना नही चाहिए—यह सोचकर उस कामचारी ने अपनी तन्वी के साथ वहा पर ही रमण किया था। फिर आकाश मे उसका वीर्य प्रच्युत हुआ था ।।१३।। वीर्य के उत्सर्ग होने के अन्त मे वह नृपति अपनी भार्या के साथ दिव्यगति से हे तपोधन ब्रह्मलोक को चला गया था। उसके परम शूर कृतास्त्र और सत्यवादी निवास करने लगे थे ।।१४।।

तदम्बरात्प्रचलितमभ्रवर्णं शुक्रं समादा नलिनी च पुष्यती ।
चित्राविशालाहरितालिनीलाःपत्न्योमुनीनादद्दृशुर्यथेच्छया।।१५
तद्दृष्ट्वा पुष्करे न्यस्तं प्रत्यूचुर्न तपोधनान् ।
मन्यमानास्तदमृतं सदा यौवनलिप्सया ।।१६
ततः स्नात्वा तु विधिवत्सम्पूज्य च निजान्पतीन् ।
पतिभिः समनुज्ञाता पपुः पुष्करसंज्ञितम् ।।१७
तच्छुक्रं पार्थिवेन्द्रस्य मन्यमानास्तदाऽमृतम् ।
पीतमात्रेण शुक्रेण पार्थिवेन्द्रोद्भवेन ताः ।।१८
ब्रह्मतेजोविहीनास्ता जाताः पत्न्यस्तपस्विनाम् ।
ततस्तु तत्यजु सर्वे सदोपास्ते स्वपत्नयः ।।१९
सुषुवुः सप्त तनयाघ्र दतो भैरव मुने ।
तेषा रुदितशब्देन सर्वमापूरितं जगत् ।।२०
अथाजगाम भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
समभ्येत्याब्रवीद्वालान्मा रुदध्वं महाबलाः ।।२१

उस शुक्र को जो अम्बर तल से अभ्र वर्ण वाला प्रचलित हुआ था समादा-नलिनी, पुष्यती, चित्रा, विशाला, हरिता, अलिनीला आदि मुनियों की पत्नियों ने यथेच्छा से देखा था ।।१५।। उसे पुष्कर में न्यस्त देख कर भी उनने तपोधन मुनियों से इस सम्बन्ध मे कुछ भी चर्चा नहीं

की थी। उस शुक को अमृत मानती हुई सर्वदा यौवन कायम बने रहने की लिप्सा उनमे उत्पन्न होगई थी ॥१६॥ इसके पश्चात् स्नान करके विधि पूर्वक भली भाँति अपने पति देवो का अर्चन करके पतियो से आज्ञा प्राप्त कर उन्होने पुष्कर नाम वाले का पान किया था ॥१७॥ उस समय वे उस पार्थिवेन्द्र के वीर्य्य को अमृत मानती हुई उन्होंने ज्यों ही उस पार्थिवेन्द्र के वीर्य का पान किया था वैसे ही वे तपस्वियो की पत्नियाँ सब ब्रह्मतेज स हीन होगई थी। इसके उपरान्त उन सभी तपस्वियो ने दोष युक्त अपनी पत्नियो को त्याग दिया था ॥१८-१९॥ हे मुने ! फिर उन्होने भैरव रुप से रुदन करने वाले सात पुत्रो को जन्म दिया था। उनके रुदन के शब्द से वह सम्पूर्ण जगत् आपूरित हो गया था ॥२०॥ इसके पश्चात् वहाँ ब्रह्माजी आये थे जो लोक पितामह भगवान् है। उन्होने वहाँ आकर उन बच्चों से कहा— हे महाबल वालो ! रुदन मत करो ॥२१॥

मरुतो नाम भवता भविष्यति वियस्स्थिरम् ।
इत्येवमुक्त्वा देवेशो ब्रह्मा लोकपितामह. ॥२२
तानादाय वियच्चारी मारुतानादिदेश ह ।
ते स्वायम्भवतस्त्वाद्य मनोः स्वायभुवेऽन्तरे ॥२३
स्वारोचिषे तु मरुतो वक्ष्यामि शृणु नारद ।
स्वारोचिषस्य पुत्रस्तु श्रीमान्नाम्ना क्रतध्वजः ॥२४
तस्य पुत्रा बभूवुश्च सप्तादित्यपराक्रमाः ।
तपोऽर्थं ते गताः शैल महामेरुं नरेश्वराः ॥२५
आराधयन्तो ब्रह्माण पदमैन्द्रं यथेप्सवः ।
ततो विपश्चिन्नामाऽज्य सहस्राक्षो भयातुरः ॥२६
पूतना सोऽप्सरोमुख्या प्राह नारद वाक्यवित् ।
गच्छस्व पूतने शैल महामेरुं विलासिनि ॥२७
तत्पुत्रा तत्र हि तप ऋतध्वजसुता महत् ।
यथा हि तपसो विघ्नं तेषा भवति सुन्दरि ॥२८

विपत् मे स्थिर आप लोगो का मरुत् होगा। इतना कह कर देवेश लोक पितामह ब्रह्माजी उनको साथ मे लेकर वियच्चारी ने मारुतो को आदेश दिया था। वे स्वायम्भुव मन्वन्तर मे आद्य मे मरुत थे ॥२२-२३॥ हे नारद ! अब स्वारोचित मन्वन्तर मे जो मरुत थे उनको बतलाते हैं, आप सुनिए। स्वारोचिष का पुत्र नाम से परम श्रीमान् ऋतध्वज था। उसके पुत्र आदित्य के तुल्य पराक्रम वाले सात हुए थे। वे नरेश्वर तपश्चर्या करने के लिये महामेरु पर्वत पर चले गये थे ॥२४-२५॥ इन्द्र के पद की इच्छा वाले उन्होंने ब्रह्माजी का आराधन किया था। तब विपश्चित् नाम वाला उस समय मे जो इन्द्र था वह भयभीत हो गया था ॥२६॥ हे नारद ! वह अप्सराओ मे मुख्य पूतना से वचन बोलने मे चतुर यों बोला—हे पूतने ! तुम तो बहुत ही विलास शील हो, शीघ्र महामेरु शैल पर चली जाओ ॥२७॥ वहाँ पर ऋतध्वज के पुत्र महान् तप कर रहे हैं। हे सुन्दरि ! ऐसा करो कि उनकी तपश्चर्या मे विघ्न हो जावे ॥२८॥

तथा कुरुष्व मा तेषां सिद्धिर्भवतु सुन्दरि ।
इत्येवमुक्ता शक्रेण पूतना रूपशालिनी ॥२९
तत्राजगाम त्वरिता यत्र तैस्तप्यते तपः ।
आश्रमस्याविदूरे तु नदी मन्दोदवाहिनी ॥३०
तस्या स्नातुं समायाताः सर्व एव सहोदराः ।
सा तु स्नातुं सुचार्वङ्गी त्ववतीर्णा महानदीम् ॥३१
ददृशुस्ते नृपाः स्नाता ततश्चुक्षुभिरे मुने ।
ततो ह्यभ्यद्रवच्छुक्रं तत्पपौ जलचारिणी ॥३२
शङ्खिनी ग्राहमुख्यस्य महाशङ्खस्य वल्लभा ।
तेऽतिविभ्रष्टतपसो जग्मू राज्य च पैतृकम् ॥३३
सा चाप्सराः शक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयत् ।
ततो बहुतिथे काले सा ग्राही शङ्खरूपिणी ॥३४
समुद्धृता महाजालैर्मत्स्यबन्धेन जालिना ।
स तां दृष्ट्वा महाशङ्खी स्थलस्थां मत्स्यजीवनः ॥३५

हे सुन्दरि ! अब तुम वहाँ जाकर ऐसा ही कुछ करो कि उनकी तपस्या की सिद्धि न होवे। इस प्रकार से इन्द्र के द्वारा कहे जाने पर परम रूप लावण्य से समन्वित वह पूतना बहुत ही शीघ्रता से वहाँ आ पहुँची थी जहाँ पर उनके द्वारा तपश्चर्या की जा रही थी। उस आश्रम के समीप में ही मन्द जल को वहन करने वाली मन्दोद वाहिनी नाम वाली नदी थी ॥२९-३०॥ उस नदी में वे सभी सहोदर वहाँ उस नदी में स्नान करने के लिये आये थे। वह सुन्दर अंगों वाली पूतना भी उस महा नदी में स्नान करने को उतरी थी ॥३१॥ हे मुने ! उन नृपों ने स्नान की हुई उसको देखा था और फिर उनके मन में क्षोभ समुत्पन्न हो गया था। फिर उनका शुक्र निस्रा आया था जिसको जल चारिणी ने पान कर लिया था॥३२॥ग्राहों में मुख्य महाशंख की वल्लभा शंखिनी थी। वे नृप तो भ्रष्ट तप वाले हो गये थे और अपने पैतृक राज्य को चले गये थे ॥३३॥ उस अप्सरा ने इन्द्र के समीप में आकर जो कुछ भी घटित हुआ था वह सब ठीक २ बतला दिया था। फिर बहुत दिन के समय के बाद जो शंख रूपिणी ग्राही थी एक जाल वाले मत्स्य बन्धी ने महाजालों से समुद्धृत करली थी। उसने जब उस महा शंखी को देखा स्थल में स्थित मत्स्य जीवी ने देख कर राजा से कहा ॥३४-३५॥

निवेदयामास तदा ऋतध्वजसुतेषु वै।
तथाऽभ्येत्य महात्मानो योगिना योगधारिणः ॥३६
नीत्वा सुमन्दिरं सर्वे पुरवाप्या समुत्सृजन्।
ततः क्रमाच्छंखिनी सा सुषुवे सप्त वै शिशून् ॥३७
जातमात्रेषु पुत्रेषु मोक्षमार्गमगाच्च सा।
अमातृपितृका बाला जलमध्ये विचारिणः ॥३८
स्तन्यार्थिनो वै रुरुदुरथाभ्यागात्पितामहः।
मा रुदध्वमितीत्याह स्वस्थास्तिष्ठत पुत्रकाः। ३९
यूयं देवा भविष्यध्व वायुस्कन्धविचारिणः।
इत्येवमुक्त्वा व्यादाय सर्वांस्ता दैवत प्रति ॥४०

नियुज्य च मरुन्मार्गे विराजो भवनं गतः ।
एवमाश्वास्य मरुतो मनोः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥४१

उत्तमे मरुतो ये च ताञ्छृणुष्व तपोधन ।
उत्तमस्यान्वये यस्तु राजाऽऽसीद्विद्याधिपः ॥४२

उसी समय में ऋतध्वज के पुत्रों को निवेदित कर दिया था। फिर योगियों के योग धारण करने वाले महात्माओं ने वहाँ आकर उनको ग्रहण कर लिया था ॥३६॥ उस अपने सुन्दर मन्दिर में ले जाकर सब न पुर की वावड़ी में छोड़ दिया। इसके उपरान्त क्रम से उस गर्भिणी ने मात शिशुओं को प्रसूत किया था ॥३७॥ पुत्रों के समुत्पन्न होते ही वह तो मोक्ष के मार्ग में चली गई थी। वे बिना माता और पिता के बालक जल के मध्य में विचरण करने वाले हो रहे थे ॥३८॥ वे स्तन से निकलने वाले दूध के लिये स्वाभाविक तौर पर रुदन कर रहे थे। इसके पश्चात् वहाँ पितामह आगये थे। उन्होंने उन शिशुओं से कहा—हे पुत्रो! तुम रुदन मत करो और स्वस्थ होकर रहो ॥३९॥ तुम लोग देवता हो जाओगे जोकि वायु के स्कन्ध पर विचरण करने वाले रहोगे। इतना भर कह कर उन सब को दैवतक् से गये थे ॥४०॥ मरुत् के मार्ग में नियोजित करके विराज अपने भवन को चले गये थे। स्वारोचिष मनु के अन्तर में इस प्रकार से मरुतों का आश्वासन दिया था ॥४१॥ हे तपोधन! उत्तम के वंश में जो मरुद्गण थे उनका अब श्रवण करो। उत्तम के वंश में जो विद्याधिप राजा था बहुत ही प्रसिद्ध था ॥४२॥

वपुष्मानिति विख्यातो वपुषा भास्करोपमः ।
तस्य पुत्रो गुणश्रेष्ठो ज्योतिष्मान्धार्मिकोऽभवत् ॥४३

स पुत्रार्थी तपस्तेपे नन्दी मन्दाकिनीमनु ।
तस्य भार्या च सुश्रोणी देवाचार्यसुता तथा ॥४४

तपश्चरणयुक्तस्य बभूव परिचारिका ।
साऽन्नमत्स्यपुष्प च समित्कुशजलादि तत् ॥४५

चकार पद्मपत्राक्षी सम्यक् चातिथिपूजनम् ।
पतिं शुश्रूषमाणा सा कृशा धमनिसन्तता ॥४६
तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी दृष्टा सप्तर्षिभिर्वने ।
तां तथा चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वास्य तपसा कृशाम् ॥४७
पप्रच्छुस्तपसो हेतुं तस्यास्तद्भर्तुरेव च ।
साऽब्रवीत्तनयार्थाय आवाभ्यां तपसः क्रिया ॥४८
ते चास्यै वरदा ब्रह्मञ्जाता सप्त महर्षयः ।
व्रजध्व तनयाः सप्त भविष्यन्ति न संशयः ॥४९

उसका नाम वपुष्मान् विख्यात था और शरीर से वह सूर्य के तुल्य था। उसका पुत्र गुणों से परम श्रेष्ठ था। उसका नाम ज्योतिष्मान था तथा वह अत्यन्त धार्मिक था ॥४३॥ उसने पुत्र की इच्छा से मन्दाकिनी नदी के ऊपर तपश्चर्या की थी। उसकी भार्या जो थी, वह देवाचार्य की सुपुत्री सुश्रोणी थी ॥४४॥ जब वह वपुष्मान तपस्या कर रहा था। उस समय में उसकी परिचारिका होकर रहा करती थी। वह उसके लिये फल-पुष्प-समिधा, कुशा और जल आदि लाया करती थी ॥४५॥ उस पद्म पत्र के समान नेत्रों वाली ने भली भांति अतिथियों का पूजन किया। जब वह अपने पति की शुश्रूषा करती थी तो अत्यन्त कृश और धमनि सतत होगई थी किन्तु वह चार्वंगी तेज से युक्त थी उसको वन में सप्तर्षियों ने देखा उस प्रकार के परम सुन्दर अंगों वाली उसको तपश्चर्या के कारण कृश देख कर उन्होंने उससे पूछा था ॥४६-४७॥ उन्होंने यह प्रश्न उससे किया कि इस तप करने का कारण क्या है तथा उसका स्वामी भी किस लिये तप कर रहा है। उसने उत्तर दिया था कि पुत्र की प्राप्ति के लिये ही हम दोनों की यह तपस्या का कर्म किया जा रहा है ॥४८॥ हे ब्रह्मन् ! वे सप्तर्षिगण इसके लिये वरदान देने वाले होगये थे। उन्होंने यह वरदान दिया था कि तुम जाओ—तुम्हारे सात पुत्र होंगे— इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४९॥

युवयोर्गुणसंयुक्ता महर्षीणां प्रसादतः ।
इत्येवमुक्त्वा जग्मुस्ते सर्व एव महर्षयः ॥५०
स चापि राजर्षिरगात्सभार्यो नगरं निजम् ।
ततो बहुतिथे काले सा राज्ञो महिषी प्रिया ॥५१
अवाप गर्भं तन्वङ्गी तस्मान्नृपतिसत्तमात् ।
गुर्विण्यामथ भार्यायां स ममार नराधिपः ॥५२
सा चाप्यारोढुमिच्छन्ती भर्तारं वै पतिव्रता ।
निवारिता तदाऽमात्यैर्न तथाऽपि प्रतिष्ठति ॥५३
समारोप्याथ भर्तारं चितायामारुहच्च सा ।
ततोऽग्निमध्यात्सालिलमाममेवापतन्मुने ॥५४
तदम्भसा सुशीतेन ससिक्तं सप्तधाऽभवत् ।
तेऽजायन्ताथ मरुत औत्तमस्यान्तरे मनोः ॥५५
तामसस्यान्तरे ये च मरुतोऽप्यभवन्पुरा ।
तानहं कीर्तयिष्यामि गीतवाद्यकलिप्रिय ॥५६

महर्षियों के प्रसाद से तुम दोनों के गुणगण से समन्वित पुत्र होंगे--इतना इस प्रकार से कहकर वे सब महर्षिगण चले गये थे ॥५०॥ फिर वह राजर्षि भी अपनी भार्या के सहित अपने नगर में चला गया था। इसके पश्चात् बहुत दिन समाप्त होने पर वह राजा की पट्टाभिषिक्ता रानी जो परम प्रिय थी उस तन्वंगी ने उसी नृप श्रेष्ठ से गर्भ-धारण किया था। उस भार्या के गर्भिणी हो जाने पर वह राजा मर गया था ॥५१-५२॥ वह पतिव्रता पत्नी थी अतः वह अपने पति के साथ ही चिता पर समारोहण कर सती होना चाहती थी। उसको अमात्यों ने निवारित भी किया था किन्तु उसने किसी की बात नहीं मानी और अपने दृढ़ सकल्प पर ही स्थित रही थी ॥५३॥ स्वामी के शव को चिता पर समारोपित कर वह भी उसी पर चढ़ गई थी। फिर अग्नि के मध्य से हे मुने! कच्चा पानी गिरा था ॥५४॥ उस शीतल जल से सात प्रकार में सवचन हुआ था। वे ही उत्तम मन्वन्तर के मरुद्गण उत्पन्न हुए थे ॥५५॥ हे गीत और वाद्य और कलह से प्यार

करने वाले ! तामस मन्वन्तर में जो मरुद्गण पहिले हुए थे उनको अब मैं बतलाता हूँ ॥५६॥

तामसस्यमनोः पुत्रो दन्तध्वज इति श्रुतः ।
स पुत्रार्थी जुहावाग्नौ स्वमांस रुधिर तथा ॥५७
अस्थीनि रोम केशाश्च स्नायुमज्जायकृद्धनम् ।
शुक्रं च चित्रको राजा सुतार्थी चेति नः श्रुतम् ॥५८
सप्तस्वेवार्चिषु ततः शुक्रपातादनन्तरम् ।
मा प्रक्षिपस्वेत्य भवच्छब्दः सोऽपि मृतो नृप. ॥५९
ततस्तस्मात् तद्वह्नात्सप्तधा तेजसा युताः ।
शिशवः समजायन्त तेऽरुदन्भैरवं मुने ॥६०
तेषा तु ध्वनिमाकर्ण्य भगवान्पद्मसम्भवः ।
समागम्य विचार्याथ स चक्रे मरुतः सुरान् ॥६१
ते त्वासन्मरुतो ब्रह्मंस्तामसे देवतागणाः ।
येऽभवन्न वते ताश्च श्रृणु च त्वं तपोधन ॥६२
रैवतस्यान्ववाये तु य आसीद्रिपुजिद्धनी ।
रिपुजिन्नामतः ख्यातो न तस्यासीत्सुतः किल ॥६३

तामस मनु का पुत्र दन्तध्वज नाम वाला हुआ था । वह भी पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वाला था और उसने अपने मांस तथा रुधिर का हवन किया था ॥५७॥ उस सुत के इच्छुक राजा ने जो चित्रक था अपनी अस्थियाँ–रोम, केश, स्नायु, मज्जा, यकृद्धन और शुक्र का हवन किया था—ऐसा हमने सुना है ॥५८॥ फिर शुक्र पात के अनन्तर सातों अग्नियों से—"अब प्रक्षेप मत करो"—यह शब्द हुआ था । वह राजा भी मर गया था ॥५९॥ इसके पश्चात् उस अग्नि से सात प्रकार से तेज से युक्त शिशुगण समुत्पन्न हुए थे । हे मुने ! वे फिर रुदन करने लगे थे और उनका बहुत ही भैरव रुदन था ॥६०॥ उनके क्रन्दन की ध्वनि को सुनकर भगवान् पद्म सम्भव ब्रह्मा जी वहाँ आगये थे । इसके उपरान्त उनने विचार कर उन मरुतों को सुर बना दिया था ॥६१॥ हे ब्रह्मन् ! वे तामस मन्वन्तर में देवगण मरुत् हुए थे । हे तपो-

धन ! जो वे नहीं हुए थे उनका भी आप श्रवण करलो ॥६२॥ रैवत के वंश में जो रिपुजित् धनी हुआ था वह 'रिपुजित्'—इसी नाम से विख्यात हो गया था। उसके भी कोई पुत्र नहीं था ॥६३॥

स समाराध्य तपसा भास्करं तेजसां निधिम् ।
अवाप कन्यां सुरतिं तां प्रगृह्य गृहं ययौ ॥६४
तस्या पितृगृहे ब्रह्मन्वसन्त्या स पिता मृतः ।
साऽपि दुःखपरीताङ्गी स्वां तनुं त्यक्तुमुद्यता ॥६५
ततस्तां वारयामासुश्चैं पयः सप्त नारद ।
तस्यामासक्तचित्तास्तु सर्व एव तपोधनाः ॥६६
अपारयन्तीतद्दुःखं प्रज्वाल्याग्निं विवेश ह ।
ते चापश्यन्त ऋषयस्तच्चित्ता भावितास्तया ॥६७
तां मृतामृषयो दृष्ट्वा कष्टं कष्टेति वादिनः ।
प्रजग्मुर्ज्वलनाच्चाथ सप्ताजायन्त दारकाः ॥६८
ते च मात्रा विनाभूता रुरुदुस्तान्पितामहः ।
निवारयित्वा कृतवाँल्लोकनाथो मरुद्गणान् ॥६९
रैवतस्यान्तरे जाता मरुतोऽमी तपोधन ।
शृणु त्वं कीर्तयिष्यामि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥७०

उसने तेज के निधि भगवान् भास्कर का तपस्या के द्वारा समाराधन किया था और सुरति कन्या को प्राप्त कर वह लेकर अपने गृह को चला गया था ॥६४॥ हे ब्रह्मन् ! अब वह अपने पिता के घर में वास कर रही थी तो उसका पिता मृत हो गया। वह भी दुःख से परीत अंगों वाली होकर अपने शरीर का त्याग करने को तयार हो गई थी ॥६५॥ हे नारद ! फिर सातों ऋषियों ने उसका वारित किया था। सभी तपस्वी गण उसमें आसक्त चित्त वाले थे ॥६६॥ वह उस महान् दुःख को न सहन करती हुई अग्नि जला कर उसमें प्रवेश कर गई थी। तथा भावित और उसमें अपने चित्त को संलग्न रखने वाले ऋषियों ने उसे देखा था ॥६७। उसको मरी हुई देखकर ऋषिवृन्द 'बड़ा कष्ट है'—ऐसा कह रहे थे और वहाँ से चले गये थे। इसके अनन्तर उन अग्नि

ये सात पुत्र (बालक) समुत्पन्न हुए थे ॥६८॥ वे शिशु बिना माता के रुदन करने लगे । उनको पितामह ने आकर निवारित किया था और फिर लोकनाथ प्रभु ने उनको मरुद्गण कर दिया था ॥६९॥ हे तपोधन ! रैवत मन्वन्तर में ये मरुद्गण हुए थे । अब चाक्षुष मन्वन्तर में जो मरुद्गण हुए उनको मैं बतलाता हूँ । तुम उनका श्रवण करो ॥७०॥

आसीन्मङ्किरिति ख्यातस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः ।
सप्तसारस्वते तीर्थे सोऽतप्यत महत्तपाः ॥७१
विघ्नार्थं तस्य तुषिता देवाः संप्रेषयन्मुने ।
सा चाभ्येत्य नदीतीरे क्षोभयामास भामिनी ॥७२
ततोऽस्य प्राच्यवच्छुक्रं सप्तसारस्वते जले ।
ता चैवाप्यशपन्मूढा मुनिर्मङ्कणको रिपुम् ॥७३
गच्छ वै वेत्सि मूढे त्वं पापस्यास्य महत्फलम् ।
विध्वसस्ते हि भविता सप्राप्ते यज्ञकर्मणि ॥७४
एव शप्त्वा ऋषिः श्रीमाञ्जगामाथ स्वमाश्रमम् ।
सरस्वतीभ्यः सप्तभ्यः सप्त वै मरुतोऽभवन् ॥७५
एतत्तवोक्ता मरुतो सि पूर्वे जाता जगद्व्याप्तिकरामहर्षे ।
येना श्रुते जन्मनि पापहाभिवेद्य धर्माभ्युदयो महाश्च ॥७६

एक मंकि नाम से विख्यात तपस्वी था जो सत्यवाणी वाला और परम शुचि था । सप्त सारस्वत तीर्थ में उसने महान् तप किया था ॥७१॥ हे मुने ! उसकी तपश्चर्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिये देवगण ने एक तुषिता नाम अप्सरा को उसके समीप में भेजा था । वह उस नदी के तट पर आकर उपस्थित होगई थी और उस भामिनी ने क्षोभ उत्पन्न कर दिया था ॥७२॥ इसके पश्चात् उसका वीर्य सारस्वत जल में प्रच्युत हो गया था । उस मंकणक मुनि ने उस महामूढा भामु को भी तब शाप दे दिया था । हे मूढे ! जाओ, तू भी इस पाप का महान् फल जानले । यज्ञ कर्म्म के सम्प्राप्त होने पर तेरा विध्वस हो जायगा ॥७३-७४॥ इस प्रकार से शाप देकर ऋषि अपने आश्रम

में चला गया था। सात सरस्वती जलों में सात मरुत समुत्पन्न हुए थे ॥७५॥ हे महर्षे ! यह मरुतों की समुत्पत्ति हमने तुम को बतलादी है जो पूर्व में हुए थे और इस जगत को व्याप्त करने वाले थे। जिनके जन्म का श्रवण करने पर पापों का क्षय हो जाता है और धर्म का महान् उदय होता है ॥७६॥

७३-वामन प्रादुर्भाव तथा कालनेमि वध

एतदर्थं बलिर्दैत्यः कृतो राजा बलिप्रिय।
मन्त्रप्रदाता प्रह्लादः शुक्रश्चासीत्पुरोहितः ॥१
ज्ञात्वाऽभिषिक्तं दैतेय विरोचनसुतं बलिम्।
दिदृक्षव समायाता असुराः सर्व एव हि ॥२
नानागतान्निरीक्ष्यैव पूजयित्वा यथाक्रमम्।
पप्रच्छ कुलजान्सर्वान्किनु श्रेयस्करं मम ॥३
ततस्ते प्रोचुरेवं न शृणु चासुरसुन्दर।
यत्ते श्रेयस्करं कर्म यदस्माकं हितं तथा ॥४
पितामहस्तवैवासीद्बली दानवपालकः।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्रोऽभूज्जगत्त्रये ॥५
समागत्य सुरश्रेष्ठो विष्णुः सिंहवपुर्धरः।
प्रत्यक्ष दानवेन्द्राणा नखैर्विशकलीकृतः ॥६
अवकृष्टश्च राज्यात्स त्र्यम्बकेण महात्मना।
अस्मदर्थे महाबाहो शकरेण त्रिशूलिना ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! इसके लिये ही बलिप्रिय दैत्य बलि को राजा किया गया था। मन्त्र का प्रदान करने वाले प्रह्लाद थे और शुक्राचार्य पुरोहित हुए थे ॥१॥ विरोचन के पुत्र को दैतेय बलि को अभिषिक्त जान कर सभी देवगण उसे देखने की इच्छा वाले होकर वहाँ आये थे ॥२॥ उन समस्त देवों को वहाँ पर समागत हुए देख कर ही उसने यथाक्रम उन सबका पूजन किया था और फिर उन

सभी गुरुजनों से पूछा था कि मेरा श्रेय करने वाला क्या धर्म है ॥३॥ इसके पश्चात् उन देवगण ने उस बलि से कहा था—हे असुरों में परम सुन्दर ! सुनो। तेरा जो श्रेयस्कर धर्म वही है जिससे हमारा हित सम्पादित हो ॥४॥ तुम्हारे पितामह भी उसी प्रकार के थे जो बली और दानवों के पालक थे। हिरण्यकशिपु भी बहुत वीर थे। वह इस जगत्त्रय में इन्द्र हुए थे ॥५॥ उनके समीप में सुर श्रेष्ठ विष्णु ने सिंह का वपुधारण किया था और उसके पास आकर दानवेन्द्रों के सामने ही प्रत्यक्ष रूप से अपने नखों से चीर डाला था ॥६॥ महात्मा अन्धक ने हमारी भलाई के लिये ही हे महाबाहो ! त्रिशूलधारी भगवान् शंकर ने उसे राज्य से अवकृष्ट कर दिया था ॥७॥

तथा तव पिताऽप्योऽपि जम्भः शक्रेण घातितः ।
कुजम्भो विष्णुना चापि प्रत्यक्ष पशुवद्धतः ॥८
शङ्ख पाको महेन्द्रेण भ्राता तव सुदर्शनः ।
विरोचनस्तव पिता निहतः कथयामि ते ॥९
श्रुत्वा गोत्रक्षय ब्रह्मन्कृत शक्रेण दानवः ।
उद्योग कारयामास सह सर्वैर्महासुरैः ॥१०
रथैरन्ये गजैरन्ये वाजिभिश्च परेऽसुराः ।
पदातयस्तथाऽप्यन्ये जग्मुयु द्धाय देवताः ॥११
मयोऽग्रे याति बलवान्सेनानाथो भयकरः ।
सैन्यस्य मध्ये बलिन. कालनेमिश्च पृष्ठतः ॥१२
वामपार्श्व मवष्टभ्य शाल्वः प्रथित.विक्रमः ।
प्रयाति दक्षिण घोर तारकाख्यो भयकरः ॥१३
दानवाना सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
सप्रयातानि युद्धाय देवै. सह कलिप्रिय ॥१४

उसी भांति आपके पिता और अन्य भी जम्भ शक्र के द्वारा घातित हुआ था। विष्णु ने कुजम्भ को प्रत्यक्ष रूप से एक पशु की भाँति मार डाला था ॥८॥ तेरा भाई सुदर्शन पाक शख महेन्द्र ने तथा तेरे पिता विरोचन का भी निहत किया था यह हम तुमसे कहते हैं ॥९॥ हे ब्रह्मन् !

उस दानव ने शक्र के द्वारा अपने योद्ध का वध जो किया गया था उसे श्रवण किया था और फिर सभी महासुरों के साथ उनने उद्योग कराया था ॥१०॥ कुछ लोग रथों के द्वारा-अन्य लोग गजों और अश्वों के द्वारा असुरगण पदाति सुसज्जित होकर देवगण से युद्ध करने के लिये गये थे ॥११॥ मय दैत्य बहुत ही बलवान् था वही सबके आगे था। वह महान् भयकर सेनापति था। उस सेना के मध्य में बलि था और पीछे कालनेमि दैत्य था ॥१२॥ सेना के वाम भाग को रोककर प्रथित पराक्रम वाला बाल्ह था। घोर दक्षिण भाग को महान् भयकर तारक नाम वाला दैत्य सेना में आ रहा था ॥१३॥ दानवों की संख्या बहुत ही विशाल थी। सहस्रों प्रयुत और अर्बुद दैत्य देवों के साथ युद्ध करने के लिये हे कलि(कलह) प्रिय ! रण स्थल में रवाना हो गये थे ॥१४॥

श्रुत्वाऽसुराणामुद्योगं शक्रः सुरपतिः सुरान् ।
उवाच योग दैत्यानां योद्धु स्वबलसयुतः ॥१५
इत्येवमुक्त्वा वचन सुरराट् स्यन्दन वली ।
समारुरोह भगवान्यतमातलिवाजिनम् ॥१६
समारूढे सहस्राक्षे स्यन्दन देवता गताः ।
स्वं स्वं वाहनमारुह्य निश्चेरुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥१७
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनो तथा ।
विद्याधरा गुह्यकाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः ॥१८
राजर्षयस्तथा सिद्धा नानाभूताश्च सघशः ।
गजानन्ये रथानन्ये हयानन्ये समारुहन् ॥१९
विमानानि च शुभ्राणि पक्षिवाह्यानि नारद ।
समारुह्याद्रवन्सर्वे यतो दैत्यबल स्थितम् ॥२०
एतस्मिन्नन्तरे धीमान्वैनतेयः समागतः ।
तस्मिन्विष्णुः सुरश्रेष्ठस्त्वधिरूढः समभ्यगात् ॥२१

असुरों के इस महान् उद्योग को सुनकर देवों के पति इन्द्र ने से कहा था कि वे भी अपने बल से सयुत होकर दैत्यों से

का योग करें ॥१५॥ इतना कह कर सुरों के राजा बलवान इन्द्र ने अपने रथ पर समारोहण किया था जिस रथ के अश्वों को हाँकने वाला मातलि सारथि था ॥१६॥ इन्द्र के रथ पर समारूढ हो जाने पर समस्त देवगण भी अपने२ वाहनों पर आरूढ होकर युद्ध की इच्छा वाले होकर निकल पड़े थे ॥१७॥ आदित्य-वसुगण-रुद्रवृन्द-साध्य-विश्वेदेवा-अश्विनी कुमार-विद्याधर-गुह्यक-यक्ष-राक्षस-पन्नग-राजर्षि वर्ग सिद्ध और अनेक भूतों के संघ सभी निकल कर चल दिये थे। अन्य गजों पर कुछ रथों पर और कुछ अश्वों पर समारूढ हो गये थे ॥१८॥ हे नारद ! कुछ पक्षि वाह्य शुभ्र विमानों पर चढ़ कर धावमान हो गये थे। सभी लोग वहीं पर दौड़ पड़े थे जहाँ वह दैत्यों का विशाल दल सस्थित था ॥२०॥ इसी बीच में परम श्रीमान् वैनतेय वहाँ पर आ गया था। उस पर सुरों में श्रेष्ठ विष्णु भगवान् चढ़ कर वहाँ आये ॥२१॥

तमागत सहस्राक्षस्त्रैलोक्यपतिमव्ययम् ।
ववन्द मूर्ध्नाऽवनतः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥२२
ततोऽग्रे देवसैन्यस्य कार्तिकेयो गदाधरः ।
पालयञ्जघनं विष्णुर्याति मध्ये सहस्रदृक् ॥२३
वाम पार्श्वमवष्टभ्य जयन्तो वर्तते मुने ।
दक्षिण वरुणः पार्श्वमवष्टभ्यागमद्बली ॥२४
ततोऽमराणां पृतनायशस्विनीस्कन्देन्द्रविष्णूदग्रसूर्यपालिता ।
नानास्त्रशस्त्रोद्यतदोःसमूहा समाससादाखिल महोध्रे ॥२५
उदयाद्रितटे रम्ये शुभे समशिलातले ।
निवृक्षे पक्षिरहिते जातो देवासुरो रणः ॥२६
सन्निधानात्सो रौद्रः सेनयोरभवन्मुने ।
महौघने शान्तरजसि तद्दानववल महत् ॥२७
अभ्यद्रवन्त सहसा सम स्कन्देन देवताः ।
निजघ्नुर्दानवान्देवाः कुमारभुजपालिताः ॥२८

भगवान् विष्णु को वहाँ पर समागत देखकर जो इस त्रिलोकी के स्वामी और अविनाशी हैं इन्द्र ने समस्त देवों के सहित अति अवनत

होकर शिर से वन्दना की थी ॥२२॥ इसके पश्चात् देवों की सेना के पति गदाधर स्वामि कार्त्तिकेय सबसे आगे थे। मध्य भाग की रक्षा करते इन्द्र उपस्थित थे और अन्तिम भाग का त्राण करके विष्णु स्थित हुए थे ॥२३॥ हे मुने ! वाम भाग को रोक कर जयन्त थे। दक्षिण भाग में बलवान् वरुण थे ॥२४॥ इस प्रकार से देवों की बलवती सेना शत्रु की सेना के समीप पर्वत पर प्राप्त हो गई थी ॥२५॥ परम सुरम्य उदयाद्रि के तट पर जो अत्यन्त शुभ और समान शिलाओं के तल वाला था तथा वृक्षों एवं पक्षियों से भी रहित था यह देवों और असुरों का युद्ध हुआ था ॥२६॥ उन दोनों सेनाओं के समीप में आ जाने से हे मुनिवर ! वह युद्ध बहुत ही रौद्र हो गया था। अति शान्त रज वाले उस महीध्र पर वह महान् दानवों का बल था ॥२७॥ स्वामि कार्त्तिकेय के साथ सभी देववृन्द ने सहसा आक्रमण किया था और कुमार की भुजाओं से परिरक्षित देवों ने दानवों को मार दिया था ॥२८॥

देवान्निजघ्नुर्दितिजा मयगुप्ताः प्रहारिणः ।
महीधरोत्तमे पूर्वं यथा वानरहस्तिनौ ॥२९

रणरेणू रथोद्धूतः पिङ्गलो रणमूर्धनि ।
सन्ध्यानुरक्तः सदृशो मेघः खे सुरतापस ॥३०

तदाऽऽसीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
श्रूयन्ते त्वनिशं शब्दाश्छिन्धि भिन्धीति वादिनाम् ॥३१

ततो विशसनो रौद्रो दैत्यानां दैवतैः सह ।
जातो रुधिरनिष्पन्दो रजसः शमनात्मकः ॥३२

शान्ते रजसि देवौघास्तद्दानवबलं महत् ।
अभ्यद्रवन्नसहिताः,सम स्कन्देन धीमता ॥३३

निजघ्नुर्दानवान्देवाः कुमारभुजपालिताः ।
देवान्निजघ्नुर्दैत्याश्च मयगुप्ताः प्रहारिणः ॥३४

ततोऽमृतरसास्वादाद्विनाभूता. सुरोत्तमाः ।
निर्जिताः समरे दैत्यैः समं सैन्येन नारद ॥३५

उधर मय दानव के द्वारा रक्षित प्रहार करने वाले दैत्यों ने देवों का हनन किया था। उस उत्तम महीधर पर पहिले जिस तरह वानर और हस्तियों का युद्ध हुआ था उसी भाँति यह युद्ध हो रहा था ॥२९॥ हे देवर्षि वर ! रथों के सचरण से उठा हुआ रण स्थल का रेणु पिंगल वर्ण का ऊपर आकाश में सन्ध्या से अनुरक्त मेघ के समान छा गया था ॥३०॥ उस समय में ऐसा तुमुल युद्ध हुआ था कि कुछ भी नहीं जाना जाता था। केवल ये ही शब्द सुनाई दे रहे थे 'काट दो-भेद दो' जो कि लडाकू लोग मुंह से बोल रहे थे ॥३१॥ इसके पश्चात् देवों के साथ युद्ध करने वाले दैत्यों का महान् रौद्र रुधिर का निस्यन्द हुआ था जो उस छाई हुई रज को शमन कर रहा था ॥३२॥ उस रज के शान्त होने पर देवों के समूह ने उस महान् दानवों की सेना पर आक्रमण किया था जो कि धीमान् स्कन्द की सुरक्षा में थे ॥३३॥ कुमार की भुजा से पालित देव दानवों को और मय दैत्य से रक्षित दैत्य देवों का हनन कर रहे थे ॥३४॥ हे नारद ! उस समर में अमृत के रसास्वाद बिना मृत देवों को दैत्यों ने सेना के साथ जीत लिया था ॥३५॥

विनिर्जितान्सुरान्दृष्ट्वा वैनतेयध्वजोऽरिहा ।
शार्ङ्गमुद्यम्य बाणौघैर्निजघान ततस्ततः ॥३६
विष्णुना हन्यमानास्ते दानवा गरुडोऽप्यथ ।
दतेयाः शरणं जग्मुः कालनेमिं महासुरम् ॥३७
तेभ्यः स चाभयं दत्त्वा प्रययौ यत्र माधवः ।
विवृद्धिमगमद्ब्रह्मन्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥३८
यं य करेण स्पृशति देवं यक्षं सकिन्नरम् ।
स तमादाय चिक्षेप विस्तृते वदने बली ॥३९
सरम्भाद्दानवेन्द्रो व्यमृदत दितिजैः संयुगे देवसैन्यं
सेन्द्रं सार्कं सचन्द्रं करचरणनखैरस्त्रहीनोऽपि वेगात् ।
चक्रे वैश्वानराभैरथवनिगगनयोस्तिर्यगूर्ध्वं समन्ताद्व्याप्तं
कल्पान्तवह्निर्जगदखिलमिदं रूपमासीद्दिपक्षोः ॥४०

त दृष्ट्वा वर्धमान रिपुमतिवलिन देवगन्धर्वमुख्याः
सिद्धाः साध्याश्च मुख्याभवतरलदृशः प्राद्रवन्दिक्षु सर्वे ।
पोप्लूयन्ते च दैत्या हरिममरगणैरर्चित चारुमौलि
नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयशस चक्र रुस्तित्तदर्पाः ॥४१
तानित्थप्रेक्ष्यदैत्यान्मयवलिप्रमुखान्कालनेमिप्रधानान्याणैरा-
कृष्य शार्ङ्गात्त्विनवरतमुरोभेदिभिर्वज्रकल्पैः ।
कोपादारक्तदृष्टि सरथगजहयान्दृष्टिनिर्धूतवीर्यान्नाराचाद्यैः
सुपुङ्खैर्जलद इव गिरिं छादयामास विष्णुः ॥४२

इस तरह विशेष रूप से निर्जित सुरों को देख कर शत्रुओं का हनन करने वाले वैनतेय ध्वज ने अपना शार्ङ्ग धनुष उठा कर सभी ओर वाणो के समूह से दैत्यो का हनन किया था ॥३६॥ भगवान् विष्णु के द्वारा हन्यमान होकर उन दैत्यो ने और दानवों ने जिनको कि गरुड भी मार रहा था महान् असुर कालनेमि का शरण लिया था ॥३७॥ उन सब दैत्यो को अभय दान देकर वह कालनेमि वहाँ पर गया था जहा भगवान् माधव थे । अब तो वह युद्ध और भी वृद्धि को विशेष रूप से प्राप्त हो गया था जैसे कि कोई उपेक्षा किया हुआ रोग बढ जाया करता है ॥३८॥ बलवान् कालनेमि जिस जिस देव यक्ष और किन्नर को हाथ से स्पर्श करता था उसी२ को लेकर अपने विस्तृत मुख में अन्दर डाल लिया करता था ॥३६॥ बडे ही सरम्भ से उस दानवेन्द्र ने उस युद्ध मे दैत्यों के साथ देवों की सेना को इन्द्र-सूर्य-चन्द्र के सहित सबको बडे वेग से अस्त्रो से हीन होते हुए भी कर-चरण और नखों से ही मर्दित कर दिया था उसने वैश्वानर की आभा के तुल्य आभा वाले इनके द्वारा ही भूमि और आकाश में नीचे-ऊपर अलग-बगल सभी ओर इस जगत् को ऐसा कर दिया था जो कल्पान्त की वह्नि से जलने वाले के समान रूप वाला हो गया था ॥४०॥ उस बढते हुए अति बली शत्रु को देखकर सभी देव-गन्धर्व प्रमुख-सिद्ध-साध्य आदि भय से कातर दृष्टि वाले होकर दिशाओं मे भागने लग गये थे । दैत्य गण ने अमर गणों के द्वारा पूजित, चारु मौलि

हरि को अपने अनेक अस्त्रों के प्रहारों से उत्पिष्ठ दर्प वाले होते हुए विगलित यश वाले बना दिया था और सभी हरि पर धावा बोल रहे थे ।।४१।। भगवान् विष्णु ने इस प्रकार से आक्रमण कारी उन सब दैत्यों को देख कर जिनमें मय-बलि प्रमुख थे तथा कालनेमि प्रधान था अपने शार्ङ्ग धनुष से निरन्तर बाणों को खींच कर जो कि उरः स्थल का भेदन करने वाले वज्र के तुल्य थे, क्रोध से रक्त दृष्टि वाले होकर दृष्टि से हो निर्धूत पराक्रम वाले दैत्यों को रथ-गज और अश्वों के सहित सुन्दर पुंख वाले नाराचों से जैसे मेघ गिरि का छादन कर दिया करता है उसी भाँति विष्णु ने सबको छादित कर दिया था ।।४२।।

ते बाणैश्छाद्यमाना हरिकरमुचितैः कालदण्डप्रकाशैर्नाराचै-
रर्धचन्द्रैर्वलिमयपुरगा भीतभीतास्त्वरन्तः ।
प्रारम्भे दानवेन्द्रं शतमखमथनं प्रेक्षयन्कालनेमिं
स प्रयाद्वैसैन्यप्रभुममितबलं केशवं लोकनाथम् ।।४३

दृष्ट्वा त शतशीर्षमुद्यतगदं शैलेन्द्रश्रृङ्गाकृतिं विष्णुः
शार्ङ्गमपास्य सत्वरमथो जग्राह चक्रं करे ।
देवेनैव समेत्य दैत्यविटपप्रच्छेदने मालिन
प्रोवाचाथ विहस्य त च सुचिरं मेघस्वनो दानवः ।।४४

अय स दनुपुत्रजिद्दनुजसैन्यविश्रासकृद्रिपुः
परमकोपनो मम विघातकृत्त्वायुधी ।
हिरण्यनयनान्तको विविध पुष्पपूजारतिः
क्व याति मम गोचरे निपतितः खलोऽसद्दृशः ।।४५

यद्येप सम्प्रति ममाहवमभ्युपैति नूनं
न याति निलयं निजमम्बुजाक्षः ।
मन्मुष्टिपिष्टशिथिलाङ्गमुपान्तभस्म
सद्रक्ष्यते सुरजनो भयकातराक्षः ।।४६

इत्येवमुक्त्वा मधुसूदनं वै स कालनेमिः स्फुरिताधरोष्ठः ।
गदां खगेन्द्रोपरि जातरोषो मुमोच शैले कुलिशं यथेन्द्रः ।।४७

तामापतन्तीं प्रसमीक्ष्य विष्णुर्घोरां गदां दानववाहुमुक्ताम् ।
चक्रेण चिच्छेद सुदुर्गतस्य मनोरथं पूर्वकृतं हि कर्म ॥४८
गदां छित्वा तदा विष्णुर्दानवस्य सुदारुणाम् ।
समुपेत्य भुजौ पीनौ सम्प्रचिच्छेद वेगवान् ॥४९

वे सब दैत्यगण जिनमें मय और बलि पुरोगामी थे हरि के करों से मुक्त कालदण्ड के समान प्रकाश वाले अर्धचन्द्र नाराचों से छायमान होकर भय से भीत होकर भाग रहे थे। आरम्भ में ग्रसन के मथन करने वाले दानवेन्द्र कालनेमि को देखते हुए ही व दैत्य भाग रहे थे। वह काल नेमि दानव देवों की सेना के स्वामी अमित बल वाले लोकनाथ केशव के समीप पहुँचा था ॥४३॥ उस सौ शीर्ष वाले शैलेन्द्र की शिखर के समान आकृति वाले—गदा हाथ में ग्रहण किये हुए उस कालनेमि को देखकर भगवान् विष्णु ने शार्ङ्ग धनुष को छोड़कर अपने हाथ में शीघ्र ही सुदर्शन चक्र लेलिया था। उस समय में मेघ के समान ध्वनि वाले उस दानव ने दैत्य रूपी विटपों के छेदन करने वाले देवों के सहित समुपस्थित मालाधारी प्रभु को देखकर बहुत देर तक हँसते हुए उनसे यह बोला—॥४४॥ यही वह दनु के पुत्रों को जीतने वाला—दनुओं की सेना को ग्रस्त करने वाला शत्रु परम क्रोधी, आयुधधारी शत्रु है जो मेरे विघात को यहाँ आया है। यही हिरण्य नयन के नाश करने वाला है और विविध पुष्पों से पूजा में रति रखने वाला है। अरे! असदृश खल! अब तो मेरी दृष्टि में आगया है। अब कहाँ जा रहा है ॥४५॥ यदि यह अब मेरे साथ युद्ध करता है तो निश्चय ही अम्बुजाक्ष फिर अपने घर को वापिस नहीं जा सकेगा। इसको अभी भय से कातर नेत्रों वाले सुरगण मेरी मुष्टि के द्वारा पिष्ट और शिथिल अंगों वाले तथा राख के ढेर के समान हुए इसको देखेंगे ॥४६॥ इस प्रकार से मधुसूदन से कहकर वह कालनेमि दैत्य क्रोध से होठों को फड़का कर अत्यन्त रुष्ट होते हुए उसने अपनी गदा गरुड़ध्वज के ऊपर छोड़ दी थी जैसे इन्द्र अपने वज्र को पर्वत पर छोड़ा करता था ॥४७॥ भगवान् विष्णु ने अपने ऊपर आती हुई उस दानव के द्वारा प्रक्षिप्त

परम घोर गदा को देखकर उसे अपने सुदर्शन चक्र से तुरन्त ही छिन्न कर दिया था जैसे किसी सुदुर्गत पुरुष का कर्म पूर्व कृत मनोरथ छिन्न हो जाया करता है ।।४८।। उसी समय में भगवान् विष्णु ने उस कालनेमि की गदा का छेदन करके जोकि उस दानव की परम दारुण थी। फिर बड़े वेग वाले प्रभु ने उसके समीप में उपस्थित होकर उसके परिपुष्ट दोनों भुजाओं का छेदन कर दिया था ।।४९।।

भुजाभ्यामथ कृत्ताभ्यां विष्णुना प्रभविष्णुना ।
कालनेमिस्तथा भाति दग्ध शैल इवापरः ।।५०
ततोऽस्य माधवः कोपाच्छिरश्चक्रेण भूतले ।
छित्वा निपातयामास पक्व तालफल यथा ।।५१
तथा विबाहुर्विशिरा मुण्डतालो यथा वने ।
तस्थौ मेरुरिवाकम्प्यः कबन्धः क्ष्माधरेश्वरः ।।५२
त वैनतेयोऽप्युरसा खगेन्द्रो निपातयामास मुने धरण्याम् ।
यथाऽम्बराद्राहुशिरः प्रनष्ट वज्य महेन्द्रःकुलिशेन भूम्याम् ।।५३
तस्मिन्हते दानवसैन्यपाले ससाध्यमानस्त्रिदशैश्च दैत्याः ।
विमुक्तशस्त्रालकवर्मवस्त्राः समाद्रवन्वाणमृतेऽसुरेन्द्राः ।।५४

प्रभविष्णु भगवान् विष्णु के द्वारा दोनों भुजाओं के कट जाने पर वह दानवेन्द्र कालनेमि उस समय में ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई जला हुआ पर्वत हो ।।५०।। माधव प्रभु ने क्रोध से इसका शिर भी चक्र से काटकर भूतल पर गिरा दिया और वह पके हुए ताल के फल के समान भूमि पर गिर गया था ।।५१।। उस प्रकार से बिना बाहुओं और शिर वाला वन में मुण्ड ताल वृक्ष के तुल्य उस कबन्ध ने कम्पित होने के योग्य भूमि धरश्वर मरु के समान खड़ा था ।।५२।। पक्षियों के राजा गरुड ने अपने वक्षःस्थल से उसको भी हे मुने ! धरणी में गिरा दिया था। उस समय भूमि पर गिरता हुआ उसका धड़ ऐसा प्रतीत हुआ था मानों महेन्द्र ने आकाश से वज्र के द्वारा राहु का शिर काट कर डाल दिया हो ।। ५३ ।। उस दानवों की सेना के पालन करने वाले दैत्यराज के मर जाने पर, जोकि देवों के द्वारा ससाध्यमान था, तथा

बाण के बिना जितने भी असुरेन्द्र गण थे वे सब के सब अपने शस्त्रास्त्र कवच और वस्त्रों का त्याग कर वहा से भाग गये थे ॥५४॥

७४—बलि-बाणादि युद्ध तथा दैत्य विजय वर्णन

संनिवृत्तबले बाणे दानवाः सत्वरं पुनः ।
प्रयाता देवतासेना सशस्त्रायुधलालसाः ॥१
विष्णुरप्यमितौजास्त ज्ञात्वाऽजेयं बलेः सुतम् ।
प्राहामन्त्र्य सुरान्सर्वान्युध्यस्व विगतज्वराः ॥२
विष्णुनाऽथ समादिष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
युयुधुर्दानवैः सार्धं विष्णुस्त्वन्तरधीयत ॥३
माधवं गतमाज्ञाय शुक्रो बलिमुवाच ह ।
गोविन्देन सुरास्त्यक्तास्त्वं जयस्वाधुना बले ॥४
स पुरोहितवाक्येन प्रीतो याते जनार्दने ।
गदामादाय तेजस्वी देवसैन्यमभिद्रुतः ॥५
बाणो बाहुसहस्रेण गृह्य प्रहरणान्यथ ।
देव सैन्यमभिद्रुत्य निजघान सहस्रशः ॥६
मयोऽपि मायामास्थाय तैस्तै रूपान्तरैर्मुने ।
योधयामास बलवानमराणां वरूथिनीम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—बाण के सन्निवृत्त बल वाले होने पर दानव गण फिर शीघ्र ही देवों की सेना की ओर चल दिये थे । सभी दैत्य शस्त्र और आयुधों से सुसज्जित होकर आगये थे ॥१॥ भगवान् विष्णु भी जो अमित ओज से सम्पन्न थे यह जानते थे कि यह बलि का पुत्र बाण अजेय है । उनने समस्त देवों को बुलाकर कहा—अब आप लोग विगत ज्वर अर्थात् सन्ताप वाले होकर युद्ध करो ॥२॥ इस प्रकार से विष्णु भगवान् के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके इन्द्र आदि सब देव वृन्द दानवों के साथ युद्ध करने लगे थे और भगवान् विष्णु वहाँ से अन्तर्धान हो गये थे ॥३॥ भगवान् माधव को गये हुए जानकर शुक्राचार्य ने

राजा बलि से कहा—हे बले ! अब तो गोविन्द ने सुरों को त्याग कर दिया है। यह समय ऐसा है कि आप सुरों को जीतलो ॥४॥ वह बलि जनार्दन भगवान् के चले जाने पर पुरोहित के वाक्य से अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। फिर गदा लेकर तेजस्वी बलि ने देवों की सेना पर आक्रमण कर दिया था ॥५॥ बाण ने भी अपनी सहस्र बाहुओं से प्रहरणों को ग्रहण किया था और देवगण की सहस्रों सेना के वीरों को मार दिया था ॥६॥ हे मुने ! मय दैत्य भी अपनी माया से समाश्रित होकर उन-हम अद्भुत रूपों से बलवान् देवों की सेना के साथ युद्ध कर रहा था ॥७॥

विद्युज्जिह्व. परो मद्रो वृषपर्वा सितेक्षणः ।
विपाको विक्षरः सैन्य तेऽपि देवानुपाद्रवन् ॥८
ते हन्यमाना दितिजर्देवाः शक्रपुरोगमाः ।
गते जनार्दने देवे प्रायशो विमुखाभवन् ॥६
तान्प्रभग्नान्सुरगणान्बलिबाणपुरोगमाः ।
पृष्ठतस्त्वद्रवन्सर्वे त्रैलोक्यविजिगीषवः ॥१०
ससध्यामाना दैत्यैर्देवाः सेन्द्रा भयातुराः ।
त्रिविष्टप परित्यज्य ब्रह्मलोकमुपागताः ॥११
ब्रह्मलोक गतेष्वित्थं सेन्द्रेष्वपि सुरेषु वै ।
स्वर्गभोक्ता बलिर्जातः सभृत्यसुतबान्धवैः ॥१२
शक्रोऽभूद्बलवान्ब्रह्मन्बलिर्वाणो यमोऽभवत् ।
वरुणोऽभून्मयः सोमो राहुर्ह्लादो महासुरः ॥१३
स्वर्भानुरभवत्सूर्यः शुक्रश्चासीद्बृहस्पतिः ।
येऽन्येऽप्यधिकृता देवास्तेषु जाता सुरारयः ॥१४

विद्युज्जिह्व, पर, मद्र, वृषपर्वा, सितेक्षण, विपाक, विक्षर भी सब देवताओं की सेना पर धावा बोल रहे थे ॥८॥ दैत्यों के द्वारा बुरी तरह मारे जाते हुए इन्द्र आदि देवगण जनार्दन के वहाँ चले जाने पर प्रायः सब युद्ध से पराङ्मुख होगये थे ॥६॥ उन भग्न होते हुए भागने वाले देवों को बलि और बाण आदि प्रमुख दानवों ने त्रैलोक्य के जीतने की

इच्छा रखते हुए पीछे से भी खदेड़ दिया था ॥१०॥ इस तरह दैत्यों के द्वारा संसाध्यमान इन्द्र के सहित सब देवगण भय से अतीव आतुर हो गये थे और स्वर्ग को छोड़कर ब्रह्मलोक में चले गये थे ॥११॥ इस तरह इन्द्र के सहित समस्त देवों के ब्रह्मलोक में चले जाने पर फिर राजा बलि ही स्वर्ग के सिंहासन का सुख भोगने वाला होगया था और सब उसके भृत्य तथा बान्धव गण भी वहाँ पर पहुँच गये थे ॥१२॥ हे ब्रह्मन् ! फिर बलवान् बलि तो इन्द्र बन गया था और बाण ने धर्मराज का कार्य अपने हाथ में ग्रहण कर लिया था। मय दैत्य वरुण हो गया महासुर ह्लाद राहु सोम बन गया था ॥१३॥ स्वर्भानु सूर्य के आसन पर समासीन होगया था और शुक्राचार्य ने देव गुरु बृहस्पति का काम सम्भाल लिया था। और जो अन्य भी अधिकार वाले सुर थे उन पर भी सब असुर ही होगये थे ॥१४॥

पञ्चमस्य कलेरादौ द्वापरान्ते सुदारुणे।
देवासुरोऽभूत्सङ्ग्रामो यत्र शक्रोऽप्यभूद्बलिः ॥१५
पातालास्तस्य सम्प्रासन्वशे लोकत्रयं तथा।
भूर्भुवः स्वः परिख्यातं दशलोकाधिपो बलिः ॥१६
स्वर्गे स्वयं निवसति भुञ्जन्भोगान्सुदुर्लभान्।
तत्रोपासत गन्धर्वा विश्वासुपुरोगमाः ॥१७
तिलोत्तमाद्या ह्यप्सरसो नृत्यन्ति सुखापमाः।
वादयन्ति च वाद्यानि यक्षविद्याधरादयः ॥ १८
एवं विष्टपानसौ भोगान्भुञ्जन्दैत्येश्वरो बलिः।
सस्मार मनसा ब्रह्मन्प्रह्लादं स पितामहम् ॥१९
संस्मृतश्च स पौत्रेण महाभागवतोऽसुरः।
समभ्यागात्त्वरायुक्तः पातालात्स्वर्गमव्ययम् ॥२०
तमागतं समीक्ष्यैवत्यक्त्वा सिंहासनं बलिः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणावुभौ ॥२१

पाँचवें कलियुग के आदि में और द्वापर के अन्त में यह देवों तथा असुरों का महान् घोर संग्राम हुआ था जिस समय में बलि इन्द्र बन

गया था ॥१५॥ सातों पाताल आदि लोक तथा लोकत्रय और भूर्भुवः स्वः जो परिख्यात ऊपर वाले लोक हैं इन सब दश लोकों का बलि स्वामी बन गया था ॥१६॥ स्वयं राजा बलि स्वर्ग में निवास किया करता था और सुदुर्लभ भोगों का उपभोग करता था। वहाँ पर उसकी विश्वावसु प्रमुख गन्धर्व उपासना किया करते थे ॥१७॥ तिलोत्तमा आदि अप्सराऐं नृत्य किया करती थीं जो सुरों के समक्ष में नर्तन करती थीं और यक्ष विद्याधर आदि वाद्यों का वादन करते थे ॥१८॥ इस भाँति स्वर्गीय सुखों का उपभोग करते हुए दैत्येश्वर बलि ने हे प्रह्लाद ! अपने पितामह प्रह्लाद का स्मरण किये हुए होने पर वह महाभागवत असुर शीघ्रता के साथ उस अविनाशी स्वर्ग में पाताल लोक से आगये थे ॥२०॥ उनको समागत हुए देखते ही बलि ने सिंहासन को त्याग दिया था और दोनों हाथ जोड़ कर पितामह प्रह्लाद के दोनों चरणों की वन्दना की थी ॥२१॥

पादयोः पतितं वीरं प्रह्लादस्त्वरितो बलिम् ।
समुत्थाप्य परिष्वज्य विवेश परमासने ॥२२

बलिः प्राह भो तात त्वत्प्रसादात्सुरा मया ।
निर्जिता, शक्रराज्यं च हृतं वीर्यबलान्मया ॥२३

तदिदं तात मद्वीर्यविनिर्जितसुरोत्तमम् ।
त्रैलोक्यराज्यं भुङ्क्ष्व त्वं मयि भृत्ये पुरः स्थिते ॥२४

ऐरावतः पुण्ययुतो भविष्यामि यथाऽन्वहम् ।
त्वदङ्घ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिष्टाग्रभोजनः ॥२५

न स पालयते राज्यं धृतिर्भवति सत्तम ।
न योऽनुतिष्ठति गुरुन्शुश्रूषां कुरुते न यः ॥२६

ततस्तदुक्तं बलिना वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः ।
प्रह्लादो वचनं प्राह धर्मकामार्थसाधनम् ॥२७

मया कृतं राज्यमकण्टकं पुरा प्रशासितान्तः सुहृदोऽनुपूजिताः ।
दत्तमथेष्टं जनितास्तथाऽऽत्मजा स्थितो बलेसम्प्रतियोगसाधकः ॥२८

इस भाँति विनयावनत होकर अपने चरणों मे पड़े हुए वीर बलि को प्रह्लाद जी ने तुरन्त उठा लिया था और उसका परिष्वजन करके फिर उसे परमासन पर बिठला दिया था ॥२२॥ राजा बलि ने फिर उससे निवेदन किया था—हे तात ! आपके ही प्रसाद से मैंने समस्त देवो को निर्जित कर दिया है और मैंने अपने वीर्य के बल से इन्द्रासन का अपहरण कर उसका सम्पूर्ण राज्य को छीन लिया है ॥२३॥ हे तात ! सो अब आप इस बल वीर्य के पराक्रम से जीते हुए सुरो के उत्तम राज्य का सुखोपभोग आप करिये । मैं तो एक आपके भृत्य के समान सवदा सेवा मे समुस्थित रहूँगा ॥२४॥ इससे मे प्रतिदिन पुण्य युत ऐरावत हो जाऊँगा क्यों कि आपके चरणो की नित्य पूजा और आपका उच्छिष्ट अन्न का भोजन मुझे प्राप्त हुआ करेगा ॥२५॥ हे सत्तम ! वह राज्य का पालन नही करता है धृति हो जाता है जो अपने गुरु जनो के अनुष्ठित नहीं होता है और गुरुवृन्द की सेवा नहीं किया करता है ॥२६॥ हे द्विजोत्तम ! दैत्यराज बलि के द्वारा कहे हुए इस वाक्य का श्रवण कर फिर प्रह्लाद ने धर्म-काम और अर्थ का साधन करने वाला वचन उससे कहा—॥२७॥ पहिले मैंने भी इसी भाँति निष्कण्टक राज्य किया था और सबको प्रशासित करके जो बहुत ही अन्तरङ्ग सुहृद थे उन सबका सादर सत्कार एवं समर्थन भी किया था । सबको जितना भी जो चाहता था मैंने दिया था । पुत्रो की उत्पत्ति भी की थी और हे बले ! अब मैं योग की साधना करने वाला होकर स्थित हूँ ॥२८॥

गृहीत पुत्र विधिवन्मया भूयोऽर्पित तव ।
एव भव गुरूणा त्व सदा शुश्रूषणे रतः ॥२९
इत्येवमुक्त्वा वचन करे त्वादाय दक्षिणे ।
शाक्रे सिंहासने ब्रह्मन्बलि तूर्णमवेशयत् ॥३०
सोऽविष्टो महेन्द्रस्य सवरत्नमये शुभे ।
सिंहासने दैत्यपतिः शुशुभे मघवानिव ॥३१
तत्रोपविष्टश्चासौ कृताञ्जलिपुटो बलिः ।
प्रह्लाद प्राह वचनं मेघगम्भीरया गिरा ॥३२

यन्मया तात कर्तव्यं त्रैलोक्य परिरक्षता ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्तदादिशतु नो भवान् ॥३३
तद्वाक्यसमकाल च शुक्रः प्रह्लादमब्रवीत् ।
यद्युक्तं तन्महाबाहो वदस्वास्योत्तर वचः ॥३४
वचन बलिशुक्राभ्या श्रुत्वा भागवतोऽसुरः ।
प्राह धर्मार्थसयुक्त प्रह्लादो वाक्यमुत्तमम् ॥३५

हे पुत्र ! मैंने जो भी विधि पूर्वक पहिले ग्रहण किया था वह फिर तुमको अर्पित कर दिया था । इसी प्रकार के तुम भी बनो और सर्वदा अपने गुरुजनों की शुश्रूषा करने मे रति रखने वाले रहो ॥२६॥ इस प्रकार से यह वचन कह कर ही अपने दाहिने हाथ से उसे पकड कर हे महामुने ! फिर प्रह्लाद ने उस बलि को इन्द्र के सिंहासन पर शीघ्र ही बिठा दिया था ॥३०॥ उस महेन्द्र के सम्पूर्ण रत्नों से जटित परम शुभ सिंहासन पर बैठे हुए वह दैत्यों के स्वामी भगवान् की भाँति ही सुशोभित हुआ था ॥३१॥ उस इन्द्रासन पर बैठा हुआ वह बलि हाथ जोड़कर प्रह्लाद से मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोला—॥३२॥ हे तात ! इस त्रैलोक्य की रक्षा करते हुए अब मेरा जो भी कर्त्तव्य हो जिससे धर्म-कर्म-अर्थ और मोक्ष का लाभ हो सके आप वही अब मुझे उपदेश प्रदान कीजिए ॥३३॥ उसके वाक्य कहने के साथ ही शुक्राचार्य ने प्रह्लाद से कहा—हे महाबाहो ! जो भी इसने कहा है उसका उत्तर अब आप दीजिए ॥३४॥ ऐसे बलि और शुक्राचार्य दोनों के वचनों को सुनकर वह परम भागवत असुर प्रह्लाद ने धर्म और अर्थ से समन्वित उत्तम वाक्य कहा था ॥३५॥

यदायतिक्षम राजन्वित्त त्रिभुवनस्य च ।
अविरोधेन धर्मस्य अर्थस्योपार्जन च तत् ॥३६
सर्वसत्त्वानुगमन त्रिवर्गस्य फल च यत् ।
परत्रेह च यच्छ्रेयः पुत्र तत्कर्म चाचर । ३७
यथा श्लाघ्य प्रयास्यद्य यथा कीर्तिर्भवेत्तव ।
यथा नायशसो योगस्तथा कुरु महाद्युते ॥३८

एतदर्थं श्रियं दीप्तां काङ्क्षन्ते पुरुषोत्तमाः ।
येनेत च गृहेऽस्माकं निवसन्ति सुनिर्वृताः ॥३९

कुलजो व्यसने मग्नः सखिज्ञातिवहिष्कृतः ।
वृद्धो ज्ञातिगुणो विप्रः कीर्तिश्च यशसा सह ॥४०

तस्माद्यथैते निवसन्ति पुत्र राज्यस्थितस्येह कुलोद्भवस्य ।
तथा यतस्वामलसत्त्वचेष्ट यथा यशस्वी भवितासि लोके ॥४१

भूम्यां सदा ब्राह्मणभूषितायां क्षत्रान्वितायां दृढवापितायाम् ।
शुश्रूणासक्तिसमुद्भवायामृद्धि प्रयान्तीह नराधिपेन्द्राः ॥४२॥

हे राजन् ! जो यह आयतिक्षम त्रिभुवन का वित्त है वह सब धर्म का विरोध न करते हुए ही अर्थ का उपार्जन है ॥३६॥ समस्त सत्वों (जीवों) का अनुगमन जो कि त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) का फल होता है और इस लोक पर लोक में जो श्रेयस्कर कर्म है हे पुत्र ! उसी कर्म का तुम समाचरण करो ॥३७॥ हे महान् द्युति से सम्पन्न ! इस समय जिसी रीति से तुम को श्लाघ्यता प्राप्त हो और जिस भी प्रकार से तुम्हारी कीर्त्ति का विस्तार हो तथा जिस तरह किसी भी अयश का योग न हो वैसा ही तुमको करना चाहिए ॥३८॥ श्रेष्ठ पुरुष इसी के लिये दीप्त श्री की कामना किया करते हैं, और जिससे ये हमारे घर मे सुनिर्वृत होते हुए निवास किया करते हैं ॥३९॥ कुलज (कुलीन)-व्यसन में निमग्न-सखा और ज्ञाति से वहिष्कृत-वृद्ध-ज्ञाति-गुणी-विप्र-कीर्त्ति और यश यहाँ पर हे पुत्र ! कुलोद्भव और राज्यासन पर संस्थित तुम्हारे घर में ये सब निवास जिस भी तरह से करें वैसा ही यत्न करो । हे अमल सत्त्व चेष्टा वाले ! तभी तुम इस लोक में यशस्वी हो जाओगे ॥४०-४१॥ नराधिपेन्द्र सर्वदा ब्राह्मणों से भूषित-क्षत्रियों से समन्वित-दृढ वापित और शुश्रूषण की आसक्ति के समुद्भव वाली इस भूमि में यहाँ लोक में परम ऋद्धि को प्राप्त किया करते हैं ॥४२॥

तस्माद् द्विजाग्र्याःश्रुतिशास्त्रयुक्ता नराधिपांस्ते प्रवियाजयन्तु ।
यजन्तु दिव्यैःक्रतुभिर्द्विजेन्द्रायज्ञाग्निधूमेन नृपस्यशान्तिः ॥४३

तपोऽध्ययनसंपन्ना यजनेऽध्यापने रताः ।
सन्तु विप्राः क्षत्रपूज्यास्त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्य हि ॥४४
स्वाध्याययज्ञनिरता दातारः शस्त्रजीविनः ।
क्षत्रियाः सन्तु दैत्येन्द्र प्रजापालनधर्मिणः ॥४५
यज्ञाध्ययनसंपन्ना दातारः कृषिकारिणः ।
पाशुपाल्यं प्रकुर्वाणा वैश्या विपणिजीविनः ॥४६
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सदा शुश्रूषणे रताः ।
शूद्राः सन्तु सुरश्रेष्ठ तवाज्ञाकारिणाः सदा ॥४७
यदा वर्णाः स्वधर्मस्था भवन्ति दितिजेश्वराः ।
धर्मवृद्धिस्तदा स्याद्वै धर्मवृद्धौ नृपादयः ॥४८
तस्माद्वर्णाः स्वधर्मस्थास्त्वया कार्याः सदा बले ।
तद्वृद्धौ भवतो वृद्धिस्तद्धानौ हानिरुच्यते ॥४९
इत्थं वचः श्राव्य नराधिपेन्द्रो बलिमहात्मा स बभूव तूष्णीम् ।
ततो यदाज्ञापयसे करिष्ये इत्थं बलिः प्राह वचो महर्षे ॥५०

अतएव वेदों और शास्त्रों से युक्त श्रेष्ठ द्विजगण उन नराधिपों को प्रतियाजित करें । द्विजेन्द्र गण दिव्य ऋतुओं के द्वारा यजन करें और यज्ञाग्नि की धूम से नृप को शान्ति होवे ॥४३॥ तपश्चर्या और अध्ययन से सुसपन्न-यजन और अध्यापन मे रति रखने वाले विप्र आप से अनुज्ञा प्राप्त करके क्षत्रियों के द्वारा पूज्य होवें ॥४४॥ हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारे शासन मे ऐसा होना चाहिए सभी क्षत्रिय लोग स्वाध्याय और यज्ञ में निरत होवें तथा सब दान शील और शस्त्र जीवी हों । क्षत्रिय गण अपनी प्रजा के परिपालन के धर्म को मानने वाले रहें ॥४५॥ जो वैश्यगण हैं वे सब तुम्हारे प्रशासन में यज्ञ-अध्ययन से युक्त हो-दाता और कृषि के करने वाले-पशु पालन मे रत एवं विपणि जीवी होते चाहिए ॥४६॥ जो शूद्र वर्ण वाले मनुष्य हैं वे ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्यों की शुश्रूषा करने में रति रखने वाले हो, और हे सुरश्रेष्ठ ! वे आपकी सदा आज्ञा का पालन करने वाले होने चाहिए ॥४७॥ जब सभी वर्णों वाले दितिजेश्वर अपने धर्म में स्थित होते तो उस समय

का परिपालन किया था ॥१॥ उस समय में कलियुग ने सत्ययुग की भाँति धर्म से युक्त सम्पूर्ण जगत् को देख कर स्वभाव के निषेध से वह ब्रह्माजी की शरण मे गया था ॥२॥ वहां पहुंच कर इन्द्र और अन्य देव गण के सहित विराजमान देवेश्वर का कलि ने दर्शन प्राप्त किया था जो अपनी शारीरिक दीप्ति से सुरासुर के सहित अपने लोक को द्योतित कर रहे थे ॥३॥ कलियुग ने उन देवेश्वर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया था कि हे देव श्रेष्ठ ! मेरा जो स्वाभाविक धर्म है उसको महाराज बलि ने नष्ट कर दिया है अर्थात् मेरे समय मे जो कुछ भी होना चाहिए उसके बिल्कुल विपरीत ही इस समय मे हो रहा है ॥४॥ भगवान् ब्रह्मा जी ने कलि की इस प्रार्थना को सुन कर उससे कहा—उस बलवान् दैत्यराज बलि ने केवल तेरा ही स्वभाव अपहृत नही किया है प्रत्युत सम्पूर्ण जगत् के स्वभाव को हृत कर दिया है ॥५॥ उठकर देख रहे हो देवेन्द्र को—वरुण को और मारुत को—इन सब का सभी कुछ अपहृत होगया है। बलि के बल के प्रभाव से बिचारा यह भास्कर भी इस समय मे हीनता को प्राप्त हो रहा है ॥६॥ इस समय त्रिलोकी में उसके कर्म का प्रतिषेध करने वाला कोई भी नही है केवल एक सहस्र शिर और सहस्र कर तथा चरण वाले प्रभु ही हैं जो उसके बल-वैभव का क्षय कर सकते हैं ॥७॥

स भूमिं च तथा नाकं राज्यं लक्ष्मीं यशो बलम् ।
समाहरिष्यति बलिः कर्ताऽसौ धर्मगोचरम् ॥८
इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मणा कलिरव्ययः ।
दीनान्दृष्ट्वा स शक्रादीन्बिभीतकवनं गतः ॥९
कृतं प्रावर्तत तदा कलिर्नासीज्जगत्त्रये ।
धर्मोऽभवच्चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्येऽपि नारद ॥१०
तपोऽहिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दया दानं त्वानृशंस्यं शुश्रूषा यज्ञकर्म च ॥११
जगन्त्येतानि सर्वाणि परिव्याप्य स्थितानि हि ।
बलाद्विचलितो ब्रह्म स्तुष्टोऽपि हि कृतः कृतः ॥१२

स निर्ममे युवत्यस्तु चतस्रोरूपसयुताः।
श्वेताम्बरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना ॥१८
श्वेतवृन्दारकारूढा सत्त्वाढ्या श्वेतविग्रहा।
रक्ताम्बरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना ॥१६
रक्तवाजिममारूढा रक्ताङ्गी राजसी हि सा।
पीताम्बरा पीतवर्णा पीतस्रगनुलेपना ॥२०
सौवर्णस्यन्दनारूढा तामस गुणमाश्रिता।
नीलाम्बरा नीलमाल्या नीलगन्धालिसप्रभा ॥२१

राजा बलि ने इन्द्र की उस श्री को समागत देखकर उससे पूछा था—तू कौन है और यहाँ मेरे निकट किस प्रयोजन से आई है? ॥१५॥ उस पद्ममालिनी श्री ने बलि के इस वचन का श्रवण कर उस समय मे कहा था—हे बले! जिस कारण से मैं तुम्हारे समीप मे अब समागत हुई हूँ उसे सुनो—मैं महिषी हूँ और बलात् तुम्हारे निकट में आई हूँ ॥१६॥ भगवान् चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु के बल की कोई भी सीमा नही है। वह देव तो अतकित बल वाले हैं। उनने इन्द्र को त्याग दिया है। अतएव मैं अब तुम्हारे पास आगई हूँ ॥१७॥ उन प्रभु ने रूप लावण्य से सयुत चार युवतियो का सृजन किया था। एक तो श्वेत वस्त्रधारिणी-श्वेत माला तथा श्वेत चन्दन के अनुलेपन वाली थी जो श्वेत वृन्दारक पर आरूढ सत्व से युक्त और श्वेत शरीर वाली थी। एक अन्य रक्त वस्त्रों को धारण किये हुए थी और उसके कण्ठ मे रक्त वर्ण की माला और लाल ही अनुलेपन था ॥१८-१६॥ रक्त वर्ण की अश्व पर सवार, रक्त अंगो वाली वह राजसी अर्थात् रजोगुण से समन्वित थी। एक दूसरी पीले वस्त्रों को धारण करने वाली पीत वर्ण से युक्त—पीली माला और अनुलेपन वाली थी। ॥२०॥ सुवर्ण के रथ मे समारूढ़ थी। जो तमोगुण का आश्रय वाली थी उसके नीले वस्त्र थे, नीली ही माला भी थी और नील गन्धालि की प्रभा के तुल्य प्रभा से युक्त थी। यह नील वर्ण वाले वृष पर समारूढ़ा थी। इस तरह वह तीन गुणों वाली कही गई है ॥२१॥

नीलवृषसमारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता ।
या सा श्वेताम्बरा श्वेता सत्त्वाढ्या कुञ्जरस्थिता ॥२२
सा ब्रह्माण समायाता चन्द्रचन्द्रानुगानपि ।
या सा रक्ता रक्तवासा वाजिस्था रजसाऽन्विता ॥२३
ता प्रादाद्देवराजाय मनवे तत्सुताय च ।
पीताम्बरा या सुभगा रथस्था कनकप्रभा ॥२४
प्रजापतिभ्यस्ता प्रादाच्छक्राय च विशत्सु च ।
नीलवस्त्रालिसदृशा या चतुर्थी वृषस्थिता ॥२५
सा दानवान्नैर्ऋ ताश्च शूद्रान्विद्याधरानपि ।
विप्राद्याः श्वेतरूपा ता कथयन्ति सरस्वतीम् ॥२६
स्तुवन्ति ब्रह्मणा सार्धं मखे मन्त्रादिभिः सदा ।
क्षत्रिया रक्तवर्णा ता जयश्री च शशसिरे ॥२७

जो वह श्वेत अम्बर वाली—श्वेत और सत्व से समन्वित थी वह कुञ्जर पर स्थित थी ॥२२॥ वह चन्द्र और चन्द्र के अनुगो से युक्त होती हुई भी ब्रह्माजी के समीप मे समागत हुई थी। जो वह रक्त वर्ण वाली—लाल वस्त्रो से सजाता, अश्वपर समारूढ और रजोगुण से युक्त थी उसे देवराज, मनु और उसके पुत्र के लिये दिया था। जो पीत अम्बर वाली, सुभगा, रथ पर स्थित और कनक के समान प्रभा वाली थी ॥२३-२४॥ उसको प्रजापतियो के लिये—इन्द्र के लिये विशर्तो में दिया था। जो चौथी नील वस्त्र और भ्रमर की भाँति थी वह वृष पर स्थित थी ॥२५॥ उसको दानवों, नैऋ तों, शूद्रों और विद्याधरों को प्रदान किया था। विप्र आदि लोग उस श्वेत रूप वाली को सरस्वती कहा करते हैं ॥२६॥ ब्रह्मा के साथ ये लोग मख मे इसका मन्त्रादि के द्वारा सदा स्तवन किया करते हैं। क्षत्रिय लोग उस रक्त वर्ण वाली को जयश्री कहा करते थे ॥२७॥

सा चन्द्रेण सुरथेश मनुना च यशस्विनी ।
वैश्यास्ता पीतवसना कनकाङ्गी सदैव हि ॥२८

स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येव प्रजापालस्तथैव हि ।
शूद्रास्तां नीलवर्णाङ्गीं स्तुवन्ति हि सुभक्तितः ॥२६
प्रियदेवीति नाम्ना ता सदैत्ये राक्षसैस्तथा ।
एव विभक्तास्ता नार्यस्तेन देवेन चक्रिणा ॥३०
एनामा च स्वरूपस्यास्तिष्ठन्ति निधयोऽव्ययाः ।
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गास्तथोक्तयः ॥३१
चतु षष्टिकलाः श्वेता महापद्मो निधिः स्थितः ।
रत्नानि स्वर्णरजत गजाश्वरथभूषणम् ॥३२
शस्त्रास्त्रादि वस्तूनि रक्ता पद्मो निधिः स्मृतः ।
गोर्माहृष्यः खरोष्ट्राश्च सुवर्णाम्बरभूमयः ॥३३
ओषध्यः पशवः पीता महानीलो निधिः स्थितः ।
सर्वासामपि जातीना जातिरेका प्रतिष्ठिता ॥३४
अन्येषामपि सहर्षो नीलाशखो निधिः स्थितः ।
एताभिश्च स्थिताना च यानि रूपाणि दानव ।
भवन्ति पुरुषाणा वै तन्निबोध वदामि ते ॥३५

हे सुर श्रेष्ठ ! वह चन्द्र और मनु से यश वाली थी । वैश्य लोग पीत वर्ण वाली तथा पीले वस्त्रों से भूषित और सुवर्ण के समान अंगों वाली को सर्वदा लक्ष्मी कह कर उसकी स्तुति किया करते हैं और उसी भाँति प्रजा के पालक होते हैं । जो चोथी नील वर्ण के अंगों वाली थी उसको शूद्र लोग बहुत भक्तिभाव से दैत्यो तथा राक्षसो के सहित प्रिय देवी कह कर उनका सदा स्तवन किया करते हैं । उस देवेश्वर चक्री ने उन नारियों का इस प्रकार से विभाजन किया ॥२८-३०॥ इनके स्वरूप मे स्थित रहने वाली अव्यय विधियाँ थी । इतिहास पुराण-वेद और उनके सभी अंग शास्त्र एवं उक्तियाँ थीं ॥३१॥ चौंसठ कलाएँ श्वेत और महापद्म निधि स्थित थी । सब प्रकार के रत्न सुवर्ण-रजत-गज-अश्व-रथ-भूषण-शस्त्र-अस्त्र प्रभृति वस्तुऐं रक्त पद्म निधि स्थित थी । इसका नाम रक्त वर्ण वाली पद्मनिधि ही कहा गया है । गौ भैंस—गधा-ऊँट-सुवर्ण अम्बर भूमियाँ-ओषधियाँ-पशुगण

ये सब पीत वर्ण की पद्मनिधि कही गई है जो कि जहाँ स्थित थी। सबकी जातियों में भी एक ही जाति प्रतिष्ठित थी ॥३२-३४॥ अन्यों का भी संहार करने वाली नीलवर्ण की शस्त्र निधि स्थित थी। इनके द्वारा स्थित सभी निधियों के जो भी कुछ स्वरूप थे। हे दानव ! वे सब पुरुषों को होते हैं उन को सब को समझलो। मैं तुमको बतलाता हूँ ॥३५॥

सत्यशौचाभिसंयुक्ता बलदानोत्सवे रताः।
भवन्ति दानव पते महापद्माश्रिता नराः ॥३६
यज्विनो सुभगा दक्षा मालिनो बहुदक्षिणाः।
सर्वसामान्यसुखिनो नराः पद्माश्रिताः स्थिताः ॥३७
सत्यानृतसमायुक्ता दानाशरणयज्विनः।
न्यायान्यायव्ययोपेता महानीलाश्रिता नराः ॥३८
नास्तिकाः शौच रहिताः कृपणा भोगवर्जिताः।
स्तेयानृतकथायुक्ता नराः शङ्खाश्रिता बले ॥३९
इत्येव कथितस्तुभ्यमासां दानव निर्णयः ॥४०
अहं सा रागिणी नाम जयश्रीस्त्वामुपागता।
ममास्तिद नवपते प्रतिज्ञा साधुसंमता ॥४१
समाश्रयामि शौर्याढ्यं न च क्लीबं कथंचन।
न चास्ति तव तुल्योऽन्यस्त्रैलोक्येऽपि बलान्वितः ॥४२

हे दानवों के स्वामिन् ! सत्य और शौच से जो अभिसयुक्त होते हैं तथा बल-दान और उत्सव में जो रति रखते हैं वे ही मनुष्य महा पद्माश्रित होते हैं ॥३६॥ यजन करने वाले—सुभग, दक्ष, मालाधारी, बहुत दक्षिणा वाले एवं सब प्रकार का सामान्य सुख वाले मनुष्य पद्माश्रित होकर स्थित रहा करते हैं ॥ ३७ ॥ सत्य और अनृत से समायुक्त, घना शरण यजन करने वाले—न्याय, अन्याय और व्यय से समुपेत मनुष्य महानील के आश्रित हुआ करते हैं ॥३८॥ ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाले नास्तिक—शौच से हीन—कृपण—भोगों से वर्जित—स्तेय (चोरी) अनृत (मिथ्या) कथा से युक्त नर हे बले !

शंखाश्रित हुआ करते हैं ॥३६॥ हे दानव ! इन विधियों का निर्णय जो भी कुछ होता है वह सब तुमको इस प्रकार से बतला दिया गया है ॥४०॥ मैं तो रागिणी नाम वाली जय श्री हूँ जो इस समय तुम्हारे समीप मे आकर उपस्थित हो रही हूँ । हे दानवों को पति मेरी एक साधु-सम्मत प्रतिज्ञा है ॥४१॥ मैं सर्वदा शौर्य के अंश वाले का ही समाश्रय किया करती हूँ । कभी भी क्लीव पुरुष का आश्रय नहीं लेती हूँ । इस समय इस त्रिलोकी मे तुम्हारे समान अन्य कोई भी बल से समन्वित नहीं है ॥४२॥

त्वया बलवता राजन्प्रीतिर्मे जनिता ध्रुवा ।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजो विनिर्जितः ॥४३
अतो मे परमप्रीतिर्जाता दानव शाश्वती ।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं सर्वेभ्योऽपि बलाधिकम् ॥४४
शौण्डीर्यमानिन वीर ततोऽहं स्वयमागता ।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥४५
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्म यदीदृशम् ।
विशेषतस्त्वया राजन्दैतेयः प्रपितामहः ॥४६
विजित च क्रमाद्येन त्रैलोक्यं वै परंहृतम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं दानवेन्द्र जगन्मयी ।।४७
जयश्रीश्चन्द्रवदना प्रविष्टा द्योतयच्छुभा ।
तस्यां चैव प्रविष्टायां विधवा इव योषितः ॥४८
समाश्रयन्ति बलिनं ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च ।
प्रभा गतिः क्षमा भूतिर्विद्या नीतिर्दया मतिः ॥४९
श्रुतिः स्मृतिर्बल कीर्तिर्धृतिः शान्तिः क्रिया द्विज ।

इसी कारण से मुझे तुमसे निरन्तर रहने वाली परम प्रीति उत्पन्न हो गई है क्योंकि मैंने तुम्हारा परम सत्व जो सभी से बल मे अधिक है देख लिया है ॥४४॥ आप शौण्डीर्यमानी वीर हैं अत एव मैं स्वय ही आपके पास समागत होगई हूं। हे दानवों में श्रेष्ठ! कोई भी आश्चर्य नहीं है कि हिरण्यकशिपु के कुल मे प्रसूत असुरेन्द्र आपका ऐसा कर्म है। विशेष रूप से हे दैतेय! हे राजन्! आपने अपने पिता मह को भी जीत लिया है कि जिसने क्रम से परों के द्वारा हृत त्रैलोक्य को विजित कर लिया है। इस प्रकार से यह दानवेन्द्र से वचन कह कर वह चन्द्रमा के समान मुख वाली जगन्मयी शुभा जय श्री स्मितवती होती हुई प्रवेश कर गयी थी। उसके प्रविष्ट होने पर विधवा नारियाँ बलशाली का जिस तरह समाश्रय ग्रहण कर लेती हैं वैसे ही राजा बलि का भी ह्री कीर्ति, द्युति, प्रभा, गति, क्षमा, भूति, विद्या, नीति, दया, मति, श्रुति, स्मृति, बल, धृति, शान्ति, क्रिया, पुष्टि, तुष्टि तथा इसी भाँति आप सभी ने इस सत्व श्री वाले के अन्दर अपना अवस्थान बना लिया था ॥४५-४९॥ सब ने बलि का समाश्रय लिया और यथा सुख वहीं विश्राम करते थे ॥५०॥

एवंगुणोऽभूद्दनुपुंगवोऽसौ बलिर्महात्मा शुभबुद्धिरात्मवान् ।
यज्वातपस्वीमृदुरेवसत्यवाग्दाताविभर्ता स्वजनान्सुगोप्ता ॥५१
त्रिविष्टप शासति दानवेन्द्रे नासीत्क्षुधार्तो मलिनो न दीनः ।
सदोज्ज्वलोधमरतोऽथदान्त.कामोपभोगीमनुजोऽपि जातः ॥५२

इस प्रकार के सद्गुणो से सुसम्पन्न यह महात्मा दनुज श्रेष्ठ—शुभ बुद्धि वाला, आत्मवान्, यज्वा, तपस्वी, मृदु, सत्यवक्ता, दानशील, भरण कर्त्ता और स्वजनों की सुरक्षा करने वाला हुआ ॥५१॥ स्वर्ग का शासन इस दानवेन्द्र बलि के करने पर समुत्पन्न मनुष्य भी कभी भूख से पीड़ित, मलिन, दीन नहीं रहा था और सदा उज्ज्वल, धर्म मे रति रखने वाला—दमन शील—कामोप भोगी रहता था ॥५२॥

७६—अदिति वर प्रदान वर्णन

गते त्रैलोक्यराज्ये तु दानवेषु पुरंदरः ।
जगाम ब्रह्मसदनं सह देवैः शचीपतिः ॥१
तत्रापश्यत् देवेशं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।
ऋषिभिः सार्धमासीनं पितरं स्वं च कश्यपम् ॥२
ततो ननाम शिरसा शक्रः सुरगणैः सह ।
ब्रह्माणं कश्यपं चैव तांस्तु सर्वांस्तपोधनान् ॥३
प्रोवाचेन्द्रः सुरैः सार्धं देवनाथं पितामहम् ।
पितामह हृतं राज्यं बलिना बलिना मम ॥४
ब्रह्मा प्रोवाच शक्रं तद्भुज्यते हि कृतं फलम् ।
शक्रः पृच्छति भो ब्रूहि किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥५
कश्यपोऽप्याह देवेश भ्रूणहत्या कृता त्वया ।
त्वया गर्भो दितेरुदरात्कृत्तो हि बहुधा बलात् ॥६
पितरं प्राह देवेन्द्रः स मातुर्दोषतो विभो ।
तन्नूनं प्राप्तवान्गर्भो यदशोचा हि साऽभवत् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—समस्त त्रिलोकी का राज्य दानवों के हाथ में चले जाने पर शची का पति पुरन्दर सब देवगण के साथ ब्रह्माजी के निवास स्थान पर पहुँचा था ॥१॥ वहाँ पर इन्द्र ने कमलोद्भव देवों के ईश भगवान् ब्रह्माजी का दर्शन किया था और अन्य ऋषि वृन्द के साथ विराजमान वहाँ पर अपने पिता कश्यप जी को भी देखा था ॥२॥ इसके उपरान्त वहाँ इन्द्र ने समस्त सुरगणों के साथ ब्रह्माजी को-अपने पिता कश्यप जी को और सम्पूर्ण विराजमान तपस्वियों को प्रणाम किया था ॥३॥ फिर इन्द्रदेव सुरों के सहित देवनाथ पितामह से बोला—हे पितामह ! अति बलशाली बलि ने मेरा राज्य छीन लिया है ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे इन्द्र ! तुम यह सब किये हुए कर्म का ही फल भोग रहे हो इन्द्र ने पूछा—हे भगवन् ! बतलाइये, मैंने ऐसा क्या दुष्कृत किया है ॥५॥ कश्यप ने भी कहा—देवेश ! तूने भ्रूण

हुआ भी है। तूने बल पूर्वक दिति के उदर में गर्भ को काट दिया था ॥६॥ देवेन्द्र ने पिता से कहा—हे विभो ! वह सब कुछ माता के ही दोष से हुआ था। वह गर्भ तो निश्चय ही प्राप्त हुआ था क्यों कि वह अशोचा हो गई थी ॥७॥

ततोऽब्रवीत्कश्यपस्तु मातुर्दोषः सदा सताम्।
गतस्ततोऽपि निहतो दासोऽपि कुलिशेन ते ॥८
तच्छ्रुत्वा कश्यपवचः प्राह शक्रः पितामहम्।
विनाश पाप्मनो ब्रूहि प्रायश्चित्त प्रभो मम ॥६
ब्रह्मा प्रोवाच देवेश वसिष्ठः कश्यपस्तथा।
सर्वस्य जगतश्चापि शक्रस्यापि विशेषतः ॥१०
शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवः पुरुषोत्तमः।
त प्रपद्यस्व शरण स ते सर्वं विधास्यति ॥११
सहस्राक्षोऽपि वचन गुरूणा संनिशम्य वै।
प्रोवाच स्वल्पकालेन मञ्जिष्टो महोदयः ॥१२
इत्येवमुक्तः सुरराड्विरञ्चिना मरीचिपुत्रेण च कश्यपेन।
तथैव मित्रावरुणात्मजेन वेगान्महीं पृष्ठमवाप्य तस्थौ ॥१३
कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यस्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणेऽयः।
कुशस्थलात्पूर्वत एव विश्रुतो वसो. पुरात्पश्चिमतोऽव्रतस्थे ॥१४

इसके पश्चात् कश्यप ने कहा—सत्पुरुषों को माता का दोष सदा ही गत होता है। फिर भी तूने कुलिश के द्वारा वह दास भी मार डाला था ॥८॥ इस प्रकार के कश्यप के वचन का श्रवण कर इन्द्र पितामह से बोला—हे प्रभो ! अब आप मेरे पाप के विनाश करने वाला जो भी कुछ प्रायश्चित्त हो उसे बतलाइये ॥६॥ ब्रह्माजी ने देवेश से कहा—वसिष्ठ तथा कश्यप ने भी कहा—इस सम्पूर्ण जगत् का और विशेष करके इन्द्र का भी शंख-चक्र-गदा हाथों में धारण करने वाले भगवान् पुरुषोत्तम माधव स्वामी एवं रक्षक हैं। अब तुम उनके ही शरण में जाओ। वही सब कुछ तुम्हारा कल्याण कर देंगे ॥१०-११॥ इन्द्र ने भी गुरुजनों के इस वचन को भली भाँति श्रवण करके

थोड़ी देर में कुछ प्रसन्न होता हुआ देखा गया था ॥१२॥ इस प्रकार से ब्रह्मा और मरीचि के पुत्र कश्यप के द्वारा कहे जाने पर सुरों का राजा इन्द्र उसी भाँति वेग के साथ मित्रा वरुण के आत्मज के साथ भू मण्डल पर प्राप्त होकर स्थित हो गया था ॥१३॥ कालञ्जर के उत्तर भाग में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित एक सुपुण्य स्थल है। वह कुशस्थल से पूर्व की ही ओर विश्रुत है तथा वसु के पुर से पश्चिम में वह स्थित है ॥१४॥

पूर्वं गयेन क्षितिपेन यत्र इष्टोऽश्वमेधः शतशः सुदक्षिणः।
मनुष्यमेधोऽपि सहस्रकृत्वस्तथा पुरा दुर्जयनः सुरारिभिः ॥१५
ख्यातो महामेध इति प्रसिद्धो यथाऽस्य चक्रे भगवान्मुरारिः।
द्वा.स्यत्वमव्यक्ततनुः सुमूर्तिः ख्याति जगामाथगदाधरेति ॥१६
यस्मिन्द्विजेन्द्राःश्रुतिशास्त्रवर्जिताःसमस्तमायान्ति पितामहेन।
यस्मिन्भक्त्या पूजयन्ये पितृन्स्वान्सोऽनन्यभावेनसकृत्सुचेतसा।
फल महामेधमखस्य मानवा दधत्यनन्त भगवत्प्रसादात् ॥१७
महानदी यत्र सुरर्षिकन्या जलापदेशाद्धिमशैलमेत्य।
चक्रे जगत्पापविमुक्तमग्र्या. सदर्शनप्राशनमज्जनेन ॥१८
तत्र शक्रः समभ्येत्य महानद्यास्तटेऽद्भुते।
आराधनाय देवस्य कृत्वाऽऽश्रममवस्थितः ॥१९
प्रात.स्नायी स्वध.शायी एकभुक्तोऽप्ययाचितः।
तपस्तेपे सहस्राक्षः स्तुवन्देव गदाधरम् ॥२०
तस्यैव तप्यतः सम्यक् जितसर्वेन्द्रियस्य तु।
कामक्रोधविहीनस्य साग्र संवत्सरो गत. ॥२१

जहाँ पर पहिले गय नाम वाले राजा ने शतशः सुदक्षिण अश्वमेध का यजन किया था। मनुष्य मेध भी पहिले सुरारियों के साथ दुर्जयन ने सहस्रों बार किये थे ॥१५॥ यह स्थल महामेध-इस नाम से ख्यात है। भगवान् मुरारि ने इसको प्रसिद्ध किया था इसके द्वार पर स्थित-अव्यक्त शरीर वाले सुमूर्ति गदाधर इस नाम से ख्याति को प्राप्त हुए थे ॥१६॥ जिसके श्रुति और शास्त्र से रहित द्विजगण जिसमें पहुँच कर

पितामह की समता को प्राप्त हो जाया करते हैं। जिसमे जो लोग भक्ति भाव से अपने पितृ गण का पूजन करते हुए एक बार भी चित्त के अनन्य भाव से जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे भगवान् के प्रसाद से महामेघ मख का अनन्त फल प्राप्त किया करते हैं॥१७॥ वहाँ पर मुरपि कन्या महा नदी जल के अपदेश से हिमवान् पर्वत पर आकर सम्पूर्ण इस जगत् को अत्युत्तमा के दर्शन-प्राशन और मज्जन के द्वारा पापों से एक दम विमुक्त कर दिया है ॥१८॥ वहा पर नस महा नदी में अपदमुत तट पर इन्द्रदेव ने आकर देव की आराधना के लिये आश्रम बना लिया था और उसमें समदम्पित हो गया था ॥१९॥ प्रातः काल स्नान करने वाला–भूमि पर शयन करते हुए-अयाचित एक ही बार अहोरात्र में भोजन करते हुए इन्द्र ने गदाधर देव की स्तुति करते हुए तपस्या की थी ॥२०॥ इस भांति उग्र तप करते हुए और भली भांति अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाले तथा काम और क्रोध से रहित उस इन्द्र को साग्र सम्वत्सर व्यतीत हो गया था ॥२१॥

ततो गदाधरः प्रीतो वासव प्राह नारद ।
गच्छ प्रीतोऽस्मि भवतो मुक्तपापोऽसि साम्प्रतम् ॥२२
निज राज्य च देवेश प्राप्स्यसे नचिरादिव ।
यतिष्यामि तथा शक्र भावि श्रयो यथा तव ॥२३
इत्येवमुक्तेन गदाधरेण विसर्जितः स्नाति मनोहरायाम् ।
स्नातस्य दवस्य तदैनसो नरास्त प्रोचुरस्माननुशाधमस्व ॥२४
प्रोवाच तान्भीपणकर्मकाराघ्नाम्ना पुलिन्दान्मम पापसभवाः ।
वसध्वमेवान्तरमद्रिमुख्ययोर्हिमाद्रिकालञ्जरयो. पुलिन्दा.॥२५
इत्येवमुक्त्वा सुरराट् पुलिन्दान्विमुक्तपापोऽमरसिद्धदक्षे. ।
सपूज्यमानोऽनुजगामचाश्रममातुस्तदाघमनिवासमोहयम् ॥२६
दृष्ट्वाऽदितिं मूर्ध्नि कृताञ्जलिस्तु विनम्रमौलिः समुपाजगाम ।
प्रणम्य पादौ कनलादरात्मो निवेदयामास तदा तदात्मनः ॥२७

पप्रच्छ सा कारणमोदवरंतमाघ्रायचालिङ्ग्यमुदामुदृष्टया।
वक्ष्ये सुराणा सबलेः पराजय नदात्मनोदेवगणैश्च सार्द्धम्॥२८

हे नारद ! इसके उपरान्त भगवान् गदाधर देव परम प्रसन्न हुए और इन्द्र से बोले—हे इन्द्र ! अब तुम तपश्चर्या समाप्त कर जाओ मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ और अब तुम समस्त पापों से मुक्त हो गया है ॥२२॥ हे देवेश्वर ! अब तुम शीघ्र ही अपने राज्य की पुनः प्राप्ति कर लोगे। मैं हे इन्द्र ! अब ऐसा ही प्रयत्न करूंगा जिससे भावी श्रेय होगा ॥२३॥ भगवान् गदाधर के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वह विसर्जित हो गया और उस परम मनोहर नदी में उसने फिर स्नान किया था। जब उसने स्नान कर लिया तो उसके पाप नरों ने उस देव से प्रार्थना की थी कि हमारे ऊपर आप अब अनुशासन करें ॥२४॥ तब इन्द्र ने पुलिन्द नाम वाले उन भीषण कर्म कारों से कहा—मेरे पापों से समुत्पन्न आप लोग पर्वतों में प्रमुख हिमालय और कालञ्जर के अन्तर में ही जाकर हे पुलिन्दो ! निवास करें ॥२५॥ सुरों के राजा इन्द्र ने ऐसा उन पुलिन्दों से कह कर अमर-सिद्ध और पक्षों साथ पापों से रहित होकर सम्पूज्यमान होता हुआ फिर परम पुज्य-धर्म का निवास जो माता का आश्रम था वहीं पर चला गया था ॥२६॥ वहाँ पर अदिति का दर्शन करके मस्तक पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर माथा झुकाकर माता के समीप में पहुँच गया था और कमल के उदर के समान दोनो चरणों को प्रणाम किया था। फिर उस समय अपने आपको निवेदित किया था ॥२७॥ उसने ईश्वर कारण पूछा था और उसके मस्तक का आघ्राण करके और परम प्रसन्नता से आलिंगन करके एक सुन्दर दृष्टि से देखा था। अपना देवगणों के साथ बलि के साथ सुरों का पराजय कहा था ॥२८॥

श्रुत्वैव सा शोकपरिप्लुताङ्गी ज्ञात्वा जितदैत्यसुतैः सुतं तम्।
दुःखान्विता देवमनाद्यमीड्य जगाम विष्णुं शरणंवरेण्यम् ॥२९
कस्मिन्जनित्री सुरसत्तमाना स्थाने हृषीकेशमनन्तमाद्यम्।
चराचरस्य प्रभव प्रमाणमाराधयामास मुने वदस्व ॥३०

सुरारणिः शक्रमवेक्ष्य दीनं पराजितंदानवनायकेन ।
सितेऽथ पक्षे मकरर्क्षगेऽर्के घृताचिपस्यादय सप्तमेऽहनि ॥३१
दृष्ट्वेव देव त्रिदशाधिप त महोदये शक्रदिशाऽधिरूढम् ।
निराशना सयतवाक्सुचित्ता तदोपतस्थे शरण सुरेन्द्रम् ॥३२
जयस्व दिव्याम्बुजकोशचौरजयस्व ससारतरोः कुठार ।
जयस्व पापेन्धनजातवेद अघौघमरोघ नमो नमस्ते ॥३३
नमोऽस्तु ते भास्कर दिव्यमूर्ते त्रैलोक्यलक्ष्मीपतये नमस्ते ।
त्व कारण सर्वचराचरस्य नाथोऽसि मा पालय विश्वमूर्ते ॥३४
त्वया जगन्नाथ जगन्मयेन नाथेन शक्रोनिजराज्यहानिम् ।
अवाप्नवान्शक्रपराभव च ततो भवन्तं शरण प्रपन्ना ॥३५

उसने यह सुनते ही बहुत अधिक शोक किया था और दैत्य सुतों के द्वारा अपने उस पुत्र को पराजित जानकर वह दुःख से अन्वित हो गई थी। फिर वह अनन्त-पुरुष एवं वरेण्य देव विष्णु की शरण में प्राप्त हुई थी ॥२६॥ देवर्षि नारद ने कहा—हे मुनिवर ! अब मुझको आप यह बतलाने की कृपा कीजिए कि उस सुर श्रेष्ठों की माता ने किस स्थान पर पूर्वाक्त-अनन्त-आद्य-परात्पर के उत्पत्ति स्थान एव प्रमाण भूत प्रभु का आराधन किया था ॥३०॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—सुरारणि ने इन्द्र को दीन-पराजित हुए जो दानवों के नायक ने किया या देखा था। इसके अनन्तर मकर नक्षत्र पर सूर्य के हो जाने पर शुक्ल पक्ष में घृताचि के सातवें दिन मे त्रिदशों के अधिप उस देव को शक्र दिशा मे अधिरूढ़ देखकर ही महोदय में सयत वाणी वाली होकर सुचित्त से युक्त बिना अशन किये हुए उस समय मे सुरेन्द्र के शरण मे उपस्थित हुई थी ॥३१-३२॥ अदिति ने कहा—हे दिव्य अम्बुजों के कोश के चोर ! तेरी जय हो। हे इस ससार के वृक्ष के कुठार ! तेरी जय हो। हे पाप रूपी ईंधन के लिये अग्नि स्वरूप ! तेरी जय हो। हे अघों के ओघ का सरोधन करने वाले ! तेरे लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥३३॥ हे दिव्य मूर्ति वाले भास्कर देव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है। त्रैलोक्य की लक्ष्मी के स्वामी आपकी सेवा में प्रणाम

समर्पित है। आप इस सम्पूर्ण चराचर लोक के कारण हैं, आप सबके स्वामी हैं। हे विश्व मूर्त्ते! मेरा पालन कीजिये ॥३४॥ हे जगन्नाथ! जगन्मय नाथ आपने ही इस इन्द्र को निज राज्य की हानि वाला प्राप्त कर दिया था और इन्द्र का जो पराभव हुआ है वह भी आप ही ने कराया है इसलिये मैं इस समय आपकी शरण में प्राप्त हुई हूँ ॥३५॥

इत्येवमुक्त्वा सुरपूजितेन आलिप्य रक्तेन हि चन्दनेन ।
सपूजयित्वा करवीरपुष्पैः सधूपदीपैः खलु दिव्यभोज्यैः ॥३६
नैवेद्यक ज्ययुक्त महाहमन्न ह्यपेन्द्रस्य हिताय देवी ।
स्तवेन पुण्येन च सस्तुवन्ती स्थिता निराहारमथोपवासम् ॥३७
ततो द्वितीयेऽह्नि कृतप्रणामा स्नात्वा विधानेन च पूजयित्वा ।
दत्त्वाद्विजेभ्यःकनक तिलाज्यं ततोऽग्रतः सा प्रयता बभूव ॥३८
ततः प्रीतोऽभवद्भानुर्घृतार्चिः सूर्यमण्डलात् ।
विनिसृत्याग्रतः स्थित्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥३९
व्रतेनानेन सुप्रीतस्तवाहं दक्षनन्दिनि ।
प्राप्स्यसे दुर्लभं कामं मत्प्रसादान्न संशयः ॥४०
राज्यं त्वत्तनयानां वै दास्ये देवि सुरारणि ।
दानवान्ध्वंसयिष्यामि सभूयैवोदरे तव ॥४१
तद्वाक्यं वासुदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मन्सुरारणिः ।
प्रोवाक जगतां योनिं वेपमाना पुनः पुनः ॥४२

इतना कह कर सुरपूजित रक्त चन्दन से सभा लेपन करके करवीर के पुष्पों से तथा धूप—दीप और दिव्य भोज्य पदार्थों से भली भाँति पूजन करके समाराधन किया था ॥३६॥ आज्य युक्त महार्ह अन्न का नैवेद्य देवी ने अर्पित किया था। पुण्य स्तवन से स्तुति करती हुई निराहार उपवास में स्थित होगई थी ॥३७॥ इसके उपरान्त दूसरे दिन में प्रणाम करके तथा स्नान करके विधि–विधान से पूजन करके द्विजों को सुवर्ण—घृत और तिलों का दान देकर फिर सामने प्रयत होकर स्थित होगई थी ॥३८॥ इसके पश्चात् भानु घृतार्चि प्रसन्न हो गये थे और सूर्य मण्डल से निकल कर स्थित हो गये और यह वचन

बोने ॥३६॥ हे दक्षनन्दिनी ! तुम्हारे इस व्रत से मैं परम प्रसन्न हूँ। अब मेरे प्रसाद से अपनी दुर्लभ कामना को प्राप्त कर लोगी। इसमें अब कुछ संशय नहीं है ॥४०॥ हे देवि ! हे सुरारणि ! मैं अब तुम्हारे पुत्रों का राज्य दे दूँगा। तुम्हारे ही उदर में जन्म ग्रहण करके मैं दानवों का ध्वंस कर दूँगा ॥४१॥ हे ब्रह्मन् ! उस सुरारणि ने भगवान् वासुदेव के उस वाक्य का श्रवण करके वह कातरा हुई और बारम्बार कम्प युक्त होती हुई जगतों के योनि प्रभु से बोली ॥४२॥

कथं त्वामुदरेणाहं वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्।
यस्योदरे जगत्सर्वं वसेत्स्थावरजङ्गमम् ॥४३
कस्त्वां धारयितुं नाथ शक्तस्त्रैलोक्यधारिणम्।
यस्य सप्तार्णवाः कुक्षौ निवसन्ति सहाद्रिभिः ॥४४
तस्माद्यथा सुरपतिः शक्रः स्यात्सुरराडिह।
यथा वृथा न मे क्लेशस्तथा कुरु जनार्दन ॥४५
सत्यमेतन्महाभागे दुर्धरोऽस्मि सुरासुरैः।
तथापि संभविष्यामि ह्यहं देव्युदरे तव ॥४६
आत्मानं भुवनं शैलांस्त्वां च देवि सकश्यपाम्।
धारयिष्यामि योगेन मा विषादं कृथा वृथा ॥४७
तवोदरे त्वहं दाक्षे संभविष्यामि वै यदा।
तदा निस्तेजसो दैत्याः संभविष्यन्त्यसंशयम् ॥४८
इत्येवमुक्त्वा भगवान्स देवस्तस्याश्च भूयोऽरिगणप्रमर्दी।
स्वतेजसाऽङ्गेषु विवेश देव्यास्तदोदरे शक्रहिताय विप्रम् ॥४९

हे भगवन् ! मैं आपको अपने उदर में कैसे वहन करूँगी क्योंकि आप तो परम दुर्धर हैं और मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं है जिसके उदर में यह स्थावर—जङ्गम सम्पूर्ण जगत् निवास किया करता है ॥४३॥ हे नाथ ! आपतो स्वयं त्रैलोक्य के धारण करने वाले हैं आपको कौन धारण करने में समर्थ हो सकता है ? जिस आपकी कुक्षि में सातों समुद्र और समस्त पर्वत निवास किया करते हैं ॥४४॥ इस लिये यह सुरपति इन्द्र जिस प्रकार से सुरों का राजा यहाँ पर हो जावे और

जिस रीति से मुझे भी कृपा करेगा न हो हे जनार्दन ! वैसा ही कृपा करके करो ॥४५॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे महाभागे ! यह सर्वथा तुम्हारा कथन सत्य है कि मैं सुर और असुरों के द्वारा दुर्धर हूं तो भी मैं तुम्हारे उदर में हे देवि ! जन्म ग्रहण करूंगा ॥४६॥ हे देवि ! अपने आपको—भुवन को—शैलों को और कश्यप के सहित तुमको योग के द्वारा धारण करूंगा । तुम स्वयं ही विषाद मत करो ॥ ४७ ॥ हे दाक्षे ! जब मैं तुम्हारे उदर से जन्म ग्रहण करूंगा तभी समय में ये सब दैत्य तेज से हीन हो जायेंगे—इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ॥४८॥ उन भगवान् देव ने इतना भर कहकर आदि गणों के प्रमर्दन करने वाले भगवान् फिर उस देवी के उदर में तथा अंगों में अपने तेज से इन्द्र के हित सम्पादन करने के लिये शीघ्र ही प्रवेश कर गये थे ॥४९॥

७७—बलि शिक्षादान वर्णन

देवमातुः स्थिते देवे उदरे वामनाकृतौ ।
निस्तेजसोऽसुरा जाता यथोक्तं विश्वयोनिना ॥१
निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा प्रह्लाद दानवेश्वरम् ।
बलिर्दानवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् ॥२
तात निस्तेजसो दैत्याः केन जातास्तु हेतुना ।
कथ्यतां परमज्ञोऽसि शुभाऽशुभविशारद ॥३
तत्पौत्र वचनं श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
किमर्थं तेजसो हानिरिति कस्मादतीव वा ॥४
स ज्ञात्वा वासुदेवोत्थं भयं दैत्येष्वनुत्तमम् ।
चिन्तयामास योगात्मा क्व विष्णुः साम्प्रतं स्थितः ॥५
अधो नाभेः सपातालान्सप्त सचिन्त्य नारद ।
नाभेरुपरि भूरादील्लोकांश्च क्रमशो वशी ॥६
भूमिं तां पङ्कजाकारां तन्मध्ये पङ्कजाकृतिम् ।
मेरुं ददर्श शैलेन्द्रं शातकुम्भ महाप्रभम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—देवमाता के उदर में वामन कृते देव के स्थित हो जाने पर जैसा विश्व योनि ने कहा था सब असुर निस्तेज हो गये थे ॥१॥ जब राजा बलि ने समस्त असुरों को तेज से हीन देखा था तो दानवों के स्वामी तथा दानवों में शार्दूल के समान प्रह्लाद से उनसे यह वचन बोला—॥२॥ बलि ने कहा—हे तात! किस हेतु से इस समय समस्त दैत्यगण निस्तेज हो गये हैं। आप तो परमज्ञ हैं और शुभ तथा अशुभ सब के ज्ञाता महामनीषी हैं यह आप मुझे बतलाइये कि क्या इसका कारण है ॥३॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—प्रह्लाद ने उस पौत्र के वचन को श्रवण करके मुहूर्त मात्र के लिये ध्यान किया था कि किस लिये यह तेज की हानि हुई है और क्या कारण हुआ है कि यह अत्यन्त निस्तेजता उत्पन्न हो गई है ॥४॥ ध्यान से प्रह्लाद ने वासुदेव भगवान् से उठने वाला यह दैत्यों में अत्युत्तम भय है। फिर योगात्मा ने चिन्तन किया था कि इस समय में भगवान् विष्णु कहाँ पर स्थित हैं ॥५॥ हे नारद! नाभि से नीचे भाग में पाताल के सहित सातों भुवनों का चिन्तन करके और फिर वही ने नाभि के ऊपर वाले भाग में भूरादि सात लोकों का वहीं ने क्रम से ध्यान किया था ॥६॥ उस पंकज के आकार वाली भूमिका और उसके मध्य में पंकज की आकृति के तुल्य मेरु शैलेन्द्र को ध्यान में देखा था। जो शात कुम्भमय था और महान् समृद्धि से परिपूर्ण था ॥७॥

तस्योपरि महापुर्गस्त्वष्टौ लोकपतीस्तथा।
तेषामुपरि वैराज ददृशे ब्रह्मणः पुरम् ॥८

तदधस्तान्महापुण्यमाश्रम सुरपूजितम्।
देवमातुः स ददृशे मृगपक्षिगणावृतम् ॥९

तां दृष्ट्वा देवजननी सर्वतेजोऽधिस्कां मुने।
विवेश दानवपतिरन्वेष्टुं मधुसूदनम् ॥१०

स दृष्ट्वाऽञ्जगदाद्यं माधवं वामनाकृतिम्।
सर्वभूतवरेण्यं तं देवमातुरथोदरे ॥११

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रविनाकृतम् ।
सुरासुरगणैः सर्वैः सर्वतो व्याप्तविग्रहम् ॥१२
ततस्तेनैव योगेन दृष्ट्वा वामनतां गतम् ।
दैत्यतेजोहरं विष्णुं प्रकृतिस्थोऽभवत्ततः ॥१३
अथोवाच महाबुद्धिर्विरोचनसुतं बलिम् ।
प्रह्लादो मधुरं वाक्यं प्रणम्य मधुसूदनम् ॥१४

उस मेरु गिरि के ऊपर आठ महा पुरियों का ध्यान किया था तथा लोक पतियों को देखा था। उनके भी ऊपर वैराज ब्रह्मा के पुर को देखा ॥८॥ उसके नीचे महा-पुण्य से परिपूर्ण गुरुपूजित आश्रम देखा था जो देव माता का था और मृग तथा पक्षिगण से समावृत था ॥६॥ देवों की माता का दर्शन किया था हे मुने! जो सबसे तेज अधिक थी। वहाँ पर दानव पति प्रह्लाद ने योग बल से ध्यान से मधुसूदन प्रभु की खोज करने को प्रवेश किया था ॥१०॥ वहाँ पर उसने वामन के आकार वाले माधव जगत् के नाथ का दर्शन किया था जो समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ देव माता के उदर में विराजमान थे ॥११॥ उन पुण्डरीकाक्ष बिना ही शङ्ख चक्र के सुरासुर गणो से समावृत सर्वतः व्याप्त विग्रह वाले प्रभु का दर्शन किया था ॥१२॥ फिर उसी योग के साधन बल से दैत्यों के तेज को हरण करने वाले वामन रूप में प्राप्त भगवान् विष्णु का दर्शन करके प्रह्लाद प्रकृतियों में स्थित हो गये थे ॥१३॥ इसके उपरान्त ध्यान का त्याग करके महान् बुद्धि वाले प्रह्लाद ने विरोचन के पुत्र बलि से कहा था सर्व प्रथम उसने मधुसूदन भगवान् को प्रणाम किया था फिर परम मधुर वाक्य बोला था—॥१४॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यतो वो भयमागतम् ।
येन निस्तेजसो दैत्या जाता दैत्येन्द्र हेतुना ॥१५
भवता निर्जिता देवाः सेन्द्ररुद्रार्कपावकाः ।
प्रयाताः शरणं देवं हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ॥१६
स तेषामभयं दत्त्वा शक्रदीनां जगद्गुरुः ।
अवतीर्णो महाभागोऽदित्या जठरे हरिः ॥१७

अथ शङ्कुः शिविः शङ्कुरसिलोमा विरूपधृक् ।
त्रिशिरा मकराक्षश्च वृषपर्वाऽसितेक्षणः ॥२३
एते चान्ये च बलिनो नानाशस्त्रविशारदाः ।
येषामेकैकशो विष्णुः कला नार्हती षोडशीम् ॥२४
पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः ।
धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठा क्षेपवादिनम् ॥२५
धिक्त्वा पापसमाचार दुष्टबुद्धे सुबालिश ।
हरिं निन्दयतो जिह्वा कथं न पतिता तव ॥२६
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यत्त्रैलोक्यगुरुं विष्णुमभिनिन्दसि दुर्मते ॥२७
शोच्यश्चापि न सन्देहो येन जातः पिता तव ।
यस्य त्वं कर्कशः पुत्रो जातो देवावमानकृत् ॥२८

जिसने सूर्य के रथ से वेगपूर्वक महान् तेज चक्र खींच लिया था वह बलवान् विप्रचित्ति मेरी सेना का नायक है ॥२२॥ अथ शङ्कु, शिवि, शङ्कु, असिलोमा, विरूपधृक्, त्रिशिरा, मकराक्ष, वृष पर्वा, असितेक्षण, ये सब तथा अन्य भी बलधारी नाना शास्त्रों के विद्वान् हैं जिन एक-एक की शूरता के आगे विष्णु सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं है ॥२३-२४॥ पुनरपि महर्षि ने कहा—पुत्र के इस भाँति के वचन का श्रवण करके प्रह्लाद क्रोध से मूर्च्छित हो गया था और उसने भगवान् वैकुण्ठ नाथ पर आक्षेप करने वाले बलि को-धिक्कार है-धिक्कार-है, ऐसा कहा था ॥२५॥ हे पापों के आचरण करने वाले ! तेरी बड़ी अधिक दुष्ट बुद्धि है और तू महान् मूर्ख है तुझे धिक्कार है । भगवान् की निन्दा करने वाले तेरी जिह्वा का पतन क्यों नहीं हो गया ?॥२६॥ हे दुर्बुद्धे ! तू शोक करने के योग्य है और साधुओं के द्वारा निन्दनीय है कि त्रिलोकी के गुरु भगवान् विष्णु की दुष्ट बुद्धि वाला होने के कारण निन्दा कर रहा है ॥२७॥ शोच्य भी हो—इसमें सन्देह नहीं है जिसने तेरे पिता को जन्म दिया था जिसका तू देवों के अपमान करने वाला ऐसा कर्कश पुत्र समुत्पन्न हुआ है ॥२८॥

भवान्किल विजानाति तथा चामी महासुराः ।
यथा नान्यः प्रियः कश्चिन्मम तस्माज्जनार्दनात् ॥२९
जानन्नपि प्रियतरं मम देवं जनार्दनम् ।
सर्वेश्वरेश्वरं देवं कथं निन्दितवानसि ॥३०
गुरुः पूज्यस्तव पिता पूज्यस्तस्याप्यहं गुरुः ।
ममापि पूज्यो भगवान्गुरुर्लोकगुरुर्हरिः ॥३१
गुरोर्गुरुगुरुं मूढ पूज्यं पूज्यतमस्य च ।
पूज्यं निन्दसि यत्पाप कथं न पतितोऽस्यधः ॥३२
शोचनीया दुराचारा दानवामी कृतास्त्वया ।
येषां त्वं मकशो राजा वासुदेवविनिन्दकः ॥३३
यस्मात्पूज्योऽर्चनीयश्च भवता निन्दितो हरिः ।
तस्मात्पापसमाचार राज्यनाशमवाप्नुहि ॥३४
यथा नान्यत्प्रियतरं विद्यते मम केशवात् ।
मनसा कर्मणा वाचा राज्यभ्रष्टस्तया पत ॥३५

आप स्वयं भी भली भाँति निश्चय रूप से जानते हैं और ये सभी असुर भी खूब समझते हैं कि मुझे उन भगवान् जनार्दन से अन्य कोई भी प्रिय नहीं है ॥२९॥ यह मेरे परम प्रियतम देव जनार्दन को जानते हुए भी उन सर्वेश्वरों के भी ईश्वर देवकी तुमने मेरे ही सामने निन्दा कैसे की है ॥३०॥ तेरे पिता तेरे गुरु और पूज्य हैं उस तेरे पिता का भी गुरु और पूज्य मैं हूं। मेरे भी परम पूज्य एवं गुरु लोक गुरु श्रीहरि हैं ॥३१॥ हे मूढ़ ! गुरु के भी गुरु के गुरु परम पूजनीय की निन्दा कर रहा है। हे महान् पापात्मन ! तू क्यों नहीं अधःपतित होता है ?॥३२॥ ये दुष्ट आचार वाले दानव तूने शोचनीय बना दिये हैं जिनका तू ऐसा कर्कश राजा बना हुआ है जो कि भगवान् वासुदेव की निन्दा करने वाला है ॥३३॥ क्योंकि आपने उन परम पूजनीय और अर्चन करने के योग्य श्री हरि की निन्दा की है अतएव इसी कारण हे पापों के समाचरण करने वाले ! तू अपने इस विशाल राज्य के विनाश को प्राप्त हो जावेगा ॥३४॥ क्योंकि मेरा प्रियतर केशव भगवान् से अन्य कोई भी नहीं है और वह

मन-वचन और कर्म से मेरे परम प्रिय हैं सो तू राज्य भ्रष्ट होकर पतन को प्राप्त होजा ॥३५॥

यथा न तस्मादपर व्यतिरिक्तं हि विद्यते ।
चतुर्दशसु लोकेषु राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥३६
सर्वेषामपि भूताना नान्यल्लोके परायणम् ।
यथा तथाऽनुपश्येय भवन्त राज्यविच्युतम् ॥३७
एवमुच्चरिते वाक्ये बलि. स त्वरितस्तदा ।
अवतीर्यासनाद्ब्रह्मन्कृताञ्जलिपुटो बलिः ॥३८
शिरसा प्रणिपत्याह प्रसाद कुरु मे गुरो ।
कृतापराधानपि हि क्षमन्ते गुरव. शिशून् ॥३९
तत्साधु यदह शप्तो भवता दानवेश्वर ।
न बिभेमि परेभ्योऽह न च राज्यपरिक्षयात् ॥४०
नैव दुःख मम विभो यदह राज्यविच्युतः ।
दु ख कृतापराधत्वाद्भवतो मे महत्तमम् ॥४१
क्षमस्व तात कृतापराध बालोऽस्मि नीचोऽस्मि सुदुर्मतिश्च ।
कृतेऽपि दोषे गुरव. शिशूनाक्षाम्यन्ति दैन्यसमुपागतानाम् ॥४२

क्योंकि उनसे अतिरिक्त दूसरा चौदह लोकों में ऐसा वन्दनीय कोई भी नहीं है अतएव उनकी निन्दा करने वाला तू राज्य से भ्रष्ट होकर पतन को प्राप्त हो जा ॥३६॥ समस्त भूतों में लोक में अन्य कोई भी परायण नहीं हैं अतएव उनका निन्दक तुझे मैं अब राज्य से च्युत हुआ देखता हूँ ॥३७॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार से वाक्य के उच्चरित होने पर उसी समय में राजा बलि तुरन्त ही अपने राजासन से उतर कर हे ब्रह्मन् ! हाथ जोड़कर प्रह्लाद के सामने खड़ा हो गया था ॥३८॥ शिर से प्रणाम करके उनसे उसने कहा—हे गुरो ! मुझ पर अब कृपा कीजिए । अपराध करने वाले भी छोटे बच्चों पर गुरुवृन्द कृपा ही किया करते हैं और अपराधों को क्षमा कर देते हैं ॥३९॥ हे दानवेश्वर ! आपने जो मुझे शाप दिया है वह ठीक ही है । मैं दूसरों से कभी भयभीत नहीं होता हूँ और न मुझे मेरे राज्य के परिक्षय का ही डर

है ॥४०॥ हे विभो ! मुझे यह भी कोई दुःख नहीं है कि मैं अपने राज्य से च्युत हो जाऊँगा। केवल मुझे यही महान् दुःख है कि मैंने आपका एक यह महान् अपराध किया है ॥४१॥ हे तात ! मेरे इस किये हुए अपराध को आप क्षमा कर देवें। मैं बालक हूँ, मूर्ख हूँ, नीच हूँ और दुष्ट बुद्धि वाला हूं। दोष के करने पर भी गुरु वृन्द जब शिशु दीनता को प्राप्त होते हैं तो उन्हे क्षमा कर दिया करते है ॥४२॥

इत्येवमुक्ते वचने महात्मा विमुक्तमोहोहरिपादभक्तः।
चिरं विचिन्त्याद्भुतमेनदित्यमुवाच पुत्रं मधुरं वचोऽय ॥४३
मोहेन मेऽधुना ज्ञान विवेकश्चतिरस्कृतः।
येन सर्वगत विष्णुं जानस्त्वां शप्तवानहम् ॥४४
तन्नूनमविवेकोऽयं भवन्तं येन दानव।
ममापि स महाबाहो विवेकप्रतिषेधकः ॥४५
तस्माद्राज्यं प्रति विभो न ज्वरं कर्त्तुमर्हसि।
अवश्यभाविनो ह्यर्था न विनश्यन्ति कर्हिचित् ॥४६
पुत्रमित्रकलत्रार्थे राज्यभोगधनाय च।
आगमे निगमे प्राज्ञो न विषादं समाचरेत् ॥४७
यथा यथा समायान्ति पूर्वकर्मविधानतः।
सुखदुःखानि दैत्येन्द्र नरस्तानि सहेत्तथा ॥४८
आपदामागमं दृष्ट्वा न विषण्णो भवेद्वशी।
सपदं च सुविस्तार्णांप्राप्य नो धृतिमान्भवेत् ॥४९

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—बलि के ऐसे वचन के कहे जाने पर महान् आत्मा वाले हरिचरण के परम भक्त प्रह्लाद ने विमुक्त मोह वाले होकर चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके पुत्र से बाद में इस प्रकार के मधुर वचन कहे ॥४३॥ प्रह्लाद ने कहा—मोह ने मेरा इस समय सम्पूर्ण ज्ञान और विवेक तिरस्कृत कर दिया है जिसके कारण सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु को जानते हुए भी तुमको मैंने शाप दे दिया है ॥४४॥ हे दानव ! यह निश्चय ही बड़ा अविवेक है जिससे आपको और मुझको भी उत्पन्न होकर ज्ञान का प्रतिषेध कर दिया है ॥४५॥ सो अब हे विभो ! राज्य के

प्रति तो तुम कुछ भी दुःख या सन्ताप सब करो क्योंकि जो अवश्यम्भावी अर्थ होते हैं वे कभी भी विनष्ट नहीं हुआ करते हैं ।।४६।। पुत्र, मित्र, कलत्र के लिये तथा निर्मम हो जाने पर प्राज्ञपुरुष को कभी भी विषाद नहीं करना चाहिए ।।४७।। हे दैत्येन्द्र ! पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों के विधान के अनुसार ये सब जिस प्रकार से सुख और दुःख आया करते हैं मनुष्य को उन्हें सहन करना चाहिए ।।४८।। आपदाओं के आगमन को देखकर धीरे पुरुष को कभी भी विषाद युक्त नहीं होना चाहिए। सुविस्तृत सम्पत्ति को देखकर या प्राप्त करके धृतिमान् नहीं होना चाहिए ।।४९।।

धनक्षये न मुह्यन्ति न हृष्यन्ति धनागमे ।
धीराः कार्येषु च तदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः ।।५०
एवं विदित्वा दैत्येन्द्र न विषादं कथचन ।
कर्तुमर्हसि विद्वस्त्वं पण्डितो नावसीदति ।।५१
तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम् ।
भवतोऽथ तथाऽन्येषां श्रुत्वा तच्च समाचर ।।५२
शरण्यं शरणं गच्छ तमेतं पुरुषोत्तमम् ।
स ते त्राता भयादस्माद्दानव प्रभविष्यति ।।५३
ये संश्रयन्ति हरिमीशमनादिमध्यं विष्णुं
चराचरगुरुं हरिमीशितारम् ।
संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं नूनं
न ते भुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति ।।५४
तन्मना दानवश्रेष्ठ तद्भक्तश्च भवाधुना ।
स एष भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः ।।५५
अहं च पापोपशमार्थमीशमाराधयामीह च तीर्थयात्राम् ।
विमुक्तपापश्च तदा भविष्ये यदाच्युतो लोकपतिर्नृसिंहः ।।५६
इत्येवमाश्वास्य बलिमहात्मास्तमृत्ययोगाधिपतिं च विष्णुम् ।
आमन्त्र्य सर्वान्ह्नुमन्यपालाञ्जगाम कर्तुं शुभतीर्थयात्राम् ।। ५

धीर पुरुष धन के क्षय हो जाने पर मोह को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं और धन के समागम होने पर अत्यन्त हर्षित भी नहीं होते हैं। जो उत्तम धीर पुरुष हैं वे तो अपने कार्यों में ही उस समय में सलग्न रहते हैं जो उनका कर्त्तव्य है ॥५०॥ हे दैत्येन्द्र ! इसी भाँति समझ करके आप किसी भी प्रकार से विषाद करने के योग्य नहीं है। हे विद्वन् ! आपतो पण्डित हैं जोकि कभी भी अवसाद नहीं किया करता है ॥५१॥ हे महा बाहुओं वाले ! अब महान् अर्थ का सम्पादक अन्य हित की बात मुझसे श्रवण करो। उनसे आप का तथा अन्यों का भी हित होगा उसे सुन कर वैसा ही समाचरण भी करो ॥५२॥ उन शरण मे जाने के योग्य भगवान् पुरुषोत्तम की शरण मे जाओ। हे दानव ! वही इस भय से तुम्हारा त्राता होगा ॥५३॥ जो मनुष्य उन अनादि मध्य–ईश, चराचर के गुरु भगवान् हरि का समाश्रय ग्रहण कर लेते हैं उनका दरा ससार के गर्त्त मे पड़े हुओं का निश्चय ही वे करावलम्ब दिया करते हैं। वे मनुष्य फिर कभी भी सन्ताप युक्त नहीं होते हैं ॥५४॥ हे दानव श्रेष्ठ ! अब उन्हीं में मन लगाने वाला उन श्री हरि का भक्त होजा। वह भगवान जनार्दन तेरा श्रेय अवश्य ही करेंगे ॥५५॥ और मैं भी अपने कृत पापो की शान्ति के लिये ईश का आराधन करता हूँ, त[illegible] तीर्थों की यात्रा करता हूँ। तभी मैं पापो से विमुक्ति प्राप्त करूंगा [illegible] लोकों के पति भगवान् अच्युत नृसिंह मुझ पर कृपा करेंगे [illegible] पुलस्त्य जी ने कहा—उस महात्मा प्रह्लाद ने इस प्रकार से रा[illegible] को समाश्वासन प्रदान करके और योगाधिपति प्रभु विष्ण[illegible]रण करके समस्त दनु सैन्य पालो को आमन्त्रित कर फिर [illegible] शुभ तीर्थों की यात्रा को करने के लिए वहाँ से चले गये थे ॥५[illegible]

७८—धुन्धु-पराजय वर्णन

यानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुजगाम [illegible]
प्रह्लादतीर्थ यात्रां मे सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥१

प्रति तो तुम कुछ भी दुःख या सन्ताप मत करो क्योंकि जो अवश्यम्भावी अर्थ होते हैं वे कभी भी विनष्ट नहीं हुआ करते हैं ।।४६।। पुत्र, मित्र, कलत्र के लिये तथा निर्गम हो जाने पर प्राज्ञापुरुष को कभी भी विषाद नहीं करना चाहिए ।।४७।। हे दैत्येन्द्र ! पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों के विधान के अनुसार ये सब जिस प्रकार से सुख और दुःख आया करते हैं मनुष्य को उन्हें सहन करना चाहिए ।।४८।। आपदाओं के आगमन को देखकर धीर पुरुष को कभी भी विषाद युक्त नहीं होना चाहिए। सुविस्तृत सम्पत्ति को देखकर या प्राप्त करके धृतिमान् नहीं होना चाहिए ।।४९।।

धनक्षये न मुह्यन्ति न हृष्यन्ति धनागमे ।
धीराः कार्येषु च तदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः ।।५०
एवं विदित्वा दैत्येन्द्र न विषादं कथंचन ।
कर्तुं मर्हसि विद्वंस्त्वं पण्डितो नावसीदति ।।५१
तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम् ।
भवतोऽथ तथाऽन्येषां श्रुत्वा तच्च समाचर ।।५२
शरण्यं शरणं गच्छ तमेतं पुरुषोत्तमम् ।
स ते त्राता भयादस्माद्दानव प्रभविष्यति ।।५३
ये संश्रयन्ति हरिमीशमनादिमध्यं विष्णुं
चराचरगुरुं हरिमीशितारम् ।
संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं नूनं
न ते भुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति ।।५४
तन्मना दानवश्रेष्ठ तद्भक्तश्च भवाधुना ।
स एष भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः ।।
अहं च पापोपशमायमीशमाराधयामीह च
विमुक्तपापश्च सदा भविष्ये यदाच्यतो ....
इत्येवमाश्वास्य बलिमहात्मा
आमन्त्र्य सर्वान्दनुसंश्रयस्तान्

धीर पुरुष धन के क्षय हो जाने पर मोह को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं और धन के समागम होने पर अत्यन्त हर्षित भी नहीं होते हैं। जो उत्तम धीर पुरुष हैं वे तो अपने कार्यों में ही उस समय में संलग्न रहते हैं जो उनका कर्त्तव्य है ॥५०॥ हे देवेन्द्र ! इसी भाँति समझ करके आप किसी भी प्रकार से विषाद करने के योग्य नहीं है। हे विद्वन् ! आपतो पण्डित हैं जोकि कभी भी अवसाद नहीं किया करता है ॥५१॥ हे महा बाहुओं वाले ! अब महान् अर्थ का सम्पादक अन्य हित की बात मुझसे श्रवण करो। उनसे आप का तथा अन्यों का भी हित होगा उसे सुन कर वैसा ही समाचरण भी करो ॥५२॥ उन शरण में जाने के योग्य भगवान् पुरुषोत्तम की शरण में जाओ। हे दानव ! वही इस भय से तुम्हारा त्राण होगा ॥५३॥ जो मनुष्य उन अनादि मध्य-ईश, चराचर के गुरु भगवान् हरि का समाश्रय ग्रहण कर लेते हैं उनका इस संसार के गर्त में पड़े हुओं का निश्चय ही वे करावलम्ब दिया करते हैं। वे मनुष्य फिर कभी भी सन्ताप युक्त नहीं होते हैं ॥५४॥ हे दानव श्रेष्ठ ! अब उन्हीं में मन लगाने वाला उन श्री हरि का भक्त होजा। वह भगवान जनार्दन तेरा श्रेय अवश्य ही करेंगे ॥५५॥ और मैं तो अपने कृत पापों की शान्ति के लिये ईश का आराधन करता हूँ, तथा तीर्थों की यात्रा करता हूँ। तभी मैं पापों से विमुक्ति प्राप्त करूंगा और लोकों के पति भगवान् अच्युत नृसिंह मुझ पर कृपा करेंगे ॥५६॥ पुलस्त्य जी ने कहा—उस महात्मा प्रह्लाद ने इस प्रकार से राजा को समाश्वासन प्रदान करके और योगाधिपति प्रभु विष्णु का स्मरण करके समस्त दनु सैन्य पालों को आमन्त्रित कर फिर बहुत शुभ तीर्थों की यात्रा को करने के लिये वहाँ से चले गये थे ॥५७॥

७८—धुन्धु-पराजय वर्णन

कानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुजगाम ह।
प्रह्लादतीर्थयात्रां मे सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥१

शृणु त्वं कथयिष्यामि पापपङ्कप्रणाशिनीम् ।
प्रह्लादतीर्थयात्रां ते सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥२
संत्यज्य मेरुं कनकाचलेन्द्रतीर्थं जगामामरसंघजुष्टम् ।
ख्यातं पृथिव्याशुभदं हि मानसयत्रस्थितोमत्स्यवपु पुरेशः ॥३
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा सतर्प्य पितृदेवताः ।
सपूज्य च जगन्नाथमच्युतं श्रुतिभिर्युतम् ॥४
उपोष्य भूयः सपूज्य देवर्षिपितृमानवान् ।
जगाम कच्छपं द्रष्टुं कौशिक्यां पापनाशनम् ॥५
तस्यां स्नात्वा महानद्यां सपूज्य च जगत्पतिम् ।
समुपोष्य शुचिर्भूत्वा दत्त्वा विप्रेषु दक्षिणाम् ॥६
नमस्कृत्य जगन्नाथमथ कूर्मवपुर्धरम् ।
ततो जगाम कृष्णायां द्रष्टुं वाजिमुखं प्रभुम् ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा तर्पयित्वा पितृन्सुरान् ॥७

देवर्षि नारद ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! फिर प्रह्लाद किन-किन तीर्थों में गये थे । उसकी तीर्थ यात्रा का पूरा विवरण अब आप मुझे बतलाने की कृपा करें ॥१॥ पुलस्त्य जी ने कहा—अब आप श्रवण करो । मैं पापों के पंक का प्रणाश करने वाली और सभी पापों को नष्ट कर देने वाली प्रह्लाद की तीर्थ यात्रा को बतलाता हूँ ॥२॥ मेरु का भली भाँति त्याग करके प्रह्लाद कनकाचलेन्द्र तीर्थ पर चले गये थे जो देवों के समुदाय के द्वारा सेवित है । पृथिवी में शुभ प्रदान करने वाला मानस विख्यात है जहाँ पर मत्स्य वपु पुरेश स्थित हैं ॥३॥ उस परम श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करके तथा पितृगण और देववृन्द का तर्पण करके एवं श्रुतियों से समन्वित अच्युत जगन्नाथ का पूजन किया था ॥४॥ उपवास करके और फिर अर्चना करके अर्थात् देव ऋषि और मानवों को पूज करके कौशिकी में पापों का नाश करने वाले कच्छप का दर्शन करने के लिये गये थे ॥५॥ उस महानदी में स्नान किया, जगत्पति का पूजन किया उपवास करके शुद्धि की, विप्रों को दक्षिणा दी थी ॥६॥ इसके अनन्तर जगन्नाथ प्रभु को जो कूर्म का वपु धारण करने वाले थे नमस्कार किया

था। इसके उपरान्त कृष्णा में वाजिमुख प्रभु का दर्शन करने के लिये चले गये थे। वहाँ पर देव ह्रद मे स्नान करके पितृगण और सुरवृन्द का तर्पण किया था ॥७॥

संपूज्य हयशीर्षं च जगाम गजसाह्वयम्।
तत्र देवं जगन्नाथं गोविन्दं चक्रपाणिनम् ॥८
स्नात्वा संपूज्य विधिवज्जगाम यमुनां नदीम्।
तस्या स्नातः शुचिर्भूत्वा सतर्प्यर्षिसुरान्पितृन्।
ददर्श देवदेवेश लोकनाथं त्रिविक्रमम् ॥९
साम्प्रतं भगवान्विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणं वपुः।
करिष्यति जगत्स्वामी बलिबन्धनमीश्वरः ॥१०
तत्कथं पूर्वकालेऽपि विभुरासीत्त्रिविक्रमः।
कस्य वा बन्धनं विष्णुः कृतवांस्तन्ममे वद ॥११
श्रूयतां कथयिष्यामि योऽस्य प्रोक्तस्त्रिविक्रमः।
यस्मिन्काले यभूवाथ यं च वञ्चितवानसौ ॥१२
आसीद्धुन्धुरिति ख्यातः कश्यपस्यौरसः सुतः।
दनोर्गर्भसमुद्भूतो महाबलपराक्रमः ॥१३
स समाराध्य च सदा ब्रह्माणं तपसाऽसुरः।
अवध्यत्वं सुरैः सेन्द्रैः प्रार्थयन्स तु नारद ॥१४

वहाँ पर हयके शीर्ष वाले प्रभु को प्रणाम करके फिर ग... नाम वाले तीर्थ मे चले गये थे। वहाँ चक्रपाणि जगन्नाथ ... और विराजमान थे ॥८॥ वहाँ विधिपूर्वक स्नान किया, पूजन ... शुद्ध इसके पश्चात् यमुना नदी मे चले गये थे। उसमे भी स्न... होकर ऋषि देव और पितरों का तर्पण किया था ओ... देवदेवेश लोकनाथ त्रिविक्रम प्रभु का दर्शन किया था ॥९॥ ना... ने कहा—अब तो त्रैलोक्य के आक्रमण करने वाले शरीर ... भगवान् विष्णु धारण करके जगत् के स्वामी ईश्वर बलि का बन्ध...रेंगे ॥१०॥ सो पूर्वकाल मे भी त्रिविक्रम प्रभु कैसे थे और ... ने किसका बन्धन किया था—यह मुझे बतलाइये ॥११॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—आप

सुनिये, मैं यह बतलाता हूँ कि जो यह त्रिविक्रम कहे गये हैं जिस समय मे हुए थे और जिसको इनने वञ्चित किया था ॥१२॥ एक धुन्धु इस नाम से प्रसिद्ध कश्यप ऋषि का औरस पुत्र था। यह इनके गर्भ मे समुत्पन्न हुआ था और महान् बल और पराक्रम से युक्त था ॥१३॥ उस असुर ने तप करके उस समय मे ब्रह्मा की आराधना की थी। हे नारद! उसने ब्रह्माजी से इन्द्र के सहित देवगण से वध के न होने की प्रार्थना की थी ॥१४॥

तस्य त च वर प्रादात्तपसा पङ्कजोद्भवः ।
परितुष्टः स च वली निर्जगाम त्रिविष्टपम् ॥१५
चतुर्यस्य कलेरादौ जित्वा देवान्सवासवान् ।
धुन्धुः शक्रत्वमकरोद्धिरण्यकशिपौ सति ॥१६
तस्मिन्काले सबलवान्हिरण्यकशिपुस्ततः ।
चचार मन्दरगिरौ दैत्यो धुन्धुसमाश्रितः ॥१७
ततोऽसुरा यथाकामं विचरन्ति त्रिविष्टपे ।
त्रिदशा ब्रह्मलोके च संस्थिता दुःखसंयुताः ॥१८
ततोऽमरान्ब्रह्मसदोनिवासिनः श्रुत्वाऽथ धुन्धुर्दितिजानुवाच ।
व्रजाम दैत्या वयमब्जजस्य सदो विजेतुं त्रिदशान्सशक्रान् ॥१९
ते धुन्धुवाक्य तु निशम्य दैत्याः प्रोचुर्न नो विद्यति लोकपाल।
गतिर्यया याम पितामहाजिरं सुदुर्गमोऽयं परतो हि मार्गः ॥२०
इतः सहस्रं बहुयोजनार्धर्लोको महर्नाम महर्षिजुष्टः ।
येषां हि दृष्टपाऽपतणचोदितेन दहन्ति दैत्याः सहसेक्षितेन ॥२१

पंकजोद्भव ने तपश्चर्या से प्रसन्न होकर उसको यह वरदान प्रदान कर दिया था और वह बलवान् फिर स्वर्ग मे चला गया था ॥१५॥ चौथे कलि के आदि में इन्द्र के सहित सभी देवगण को जीतकर हिरण्यकशिपु के होने पर भी धुन्धु ने इन्द्र के पद को प्राप्त कर लिया था ॥१६॥ उस समय मे वह महा बलवान् हिरण्य कशिपु दैत्य धुन्धु का समाश्रित होकर मन्दर गिरि पर विचरण किया करता था ॥१७॥ इसके पश्चात् सब असुर यथाकाम स्वर्ग मे विचरण किया करते थे और देवगण

दु सयुक्त होकर ब्रह्म लोक मे स्थित रहा करते थे ॥१८॥ इसके अनन्तर धुन्धु ने देवगण को ब्रह्मलोक मे स्थित सुनकर दैत्यों से कहा था—हम सब अग्रज ब्रह्मा के लोक मे ही चलें और इन्द्र के सहित सब देवगण को जीत लेवें ॥१९॥ उन सब दैत्यों ने धुन्धु के इस वाक्य का श्रवण तो किया था और यही कहा—हे लोक पाल ! वहाँ कोई भी गति नहीं है जिस मार्ग से उस पितामह के घर के आगन मे पहुँच जावें क्योंकि सभी ओर वहाँ का मार्ग बहुत ही दुर्गम अर्थात् कठिन है ॥२०॥ इस ओर बहुत से सहस्र योजनो वाला महर नाम वाला लोक है जो जो महर्षियों के द्वारा परिसेवित है जिनकी दृष्टि से ही जो प्रेरित होकर डाली जाती है तुरन्त ही दैत्य गण दग्ध हो जाया करते हैं ॥२१॥

ततोऽपरो योजनकोटिरेको लोको जनो नाम वसन्ति यत्र ।
गोमातरोऽस्मासुविनाशकारीयासा न कोऽपीहमहासुरेन्द्रः ॥२२
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु त्रिंशद्भिरादित्यसहस्रदीप्तः ।
सत्याभिधानोभगवन्निवासो वरप्रदोऽभूद्भवतो हि योऽसौ ॥
यस्य वेदध्वनि श्रुत्वा विकसन्ति सुरादयः ।
सकोचमसुरा यान्ति ये च तेषा सधर्मिणः ॥२४
तस्मान्मा त्व महाबाहो मतिमेता समादधः ।
वैराज्यभुवन धुन्धो दुरारोह सदा नृभिः ॥२५
तेषा वचनमाकर्ण्य धुन्धुः प्रोवाच दानवान् ।
गन्तुकामः स सदन ब्रह्मणो जेतुमीश्वरम् ॥२६
कथ तु कर्मणा केन गम्यते दानवर्षभाः ।
कथं तत्र सहस्राक्ष सप्राप्तः सह दैवतैः ॥२७
ते धुन्धुना दानवेन्द्रा. पृष्टा. प्रोचुर्वचोऽधिपम्
न वय विद्मतत्कर्म शुक्रस्तद्वेत्त्यसंशयम् ।

इसके पश्चात् दूसरा एक करोड योजनो के ... र वाला जन-लोक
है जहाँ पर गोमातर निवास करती हैं जिन ... विनाश करने वाला
हम मे कोई भी नहीं है जो ऐसा महान् असुर ... होवे ॥२२॥ इसके उप-
रान्त दूसरा तीस करोड़ योजनो वाला ... र्यों के सहस्रो के समान

दैत्यो के इस वचन को श्रवण कर धुन्धु ने दैत्यों के पुरोहित श्री शुक्राचार्य जी से पूछा था कि क्या कर्म करके ब्रह्मसद की गति होती है ॥२८॥ कलि प्रिय दैत्याचार्य ने इससे कहा था पहिले वृत्र के शत्रु इन्द्र के चरित को बतलाया था ॥३०॥ पहिले समय मे हे दैत्येन्द्र ! एक सौ यज्ञों का यजन किया था जो कि वाजिमेध यज्ञ थे। इससे ब्रह्मसद की गति होती है ॥ १॥ वीर्य शाली दानवो के पति ने शुक्राचार्य के उस वाक्य का श्रवण किया था और फिर गोमेध यज्ञों का यजन करने की उत्तम मति की। इसके अनन्तर उसने असुरो के गुरु को आमन्त्रित किया था और परम श्रेष्ठ दानवो को भी बुला लिया था ॥३२॥ इसने सभी से कहा था अच्छी दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञो के द्वारा मे यजन करूंगा। सो आप लोग सब भू मण्डल मे जाओ और जो वसुधा के अधिप हैं उनके पास चलें ॥३३॥ यथा काम गुणो से समन्वित हयमेधों को जीत कर निधियों का आह्वान करें और गुह्यको को आज्ञा दी जावे ॥३४॥ श्रेष्ठ द्विजो को आमन्त्रित करो और देविका के तट पर चलें क्यो कि वही परम पुण्यमयी सरिताओ मे श्रेष्ठ नदी है जो कि सब सिद्धियो को करने वाली कही गयी है। वहाँ प्राचीन स्थान को प्राप्त कर हम वाजिमेधो का यजन करें ॥३५॥

इत्थ सुरारेर्वचन निशम्यासुरयाजकाः ।
बाढमित्यब्रवीद्हृष्टो निधीश सदिदेश सः ॥३६
ततो धुन्धुर्देविकाया प्राचीने पापनाशने ।
भार्गवेन्द्रेण शुक्रेण वाजिमेधाय दीक्षितः ॥३७
सदस्या ऋत्विजश्चापि तत्रासन्भार्गवा द्विजाः ।
शुक्रस्यानुमते ब्रह्मञ्शुक्रशिष्याश्च पण्डिताः ॥३८
यज्ञभागभुजस्तत्र स्वर्भानुप्रमुखा मुने ।
कृताश्चासुरनाथेन शुक्रस्यानुमतेऽसुरा ॥३९
ततः प्रवृत्तो यज्ञस्तु समुत्सृष्टस्तथा हयः ।
हयस्यानुययौ श्रीमानसिलोमा महासुरः ॥४०

ततोऽग्निधूमेनमहीसशैलाव्याप्ताादिशोवैविदिशश्चपूर्णाः ।
तेनोग्रगन्धेन दिव स्पृशेन मरुद्वौ ब्रह्मलोके महर्षे ॥४१
त गन्धमाघाय सुरा विषण्णा जानन्त धुन्धुं हयमेधदीक्षितम् ।
तत:शरण्यशरणजनार्दनजग्मु:सशक्राजगत.परायणम् ॥४२

इस प्रकार के मुरारि के वचन को असुर पार्षदों ने श्रवण किया और उसने 'बहुत अच्छा है,—यह कहा था तथा उसने फिर परम प्रसन्न होकर निशीश को सन्देश दे दिया था ॥३६॥ इसके पश्चात् धुन्धु को देविका नदी के परम प्राचीन पापों के नाश करने वाले स्थल में भार्गवेन्द्र शुक्राचार्य ने वाजिमेध यज्ञ के लिये दीक्षित किया था ॥३७॥ वहाँ पर सदस्य और ऋत्विज भी भार्गव द्विज ये सभी शुक्राचार्य की अनुमति में थे हे ब्रह्मन् ! शुक्राचार्य के पण्डित शिष्य थे ॥३८॥ हे मुने ! वहाँ पर यज्ञ भाग के भोग करने वाले स्वर्भानु प्रमुख असुर नाथ ने शुक्र के अनुमत असुर कर दिये थे ॥३९॥ इसके उपरान्त यज्ञ प्रवृत्त हो गया था और अश्व छोड़ दिया गया था । अश्व की रक्षा के लिये उसके पीछे कपिलोमा महान् असुर गया था ॥४०॥ इसके पश्चात् अग्नि धूम ने शैलों के सहित सम्पूर्ण मही व्याप्त कर ली थी और दिशाऐं तथा विदिशाऐं भी सब पूर्ण हो गई थी । उस हे महर्षि ! उग्र गन्ध वाले और दिवलोक को स्पर्श करने वाले गन्ध युक्त धूम से वायु वहन कर रहा था और वह ब्रह्मलोक में पहुँच गया था ॥४१॥ उस गन्ध का आघ्राण करके समस्त सुरगण धुन्धु को हयमेध दीक्षित जानते हुए बहुत ही विषाद युक्त हो गये थे । इसके पश्चात् इन्द्र के सहित सब देवता लोग जगत् के परम परायण-शरण्य भगवान् जनार्दन की शरणागति में गये थे ॥४२॥

प्रणम्य वरदं देवं पद्मनाभं जनार्दनम् ।
प्रोचुः सर्वे सुरगणा भयगद्गदया गिरा ॥४३
भगवन्देवदेवेश चराचरपरायण ।
विज्ञप्तिः श्रूयतां विष्णो सुराणामार्तिनाशन ॥४४

धुन्धुर्नामासुरपतिर्बलवान्बलसंवृत: ।
सर्वान्सुरान्विनिर्जित्य त्रैलोक्यमहरद्बलि: ॥४५
ऋते पिनाकिन देवं त्राता नोऽन्यो नविद्यते ।
अतोऽसौ वृद्धिमगमद्यथा व्याधिरुपेक्षित: ॥४६
साम्प्रत ब्रह्मलोकस्थानपि जेतुं समुद्यत: ।
शुक्रस्यमतमादाय सोऽश्वमेधाय दीक्षित: ॥४७
शतं क्रतूनामिष्ट्वाऽसौ ब्रह्मलोक महासुर: ।
आरोढुमिच्छति वशी विजेतुं त्रिदशानपि ॥४८
तस्मादकालहीन तु चिन्तयस्व जगद्गुरो ।
उपाय मखविध्वसे येन स्याम सुनिर्वृ ता: ॥४६

वरदान के दाता—पद्मनाभ जनार्दन देव को प्रणाम करके सब सुरगण भय से गद्गद वाणी के द्वारा प्रभु से प्रार्थना करने लगे थे ॥४३॥ हे भगवन् ! आपतो देवों के देवेश्वर हैं और चराचर मे परायण हैं । आप सर्वदा सुरों की आर्ति के नाश करने वाले रहे हैं । हे विष्णो अब एक हमारी विज्ञप्ति का श्रवण कीजिये ॥४४॥ धुन्धु नाम वाला असुरों का स्वामी महान् बलशाली और विशाल बल से सम्पन्न है । सब सुरों को निर्जित करके बलि ने त्रैलोक्य का अपहरण कर लिया है ॥४५॥ पिनाकी देव के बिना अन्य कोई भी त्राता नहीं है । इसीलिये यह वृद्धि को प्राप्त हो गया है जैसे कोई उपेक्षा किया हुआ रोग बढ जाया करता है ॥४६॥ इस समय मे वह ब्रह्मलोक के स्थान को भी जीतने के लिये समुद्यत हो रहा है और उसने शुक्राचार्य के मत को प्राप्त करके वह अश्वमेध के लिये दीक्षित हो गया है ॥४७॥ सौक्रतुओं को करके यह महान् असुर ब्रह्मलोक मे समारूढ होने की इच्छा कर रहा है और वशी फिर त्रिदशों को भी जीतना चाहता है ॥४८॥ इसलिये हे जगत् के गुरुवर ! इस अकाल हीन का कुछ विचार करो और मख के विध्वस का उपाय बतलाइये जिससे हम लोग सुनिर्वृ त होवें ॥४६॥

श्रुत्वा सुराणा वचनं भगवान्मधुसूदन: ।

दत्वाऽभयं महाबाहुः प्रेषयामास साम्प्रतम् ।
विसृज्य च तदा सर्वांस्त्यक्त्वाऽजेय महासुरम् ॥५०
बन्धनाय मतिं चक्रे धुन्धोर्दैत्यध्वजस्य वै ।
ततः कृत्वा स भगवान्वामनं रूपमीश्वरः ॥५१
देहं त्यक्त्वा निरालम्ब काष्ठवद्देविकाजले ।
क्षणान्मज्जस्तथोन्मज्जन्मुक्तकेशो यदृच्छया ॥५२
दृष्टोऽथ दैत्यपतिना दैतेयैश्च तथर्षिभिः ।
ततः कर्म परित्यज्य यज्ञियं ब्राह्मणोत्तमाः ॥५३
समुत्तारयितुं विप्रमाद्रवन्त समाकुलाः ।
सदस्या यजमानश्च ऋत्विजोऽथ महौजसः ॥५४
निमज्जमानमुज्जह्रुस्ते च ते वामनद्विजम् ।
समुत्तार्य प्रसन्नास्ते पप्रच्छुः सर्व एव हि ॥
किमर्थं पतितोऽसीह केनाक्षिप्तोऽसि वा वद ॥५५
तेषामाकर्ण्य वचनं कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।
प्राह धुन्धुपुरोगास्ताञ्छ्रूयतामस्य कारणम् ॥५६
ब्राह्मणो गुणवानासीत्प्रभास इति विश्रुतः ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञो गोत्रेणापि तु वारुण. ॥५७

भगवान् मधुसूदन ने सुरों के इस वचन का श्रवण करके महाबाहु प्रभु ने देवों को अभय का वचन दिया था और उस समय उन्हें भेज दिया था। उस समय सबको विदा कर अजेय महासुर को छोड़कर भखध्वज धुन्धु के बन्धन के लिये बुद्धि की थी। इसके पश्चात् ईश्वर ने वामन रूप किया था ॥५०-५१॥ निरालम्ब देह का त्याग करके देविका नदी के जल में काष्ठ की भाँति क्षण मात्र में मज्जन करता हुआ यदृच्छा से मुक्तकेश होकर उन्मज्जनकर रहा था ॥५२॥ इस भाँति धराडूबी करते हुए उसको दैत्य पति ने, दैत्यों ने और ऋषियों ने भी देखा था और सभी ब्राह्मणोत्तमों ने यज्ञिय कर्म का उस समय में त्याग कर दिया था ॥५३॥ सभी लोग उस विप्र को उत्तारित करने के लिये समाकुल होकर सदस्य, यजमान, ऋत्विज जो महान् ओज वाले थे एकदम दौड़ पड़े

थे ।।५४।। उन सब ने उस डूबते हुए वामन रूपी द्विज को डूबने से बचा लिया था । उसका समुत्तारण करके सब बहुत ही प्रसन्न हुए थे और सब ने उससे पूछा था कि किसलिए वह उसमें गिरा था अथवा किसने उसे उस नदी में फेंक दिया था—यह बतलाओ ।।५५।। उन सबके इस वचन को सुनकर बारम्बार कांपता हुआ धुन्धपुरोगामी उन सब से कहा था—इसमें जो कारण है उसका आप लोग श्रवण करें ।।५६।। प्रभास नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था जो बहुत ही गुणवान् था । वह सभी शास्त्रों के अर्थों का ज्ञाता परम प्राज्ञ और गोत्र से वारुण था ।।५७।।

तस्य पुत्रद्वयं जातं मन्दप्रज्ञ सुदुःखितम् ।
तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कनोयानमरस्त्वमृह ।।५८
नेत्राभास इति ख्यातो ज्येष्ठो भ्राता ममाभवत् ।
मम नाम पिता चक्रे गतिभासेति कौतुकात् ।।५६
रम्यश्चावसथश्चापि शुभ आसीत्पितुर्मम ।
त्रविष्टपगुणैर्युक्तः स्वर्गवासोपमः शुभः ।।६०
ततो कालेन महता आवयोः स पिता मृतः ।
तस्यौर्ध्वदेहिकं कृत्वा गृहमावां समागतौ ।।६१
ततो मयोक्तः स भ्राता विभजाम गृहं वयम् ।
तेनोक्तो नैव भवतो विद्यते भाग इत्यहम् ।।६२
कुब्जवामनखञ्जानां क्लीबानां श्वित्रिणामपि ।
उन्मत्तानां तथान्धानां धनभागो न विद्यते ।।६३

उस ब्राह्मण के दो पुत्र हुए थे वे दोनों ही मन्द प्रज्ञा वाले और अति दुःखित थे । उनमें ज्येष्ठ मेरा भाई था और छोटा दूसरा मैं था ।।५८।। मेरा ज्येष्ठ भ्राता नेत्राभास—इस नाम से विख्यात हुआ था । मेरे पिता ने कौतुक से मेरा नाम गतिभास किया था ।।५६।। मेरे पिता का परम रम्य एवं अतीव शुभ आवसथ (घर) था । वह त्रैविष्टय के गुणों से युक्त था और स्वर्ग के निवास के समान परम शुभ था ।।६०।। फिर अधिक काल होने पर हम दोनों भाइयों का पिता मृत हो गया था । उस पिता का और्ध्व देहिक कृत्य करके हम दोनों घर में

आगये थे ॥६१॥ इसके पश्चात् मैंने उस भाई से कहा था कि हम घर का विभाजन कर लेवें। उसने मुझसे कहा था कि तेरा इसमें कोई भी भाग नहीं है ॥६२॥ कुबड़े—बौना—खञ्ज—क्लीव—मूर्केर कोढ़ वाला उन्मत—अन्धा—इनका कोई भी भाग नहीं हुआ करता है ॥६३॥

प्रिय वाक्यं गृहे वासो भोजनाच्छादनादिकम्।
एतावद्दीयते तेभ्यो नार्थभागतरा हि ते ॥६४
एवमुक्तो मया सोऽथ किमर्थं पैतृकाद् गृहात्।
धनार्धभारमर्हामि नाहं न्यायेन केन वै ॥६५
इत्युक्तो बलवान्भ्राता केशाग्रग्राह मेऽसुर।
समुत्क्षिप्याक्षिपन्नद्या न जाने ह्यवतारणम् ॥६६
ममास्या निम्नगाया तु मध्येन प्लवतो गतः।
कालः संवत्सराख्यस्तु युष्माभिरमृतोधृत. ॥६७
के भवन्तोऽत्र सम्प्राप्ताः सस्नेहा बान्धवा इव।
कोऽयं शक्रप्रतीकाशो युष्मन्मध्ये प्रदृश्यते ॥६८
तन्मे सर्वं समाख्यात याथातथ्यं तपोधनाः।
महर्षिसदृशा यूयं सानुकम्पाश्च मादृशे। ६९
तद्वामनवचः श्रुत्वा भार्गवा द्विजसत्तमा।
प्रोचुर्वयं द्विजा ब्रह्मन्भार्गवा वंशवर्धनाः ॥७०

प्रिय वचन—घर में निवास—भोजन और वस्त्र आदि उन लोगों के लिए इतना ही दिया जाया करता है किन्तु वे अर्थ के भाग के प्राप्त करने वाले नहीं हुआ करते हैं ॥६४॥ इस प्रकार से जब मुझसे कहा गया था तो मैंने उस भाई से कहा कि मैं अपने पैतृक घर से धन का आधा भाग किस न्याय से ग्रहण करने योग्य नहीं हूँ ॥६५॥ हे असुर ! जब मैंने उस बलवान् भाई से ऐसा कहा तो उसने मेरे केशों को पकड़ लिया था और मुझे उठाकर नदी में डाल दिया था फिर इससे मेरा अब तारण कैसे हुआ—इसे मैं नहीं जानता हूँ ॥६६॥ इस नदी के मध्य में प्लवमान होते हुए मुझे सम्वत्सराख्य काल होगया है। आप लोगों ने मुझे मरा हुआ पकड़ लिया है ॥६७॥ आप लोग यहाँ पर कौन मुझे

प्राप्त होगये हैं जो बिलकुल बान्धवों की ही भांति हैं और स्नेह से परिपूर्ण हैं आप लोगों के मध्य में यह इन्द्र के ही समान प्रकाश वाला कौन दिखलाई दे रहा है ? ॥ ६८ ॥ हे तापस-गण ! यह सभी वृत्त आप लोग मुझे बतलाइये जो बिलकुल सही-सही हो। आप तो सभी लोग महर्षियों के तुल्य हैं और मुझ जैसे व्यक्ति पर तो बहुत अधिक दया रखने वाले हैं ॥६९॥ वामन के इस वचन को सुनकर श्रेष्ठ द्विज भार्गवों ने कहा—हे ब्रह्मन् हम वंश के वर्धन करने वाले भार्गव द्विज हैं ॥७०॥

असावपि महातेजा धुन्धुर्नाम महासुरः ।
दाता भोक्ता च भर्ता च दीक्षितोयज्ञकर्मणि ॥७१
इत्येवमुक्त्वा देवेशं वामनं भार्गवास्ततः ।
प्रोचुर्दैत्यपतिं सर्वे वामनार्थकरं वचः ॥७२
दीयतामस्य दैत्येन्द्र सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
श्रीमदावसथं दास्यो रत्नानि विविधानि च ।७३
इति द्विजानां वचनं श्रुत्वा दैत्यपतिस्ततः ।
प्राह द्विजेन्द्र ते दद्मि यत्त्वमिच्छसि वै धनम् ॥७४
दासीगृंह हिरण्यं च वाजिनः स्यन्दनान्गजान् ।
गोभूमिराज्यवस्त्रादि स्वेच्छया चैव वै प्रभो ॥७५
तद्वाक्यं दानवपतेः श्रुत्वा देवोऽथ वामनः ।
प्राहासुरपतिं धुन्धुं स्वार्थसिद्धकरं वचः ॥७६
सोदरेणापि हि भ्रात्रा ह्रियन्ते यस्य संपदः ।
किं तस्य नार्यो राजेन्द्र दीयते चार्थ एव हि ॥७७

यह भी महान् तेजस्वी धुन्धु नाम वाला महान् असुर है। यह दाता, भोक्ता-भर्त्ता और यज्ञ कर्म के करने मे दीक्षित है ॥७१॥ देवेश्वर वामन से इतना कह कर भार्गव ब्राह्मणो ने सब ने मिलकर वामन का अर्थकर वचन दैत्य पति से कहा था ॥७२॥ हे दैत्येन्द्र ! इस वामन विप्र को बहुत सुन्दर श्री से सम्पन्न और सभी उपस्करो से समन्वित निवास स्थान प्रदान कीजिए—दासियाँ और अनेक रत्न भी

दीजिएगा ॥७३॥ दैत्यपति ने भार्गव द्विजों के इस वचन को सुनकर वामन से कहा—हे द्विजेन्द्र ! मैं आपको वही देता हूँ जो कुछ भी धन आप चाहते हों ॥७४॥ दासी-गृह-हिरण्य-अश्व-रथ-हाथी-गौ-भूमि-राज्य, वस्त्र आदि जो भी अपनी इच्छा से आप ग्रहण करना चाहें हे प्रभो ! वही सब मैं आपको देने को प्रस्तुत हूँ ॥७५॥ वामन देव ने दानव पति का यह वाक्य श्रवण करके असुरों के स्वामी धुन्धु से स्वार्थ की सिद्धि करने वाला वचन कहा था ॥७६॥ हे राजेन्द्र ! सगे भाई ने जिसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का हरण कर लिया है क्या उसके अर्थ नहीं है ? आप जो धन मुझे दे रहे हैं ॥७७॥

दासीदासाश्च भृत्यांश्च गृह रत्नं परिच्छदान् ।
समर्थेभ्यो द्विजेन्द्रेभ्यः प्रयच्छस्व महाभुज ॥७८
मम प्रमाणमालोक्य मामकं च पदत्रयम् ।
त्व प्रयच्छस्व दैत्येन्द्र एतदेवार्थये ह्यहम् ॥७९
इत्येवमुक्तं वचनंमहात्मनाविहस्यदैत्याधिपतिःसऋत्विजः ।
प्रादाच्च विप्राय पदत्रयं वशी यदा स नान्यत्प्रगृहीतवान्पुनः ॥८०
क्रमत्रयं तावदवेक्ष्य दत्तं महासुरेन्द्रेण विभुर्यथा शशी ।
चक्रे ततो लङ्घयितुं त्रिलोकी त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः ॥८१
कृत्वा च रूप दितिजाश्च हत्वा प्रणम्य चर्षीश्च स च क्रमेण ।
महींमहीध्रैःसहितांसहार्णवाजहाररत्नाकरपत्तनैयुंताम् ॥८२
भुव च नाका त्रिदशाधिवास सोमार्कऋक्षैरभिमण्डित नभः ।
देवो द्वितीयेन जहार वेगात्क्रमेण देवप्रियमीप्सुरीश्वरः ॥८३
क्रमं तृतीय न यदाऽस्य पूरितं तदाऽतिकोपाद्दनुपुङ्गवस्य ।
पपात पृष्ठे भगवांस्त्रिविक्रमो मेरुप्रमाणेन तु विग्रहेण ॥८४

हे महान् भुजाओं वाले ! दासी-दास-भृत्य-गृह-रत्न और परिच्छद उन्हीं द्विजेन्द्रों को आप प्रदान कीजिए जो पूर्ण समर्थ हों ॥७८॥ मेरे प्रमाण को देख कर मेरे ही पैरों के तीन पैंड भूमि अपनी मुझे दीजिए । हे दैत्येन्द्र ! यही मैं आप से चाहता हूँ ॥७९॥ महात्मा के द्वारा इतना ही वचन सुनकर ऋत्विजों के सहित वह दैत्यों का अधिपति

हँस पड़ा और वहीं उसने विप्र के लिये तीन पैंड भूमि देने का वचन दे दिया था क्योंकि अन्य किसी भी वस्तु को लेना उसने स्वीकार ही नहीं किया था ॥८०॥ महासुरेन्द्र के द्वारा दिये हुए पदत्रय की भूमि के क्रम को शशि के भाँति देखा था। विभु ने जिसकी अनन्त शक्ति है त्रिविक्रम रूप धारण करके त्रिलोकी लाँघ लिया था ॥८१॥ ऐसा अपना स्वरूप धारण करके और दितिजों का हनन करके उस प्रभु ने ऋषियों को प्रणाम किया था। पर्वतों के सहित भूमि को क्रम से समन्वित एवं रत्नाकर पत्तनों के सहित हरण कर लिया था ॥८२॥ एक पैंड से तो इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल को नाप लिया था फिर स्वर्ग की भूमि को तथा देवों के निवास स्थान—सोम सूर्य और नक्षत्रों से अभिमण्डित नभ को दूसरे पैंड से देवों के प्रिय करने की इच्छा वाले ईश्वर ने क्रम से वेग के साथ हरण कर लिया था ॥८३॥ जब इसका तीसरा पैंड पूर्ण नहीं हुआ तो उस समय में दनुपुङ्गव पर अत्यन्त कोप किया था और भगवान् त्रिविक्रम ने मेरु प्रमाण विग्रह से पीठ पर उसे डाल दिया था ॥८४॥

पतता वासुदेवेन दानवोपरि नारद ।
त्रिंशद्योजनसाहस्री भूमिर्गर्त्ते दृढीकृता ॥८५
ततो दैत्यं समुत्पाट्य तस्या प्रक्षिप्य वेगतः ।
ववर्ष सिकतावृष्ट्या त चगर्तमपूरयत् ॥८६
ततः स्वर्गं सहस्राक्षो वासुदेवप्रसादतः ।
सुराश्च सर्वे त्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवा. ॥८७
भगवानपि दैत्येन्द्र प्रक्षिप्य सिकतार्णवे ।
कालिन्द्या रूपमाधाय तत्रैवान्तरधीयत ॥८८
एव पुरा विष्णुरभूच्चवामनोधुन्धु विजेतुं च त्रिविक्रमोऽभूत् ।
यस्मिन्स दैत्येन्द्रसुतो जगाम महाश्रमे महर्षे ॥८९

हे नारद ! दानव के ऊपर गिरते हुए वासुदेव ने तीस हजार योजन वाली भूमि को गर्त्त मे दृढ कर दिया था ॥८५॥ इसके अनन्तर दैत्य को उत्पाटित कर वेग से उस गर्त्त मे प्रक्षिप्त कर दिया था। फिर

सिकता की वृष्टि की थी और उस गर्त को भर दिया था ।।८६।। इसके उपरान्त भगवान् वासुदेव के प्रसाद से इन्द्र ने स्वर्ग को और समस्त सुरों ने बिना किसी उपद्रव के त्रैलोक्य की प्राप्ति की थी ।।८७।। भगवान् ने भी दैत्येन्द्र को प्रक्षिप्त करके अर्थात् उस बालू के महा सागर में डाल कर कालिन्दी के रूप को धारण कर वे वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ।।८८।। इस प्रकार से पहिले भगवान् विष्णु वामन हुए थे और धुन्धु को विजित करने के लिये त्रिविक्रम का स्वरूप धारण किया था हे महर्षे ! वह दैत्येन्द्रसुत पुण्य युत महाश्रम में चला गया था ।।८९।।

६९—पुरूरवस उपाख्यान वर्णन

कालिन्दीसलिले स्नात्वा पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ।
उपोष्य रजनीमेकां लिङ्गभेद गिरिं ययौ ।।१
तत्र स्नात्वा च विधिवच्छिवं संपूज्य भक्तितः ।
उपोष्य रजनीमेकां तीर्थं केदारमाव्रजेत् ।।२
तस्मिन्स्नात्वा च विधिवत्समाराध्य जगत्पतिम् ।
उषित्वा वासरान्सप्त कुब्जाम्रं प्रजगाम ह ।।३
तत्र गत्वा महाबाहुरुपवासी जितेन्द्रियः ।
हृषीकेशं समभ्यर्च्य ययौ बदरिकाश्रमम् ।।४
ततोऽप्यनारायणमर्च्यभक्त्यास्नात्वाऽथविद्वान्ससरस्वतीजले ।
वाराहतीर्थे गरुडासनं स दृष्ट्वा समभ्यर्च्यसुभक्तिमाश्च ।।५
भद्रकर्णं ततो गत्वाऽयजच्च शशिशेखरम् ।
ततः संपूज्य च वशी विपाशामभितो ययौ ।।६
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य देवदेवं द्विजप्रियम् ।
इरावत्यां जगन्नाथं ददर्श परमेश्वरम् ।।७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद ने कालिन्दी के जल में स्नान करके भगवान् त्रिविक्रम का पूजन करके और एक रात्रि का उपनिवास करके फिर वह लिंग भेद गिरि पर चले गये थे । वहाँ विधि पूर्वक स्नान करके

भक्ति भाव से शिव का अर्चन किया था और एक रात्रि रह कर केदार-तीर्थ को चले गये थे ॥१-२॥ उस तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान करके और जगत्पति की आराधना करके सात दिन तक वहाँ ठहरे और फिर कुब्जाम्र को चले गये थे ॥३॥ वहाँ पहुँच कर महाबाहु ने उपवास किया था तथा जितेन्द्रिय होकर निवास किया था। भगवान् हृषीकेश की अर्चना करके फिर बदरिकाश्रम को चले गये थे ॥४॥ वहाँ भगवान् नारायण की अर्चना करके उन्हें पूर्ण सन्तुष्ट किया था और भक्ति भाव से विद्वान् ने सरस्वती के जल में स्नान किया था। वाराह तीर्थ में गरुडासन का दर्शन करके सुभक्तिमान् ने उनका भली भाँति अर्चन किया था ॥५॥ इसके उपरान्त भद्रकर्ण में जाकर भगवान् शशिशेखर का यजन किया था। फिर वहीं ने भली भाँति अर्चना करके विपाशा नदी की ओर प्रस्थान किया था ॥६॥ उस विपाशा में स्नान करके द्विजप्रिय देव-देव की अभ्यर्चना की और इरावती में परमेश्वर जगन्नाथ का दर्शन किया था ॥७॥

समाराध्य द्विजश्रेष्ठ शाश्वतं जगतः प्रभुम् ।
समवाप परं रूपमैश्वर्यं च सुदुर्लभम् ॥८
कुष्ठरोगाभिभूतश्च य समाराध्य वै भृगुः ।
आरोग्यमतुल प्राप संतानमपि चाक्षयम् ॥६
अथ पुरूरवा विष्णुमाराध्य द्विजसत्तम ।
विरूपत्व समुत्सृज्य रूप प्राप श्रिया सह ॥१०
श्रूयता कथयिष्यामि महापापप्रणाशनम् ।
पूर्वं त्रेतायुगस्यादौ यथा वृत्त तपोधन ॥११
मद्रदेश इति ख्यातो देशो ब्राह्मणसत्कृतः ।
शाकल नाम नगर ख्यात स्थानीयमुत्तमम् ॥१२
तस्मिन्विपणिवृत्तिस्थः सधर्माढ्योऽभवद्वणिक् ।
धनाढ्यो गुणवान्भोगी नानाशास्त्रविशारदः ॥१३
स कदाचिन्निजाद्राष्ट्रात्सौराष्ट्र गन्तुमुद्यतः ।
सार्थेन महता युक्तो नानाविपणिपण्यवान् ॥१४

हे द्विजश्रेष्ठ ! परम शाश्वत जगत् के प्रभु की भलीभाँति आराधना करके परम रूप तथा सुदुर्लभ ऐश्वर्य के पाने का लाभ किया था ॥८॥ कुष्ठ जैसे महारोग से अभिभूत भृगु ने जिसकी समाराधना करके अतुलनीय आरोग्य को तथा क्षय रहित सन्तति की प्राप्ति की थी ॥९॥ देवर्षि नारद ने कहा—पुरुरवा ने भगवान् विष्णु का किस प्रकार से आराधन किया था ? हे द्विज श्रेष्ठ ! उसने विरूपता का त्याग करके श्री के सहित परम सुन्दर रूप-लावण्य की प्राप्ति की थी ॥१०॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—अब आप सुनिए, मैं महान् पापों के नाश करने वाले को कहता हूँ । पहिले त्रेता युग के आदि में हे तपोधन ! जो कुछ भी हुआ था ॥११॥ ब्राह्मणों के द्वारा सत्कार किया हुआ मद्रदेश, इस नाम से एक देश विख्यात था । वहाँ पर शाकल नाम वाला परमोत्तम स्थानीय एक नगर प्रसिद्ध था ॥१२॥ उस नगर में विपणि वृत्ति में स्थित एक सुधर्म नाम वाला वणिक् हुआ था । वह बहुत धनाढ्य-गुण गण से युक्त-नाना शास्त्रों का महा मनीषी और भोगी था ॥१३॥ वह किसी समय में अपने राष्ट्र से सौराष्ट्र में जाने के लिये समुद्यत हुआ था वह अनेक प्रकार के विपणिपण्य पदार्थों से समन्वित था और एक महान् सार्थ से भी युक्त था अर्थात् विशाल सार्थिओं का भी समुदाय था ॥१४॥

गच्छतः पथि तस्याथ मरुभूमौ कलिप्रिय ।
चौराणामभवद्राश्राववस्कन्दो हि दुःसहः ॥१५
ततः स हृतसर्वस्वो वणिग्दुःखपरिप्लुतः ।
असहायो मरौ तस्मिश्चचारोन्मत्तवद्वशी ॥१६
चरता तदरण्य वै दुःखाक्रान्तेन नारद ।
आत्मनैव शमीवृक्षो महानासादितः शुभः ॥१७
स मृगैः पक्षिभिश्चैव हीनं दृष्ट्वा शमीतरुम् ।
क्षान्तः क्षुत्तृट्परीतात्मा तस्य पार्श्वमुपाविशत् ॥१८
सुप्तश्चापि सुविश्रान्तो मध्याह्ने पुनरुत्थितः ।
समपश्यदथायात प्रेतं प्रेतशतैर्वृतम् ॥१९
उह्यमान तथाऽन्येन प्रेतेन प्रेतनायकम् ।

श्रान्तैः पुरो हि धावद्भिः प्रेतैर्वै रूक्षविग्रहैः ॥२०
अथाजगाम प्रेतोऽसौ पर्यटित्वा धरामिमाम् ।
उपागम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः ॥२१

हे कलि प्रिय ! मार्ग मे गमन करते हुए उसको मरुभूमि आई थी जहा पर चोरो का एक दु:सह अवस्कन्द रात्रि मे हुआ था ॥१५॥ चोरो के हमले के होने पर उसका सभी कुछ अपहृत हो गया था और वह विचारा वणिक् अतीव दुःख से परिप्लुत हो गया था। उस मारवाड भूमि मे सहायता से रहित होकर वह एक वशी उन्मत्त की भाँति वहा विचरण करने लगा था ॥१६॥ हे नारद ! दु:ख से आक्रान्त उसने अपने ही आप उस अरण्य मे विचरण करते हुए एक शमी का वृक्ष जो महान् विशाल एव शुभ्र था प्राप्त कर लिया था ॥१७॥ उस वृक्ष शमी को मृग और पक्षियो से हीन देख कर बहुत ही क्लान्त-भूख-प्यास से परीत आत्मा वाला वह उसके पास मे बैठ गया था ॥१८॥ बहुत ही अधिक थका हुआ था अतएव वही पर वह सो गया था। जब मध्याह्नवेला हुई तो वह फिर उठा था। उसने वहाँ पर सैकडो प्रेतो से समावृत आये हुए एक प्रेत को देखा था ॥१९॥ एक अन्य प्रेत के द्वारा वह प्रेतों का नायक वहन किया जा रहा था और उसके आगे रूक्ष निग्रह वाले प्रेत दौड लगा रहे थे ॥२०॥ इसके अनन्तर वह प्रेत पर्यटन करके इसी भूमि पर समायात हो गया था। शमी के मूल मे आकर उसने उस वणिक् पुत्र को देखा था ॥२१॥

स्वागतेनाभिवाद्येन समाभाष्य परस्परम् ।
सुखोपविष्टश्छायाया हृष्टः कुशलमाप्तवान् ॥२२
प्रेताधिपतिना पृष्टः स च तेन वणिक्सखे ।
कुत आगम्यते ब्रूहि क्व वासो वा भविष्यति ॥२३
कथं चेद महारण्य मृगपक्षिविवर्जितम् ।
समापन्नोऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥२४
एव प्रेताधिपतिना वणिक्पृष्टः समासतः ।
सर्वमाख्यातवान्ब्रह्मन्स्वदेशधनविच्युतिम् ॥२५

तस्य श्रुत्वा स वृत्तान्तं तस्य दु खेन दुःखितः।
वणिक्पुत्रं ततः प्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत् ॥२६
एवं गतेऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
भूयोऽप्यर्था भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं तव ॥२७
भाग्यक्षयेऽर्थाः क्षीयन्ते भवन्त्यभ्युदये पुनः।
क्षीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयो भवेत् ॥२८

इसका स्वागत वचनों के साथ अभिवादन करके परस्पर में भली भाँति भाषण करते हुए उस वृक्ष की छाया में सुख पूर्वक बैठ गया था और परम प्रसन्न होकर कुशल प्राप्त किया था ॥२२॥ उस प्रेतों के अधिपति ने उस वणिक से पूछा था—हे वणिक् मित्र! तुम यह बतलाओ कि कहाँ से आ रहे हो और आपका वास कहाँ होगा? ॥२३॥ इस महान् अरण्य में जो एक दम मृग और पक्षियों से भी शून्य है आप कैसे प्राप्त हुए हैं। आपको भला हो—मुझे यह सभी हाल आप बतलाने के योग्य होते हैं ॥२४॥ इस प्रकार से प्रेतों के अधिपति के द्वारा वह वणिक पुत्र संक्षेप में पूछा गया था। उस वणिक् ने भी सम्पूर्ण हाल हे ब्रह्मन्! बता दिया था जिसमें देश और अपने धन के अपहरण होने का भी समाचार था ॥२५॥ उसके पूरे वृत्तान्त को सुनकर वह प्रेत नायक उसके दु ख से अत्यन्त दु:खित हुआ था। इसके पश्चात् वह प्रेत पाल अपने बन्धु की भाँति उस वणिक् पुत्र से कहने लगा ॥२६॥ हे सुव्रत! ऐसी दुर्घटना हो जाने पर भी आप विशेष शोक मत करिये। [यदि आपके भाग्य में बल है तो ये धन फिर भी सब हो जायगे ॥२७॥ [भाग्य के क्षय अर्थात् मन्द हो जाने पर ही धनों का भी क्षय हो जाया करता है। फिर जब भाग्य का उदय होता है तो फिर ये प्राप्त हो जाया करते हैं। चिन्ता से इस शरीर को क्षीण बना देने पर धन का या भाग्य का उदय नहीं हुआ करता है ॥२८॥

इत्युक्त्वार्यं समाहूय स्वान्भृत्यान्वाक्यमब्रवीत्।
अयमतिथिरयपूज्यः सहृजो देशजो मम ॥२९

अस्मिन्दृष्टे वणिक्पुत्रे दृष्टाः स्वजनबान्धवाः ।
अस्मिन्समागते प्रेताः प्रीतिर्जाता ममातुला ॥३०
एव हि वदतस्तस्य मृत्पात्र सुदृढ नवम् ।
दध्योदनेन सपूर्णमाजगाम यथेप्सितम् ॥३१
तथा नवा च सुदृढा सपूर्णा परमाम्भसा ।
वारिधानी च सप्राप्ता प्रेतानामग्रत. स्थिता ॥३२
तामागता ससलिला साम्ना वोक्ष्य महामतिः ।
प्राहोत्तिष्ठ वणिक्पुत्र स्वमाह्निकमुपाचर ॥३३
ततस्तु वारिधान्यास्तौ सलिलेन विधानतः ।
कृताह्निकावुभौ जातौ वणिक्प्रेत प्रभुस्तया ॥३४
ततो वणिक्सुतायासौ दध्योदनमथेच्छया ।
दत्वा तेभ्यश्च सर्वेभ्यः शेषमन्नमधात्तत. ॥३५

इतना वणिक् से कह कर उस प्रेत नायक ने अपने भृत्यो को बुलाकर उनसे कहा था—आज यह अतिथि प्राप्त हो गया है जो सहज-हे राज और मेरा पूज्य है ॥२९॥ इस वणिक् पुत्र के देख लेने पर सभी स्वजन बान्धव गण प्रसन्न हुए देखे गये थे। इसके समागत होने पर हे प्रेतो ! मुझे अतुल प्रीति उत्पन्न हो गई है ॥३०॥ इस प्रकार से उसके कथन करते हुए ही एक मिट्टी का नवीन बहुत मजबूत पात्र दधि और ओदन मे भरा हुआ जो यथेप्सित था वहाँ पर आ गया था ॥३१॥ उसी प्रकार से एक नूतन एवं सुदृढ तथा जल से पूरी भरी हुई वारिधानी भी वहाँ प्राप्त हो गई थी जो प्रेतो के आगे मे स्थित हो गई थी ॥३२॥ उस समागत सलिल से परिपूर्ण तथा अन्न से भी युक्त उसको देखकर महान् मति वाले ने कहा—हे वणिक् पुत्र ! आप उठिये और अपना आह्निक का समाचरण करें ॥३३॥ इसके उपरान्त उन दोनों ने जिनमे वह वणिक् और प्रेत नायक थे उस वारिधानी के जल से विधान पूर्वक अपना आह्निक किया था ॥३४॥ इसके पश्चात् इसने उस वणिक् सुत के लिये इच्छा से दध्योदन देकर इसके पश्चात् शेष अन्न को उन सबको दिया था ॥३५॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु कामतोऽम्भसि सेविते ।
अनन्तरं स बुभुजे प्रेतपालो वराशनम् ॥३६
तृप्ते प्रेते प्रकामं तु वारिधान्योदनं तथा ।
अन्तर्धानमगाद्ब्रह्मन्वणिक्पुत्रस्य पश्यतः ॥३७
ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा स मतिमान्वणिक् ।
पप्रच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमना वशी ॥३८
अरण्ये निर्जने साधो कुतोऽन्नस्य समुद्भवः ।
कुतश्च वारिधानीयं संपूर्णा परमाम्भसा ॥३९
तथाऽपि तव ये भृत्यास्त्वत्तस्ते वर्णतः कृशाः ।
भवानपि च तेजस्वी किंचित्पुष्टवपुः शुभः ॥४०
शुक्लवस्त्रपरीधानो बहूनां परिपालकः ।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व को भवान्का शमी त्वियम् ॥४१
इत्थं वणिग्वचः श्रुत्वा ततोऽसौ प्रेतनायकः ।
शशंस सर्वमस्याय यथावृत्तं पुरातनम् ॥४२

सबके भुक्तवान् हो जाने पर तथा जल के सेवन कर लेने पर जो कि इच्छा पूर्वक किया गया था इसके अनन्तर उस प्रेतपाल ने वह वराशन स्वयं खाया था अर्थात् सब के खाने-पीने के पीछे ही स्वयं भोजन किया था जैसा कि शिष्टाचारानुमत है ॥३६॥ इच्छा पूर्वक भली भाँति उस प्रेत के तृप्त हो जाने पर जिसके पश्चात् वह वारिधानी और दध्योदन पात्र वहीं अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थे । हे ब्रह्मन् ! इस दृश्य को वह वणिक् पुत्र अपनी आँखों से देख रहा था ॥३७॥ इस एक अतीव अद्भुत दृश्य को देखकर उस मतिमान् वणिक् ने उस प्रेतपाल से मन में परम कौतूहल धारण करते हुए उससे वशी ने पूछा था ॥३८॥ हे साधो ! इस निर्जन अरण्य में अन्न की उत्पत्ति कैसे हो गई और सुन्दर जल से पूर्ण यह वारिधानी भी कहाँ से प्राप्त हो गई है ? ॥३९॥ आपके ये भृत्य हैं वे आप से भी वर्ण से कृश हैं और आप तो एक तेजस्वी और परिपुष्ट शरीर वाले परम शुभ हैं ॥४०॥ आप शुक्ल वस्त्रों के परिधान करने वाले बहुतों के परिपालक हैं । आप मुझे यह सभी

बतलाइये कि आप कौन हैं और यह शमी कौन हैं ॥४१॥ इस प्रकार के वणिक् के वचन को सुनकर इसके पश्चात् उस प्रेत नायक ने सम्पूर्ण पुरातन वृत्तान्त इसको कह डाला था ॥४२॥

अहमासं पुरा विप्र शाकले नगरोत्तमे ।
सोमशर्मेति विख्यातो बहुलागर्भ संभवः ॥४३
ममासीत्त्व वणिक् श्रीमान्प्रातिवेश्यो महाधनः ।
स तु सोमश्रवा नाम विष्णुभक्तो महायशाः ॥४४
सोऽहं कदर्यो मूढात्मा धनेऽपि सति दुर्मतिः ।
न ददामि द्विजातिभ्यो न चाऽश्नाम्यन्नमुत्तमम् ॥४५
प्रमादाद्यदि भुञ्जेऽहं दधिक्षीरघृतान्वितम् ।
ततो रात्रौ त्रिभिर्घोरैस्ताड्यमानश्च यष्टिभिः ॥४६
प्रातर्भवति मे घोरा मृत्युतुल्या विषूचिका ।
न च कश्चिन्ममाभ्याशे तत्र तिष्ठति बान्धवः ॥४७
कथं कथमपि प्राणा मया वै संप्रधारिताः ।
एवमेतादृशः पापी निवसाम्यति निर्घृणः ॥४८
सौवीरांतलपिण्याकतुषशाकादिभोजनैः ।
क्षपयामि कदन्नाद्यैरात्मानं कालयापनैः ॥४९

हे विप्र ! मैं पहिले उत्तम नगर शाकल में था। बहुला के गर्भ से मैं समुत्पन्न हुआ था और मैं सोम शर्मा के नाम से लोक में विख्यात था। मेरा परम श्रीमान् महान् धनी वणिक प्रातिवेश्य था। उसका नाम सोमश्रवा था। वह महान् यशस्वी और विष्णु का भक्त था ॥४३-४४॥ वह मैं इतना नीच वृत्तिवाला और मूढ था कि धन के रहने पर भी दुष्ट बुद्धि वाला था। न तो कभी द्विजातियों को दान देता था और न स्वयं ही उत्तम अन्न का उपयोग किया करता था ॥४५॥ प्रमाद से यदि मैं कुछ खा-पी भी लूं जोकि दधि और घृत से युक्त हो तो रात्रि में परम घोर तीन यष्टियों से ताड्यमान होता था ॥४६॥ प्रातःकाल में मुझे मृत तुल्य अति घोर विषूचिका हो जाती थी। मेरे समीप में कोई बान्धव नहीं रहा करता था ॥४७॥ किसी-किसी भी कठिनाई से मैंने

अपने प्राणों को धारण किया था। इस प्रकार का महा पापी अत्यन्त निर्घृण वहाँ पर रहा करता था ॥४८॥ सौवीर–तिल-पिण्याक-तुष और शाकादि के भोजनों से और काल का यापन करने वाले कदन्नों के द्वारा आत्मा को क्षपित करता हूँ ॥४६॥

एव तत्र सतो मित्र महान्कालोऽभ्यगादथ।
श्रवणद्वादशी नाम मासि भाद्रपदेऽभवत् ॥५०
ततो नागरिको लोको गतः स्नातु हि सगमम्।
इरावत्या नड्वलाया ब्रह्मक्षत्रपुरस्सर. ॥५१
प्रातिवेश्यप्रसङ्गेन तत्राप्यनुगतोऽस्म्यहम्।
कृतोपवास शुचिमानेकादश्या यतव्रतः ॥५२
तत सगमतोयेन वारिधानी दृढा नवाम्।
सपूर्णां वस्तुसवीता छत्रोपानत्सुसयुताम् ॥५३
मृत्पात्रमतिमृष्टस्य पूर्णं दध्योदनस्य वै।
प्रदत्त ब्राह्मणायोच्चै. शुचये जातिकर्मणा ॥५४
तदेव जीवता दत्त मया दान वणिक् सुत।
वर्षाणा सप्ततीना वै नान्यद्दत्त हि किंचन ॥५५
मृत. प्रेतत्वमापन्नो दत्त्वा प्रेतान्नमेव हि।
अमी चादत्तदानास्तु मद्दत्तान्नोपजीविन ॥५६
एतत्ते कारण प्रोक्तं यत्तदन्नं पयोऽम्भसा।
दत्त तदिदमायाति मध्याह्नेऽपि दिने दिने ॥५७

हे मित्र! वहाँ पर इस प्रकार से रहते हुए मुझे महान् काल व्यतीत होगया था। भाद्रपद मास मे श्रवण द्वादशी आई थी ॥५०॥ उस समय में नगर में रहने वाले सब लोग सगम में स्नान करने के लिए गये थे इरावती नड्वला और ब्रह्मक्षत्र भी उसमें था ॥५१॥ पड़ोस के प्रसंग से मैं भी उन सबके पीछे चला गया था। एकादशी तिथि मे यत व्रत वाला होकर मैंने उपवास किया था और शुचिमान् होगया था ॥५२॥ इसके अनन्तर सगम के जल से एक परम सुदृढ नवीन वारि- धानी जो पूर्ण भरी हुई थी वस्तु से सवीत थी और छत्र तथा उपानद्,

से भी समन्वित थी। अतिमृष्ट दध्योदन से पूर्ण एक जाति और कर्म से अत्यन्त पवित्र ब्राह्मण के लिये दान दिया था ॥५३-५४॥ हे वणिक सुत! जीवित रहते हुए मैंने बस वही दान दिया था। सत्तर वर्षो की अवस्था मेरी होगई थी किन्तु मैंने इसके सिवाय अन्य कुछ भी कभी किसी को दान नहीं दिया था ॥५५॥ जब मैं मर गया तो प्रेत योनि मुझे प्राप्त हुई थी और इस प्रेतान्न को देकर ही यह मुझे प्राप्त हुई थी। ये जो सब हैं इन्होंने कुछ भी दान नहीं दिया था। अतएव मेरे दिये हुए अन्न से ही ये सब उपजीवी हैं ॥५६॥ यही इसका कारण है जो मैंने तुमको बतला दिया है। यह वही अन्न और जल है जो मैंने दिया था। यह प्रतिदिन मध्याह्न समय में प्राप्त होता है ॥५७॥

यावन्नाह च भुञ्जेऽन्नं न तावत्क्षयमेति च।
मयि भुक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत् ॥५८
आतपत्रप्रदानाच्च सोऽयं जातः शमीतरुः।
उपानद्युगले दत्त प्रेतो मे वाहनं भवेत् ॥५९
इदं तवोक्तं सर्वं च यथा कीनाशतात्मनः।
श्रवणद्वादशी पुण्या तथोक्तं पुण्यवर्धनम् ॥६०
इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रोऽब्रवीद्वच।
यन्मया तात कर्तव्यं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥६१
ततस्य वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य नारद।
प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः ॥६२
यत्त्वया तात कर्तव्यं मद्धितार्थं महामते।
कथयिष्यामि सम्यक्तं तव श्रेयस्करं मम ॥६३
गयातीर्थे तु जुहुयात्स्नात्वा शौचसमन्वितः।
मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्वपणं कुरु ॥६४

जब तक मैं इस अन्न को नहीं खाता हूँ तब तक यह क्षय को प्राप्त नहीं होता है। मेरे खाने और पीने के बाद यह सब अन्तर्हित हो जाया करता है ॥५८॥ क्योंकि मैंने छत्र का भी दान दिया था वही यह शमी तरु होगया है। मैंने एक जोड़ा जूतों का दिया था उसी का फल

यह है कि प्रेत मेरा वाहन बन कर रहता है ॥५९॥ जिस प्रकार से मुझे यह कीनाशता प्राप्त हुई है वह सभी आपको बतलादी है। श्रवण द्वादशी परम पुण्यमयी है वह पुण्य का वर्धन बतला दिया है ॥६०॥ इस प्रकार के वचन कहने पर वह वणिक पुत्र यह वचन बोला—हे तात ! अब मुझे जो भी कुछ करना चाहिए उसकी आज्ञा मुझे आप दीजिए। ॥६१॥ हे नारद ! वणिक पुत्र के उस वचन को सुन कर प्रेतपाल ने फिर स्वार्थ की सिद्धि करने वाला वचन कहा था ॥६२॥ हे महामते ! हे तात ! मेरे हित के लिये जो कुछ भी आपको करना चाहिए वह मैं अब तुमको बतलाता हूँ जो भली भाँति तुम्हारा और मेरा दोनों के कल्याण के करने वाला है ॥६३॥ गया तीर्थ में स्नान करके तथा शौच से सम्पन्न होकर हवन करना चाहिए। मेरे नाम का उद्देश्य लेकर वहाँ पर पिण्डों का निर्वपन भी करना चाहिए ॥६४॥

तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सखे ।
मुक्तस्तु सर्वदातृणा यास्यामि सहलोकताम् ॥६५
तिथिर्या द्वादशी पुण्या मासि प्रौष्ठपदे सिता ।
बुधश्रवणसयुक्ता साऽतिश्रेयस्करी स्मृता ॥६६
इत्येवमुक्त्वा वणिज प्रेतराजोऽनुगैः सह ।
स च मेने यथान्याय सम्यगाप्यातवाञ्छुचिः ॥६७
प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो मरुमण्डलम् ।
रम्येऽथ शूरसेनाख्ये देशे प्राप्तः स वै वणिक् ॥६८
स्वकर्मधर्मयोगेन धनमुच्चावच बहु ।
उपार्जयित्वा प्रययौ गयातीर्थमनुत्तमम् ॥६९
पिण्डनिर्वपण तत्र प्रेतानामनुपूर्वकम् ।
चकाराथ स्वबन्धूना पितृणा तदनन्तरम् ॥७०
आत्मनश्च तथा बुद्धिमहच्छ्राद्धं तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वपण चक्रे तथाऽन्यानपि गोत्रजान् ॥७१
एव प्रदत्तेष्वथ च पश्च पिण्डेषु भावतः ।
विमुक्तास्ते द्विजाः प्राप्य ब्रह्मलोकं ततो गताः ॥७२

हे मखे ! वहाँ पर पिण्ड प्रदान करने से मैं इस प्रेत भाव से मुक्त होकर सब दाताओं के सहभोक्ता को प्राप्त हो जाऊगा ॥६५॥ और यह मास में सित पक्ष में जो परम पुण्यमयी द्वादशी तिथि है जो बुध और श्रवण से युक्त हो वह अत्यन्त ही कल्याण करने वाली बताई गई है ॥६६॥ इतना उस वणिक् से कहकर वह अपने अनुगमन करने वालों के साथ ही प्रेत के कन्धे पर चढ कर मरुमण्डल को छोड़कर चल दिया था और उसने युक्तिपूर्वक यथा न्याय ठीक ही कह दिया है—ऐसा मान लिया था। वह वणिक भी शूरसेन नाम वाले अति रमणीय देश में प्राप्त हो गया था ॥६७-६८॥ अपने कर्म और धर्म के योग से उच्चावच धन का अर्जन करके फिर गयाक्षेत्र परम तीर्थ में वह चला गया था ॥६९॥ वहाँ पर उसने प्रेतों का आनपूर्वी के अनुसार पिण्डों का निर्वपन किया था फिर अपने अनुगम के लिये पिण्डदान किया था ॥७०॥ आत्मा के समान बुद्धि थी तथा तिलों के बिना महान् श्राद्ध किया था एवं पिण्डों का भी निर्वपन किया था। जो अन्य गोत्रज थे उन के लिये भी सभी कुछ किया था ॥७१॥ इस प्रकार से पाच पिण्डों के देने पर वे सब भाव पूर्वक पिण्डदान से द्विज विमुक्त हो गये थे और ब्रह्मलोक को प्राप्त हो गये थे ॥७२॥

स चापि हि वणिक्पुत्रो निजमालयमाव्रजत् ।
श्रवणद्वादशी कृत्वा कालधर्ममुपेयिवान् ॥७३
गन्धर्वलोके सुचिरं भोगान्भुक्त्वा सुदुर्लभान् ।
जन्म मानुष्यमासाद्य स चाभूत्सकले विराट् ॥७४
स्वधर्मकर्मवृत्तिस्थः श्रवणद्वादशीरतः ।
कालधर्ममवाप्यासौ गुह्यकावासमाश्रयत् ॥७५
तत्रोष्य सुचिरं कालं भोगान्भुक्त्वा च कामतः ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्य राजन्यतनयोऽभवत् ॥७६
तत्रापि क्षत्रवृत्तिस्थो दानभोगरतो वशी ।
गोग्रहेऽरिगणं जित्वा कालधर्ममुपेयिवान् ।
शक्रलोकमवाप्याथ देवैः सर्वैः सुपूजितः ॥७७

फिर वह वणिक् पुत्र भी अपने घर मे आगया था । श्रवण द्वादशी करके वह काल धर्म को प्राप्त हुआ था ॥७३॥ अपना समुचित कर्म तथा योग्य धर्म की वृत्ति म स्थित वह श्रवण द्वादशी में रति रखने वाला हुआ था । यह काल धर्म को प्राप्त करके गुह्यकों के लोक में पहुँच कर निवास करने लगा था । ग धर्व लोक में बहुत समय तक भोगो का उपभोग किया था जो सामान्यतया दुर्लभ हैं । मनुष्य जन्म प्राप्त करके सकल लोक म विराट् होगया था ॥७४-७५॥ वहीं पर चिरकाल तक रहकर और स्वेच्छा पूर्वक भोगो का उपभोग करके फिर मर्त्य लोक मे आकर राजा का पुत्र हुआ था ॥७६॥ वहा पर भी क्षत्रियो की वृत्ति में स्थित होकर दान और भोग दोनो मे रति रखने वाला बली गो ग्रहण मे शत्रु गण जीत कर काल धर्म को प्राप्त हुआ था । फिर इन्द्रलोक में पहु च कर सभी देवों के द्वारा समर्चित हुआ था ॥७७॥

पुण्यक्षयात्परिभ्रष्ट शाकले सोऽभवद्द्विजः ।
ततो विकटरूपोऽसौ सर्वशास्त्रस्य पारग ॥७८
व्यवाहयद्द्विजसुता रूपेणानुपमा द्विज ।
सा च मेने च भर्तारं सुशीलमपि भामिनी ॥७९
विरूपमिति मन्वानस्तत सोऽभूत्सुदु खित ।
ततो निर्वेदसंयुक्तो गत्वाऽऽश्रमपद महत् ॥८०
इरावत्यास्तटे श्रीमान्रूपधारिणमासदत् ।
समाराध्य जगन्नाथ नक्षत्रपुरुषेण हि ॥८१
सरूपतामवाप्याथ तस्मिन्नेव च जन्मनि ।
तत प्रियोऽभूद्भार्याया भोगवाश्चाभवद्वशी ॥८२
श्रवणद्वादशीभक्तः पूर्वाभ्यासादजायत ॥८३
एव पुराऽसौ द्विजपुङ्गवस्तु कुरूपरूपो भगवत्प्रसादात् ।
अनङ्गरूपप्रतिमो बभूव मृतश्च राजा स पुरूरवाऽभूत् ॥८४

जब पुण्यों का क्षय होगया तो फिर वह वहीं से परिभ्रष्ट होकर शाकल द्वीप मे एक द्विज हुवा । फिर यह विकट रूप वाला था और

सभी शास्त्रों का पारगामी महापण्डित हुआ था ॥७८॥ हे द्विज ! फिर इसने रूप लावण्य से अनुपम एक द्विज की पुत्री के साथ विवाह किया था। उसने भी भामिनी ने अपने भर्त्ता को सुशील भी मानती थी ॥७९॥ अपने आपको विरूप मानते हुए वह अत्यन्त दुःखित हुआ था। उसको फिर निर्वेद हो गया था और वह एक महान् आश्रम के स्थान में चला गया था ॥८०॥ इरावती के तट हर श्रीमान् ने रूप धारण करने वाले को प्राप्त किया था नक्षत्र पुरुष के द्वारा उस जगन्नाथ की समाराधना करके सरूपता को प्राप्त किया था और फिर उसी जन्म में भार्या का प्रिय हो गया था तथा वही वह भोगवान् भी हो गया था ॥८१-८२॥ श्रवण द्वादशी का भक्त पूर्वाभ्यास से हुआ था ॥८३॥ इस प्रकार से पहले वह द्विजश्रेष्ठ कुरूप रूप वाला था किन्तु फिर भगवान् के प्रसाद से कामदेव के तुल्य रूप वाला हो गया था और मरने के पश्चात् वही पुरूरवा राजा हुआ था ॥८४॥

८०--नक्षत्र पुरुष पूजा विधान वर्णन

पुरूरवा द्विजश्रेष्ठ यथा देवं श्रियः पतिम् ।
नक्षत्रपुरुषाख्येन आराधयत तद्वद ॥१
श्रूयतां कथयिष्यामि नक्षत्रपुरुषव्रतम् ।
नक्षत्राङ्गानि देवस्य यानि यानीह नारद ॥२
मूलर्क्षं चरणौ विष्णोर्जङ्घे द्वे रोहिणीस्थिते ।
कवन्धिनी तथाऽश्विन्यौ संस्थिते रूपधारिणः ॥३
आषाढे च तथैव स्फिग्गुह्यस्थं फाल्गुनीद्वयम् ।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः ॥४
ऊरुसंस्था चानुराधा धनिष्ठा पृष्ठसंस्थिता ।
विशाखा भुजयोर्हस्तः करद्वयमनुत्तमम् ॥५
पुनर्वसुरथो गुल्फौ नखे सार्पं तथोच्यते ।
ज्येष्ठा ग्रावा स्थिता तस्य श्रवणं कर्णयोः स्थितम् ॥६

ओष्ठसंस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्तेषु कीर्तिताः।
हनौ पुनर्वसुश्चोक्तो नासा मैत्रमुदाहृतम् ॥७

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पुरूरवा ने श्री के पति देवकी नक्षत्र पुरुष के नाम से जिस प्रकार आराधना की थी उसे आप मुझे बतलाइये। महर्षि पुलस्त्य ने कहा—आप सुनिये। मैं नक्षत्र पुरुष व्रत को बतलाता हूँ। हे नारद ! यहाँ पर देव के जो—जो भी नक्षत्राङ्ग हैं उन्हें भी बतला रहा हूँ ॥१-२॥ भगवान् विष्णु के मूल नक्षत्र चरण हैं और दो रोहिणी जाँघें हैं। रूपधारी प्रभु की दर्वा दोनों अश्विनी सस्थित है ॥३॥ दोनों आषाढ़ा स्फिग हैं और दोनों फल्गुनी गुह्य में स्थित हैं। कटि में कृत्तिका वासुदेव के विराजमान हैं ॥४॥ अनुराधा अरु में संस्थित है और धनिष्ठा पृष्ठ भाग में विराजमान है। विशाखा दोनों भुजाओं में तथा हस्त उत्तम कर द्वय में है और नख में सर्प कहा जाता है। ज्येष्ठा ग्रीवा में स्थित है तथा उनके कर्ण में श्रवण संस्थित है ॥६॥ पुष्य ओष्ठ में स्थित रहता है एवं स्वाति दाँतों में विराजमान है। ठोडी में पुनर्वसु बताया गया है और नासिका मैत्र कहा गया है ॥७॥

प्राजापत्य नेत्रयुग्मे रूपधारि प्रतिष्ठितम् ॥८
शिरोरुहास्तथवेन्द्र नक्षत्राङ्गमिदं हरे।
विधानं सम्प्रवक्ष्यामि यथान्यायेन नारद ॥९

सपूजितो हरिर्धीमान्विदधाति यथेप्सितम्।
चैत्रमासेऽसिताष्टम्यां यदा मूलगतः शशी ॥१०

तदा तु भगवत्पादौ पूजयेच्च विधानतः।
नक्षत्रपुरुषे दद्याद्विप्रेन्द्राय च भोजनम् ॥११

जानुनौ रोहिणीयोगे पूजयेदथ भक्तितः।
दोहदे वै हविष्यान्नं पूर्वं च द्विजभोजनम् ॥१२
आषाढाभ्यां तथा द्वाभ्यां स्फिग्रूप पूजयेद् बुधः।
सलिलं शिशिरं तत्र दोहदे च प्रकीर्तितम् ॥१३

फाल्गुनीद्वितीये गुह्यं पूजनीयं विचक्षणैः ।
दोहदं च पयो गव्यं देयं च द्विजभोजनम् ॥१४

दोनों नेत्रों में प्राजापत्य रूपधारी प्रतिष्ठित है तथा शिरोरुह ऐन्द्र हैं—यह हरि का नक्षत्राम होता है । हे नारद ! अब यथान्याय विधान बतलाऊँगा ॥८-९॥ भली भाँति पूजा किये गये धीमान् श्री हरि जो भी इप्सित हो उसे देते हैं जिस समय में चैत्र मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में शशी मूल गत होता है उस समय में विधि पूर्वक भगवान् के चरणों की पूजा करनी चाहिए ॥१०-११॥ रोहिणी के योग में दोनों जानुओं का पूजन भक्तिभाव से करे । दोहद में हविष्यान्न और पूर्व में द्विज भोजन देवे ॥१२॥ स्फिग रूप वाले दोनों आषाढ़ाओं में बुध को पूजन करना चाहिए । वहाँ पर दोहद में शिशिर सलिल बतलाया गया है ॥१३॥ दोनों फाल्गुनीयों में विचक्षणों के द्वारा गुह्य का पूजन करना चाहिए । दोहद गव्य पय और द्विज भोजन देना चाहिए ॥१४॥

कृत्तिकासु कटिः पूज्या सोपवासैर्जितेन्द्रियैः ।
दोहदं च विभोर्देयं सुगन्धं कुसुमोदकम् ॥१५
पार्श्वौ भाद्रपदायुग्मे पूजयित्वा विधानतः ।
गुडं शालेयकं दद्याद्दोहददेवप्रीतिदम् ॥१६
द्वे कुक्षी रेवतीयोगे दोहदे मुद्गमोदकः ।
अनुराधासु वक्षोऽस्य षष्टिकान्नं च दोहदे ॥१७
धनिष्ठायां तथा पूज्यः शालिभक्तं च दोहदे ।
भुजयुग्मं विशाखासु दोहदे परमौदनम् ॥१८
हस्ते हस्तौ तथा पूज्यौ यावकं दोहदे स्मृतम् ।
पुनर्वस्वङ्गुलीयुग्मं पटोलस्तत्र दोहदे ॥१९
नखाश्लेषासु सपूज्या दोहदे तित्तिरामिषम् ।
ज्येष्ठायां पूजयेद्ग्रीवां दोहदे तिलमोदकः ॥२०
श्रवणे श्रवणौ पूज्यौ दधिभक्तं च दोहदे ।
पुष्ये मुखं तु सपूज्यं दोहदे घृतपायसम् ॥२१

कृत्तिकाओं में कटि का पूजन करना चाहिए। और उपवास रख कर इन्द्रियों को जीतते हुए ही करे। विभु को दोहद सुगन्ध कुसुमोदक देना चाहिए ॥१५॥ दोनों भाद्र पदाओं में दोनों पार्श्वों का विधान के सहित यजन करे। गुड़ और शाकेयक देव को प्रीति प्रदान करने वाला दोहद देना चाहिए ॥१६॥ रेवती के योग में दोनों कुक्षियों का पूजन करे और दोहद में मूंग के मोदक देवे। अनुराधाओं में ऊरुद्वय का पूजन करे और दोहद में षष्टिकान्न देना चाहिए ॥१७॥ धनिष्ठा में उसी भाँति पूजन करे तथा दोहद में शाली का भात देवे। विशाखा में दोनों भुजाओं का पूजन करे और दोहद में परमोदन समर्पित करे ॥१८॥ हस्त हाथों का यजन करे तथा दोहद यावक बतलाया गया है। पुनर्वसु में दो अँगुलियाँ पूजे और दोहद में पटोल देवे ॥१९॥ आश्लेषा में नखों का यजन करना चाहिए तथा दोहद में तीतर का आमिष देवे। ज्येष्ठा में ग्रीवा का अर्चन करे तथा दोहद में तिलों के लड्डू अर्पित करे ॥२०॥ श्रवण में दोनों कानों का पूजन करे एवं दोहद में दही और भात देवे। पुष्य में मुख को भली भाँति पूजित करके दोहद में घृत और पायस देना चाहिए ॥२१॥

स्वातियोगे च दशना दोहदे तिलशष्कुली।
दातव्य केशवप्रीत्यै ब्राह्मणस्य च भोजनम् ॥२२
हनू शतभिषायोगे पूजयेच्च प्रयत्नत.।
प्रियङ्गु भक्त देय च दोहदे मधुघातिनि ॥२३
मघासु नासिका पूज्या मधुराज्य च दोहदे।
मृगोत्तमाङ्गे नयने मृगमास च दोहदे ॥२४
चित्रायोगे ललाट च दोहदे चारु भोजनम्।
भरणीषु शिर पूज्य चारु भक्ष्य च दोहदे ॥२५
सपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायोगे शिरोरुहा.।
विप्राश्च भोजयेद्भक्त्या दोहदे च गुडार्द्रकम् ॥२६
नक्षत्रयोगेष्वेतेषु सपूज्य जगत' पतिम्।
पूजिते दक्षिणा दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥२७

छत्रोपानद्वस्त्रयुगं सप्तधान्यं सकाञ्चनम् ।
घृतपात्रं च गा दोग्ध्री ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥२८

स्वाति नक्षत्र के योग में दशनों का पूजन है और दोहद में तिल और शठकुली अर्पित करने चाहिए। भगवान् केशव की प्रीति के लिये ब्राह्मण को भोजन देवे ॥२२॥ शतभिषा नक्षत्र के योग में हनू का अर्चन प्रयत्न पूर्वक करे। प्रियङ्गु का भात दोहद में देवे जो मधु वाली हो ॥२३॥ मघाओं में नासिका पूजन करना चाहिए और दोहद में मधु एवं आज्य देवे। मृगोत्तमाङ्ग में मदन तथा मृगाभिष देवे ॥२४॥ चित्रा के योग में ललाट का पूजन करे और दोहद में षाड भोजन देवे। भरणी नक्षत्रों में शिर का पूजन करे तथा दोहद में सुन्दर भक्ष्य पदार्थ देवे। विद्वान पुरुषों के द्वारा आर्द्रा के योग में शिरो रुहों का भली भाँति पूजन करना चाहिए तथा दोहद में विप्रों को गुड और आर्दक का भक्ति पूर्वक भोजन कराना चाहिए ॥२५-२६॥ इन नक्षत्रों के योगों में जगत् के स्वामी का पूजन करे। पूजित होने पर वेदों के पारगामी ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिए ॥२७॥ छत्र-उपानत्-दो वस्त्र-सात धान्य-काञ्चन घृत का पात्र-गौ जो दूध देने वाली हो ब्राह्मणों की सेवा में निवेदित करे ॥२८॥

प्रतिनक्षत्रयोगेन पूजनीया द्विजातयः ।
नक्षत्रज्ञाय विप्राय पृथग्दद्याच्च दक्षिणाम् ॥२९

नक्षत्रपुरुषाख्यं हि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
पूर्वं कृतं हि भृगुणा सर्वपातक नाशनम् ॥३०

अङ्गोपाङ्गानि देवर्षे पूजनीयानि वै प्रभोः ।
सुरूपाण्यभिजायन्ते प्रत्यङ्गाङ्गानि चैव हि ॥३१

सप्तजन्मकृतं पापं कलिसङ्गागतं च यत् ।
पितृमातृसमुत्थं च तत्सर्वं हन्ति केशवः ॥३२

सर्वाणि भद्राण्याप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम् ।
अनन्ता मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ॥३३

वाङ्माधुर्यं तथा कान्तिं यच्चान्यदभिवाञ्छितम् ।
ददाति नक्षत्रपुमान्पूजितस्तु जनार्दनः ॥३४
उपोष्य सम्यगेतेषु क्रमेणर्क्षेषु नारद ।
अरुन्धती महाभागा ख्यातिमग्र्या जगाम ह ॥३५

प्रत्येक नक्षत्र के योग में द्विजातियों का पूजन करना आवश्यक है जो विप्र नक्षत्रों का ज्ञाता हो उसे पृथक् दक्षिणा देनी चाहिए ॥२६॥ यह नक्षत्र पुरुष नाम वाला व्रत अन्य सभी व्रतों में उत्तम व्रत होता है। पहिले इस व्रत को भृगु महर्षि ने किया था जो समस्त पातकों का नाश करने वाला है ॥३०॥ हे देवर्षे ! प्रभु के सभी अंग और उपांग पूजन के योग्य होने चाहिए। इससे प्रत्यक अंग शुद्ध हो जाया करते हैं ॥३१॥ सात जन्मों में किया हुआ पाप और जो कलियुग के संग से आया हुआ पाप है तथा माता-पिता से जो उत्पन्न हुआ पाप है उन सभी पापों को भगवान् केशव नष्ट कर दिया करते हैं ॥३२॥ इस महा व्रत को करने वाला पुरुष सभी भद्रों की प्राप्ति किया करता है-शरीर का आरोग्य जो अत्युत्तम हो उसस प्राप्त करता है। मन की अनन्त प्रीति और अत्यन्त शोभन रूप लावण्य प्राप्त किया करता है ॥३३ वाणी की मधुरता कान्ति और इनके अतिरिक्त अन्य जो भी वाञ्छित हो वह सभी पूजित नक्षत्र पुमान् भगवान् जनार्दन दिया करते हैं ॥३४॥ हे नारद ! भली भाँति इन नक्षत्रों में उपवास करके अर्चन क्रम में करे। महान् भागवाली अरुन्धती ने अत्युत्तम ख्याति की प्राप्ति इससे की थी ॥३५॥

अदितिस्तनयार्थाय नक्षत्राङ्गं जनार्दनम् ।
पूजयित्वा तु गोविन्दं रवत पुत्रमाप्तवान् ॥३६
रम्भा रूपं तथा लेभे वाङ्माधुर्यं तिलोत्तमा ।
कान्तिं शशि वदग्र्या च राज्यं राजा पुरूरवा ॥३७
एवं विधानतो ब्रह्मन्नक्षत्राङ्गो जनार्दनः ।
पूजितो रूपधारी यैस्तैः प्राप्ता तु स्वकामिता ॥३८

एवं पवित्रं च शुभप्रदायि यशस्यमारोग्यकरं तु पुंसाम् ।
नक्षत्रपुंसः परम विधानं शृणुष्व पुण्यामिह तीर्थयात्राम् ॥३६

अदिति ने तनय की प्राप्ति के लिये नक्षत्राग जनार्दन का पूजन करके रैवत से गोविन्द को पुत्र प्राप्त किया था॥३६॥रम्भा ने उस प्रकार का परमोत्तम सौन्दर्य प्राप्त किया था तथा तिलोत्तमा ने वाणी की मधुरता का लाभ इस व्रत से किया था राजा पुरूरवा ने शशि की भाँति उत्तम कान्ति और राज्य को प्राप्त किया था ॥३७॥ इस प्रकार के विधान से हे प्रह्लाद ! नक्षत्राङ्ग जनार्दन रूपधारी पूजित जिन्होने किया था । उनने अपनी कामनाओं की प्राप्ति की थी ॥३८॥ इस प्रकार का परम पवित्र-शुभदायी-यश देने वाला—आरोग्य प्रद यह व्रत पुरुषों को होता है । यही नक्षत्र पुरुष का परम विधान है । अब परम पुण्यमयी तीर्थ यात्रा का यहाँ पर श्रवण करो ॥३६॥

८१—जलोद्भव वध वर्णन

इरावतीमनुप्राप्य पुण्यां तामृषिकन्यकाम् ।
स्नात्वा सपूजयामास चैत्राष्टम्या जनार्दनम् ॥१

नक्षत्रपुरुष कृत्वा व्रतं पुण्यप्रद शुचि ।
जगाम स कुरुक्षेत्र प्रह्लादो दानवेश्वरः ॥२

ऐरावतेन मन्त्रेण चक्रतीर्थं सुदर्शनम् ।
उपामन्त्र्य ततः सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने ॥३

उपोष्य क्षणदा भक्त्या पूजयित्वा कुरुध्वजम् ।
कृतशौचस्तु त द्रष्टुं ययौ पुरुषकेसरी ॥४

स्नात्वा तु देविकाया तु नृसिंह प्रतिपूज्य च ।
उपोष्य रजनी मेका गोकर्ण दानवो ययौ ॥५

तस्मिन् स्नात्वाऽथ प्राचीने पूज्येश विश्वकारकम् ।
प्राचीनं चापरे दैत्यो द्रष्टुं कामेश्वर ययौ ॥६

तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च पूजयित्वा च शंकरम् ।
द्रष्टुं ययौ च प्रह्लादः पुण्डरीकं महाम्भसि ॥७

महर्षि पुलस्त्यजी ने कहा—पुण्यमयी इरावती को प्राप्त करके और उस ऋषि कन्यका में स्नान करके चैत्राष्टमी में जनार्दन का पूजन करके तथा नक्षत्र पुरुष व्रत को जो परम पुण्यप्रद है एवं शुचि है दानेश्वर प्रह्लाद ने किये तथा फिर कुरुक्षेत्र को चले गये थे ॥१-२॥ हे मुने ! ऐरावत मन्त्र के द्वारा सुदर्शन चक्र तीर्थ को उपामन्त्रित करके इसके पश्चात् वेदों में कथित विधि से स्नान किया था ॥३॥ एक रात्रि का उपवास करके भक्ति भाव से भगवान् कुरुध्वज का पूजन किया था। शुद्धि करके वह पुरुषों में केसरी उनका दर्शन करने के लिये गया था ॥४॥ देविका में स्नान करके और भगवान् नृसिंह का अर्चन करके एक रात्रि उपवास किया था और फिर वह दानव गोकर्ण चला गया था ॥५॥ उसमें स्नान करके इसके उपरान्त प्राचीन में विश्व की रचना करने वाले ईश का पूज्य किया था फिर दूसरे प्राचीन में वह दैत्य कामेश्वर प्रभु का दर्शन करने के लिये गया था ॥६॥ वहाँ पर स्नान करके-दर्शन करके और शंकर की पूजा करके फिर प्रह्लाद महाम्भस में पुण्डरीक का दर्शन प्राप्त करने के लिये चला गया था ॥७॥

महाम्भसि ततः स्नात्वा सतर्प्य पितृदेवताः ।
पुण्डरीकं च सपूज्य उपोष्य दिवसत्रयम् ॥८
विशाखरूपे तदनु दृष्ट्वा देवं तथाऽजितम् ।
स्नात्वा तथा कृष्णतीर्थे त्रिरात्रं व्यवसद्भुवि ॥९
ततो हंसपदे हंसं दृष्ट्वा सपूज्य चेश्वरम् ।
जगामासौ पयोष्ण्यां तु अखण्डं द्रष्टुमच्युतम् ॥१०
स्नात्वा पयोष्णीसलिले पूज्याखण्डं जगत्पतिम् ।
द्रष्टुं जगाम मतिमान्वितस्तायां कुमारिलम् ॥११
तत्र स्नात्वाऽर्च्य देवेशं वालखिल्यैर्मरीचिभिः ।
आराध्यमानोऽप्ययुतं हृतं पापप्रणाशनम् ॥१२

यत्र सा सुरभी देवी स्वसुता कपिला शुभाम् ।
देवप्रियार्थमनृजद्धितार्थं जगतस्तथा ॥१३
तत्र देवह्रदे स्नात्वा शम्भु सपूज्य भक्तितः ।
विधिवच्च विधि प्राप्य मणिमन्त ततो ययौ ॥१४

फिर महाम्मन में स्नान करके तथा पितृगण और देव वृन्द का भली भाँति तर्पण करके तथा भगवान् पुण्डरीक का अर्चन करके तीन दिन तक का उपवास किया था ॥८॥ फिर विशाल रूप में अजित देव का दर्शन करके तथा कृष्ण तीर्थ में स्नान करके उस भूमि में तीन रात्रि तक निवास किया था ॥९॥ इसके पश्चात् हम पद में हम ईश्वर का दर्शन करके एवं उनका पूजन करके फिर वह पयोष्णी में अखण्ड अच्युत का दर्शन करने के लिये चला गया था ॥१०॥ पयोष्णी के जल में स्नान करके अखण्ड जगत् के स्वामी का पूजन करके फिर मतिमान् वह वितस्ता में कुमारिल का दर्शन करने के लिये चला गया था ॥११॥ वहीं पर स्नान करके देवेश का अर्चन किया था तथा बालखिल्य मरीचियों के द्वारा आराध्यमान होता हुआ उसने अद्भुत पापों का नाश किया था ॥१२॥ जहाँ पर उस सुर की देवी ने अपनी पुत्री शुभा कपिला को देवों के प्रिय करने के लिये तथा इस जगत् के हित सम्पादन करने के लिये छोड़ दिया था ॥१३॥ उस देव ह्रद में स्नान करके भक्ति से शम्भु का पूजन करके विधिवत् विधि को प्राप्त करके फिर वह मणिमान् को चला गया था ॥१४॥

तत्र तीर्थवरे स्नात्वा प्राजापत्ये महामतिः ।
ददर्श शम्भुं ब्रह्माणं देवेशं च प्रजापतिम् ॥१५
विधानतस्तु तान्देवान्पूजयित्वा तपोधनः ।
षड्रात्र तत्र च स्थित्वा जगाम मधुनन्दिनीम् ॥१६
मधुसलिले स्नात्वा च देवं चक्रधरं हरम् ।
शूलबाहुं च गोविन्दं ददर्श दनुपुङ्गवः ॥१७
किमर्थं भगवाञ्शम्भुर्दधाराय सुदर्शनम् ।
शूलं तथा वासुदेवो ममैतद् ब्रूहि पृच्छतः ॥१८

श्रूयतां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
कथयामास तां विष्णुर्भविष्याम्यवनौ सुराः ॥१९
जलोद्भवो नाम महासुरेन्द्रो घोरं स तप्त्वा तप उग्रवीर्यः ।
आराधयामास विरञ्चिमाराात्स तस्य तुष्टो वरदो बभूव ॥२०
देवासुराणामजयो महाहवे निर्जेश्च शस्त्रैरमरैरवध्यः ।
अनन्यलङ्घ्येन तु ब्रह्मण पुरा न यातिशापैः शममेष शत्रुः ॥२१

वह महामति उस प्रजापत्य तीर्थवर में स्नान करके फिर उसने शम्भु—ब्रह्मा और प्रजापति देवेश का दर्शन प्राप्त किया था ॥१५॥ उस तप केधनी ने विधान के सहित उन समस्त देवों का पूजन किया था । छै रात्रि पर्यन्त वहां पर स्थित होकर फिर मधुनन्दिनी को चला गया था ॥१६॥ मधु के जल मे स्नान करके देव चक्रधारी हर और शूल बाहु श्री गोविन्द का उस दानवो में श्रेष्ठ ने दर्शन किया था ॥१७॥ देवर्षि नारद ने कहा—भगवान् शम्भु ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये सुदर्शन को धारण किया था तथा वासुदेव ने शूल किस लिये लिया था—मैं इसे आप से पूछता हूँ अतः यह मुझे आप बतलाइये ॥१८॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—तुम श्रवण करो, मैं एक पुरातन कथा कहता हूँ । उस कथा को भगवान् विष्णु ने कहा था—हे सुर गण ! मैं भूमि में होऊंगा ॥१९॥ जलोद्भव नाम वाला एक महान् असुरेन्द्र था । उस उग्रवीर्य वाले ने घोर तपस्या की थी और विरञ्चि की समाराधना की थी । उसके समीप मे ही वह सन्तुष्ट होकर उसे वरदान देने वाले होगये थे ॥२०॥ महान युद्ध मे देवासुरो के द्वारा वह अजय हो गया था । जिनके शस्त्रो से देवो के द्वारा वह अवध्य हो गया । जो अनन्य लघय थे ऐसे पहिले ब्रह्मा के शापो से भी यह शत्रु शम को प्राप्त नहीं होता था ॥२१॥

एवंप्रभावो दनुपुङ्गवोऽसौ देवान्महर्षीन्नृपतीन्समग्रान् ।
प्रबाधमानो विचचार भूम्यां सर्वाःक्रियाःप्राक्षिपदुग्रमूर्तिः ॥२२
ततोऽमरा भूमितटे निषण्णा जग्मुः शरण्यं हरिमीशितारम् ।
तैश्चापि सार्धं भगवाञ्जगामहिमालयं त्र्यम्बक हर्तास्मयेनः ॥२३

समन्त्र्य देवर्षिहितं च कार्यं मतिं च कृत्वा निधनाय शत्रोः ।
निरायुधौ तावपि पर्यटन्तौ देवाधिपौ चक्रतुरुग्रकम् ॥२४
ततश्चासौ दानवो विष्णुशर्वौ समायातौ हन्तुकामौ सुरेशौ ।
मत्वाऽजेयौ शत्रुभिर्घोररूपैर्भयात्तोये निम्नगाया विवेश ॥२५
ज्ञात्वा प्रविष्टं त्रिदिवेन्द्रशत्रुं नदीं विशालाद्विजमत्स्यपूर्णाम् ।
तीरं समाश्रित्यस्थितौ हि देवौप्रच्छन्नमूर्तीसहसावभूवतुः ॥२६
दिवं समीक्षन्सहसा कातराक्षो दुर्गं हिमाद्रिं सहसा विवेश ।
महीध्रशृङ्गोपरि विष्णुशभूवम्भ्रम्यमाणस्वरिपु चं मत्वा ॥२७
वेगाद्भुभौ दुद्रुवतुः सशस्त्रो विष्णुस्त्रिशूली गिरिशश्च चक्री ।
ताभ्यां स दृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यां चक्रेण शूलेन विभिन्नदेहः ॥२८

इस प्रकार के प्रभाव वाला यह दनु पुत्र समस्त देव—महर्षि—और नृपतियों को प्रबाधा करता हुआ भूमि में विचरण करता था, उग्रमूर्ति ने सभी क्रतुओं को प्रक्षिप्त किया था ॥२२॥ इसके उपरान्त देवगण भूमि तट पर बैठे हुए थे और ईशिता हरि की शरणागति में गये थे। उन सब के साथ भगवान् भी हिमालय पर गये जहाँ पर त्रिनेत्र हर विराजमान थे ॥२३॥ देवों और ऋषियों के कार्य के विषय में भली भाँति मन्त्रणा करके उस शत्रु के निधन की बुद्धि की थी। वे दोनों बिना आयुधों वाले पर्यटन करते हुए देवों के अधियों ने उपक्रम किया था ॥२४॥ इसके पश्चात् इस दानव ने देखा कि ये दोनों देवेश्वर विष्णु और शम्भु मारने की इच्छा से आये हैं। शत्रुओं के द्वारा अजेय मानकर जो कि घोर रूप वाले हैं भय से निम्नगा के जल में प्रवेश कर गया था ॥२५॥ द्विज मत्स्यों से पूर्ण विशाल नदी उन देवों के शत्रु को प्रविष्ट हुआ जानकर उस नदी के तटपर वे दोनों देव स्थित हो गये थे और तुरन्त ही प्रच्छन्न मूर्तियों वाले होगये ॥२६॥ वह कातर नेत्रों वाला दिवलोक देखता हुआ तुरन्त ही हिमाद्रि के दुर्ग में प्रवेश कर गया था। उसने ऐसा मानलिया था कि अपने शत्रु को महीध्र की चोटी पर भ्रमण करते हुए विष्णु और शम्भु बड़े वेग से दोनों शस्त्रों से युक्त दौड़ पड़े थे। विष्णु हाथ में त्रिशूल तथा शिव चक्र धारण किये

हुए थे । उन दोनो देवोत्तमों ने उसे देखा था और चक्र तथा त्रिशूल के द्वारा विभिन्न देह वाला होगया था ।।२७ २८।।

पपात शैलात्तपनीयवर्णो यथाऽन्तरिक्षाद्धि मनुष्यतारा ।
एवं त्रिशूलं च दधार विष्णुश्चक्रं त्रिनेत्रोऽप्यरिसूदनार्थम् ।।२६

यत्राप्यसौ शूलभवाभिघाताद्धरा पपाताथ धराचलेन्द्रात् ।
जलाद्रुवश्चापि जलं विमुच्य ज्ञात्वा गतौ शंकरवासुदेवौ ।।३०

तत्प्राप्य तीर्थं त्रिदशाधिपाभ्यामुपोषितं दैत्यपतिः स्वशुद्धये ।
उपोष्यभक्त्याहिमवन्तमागाद्द्रष्टुं गिरीशंशिवविष्णुमागम्।।३१

तं समभ्यर्च्य विधिवद्दत्त्वा दानं द्विजातिषु ।
वितस्ताहिमवत्योश्च भृगुतुङ्गं जगाम स. ।।३२

यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः प्रादाद्रथाङ्गं प्रवरायुधं वै ।
चिच्छेदयेनाखिलं च शक्रोविज्ञायमानोऽव्ययलमहात्मा ।।३३

वह सुवर्ण के समान वर्ण वाला उस शैल से नीचे इस भाँति गिरा था जैसे कोई तारा अन्तरिक्ष से टूट कर गिरा हो । इस प्रकार से विष्णु ने त्रिशूल को धारण किया था और त्रिनेत्र ने भी अरि सूदनार्थ को धारण किया था । जहाँ पर भी शूल...भवाभिघात से उस धरा चलेन्द्र से

८२-श्रीदाम चरित्र वर्णन

भगवँल्लोकनाथाय विष्णवे विषमेक्षणः ।
किमर्थमायुध चक्रं दत्तवाँल्लोकपूजितम् ॥१
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
चक्रप्रदानसबद्धां शिवमाहात्म्यवर्धिनीम् ॥२
आसीद्द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः ।
गृहाश्रमी महाभागो वीतमन्युरिति स्मृतः ॥३
तस्यात्रेयी महाभागा भार्याऽऽसीच्छीलसंमता ।
पतिव्रता पतिप्राणा धर्मशीलेति विश्रुता ॥४
मुनेस्तस्यानपत्यस्य ऋतुकालाभिगामिनः ।
संबभूव सुतःश्रीमानुपमन्युरिति श्रुतः ॥५
तं माता मुनिशार्दू लं शालिपिष्टरसेन वै ।
पोषयामास ददती क्षीरमंतद्धि दुर्गता ॥६
सोऽजानानोऽस्य क्षीरस्य स्वादुतां पय इत्यथ ।
संभावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेऽपि हि ॥७

देवर्षि नारद ने कहा—हे भगवन् ! विषमेक्षण अर्थात् शिव ने लोकों के नाथ विष्णु के लिये किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये लोक पूजित चक्र को दिया था ॥१॥ पुलस्त्य जी ने कहा—अब आप पूर्ण सावधान होकर श्रवण करो। यह परम पुरातनी कथा है जो सुदर्शन चक्र के प्रदान करने से सम्बद्ध है और भगवान् शिव के माहात्मा को बढ़ाने वाली है ॥२॥ एक द्विजो में अत्यन्त श्रेष्ठ वेदों तथा वेदों के समस्त अंगों का ज्ञाता एवं पारगामी विद्वान्-गृहस्थ और महान् भाग वाला विप्र था जिसका नाम वीतमन्यु प्रसिद्ध था ॥३॥ उसकी महा-भागा आत्रेयी भार्या थी जो अत्यन्त शील समन्वित थी। यह पूर्ण पतिव्रता-पति को ही अपना प्राण मानने वाली और धर्मशीला विख्यात थी ॥४॥ सन्तान हीन उस मुनि के जब कि उसने ऋतु काल में अभिग-मन किया था एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जो श्री सम्पन्न और उपमन्यु

हुए थे। उन दोनो देवोत्तमों ने उसे देखा था और चक्र तथा त्रिशूल के द्वारा विभिन्न देह वाला होगया था ॥२७-२८॥

पपात शैलात्तपनीयवर्णो यथाऽन्तरिक्षाद्धि मनुष्यतारा ।
एवं त्रिशूलं च दधार विष्णुश्चक्रं त्रिनेत्रोऽप्यरिसूदनाथम् ॥२९

यत्राप्यसौ शूलभवाभिघाताद्धरा पपाताथ धराचलेन्द्रात् ।
जलोद्भवश्चापि जलं विमुच्य ज्ञात्वा गतौ शंकरवासुदेवौ ॥३०

तत्प्राप्य तीर्थं त्रिदशाधिपाभ्यामुपोषितं दैत्यपतिः स्वशुद्धये ।
उपोष्य भक्त्याहिमवन्तमागाद्द्रष्टुं गिरीशं शिवविष्णुमार्गम् ॥३१

तं समभ्यर्च्य विधिवद्दत्त्वा दानं द्विजातिषु ।
वितस्ताहिमवत्योश्च भृगुतुङ्गं जगाम सः ॥३२

यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः प्रादाद्रथाङ्गं प्रवरायुधं वै ।
चिच्छेदयेनारिबलं च शंकरोविज्ञायमानोऽस्त्रबलंमहात्मा ॥३३

वह सुवर्ण के समान वर्ण वाला उस शैल से नीचे इस भाँति गिरा था जैसे कोई तारा अन्तरिक्ष से टूट कर गिरा हो। इस प्रकार से विष्णु ने त्रिशूल को धारण किया था और त्रिनेत्र ने भी अरि सूदनार्थ को धारण किया था। जहाँ पर भी शूल भवाभिघात से उस धरा चलेन्द्र से धरा पर यह गिरा था जलोद्भव भी जल को छोड कर यह गिरा है- ऐसा जानकर शङ्कर वासुदेव भी चले गये थे ॥२९-३०॥ उस तीर्थ पर पहुँच कर उन दोनों देवेश्वरों ने उपवास किया था। दैत्यपति ने अपनी शुद्धि के लिये उपवास किया था फिर भक्ति से गिरीश के दर्शन करने के लिये शिव विष्णु मार्ग हिमालय को चला गया था ॥३१॥ वहाँ पर उनका विधि पूर्वक पूजन करके तथा द्विजो को दान देकर फिर वितस्ता हिमवत के भृगुतुंग पर वह चला गया था। वहाँ पर ईश्वर ने देव वर विष्णु को प्रवर आयुध रथांक को दिया था जिससे शंकर ने शत्रुओं के बल का छेदन किया था और महात्मा वह उस अस्त्र के बल के पूर्ण ज्ञाता थे ॥३२-३३॥

इस नाम से विख्यात हुआ था ॥५॥ माता ने उस मुनियों में शार्दूल के समान होने वाले बालक का पोषण शालियों के पिष्ट रस के द्वारा किया था। वह ऐसी दुर्गति से युक्त थी कि उसी को यह दूध है—यह कहकर उस बालक को देती थी ॥६॥ इसको ही क्षीर वह जानता था और दूध के स्वाद को उसने कभी प्राप्त ही नहीं किया था। वह उन शालियों के पिष्ट रस में ही दूध के स्वाद की सम्भावना किया करता था ॥७॥

स त्वेकदा सम पित्रा कुत्रचिद्द्विजवेश्मनि ।
क्षीरौदन च बुभुजे श्रद्धया प्राणिपुष्टिदम् ॥८
स लब्ध्वानुपम स्वादु क्षीर च ऋषिपुत्रक. ।
मात्रा दत्त द्वितीयेऽह्नि नादत्त पिष्टकारितम् ॥९
रुरोद च तथा बाल्यात्पाथोर्थं चातको यथा ।
माता रुदन्त त प्राह बाष्पगद्गदया गिरा ॥१०
उमापतौ पशुपतौ शूलधारिणि शकरे ।
अप्रसन्ने विरूपाक्षे कुत क्षीरेण भोजनम् ॥११
यदीच्छसि पयो भोक्तु सद्य पुष्टिकर सुत ।
तमाराधय देवेश विरूपाक्ष त्रिशूलिनम् ॥१२
तस्मिंस्तुष्टे जगद्धाम्नि सर्वकल्याणदायिनि ।
प्राप्यतेऽमृतपायित्व कि पुन क्षीरभोजनम् ॥१३
स मातुर्वचन श्रुत्वा वीतमन्युस्ततोऽब्रवीत् ।
कोऽय विरूपाक्ष इति त्वयाऽऽराध्यस्तु कीर्तित ॥१४

उसने एक बार अपने पिता के साथ कहीं किसी द्विज के घर में बड़ी ही श्रद्धा से प्राणियों की पुष्टि का देने वाले क्षीर और ओदन का भोजन किया था ॥८॥ उस ऋषि पुत्र ने स्वाद युक्त अनुपम क्षीर को प्राप्त कर फिर माता द्वारा दूसरे दिन में पिष्ट द्वारा बनाये हुए उसको ग्रहण नहीं किया था ॥९॥ वह बचपन के कारण जैसे चातक जल के लिये रोता है रुदन करने लगा था। रोते हुए उस अपने बालक से माता बाष्प से गदगद वाणी के द्वारा कहने लगी ॥१०॥ बेटा ! उमा

धीवरत्व के हरण करने की इच्छा कर रहा था ॥१८॥ भगवान् जनार्दन ने उस दुष्ट के इस बुरे अभिप्राय को जानकर उसके वध करने की इच्छा कर भगवान् महेश्वर के समीप में गये थे ॥१६॥ इस बीच में योग मूर्ति धारण करने वाले अव्यय शम्भु प्रलक्षण भूषित हिमाचल के प्रस्थ का आश्रय करके स्थित रहते थे ॥२०॥ इसके पश्चात् जगन्नाथ सहस्र शिर वाले विभु के पास उपस्थित होकर हरि ने आत्मा से स्वयं ही आत्मा की आराधना की थी ॥२१॥

आसीद्वर्षसहस्रं तु पादाङ्गुष्ठेन तद्गिरा ।
गृणन्सनातनं ब्रह्म योगिध्येयमलक्षणम् ॥२२
ततः प्रीतः प्रभुः प्रादाद्विष्णवे परमं पदम् ।
प्रत्यक्षतेजसा युक्तं दिव्यं चक्रं सुदर्शनम् ॥२३
तद्दत्वा देवदेवाय सर्वभूतमयः प्रभुः ।
कालचक्रनिभं चक्रं शंकरो विष्णुमब्रवीत् ॥२४
वरायुधं हि देवेश सर्वायुधनिबर्हणम् ।
सुदर्शनं द्वादशारं षण्णाभि द्वियवज्जवे ॥२५
आरासंस्थास्त्वमी तत्र देवा मासाश्च राशयः ।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थितास्त्वृतवश्च षट् ॥२६
अग्निः सोमस्तथा मित्रो वरुणश्च शचीपतिः ।
इन्द्राग्नी वाऽप्यथो विश्वे प्रजापतय एव तु ॥२७
वायुश्च बलवान्देववैद्यो धन्वन्तरिस्तथा ।
तपस्यश्च तपश्चोग्रो द्वादशेति प्रतिष्ठिताः ॥२८

इस प्रकार से पाद के अंगुष्ठ से स्थित होते हुए उसको एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे। उनकी वाणी योगियों के द्वारा ध्येय-अलक्षण सनातन ब्रह्म को ही ग्रहण कर रही थी ॥२२॥ इसके पश्चात् प्रभु ने प्रसन्न होकर विष्णु को परम पद प्रदान किया था। प्रत्यक्ष तेज से युक्त दिव्य सुदर्शन चक्र को जोकि कालचक्रमय था सर्व भूतमय प्रभु शंकर ने देवों के देव के लिये देकर विष्णु से यह कहा—॥२३-२४॥ देवेश! यह परमश्रेष्ठ आयुध है और सभी आयुधों का निबर्हण है। यह सुद-

र्शन बारह आराओं वाला है—षण्णाभि तथा जव में द्विज के समान है ।।२५।। ये देव-मास और राशियाँ सभी आरामों में संस्थित हैं । शिष्टों की रक्षा के लिये छै ऋतुऐं संस्थित हैं ।।२६।। अग्नि—सोम, मित्र, वरुण, शचीपति, इन्द्र, अग्नि, विश्व देवा, प्रजापतिगण, नलवान् वायु देव, वैद्य आश्विनी कुमार, धन्वन्तरि, तपस्य, उग्रतप ये द्वादश इसमें प्रतिष्ठित हैं ।।२७-२८।।

चैत्राद्याः फाल्गुनान्ताश्च मासास्तत्र प्रतिष्ठिताः ।।२९
तदेनदादायविभोरथायुधमन्तूं सुराणाजहिमाविशङ्कियाः ।।
अमोघ योऽमरराजपूजितोधृतो मयामन्त्रगतस्तपोबलात् ।।३०
इत्युक्तः शम्भुना विष्णुस्ततो वचनमब्रवीत् ।
कथं शम्भो विजानीयां ममोघ मोघमेव च ।।३१
यथाऽमोघ विभो चक्र सर्वत्राप्रतिम ततः ।
जिज्ञासार्थं तवैवेह प्रेक्षिप्यामि प्रतीच्छ मे ।।३२
तद्वाक्यं वासुदेवस्य निशम्याह पिनाकधृक् ।
यद्येवं प्रक्षिपस्वेति निर्विशङ्केन चेतसा ।।३३
तन्महेशानवचनं श्रुत्वा विष्णुः सुदर्शनम् ।
मुमोच तेजो जिज्ञासुः शंकरं प्रति वेगवान् ।।३४
मुरारिकरविभ्रष्टं चक्रमभ्येत्य शूलिनम् ।
त्रिधा चकार विदवेशं यज्ञेशं यज्ञयाजकम् ।।३५

चैत्र से आदि लेकर फाल्गुन के अन्त तक बारह मास वहाँ पर प्रतिष्ठित हैं ।।२९।। हे विभो ! इस वरायुध को लेकर सुरों के शत्रुओं का वध करो । इसमें विशङ्कितमत होना । यह अमोघ अस्त्र है—अमर राज के द्वारा पूजित और मन्त्र गत है । मैंने तपोबल से इसे धारण किया है।।३०।।इस प्रकार से शम्भु के द्वारा जब विष्णु कहे गये तो उन्होंने कहा—हे शम्भो ! यह कैसे जाना जावे कि यह मोघ है या अमोघ है । हे विभो ! जिस प्रकार से यह चक्र है अमोघ (सफल) है तथा सर्वत्र अनुपम है यह आपकी ही जिज्ञासा के लिये यहीं पर देखूँगा—यह मुझे आप दीजिए ।।३१-३२।। पिनाक के धारी शिव ने वासुदेव के उस वाक्य को

सुनकर कहा—यदि ऐसा ही है तो निर्विकल्पित चित्त से इसका प्रक्षेप करो ॥३३॥ महेशान प्रभु के इस वचन को सुनकर विष्णु ने जिज्ञासु होते हुए वेगवान् होकर उस तेजोमय सुदर्शन को शंकर के प्रति प्रक्षिप्त किया था ॥३४॥ मुरारि के कर से विसृष्ट चक्र शूली के समीप में आकर उसको विश्वेश—यज्ञेश और यज्ञ याजक तीन प्रकार का कर दिया था ॥३५॥

हर हरिस्त्रिधाभूत दृष्ट्वा तूर्णं महाभुज. ।
व्रीडोपप्लुतदेहस्तु प्रणिपातपरोऽभवत् ॥३६
पादप्रणामनिरत वीक्ष्य दामोदर ततः ।
प्राह प्रीतमना. श्रीमानुत्तिष्ठेति पुन पुन. ॥३७
प्राकृतोऽय महाभाग विकारो ब्रह्मणो मम ।
निकृत्तो न स्वभावो मे अच्छेद्योऽदाह्य एव हि ॥३८
तदेतानीह चक्रेण त्रीण्यङ्गानीह केशव ।
कृत्तानि तानि पुण्यानि भविष्यन्ति न सशयः ॥३९
हिरण्याक्षस्ततो ह्येष सुवर्णाक्षस्तथाऽपर. ।
तृतीयो विरूपाक्षस्त्रयो मे पुण्यदा नृणाम् ॥४०
उत्तिष्ठ गच्छ च विभो निहन्तुं च ममाहितम् ।
श्रीदामान हत ज्ञात्वा नन्दयिष्यन्ति देवताः ॥४१
इत्येवमुक्तो भगवान्हरेण गरुडध्वज. ।
गत्वा सुरगिरिप्रस्थ श्रीदामान ददर्श ह ॥४२

भगवान् हरि ने हर को तीन भागो मे हो जाने वाला देखकर वह महा भुजाओ वाले प्रभु शीघ्र ही व्रीडा (लज्जा) से उपप्लुत देह वाले होगये थे और शम्भु के चरणो मे प्रणिपात परायण होगये ॥३६॥ अपने चरणों मे प्रणाम करने में निरत दामोदर प्रभु को देखकर प्रसन्न मन वाले श्रीमान् शम्भु ने बारम्बार कहा उठो ॥३७॥ हे महाभाग ! यह विकार तो प्राकृत है जोकि ब्रह्म मेरा स्वभाव कभी भी विकृत नहीं हुआ है क्योंकि वह तो अच्छेद्य और अदाह्य ही रहता है ॥३८॥ हे केशव ! इस चक्र के द्वारा ये तीन अग हो कृत हुए हैं। वे परम

पुण्यमय होंगे—इसमें संशय नहीं है ।।३९।। सब यह एक हिरण्याक्ष है—दूसरा सुवर्णाक्ष है और तीसरा विश्वरूपाक्ष है ये तीनों मेरे अ ग मनुष्यों के लिये पुण्य देने वाले हैं ।।४०।। हे विभो ! आप उठिये और जाइये तथा मेरे शत्रु का निहनन कीजिए । श्री दामा को जब देवगण निहत जान लेंगे तो वे सब बहुत ही प्रसन्न होंगे ।।४१।। इस प्रकार से कहे जाने पर जोकि हर ने भगवान् गरुडध्वज से कहा था । फिर विष्णु ने सुरगिरि के प्रस्थ पर आकर श्री दामा को देखा था ।।४२।।

तं दृष्ट्वा देवदर्पघ्नं दैत्यं देववरो हरिः ।
मुमोच चक्रं वेगाढ्यं हतोऽसीति ब्रुवन्विभुः ।।४३
ततस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण चक्रेण दैत्यस्य शिरो निकृत्तम् ।
सच्छिन्नशीर्षो निपपात शैलाद्वज्राहत शैलशिरो यथैव ।।४४
तस्मिन्हते देवरिपौ सुरारिरीश समाराध्य विरूपनेत्रम् ।
लब्ध्वाथचक्रं प्रवरंमहायुधंजगामदेवोनिलयंतपोनिधिम् ।।४५
सोऽयं पुत्र विरूपाक्षो देव देवो महेश्वरः ।
तमाराधय चेत्साधो क्षीरेणेच्छसि भोजनम् ।।४६
सनुमातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युः सुतो वली ।
समाराध्य विरूपाक्षं प्राप्स्ये क्षीरेण भोजनम् ।।४७
एतत्त्वयोक्तं परम पवित्रं संछेदनं पापतरोमु रारेः ।
तीर्थं च तत्रैव महासुरो वै समाससादाथ सुपुण्यहेतोः ।।४८

देववर हरि ने देवों के दर्प के हनन करने वाले उस दैत्य को देख कर वेग से युक्त उस चक्र को छोड़ दिया था और विभु ने यह कहते हुए ही उसको छोड़ा था कि श्रीदामा अवहत होगया है ।।४३।। इसके अनन्तर उस अप्रतिम पौरुष वाले चक्र से उस दैत्य का सिर कट गया था । कटे हुए मस्तक वाला वह उस पर्वत से वज्र से आहत शैल_के शिखर की भाँति नीचे गिर गया था ।।४४।। उस देव शत्रु के हत हो जाने पर मुरारि विष्णु ने ईश विरूप नेत्र वाले प्रभु शिव की समाराधना की थी । फिर उस श्रवर महान् आयुध चक्र को प्राप्त करके देव तपोनिधि निलय को चले गये थे ।।४५।। हे पुत्र ! वह यह विरूपाक्ष देवदेव है

और महेश्वर है। हे साधो! यदि क्षीर से भोजन चाहता है तो उसकी समाराधना करो ॥४६॥ माता के उस वचन को सुनकर बलवान् सुत धौतमन्यु विरुपाक्ष उनकी आराधना करके क्षीर से भोजन प्राप्त करेगा ॥४७॥ यह आपने परम पवित्र पाप रूपी तरु के छेदन करने वाला मुरारिका तीर्थ है। वहाँ पर ही सुपुण्य के हेतु से महासुर प्र.प्त हुआ था ॥४८॥

८३—प्रह्लाद को तीर्थयात्रा वर्णन (१)

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा दृष्ट्वा देव त्रिलोचनम् ।
पूजयित्वा सुवर्णाक्ष नैमिष प्रययौ ततः ॥१
तत्र तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्पापहराणि च ।
गोमत्या-काञ्चनाख्यायाश्च शुभदायाश्च मध्यतः ॥२
तेपु स्नात्वाऽर्च्य देवेश पीतवाससमच्युतम् ।
ऋषीनपि च सपूज्य नैमिपारण्यवासिनः ॥३
देव देवं तथेशान सपूज्य विधिना ततः ।
गयाया गोपति दृष्टु जगाम स महासुरः ॥४
स्नात्वा ब्रह्मतढागे तु कृत्वा चास्य प्रदक्षिणाम् ।
पिण्डनिर्वपण पुण्य पितृणा स चकार ह ॥५
उदपाने तथा स्नात्वा तत्राभ्यर्च्य पितृ-वशी ।
गदापाणि समभ्यर्च्य गोपति चापि शकरम् ॥ ६
इन्द्रतीर्थे तथा स्नात्वा सनर्प्य पितृदेवता. ।
महानदी जले स्नात्वा सरयूं च जगाम सः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—उस श्रेष्ठतम तीर्थ मे स्नान करके तथा त्रिलोचन देव का दर्शन करके और सुवर्णाक्ष का पूजन करके फिर नैमिष को चले गये थे ॥१॥ वहाँ पर सहस्रो तीर्थ हैं जो तीस पापो के हरण करने वाले हैं। ये तीर्थ गोमती-काचनाक्षी और शुभदा के मध्य मे हैं ॥२॥ उनमें स्नान करके तथा पीताम्बरधारी देवेश अच्युत की अर्चना करके और नैमिपारण्य के निवासी ऋषियो का भी पूजन किया था

॥३॥ इसके पश्चात् देवों के देव ईशान का विधान सहित पूजन किया था। फिर वह महासुर गोपति का दर्शन करने के लिये गया में चला गया था ॥४॥ ब्रह्म तड़ाग में स्नान करके और इसकी प्रदक्षिणा करके उसने पितृगण के लिये परम पुण्यमय पिण्डों का निर्वपन किया था ॥५॥ उदयान में स्नान करके वशी ने वहाँ पर पितृगण का अभ्यर्चन किया था। भगवान् गदापाणि का अर्चन करके गोरूप शंकर का भी यजन किया था ॥६॥ इन्द्र तीर्थ में स्नान करके तथा पितृगण का भली भाँति तर्पण करके महानदी के पवित्र जल में विधि पूर्वक स्नान किया था। इसके उपरान्त वह वहाँ से सरयू तीर्थ को चल गये थे ॥७॥

तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य गोप्रतारं कुशेशयम्।
उपोष्य रजनीमेकां विनयावननो ययौ ॥८
स्नात्वा चार्च्य रजस्तीर्थे दत्वा पिण्डं पितृंस्तथा।
दर्शनार्थं ययौ श्रीमानजितं पुरुषोत्तमम् ॥९
स दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षमक्षरं परमं शुचिं।
षड्रात्रं समुपोष्यैव महेन्द्रे दक्षिणं ययौ ॥१०
तत्र देववरं शुभ्रमर्धनारीधरं हरम्।
दृष्ट्वा च संपूज्य पितृन्महेन्द्रं चोत्तरं गतः ॥११
तत्र देववरं शंभुं गोपालं सोमपीडितम्।
दृष्ट्वा स्नात्वा सोमतीर्थे सह्याचलमुपागतः ॥१२
तत्र स्नात्वा महोदक्यां वैकुण्ठं चार्च्य भक्तितः।
सुरान्पितृंश्च सन्तर्प्य पारियात्रं गिरिं गतः ॥१३
तत्र स्नात्वा लाङ्गलिन्यां पूजयित्वापराजितम्।
कशेरुदेशं चाभ्येत्य विश्वरूपं ददर्श सः ॥१४

उसमें स्नान करके कुशेशय का अर्चन कर एक रात्रि उपवास कर चले गये थे ॥८॥ तीर्थ में स्नान कर पितृगण को पिण्ड दान दे अजित पुरुषोत्तम का दर्शन करने चले गये ॥९॥ अक्षर पुण्डरीकाक्ष का दर्शन कर छै रात्रि तक उपवास करके महेन्द्र में दक्षिण को चल दिये थे ॥१०॥ वहाँ अर्धनारीश्वर का दर्शन पूजन कर पितृगण को तृप्त कर उत्तर

को चले दिये थे ॥११॥ वहाँ सोम पीडित शम्भु का दर्शन कर पूजन कर तथा सोम तीर्थ में स्नान करके सह्य गिरि पर आगये थे ॥१२॥ वहाँ महादेवी में स्नान कर बैकुण्ठ को, दर्शन को सुर और पितृगण का अर्चना किया था और फिर पारियात्र पर्वत को चले गये ॥१३॥ वहा लागलिनी में स्नान और अपराजित का पूजन करके कशेरुदेश में पहुँच कर उनने *विश्वरूप का दर्शन किया था ॥१४॥*

यत्र देववर: शम्भुर्गणानां नु सुपूजित ।
विश्वरूपमथात्मानं दर्शयामास योगवित् ॥१५
तत्र मङ्कुर्णिकातोये स्नात्वाऽभ्यर्च्चं महेश्वरम् ।
जगाम नित्यसौगन्ध प्रह्लादो मलयाचलम् ॥१६
महाह्रदे ततः स्नात्वा पूजयित्वा च शङ्करम् ।
ततो जगाम योगात्मा द्रष्टुं विन्ध्ये सदाशिवम् ॥१७
ततो विपाशासलिले स्नात्वाऽभ्यर्च्य सदाशिवम् ।
त्रिरात्रं समुपोष्याथ अवन्ती नगरी ययौ ॥१८
तत्र क्षिप्राजले स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः ।
श्मशानस्थं जगामाथ महाकालवपुर्धरम् ॥१९
तस्मिन्स्तु सर्वभूतानां तेन रूपेण शंकर. ।
तामसं रूपमास्थाय संहारं कुरुते वशी ॥२०
तत्रस्थेन सुरेशेन श्वेतकिर्नाम भूपतिः ।
रक्षितस्त्वन्तकं दग्ध्वा सर्वभूतापहारिणम् ॥२१

जहाँ पर गणों में पूजित शम्भु ने योग वेत्ता होने के कारण अपने आपको विश्वरूप दिखलाया था ॥१५॥ वहा मकुरणिका के जल में स्नान करके महेश्वर का पूजन किया और प्रह्लाद नित्य सौगन्ध मलयाचल को चले गये थे ॥१६॥ महाह्रद में स्नान कर शंकर का अर्चन किया फिर योगात्मा विन्ध्य में सदा शिव का दर्शन करने चले गये थे ॥१७॥ वहाँ विपाशा के जल में स्नान-सदा शिव का पूजन कर तीन रात्रि उपवास कर अवन्ती नगरी में पहुँच गये थे ॥१८॥ वहा पर क्षिप्रा नदी में स्नान तथा विष्णु का अर्चन करके श्मशानवासी महा-

काल वपु के समीप चले गये ॥१६॥ वहां पर उस रूप से शंकर आसन से समास्थित होकर सब भूतों का संहार करते हैं ॥२०॥ वहां पर स्थित देव ने श्वेतकि नृप की रक्षा की थी और सर्व भूतापहारी अन्तक का दाह कर दिया था ॥२१॥

तत्रातिहृष्टो वसति नित्यं वै सर्वदा भवः ।
वृतः प्रमथकोटीभिस्त्रिदशार्चितविग्रहः ॥२२
तं दृष्ट्वाऽथ महाकालं कालकालान्तकान्तकम् ।
यमसंयमनं मृत्योर्मृत्युं चित्रविचित्रकम् ॥२३
श्मशाननिलयं शम्भुं भूतनाथं जगत्पतिम् ।
पूजयित्वा शूलधरं जगाम निषधान्प्रति ॥२४
तत्रामरेश्वरं देवं दृष्ट्वासम्पूज्य भक्तितः ।
महोदयं समभ्येत्य हयग्रीवं ददर्श सः ॥२५
अश्वतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा च तुरगाननम् ।
श्रीधरं च विभुं पूज्य पाञ्चालविषयं ययौ ॥२६
तत्रैश्वरगुणैर्युक्तं पुत्रमर्थपतेस्तथा ।
पाञ्चालिकं वशीदृष्ट्वा प्रयागं प्रयतो ययौ ॥२७

वहां पर सर्वदा परम प्रसन्न भववास किया करते हैं और प्रमथ गणों से समावृत और देव वृन्द से अर्चित विग्रह वाले हैं ॥२२॥ काल-कालान्तक के अन्तक और यम संयमन मृत्यु के भी मृत्यु महा काल का दर्शन कर श्मशान वासी शम्भु का पूजन कर निषध देशों को शूलधर का अर्चन करके चले गये थे ॥२३-२४॥ वहां अमरेश्वर का दर्शन करके और पूजन करके महोदय को आकर उनने हयग्रीव का दर्शन किया था ॥२५॥ अश्व तीर्थ में स्नान-तुरगानन का दर्शन और श्रीधर का पूजन करके वह पाञ्चाल देश को चले दिये थे ॥२६॥ वहां ईश्वर गुणों से युक्त अर्थ पति के पुत्र पाञ्चालिक का दर्शन करके प्रयाग को चले गये ॥२७॥

प्रयागे शुभदे तीर्थे यामुनेलोकविश्रुते ।
दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम् ॥२८

द्वावेव भक्तिसंपूज्यौ पूजयित्वा महासुरः ।
माघमासमथोपोष्य ततो वाराणसीं गतः ॥२९
समासाद्य च तां पुण्यांतीर्थेषु च पृथक्पृथक् ।
सर्वपापहरा ह्येषा स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ॥३०
प्रदक्षिणीकृत्य पुरीं सपूज्यामुक्तकेशवौ ।
लोलं दिवाकरं दृष्ट्वा ततो मधुवनं ययौ ॥३१
तत्र स्वायम्भुवं देवं ददर्शासुरसत्तमः ।
तमभ्यर्च्य महातेजाः पुष्करारण्यमागमत् ।
तेषु त्रिष्वपितीर्थेषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ॥३२
एतत्पवित्रं परमं पुराणं प्रोक्तं स्वगस्त्येन महर्षिणा च ।
धन्यं यशस्यं बहुपापनाशनं सकीर्तनाच्छ्रवणात्सस्मृतेश्च ॥३३

परम शुभ यामुन तीर्थ में बटेश्वर रुद्र और योगशायी माधव का पूजन करके उस महासुर ने माघ मास में वास करके फिर वह वाराणसी को चले गये थे ॥२८-२९॥ उस परम पुण्यमयी नगरी में पहुँच कर पृथक्२ तीर्थों में स्नान किया और पितृ–देवों का अर्चन किया था ॥३०॥ उस पुरी की परिक्रमा की और अमुक्त केशव का पूजन किया था फिर लोल दिवाकर का दर्शन कर मधुवन को चले गये थे ॥३१॥ वहां स्वायम्भुव देव का दर्शन किया और उनका पूजन कर फिर पुष्करारण्य में आ गये थे। वहां तीनों तीर्थों में स्नान किया तथा पितृ देवगण का अर्चन किया था ॥३२॥ यह परम पुराण अगस्त्य महर्षि ने कहा है। यह परम धन्य–यश देने वाला–बहुत पापों का नाशक है। इसके सकीर्तन-श्रवण और सस्मरण से यह होते हैं॥३३॥

८४—प्रह्लाद तीर्थ यात्रा वर्णन (२)

गते च तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे ।
कुरुक्षेत्रं समभ्यागाद्द्रष्टुं वैरोचनो मुने ॥१

तस्मिन्महाधर्म युते तीर्थे ब्राह्मणपुङ्गवः ।
शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवः ।.२
भृगुणाऽऽमन्त्र्यमाणास्ते श्रुत्वाऽऽत्रेयसगौतमाः ।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्त्वज्ञाः कुरुजाङ्गलम् ॥३
उत्तराशा प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रवीम् ।
शातद्रवे जले स्नात्वा विपास प्रययुस्ततः ॥४
विज्ञाय तत्रास्य रतिं स्नात्वाऽर्च्यं पितृदेवताः ।
ततोऽपि किरणा पुण्या दिनेशकिरणाच्युताम् ॥५
तस्यां स्नात्वा च देवर्षे सर्व एव महर्षयः ।
सुपुण्योदा वेगवती स्नात्वा जग्मुरयेश्वरीम् ॥६
देविकाया जले स्नात्वा पयोष्णाया च तापमाः ।
अवतीर्णा मुने स्नातु माधवाद्याः सुमानवीम् ॥७

पुलस्त्य ऋषि ने कहा—हे मुने ! दानवेश्वर प्रह्लाद के तीर्थ यात्रा के चले जाने पर वैरोचन कुरुक्षेत्र देखने को आया था ॥१॥ उस महा धर्मयुत तीर्थ में श्रेष्ठ ब्राह्मण शुक्र ने द्विजातियों का आमन्त्रण किया था ॥२॥ भृगु के द्वारा आमन्त्रित सब हैं—ऐसा श्रवण कर आत्रेय गौतम-कौशिक-आंगिरस और तत्त्वज्ञ वे शतद्रवी नदी के अनुसार उत्तर दिशा को गये थे । शातद्रव जल मे नहा कर निवास को चले गये थे ॥३-४॥ वहाँ इस की रति जानकर स्नान और पितृ—देवार्चन किया फिर दिनेश की किरणों से च्युत किरणा में स्नान किया था । हे देवर्षे ! सभी महर्षिगण पुण्योदक वाली वेगवती मे नहाने और फिर ईश्वरी को चल दिये थे ॥५-६॥ हे मुने ! देविका मे स्नान कर तथा तापस पयोष्णा मे नहाये थे और माधवाद्य सुमानवी मे नहाने को उतरे थे ॥७॥

ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिबिम्बमथात्मनः ।
अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारकम् ॥८
उन्मज्जन्तश्च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः ।
ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि ॥९

पुष्कराक्षमयोगन्धि ब्रह्माण चाप्यपूजयन् ।
ततो भूयः सरस्वत्यास्तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते ॥१०
कोटितीर्थे रुद्रकोटिं ददर्श वृषभध्वजम् ।
नैमिषेया द्विजवरा मागधेयाः ससैन्धवाः ॥११
धर्मारण्याः पुष्करेया दण्डकारण्यकास्तथा ।
चाम्पेयास्तारकच्छेया देविकातीर्थकाश्च ये ॥१२
ते तत्र शंकरं द्रष्टुं समायाता द्विजातयः ।
कोटिसंख्यास्तपःसिद्धा हरदर्शनलालसाः ॥१३
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येववादिनो मुने ।
तानाकुलान्हरो दृष्ट्वा महर्षीन्दग्धकिल्विषान् ॥१४

निमग्न होकर हे द्विज श्रेष्ठ अन्दर जल में अपना प्रतिबिम्ब उन्होंने देखा था जो महान् आश्चर्य के करने वाला था ॥८॥ उन्मज्जन करते फिर देखा था जिससे मन में बहुत ही विस्मय हुआ था। ऋषियों ने वहाँ स्नान करके सब पार पर समुत्तीर्ण हो गय थे ॥६॥ अयो गन्धी पुष्कराक्ष ब्रह्मा का पूजन किया था और पुनःलोक प्रसिद्ध सरस्वती तीर्थ-कोटि तीर्थ में रुद्र कोटि वृषभध्वज का दर्शन किया था। वहाँ पर नैमिषेय श्रेष्ठद्विज-मागधेय-सैन्धव-धर्मारण्य-पुष्करेय-दण्डकारण्यक-चाम्पेय-तार कच्छेय और देविका तीर्थक ये सब वहाँ शंकर का दर्शन करने द्विजाति गण समायात हुए थे तप में सिद्ध करोड़ो की संख्या में वहाँ हर के दर्शन के लालसा वाले थे ॥१०-१३॥ हे मुने! पहिले मैं-पहिले मैं दर्शन करूंगा-ऐसा बोलने वाले सभी हो रहे थे। हर ने दग्ध किल्विष एव आकुल उन महर्षि को देखा था ॥१४॥

तेषामेवानुकम्पार्थं कोटिमूर्तिरभूच्छिवः ।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सर्वं एव महेश्वरम् ॥१५
सपूजयन्तस्ते तस्थुस्तीर्थं कृत्वा पृथक्पृथक् ।
इत्येवं रुद्रकोटीभिर्नाम शंभोरजायत ॥१६
स ददर्श महातेजाः प्रह्लादो भक्तिमान्वशी ।

कोटितीर्थे ततः स्नात्वा तर्पयित्वा वसून्पितृन् ।
रुद्रकोटिं समभ्यर्च्य जगाम कुरुजाङ्गलम् ॥१७

ततो देववरं स्थाणुं शंकरं पार्वतीप्रियम् ।
सरस्वतीजले मग्नं ददर्श सुरपूजितम् ॥१८

सारस्वतेऽम्भसि स्नात्वा स्थाणुं सपूज्य भक्तितः ।
स्नात्वा दशाश्वमेधे च संपूज्य सुरान्पितृन् ॥१९

सहस्रलिङ्गं सपूज्य स्नात्वातस्मिन्ह्रदे शुचिः ।
अभिवाद्य गुरुं शुक्रं सोमतीर्थं जगाम ह ॥२०

तत्र स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितॄन्सोम संपूज्य भक्तितः ।
क्षौरिकावासमभ्येत्य स्नान चक्रे महामतिः ॥२१

उन सब पर कृपा करके शिव कोटि मूर्ति वाले हो गये थे। इसके पश्चात् सभी मुनिगण परम प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने महेश्वर का पूजन करते हुए पृथक्२ स्तोत्र करके वहाँ स्थित हुए थे। इस प्रकार रुद्र कोटि-यह नाम शम्भु का हो गया था ॥१५-१६॥ महा तेजस्वी भक्त प्रह्लाद ने उसको देखा था। कोटि तीर्थ में नहाकर वसुगण और पितरों को तृप्त करके रुद्र कोटि का अर्चन किया था और फिर कुरु-जाङ्गल को चले गये थे ॥१७॥ वहाँ पार्वती प्रिय स्थाणु शंकर को सरस्वती के जल में मग्न देखा था ॥१८॥ सरस्वती के जल में स्नान और स्थाणु का पूजन करके फिर दशाश्वमेध में स्नान तथा सुर और पितरों का पूजन किया था ॥१९॥ उस ह्रद में स्नान और सहस्र लिंग का पूजन करके गुरु शुक्र को प्रणाम किया और सोमतीर्थ को चल दिये थे ॥२०॥ वहाँ स्नान-पितृगण और सोम का अर्चन करके क्षौरिका वास में पहुँच कर महामति ने स्नान किया था ॥२१॥

प्रदक्षिणीकृत्य तरुं वरुणं चार्च्य बुद्धिमान् ।
भूयः कुरुध्वजं दृष्ट्वा पद्माक्षो नगरीं गतः ॥२२

तत्रार्च्य मित्रावरुणौ भास्करौ लोकपूजितौ ।
कुमारधारामभ्येत्य ददर्श स्वामिनं वशी ॥२३

स्नात्वा कपिलधारायां सतर्प्यर्षीन् पितृन्सुरान् ।
दृष्ट्वा स्कन्द समभ्यर्च्य नर्मदाया जगाम ह ॥२४
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य वासुदेवं श्रियः पतिम् ।
जगाम भूधर द्रष्टुं वाराह चक्रधारिणम् ॥२५
स्नात्वा कोकामुखे तीर्थ सपूज्य धरणीधरम् ।
त्रिसौवर्णं महादेव मधुदेश जगाम ह ॥२६
तत्र नारीह्रदे स्नात्वा पूजयित्वा च शंकरम् ।
कालञ्जर समभ्येत्य नीलकण्ठ ददर्श च ॥२७
नीलतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा ततः शिवम् ।
जगाम सागरानूपे प्रभासे द्रष्टुमीश्वरम् ॥२८

वृक्ष की परिक्रमा करके बुद्धिमान् ने वरुण का पूजन किया था। फिर कुशध्वज को देखकर पद्माक्षी नगरी को चले गये थे ॥२२॥ वहाँ लोक पूजित मित्रावरुण भास्करों का अर्चन किया और कुमारधारा जाकर स्वामी का दर्शन किया था ॥२३॥ कपिलधारा में स्नान कर ऋषि-पितृ और सुरों का तर्पण कर फिर स्कन्द का दर्शनाभ्यर्चन कर नर्मदा को चले गये थे ॥२४॥ उसमें स्नान करके श्रीपति वासुदेव का यजन किया और फिर चक्रधारी भूधर वाराह का दर्शन करने को चले गये थे ॥२५॥ कोकामुख में स्नान कर तथा धरणीधर का भली भाँति पूजन कर त्रिसौवर्ण महादेव मधुदेश को चल दिये थे ॥२६॥ वहाँ नारीहृद में नहा कर शंकर का पूजन किया और कालञ्जर में पहुँच कर नीलकण्ठ का दर्शन किया था ॥२७॥ नील तीर्थ जल में स्नान कर शिव का पूजन किया था फिर प्रभास में सागरानूप में ईश्वर का दर्शन करने के लिये चले गये थे ॥२८॥

स्नात्वा च सगमे नद्याः सरस्वत्यार्णवस्य च ।
सोमेश्वर लोकपतिं स ददर्श कपर्दिनम् ॥२९
यो दक्षशापनिर्दग्धः क्षयी ताराधिपः शशी ।
आप्यायितः ॥ करेण विष्णुना सकपर्दिना ॥३०

तावार्च्य देवप्रवरौ स जगाम महालयम् ।
तत्र रुद्रं समभ्यर्च्य प्रजगामोत्तरान्कुरून् ॥३१
पद्मनाभं स तत्रार्च्य सप्तगोदावरं ययौ ।
तत्र स्नात्वाऽऽर्च्य देवेशं भीमं त्रैलोक्यवन्दितम् ॥३२
गत्वा दारुवने श्रीमाञ्छ्रीलिङ्गं प्रददर्श ह ।
तमार्च्य ब्राह्मणीं गत्वा स्नात्वाऽऽर्च्य त्रिदशेश्वरम् ॥३३
प्लक्षावतरणं गत्वा श्रीनिवासमपूजयत् ।
ततश्च कुण्डिनं गत्वा संपूज्य प्राणतृप्तिदम् ॥३४
शूर्पारकं चतुर्बाहुं पूजयित्वा विधानतः ।
मागधारण्यमासाद्य ददर्श वसुधाधिपम् ॥३५

नदी सरस्वती और अर्णव के संगम में स्नान करके लोक पति कपर्दी सोमेश्वर का दर्शन किया था ॥२६॥ जो दक्ष के शाप से दग्ध ताराधिप-क्षयी-शशि कपर्दी विष्णु शंकर ने आप्यायित किया था ॥३०॥ उन देव प्रवर दोनों का अर्चन करके वह महालय को चले गये थे। वहाँ रुद्र का पूजन कर उत्तर कुरुओं को चल दिये थे ॥३१॥ वहाँ पद्मनाभ का पूजन कर सप्त गोदावर को चले गये थे। वहा पर त्रैलोक्य वन्दित भीमदेव का अर्चन किया था और स्नान किया था ॥३२॥ दारुवन में जाकर श्रीलिंग का दर्शन किया था। वहां अर्चन कर ब्राह्मणी में जाकर स्नानार्चन किया जहा त्रिदशेश्वर प्रभु थे ॥३३॥ प्लक्षावतरण कर श्रीनिवास का पूजन किया था फिर कुण्डिन जाकर प्राण तृप्तिद का अर्चन किया था ॥३४॥ चतुर्बाहु शूर्पारक का पूजन करके मागधारण्य में जाकर वसुधाधिप का दर्शन किया था ॥३५॥

तमर्चयित्वा विश्वेशं स जगाम प्रजामुखम् ।
महीतीर्थे ततः स्नात्वा वासुदेवं प्रणम्य च ॥३६
शोणं सम्प्राप्य संपूज्य रुक्मधर्माणमीश्वरम् ।
महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानथ ॥३७
पूजयित्वा जगन्नाथं सैन्धवारण्यमुत्तमम् ।
तं दृष्ट्वाऽऽर्च्य हरिं चासौ तीर्थं कनखलं ययौ ॥३८

तत्रार्च्य भद्रकालीशं वीरभद्रं च दानवः ।
धनाधिपं च मेर्वर्कं ययावथ गिरिव्रजम् ॥३९
तत्र देवं पशुपतिं लोकनाथं महेश्वरम् ।
सम्पूजयित्वा विधिवत्कामरूपं जगाम ह ॥४०
शशिप्रभं देववरं त्रिनेत्रं सम्पूजयित्वा सहितं मृडान्या ।
जगाम तीर्थं प्रवरं महाख्यं तस्मिन्महादेवमपूजयन्न ॥४१
ततस्त्रिकूटं गिरिमद्रिपुत्र जगाम द्रष्टुं सहचक्रपाणिम् ।
समार्च्य भक्त्या तु गजेन्द्रमोक्षणञ्जजापजाप्यंपरमंपवित्रम् ॥४२

वहा विश्वेश का पूजन कर प्रजा मुख को चले गये थे। मं.तीर्थं मे स्नान किया और वासुदेव को प्रणाम किया था ॥३६॥ शोण मे पहुँच कर रुक्मवर्मा ईश्वर का पूजन किया था। महा कोशी मे हुसाख्य महादेव तथा उत्तम सैन्धवारण्य जगन्नाथ का पूजन कर वहा दर्शन करके हरि का अर्चन किया और कनखल तीर्थं को चले गये थे ॥३७-३८॥ वहा दानव ने भद्रकालीश वीरभद्र का अर्चन किया था और धनाधिप मेर्वर्क का यजन किया, बाद मे गिरि व्रज को चले गये थे ॥३९॥ वहाँ पशुपति महेश्वर लोकनाथ का पूजन किया और विधिवत् कामरूप को चले गये थे ॥४०॥ मृडानी के सहित शशिप्रभ त्रिनेत्र देववर का पूजन कर महाख्य श्रेष्ठ तीर्थं मे जाकर महादेव का पूजन किया था ॥४१॥ इसके पश्चात् अद्रि पुत्र गिरि मे चक्रपाणि का दर्शन करने के लिये त्रिकूट को चले गये थे। वहाँ भक्ति से अर्चन कर परम पवित्र जाप्य गजेन्द्र मोक्षण का जप किया था ॥४२॥

तुतोष दैत्येश्वरसूनुरादराम्मासत्रयं मूलफलाम्बुभक्षी ।
निवेद्य विप्रप्रवरेषुकाञ्चनं जगाम घोरं सहि दण्डकं वनम् ॥४३
तत्र दिव्यं महाशाखं वनस्पतिवपुर्धरम् ।
ददर्श पुण्डरीकाक्षं महाश्वापदवारणम् ॥४४
तस्याधस्य त्रिरात्रं स महाभागवतोऽसुरः ।
स्थितः स्थण्डिलशायी च पठन्सारस्वतं स्तवम् ॥४५

तस्मात्तीर्थवरं विद्वान्सर्वपापप्रणाशनम् ।
जगाम दानवो द्रष्टुं सर्वपापहरं हरिम् ॥४६
तस्याग्रतो जगादासौ स्तवो पापप्रमोचनौ ।
यौ पुरा भगवान्प्राह क्रोडरूपी जनार्दनः ॥४७
तस्मादथागद्दैत्येन्द्रः शालग्रामं महाफलम् ।
यत्र सन्निहितो विष्णुः स्तस्भेपु स्थावरेपु च ॥४८
तत्र सर्वगत विष्णुं मत्वा चक्रे रतिं वली ।
पूजयन्भगवत्पादौ महाभागवतो मुने ॥४६
इयं तवोक्ता मुनिसंघजुष्टा प्रह्लादतीर्थानुगतिः सुपुण्या ।
यत्कीर्तनाच्छ्रवणात्स्पर्शनाच्च विमुक्तपापा मनुजा भवन्ति ॥५०

वहाँ तीन मास पर्यन्त मूल-फलों का तथा जल का अशन कर आदर से दैत्येश्वर सूनु सन्तुष्ट हुए। विप्रों को काञ्चन दान कर परम घोर दण्डक वन को चले गये थे ॥४३॥ वहाँ पर दिव्य महाशाख वनस्पति वपु धारी पुण्डरीकाक्ष महा स्वापद वारण का दर्शन किया था ॥४४॥ उसके नीचे स्थित होकर तीन रात्रि तक महा भागवत वह असुर रहा था और स्थण्डिल शायी होकर सारस्वत स्तव का पाठ किया था ॥४५॥ वहाँ से वह विद्वान् दानव सर्व पापों का हरण करने वाले हरि का दर्शन करने के लिये सर्व पाप नाशक श्रेष्ठ तीर्थ को चला गया था ॥४६॥ उसके आगे उसने पाप प्रमोचन दो स्तवों को कहा था जिनको पहिले क्रोड़रूपी भगवान् जनार्दन ने कहा था ॥४८॥ हे मुने ! विष्णु को सर्वगत मानकर बली ने रति की थी। उसने जो महा भागवत तथा भगवान् के चरणों का पूजन किया था ॥४९॥ यह मुनि संघ द्वारा सेवित प्रह्लाद की तीर्थानुगति जो परम पुण्यमयी है आपने कही है जिसके कीर्तन श्रवण और स्पर्शन से मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाते हैं ॥५०॥

८५—गजेन्द्र मोक्ष वर्णन

यान्जप्या भगवद्भक्त्या प्रह्लादो दानवोऽजपत् ।
गजेन्द्रमोक्षणादींस्त्व चतुरस्तान्वदस्व मे ॥१
शृणुष्व कथयिष्यामि जप्यानेतांस्तपोधन ।
दु.स्वप्ननाशो भवति येरुक्तैः संस्मृतै. श्रुतै. ॥२
गजेन्द्रमोक्षणं त्वादौ शृणु त्वं तदनन्तरम् ।
सारस्वतौ ततः पुण्यौ पापप्रशमनौ स्तवौ ॥३
सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥४
क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातल ।
उत्थितः सागरं भित्त्वा देवर्षिगणसेवित. ॥५
अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान्प्रस्रवणाकुलः ।
गन्धर्वै. किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणगुह्यकैः ॥६
विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः ।
वृकद्वीपगजेन्द्रैश्च वृतगात्रो विराजते ॥७

नारद देवर्षि ने कहा—दानव प्रह्लाद ने जिन जप्यों का भगवद् भक्ति से जाप किया था जोकि गजेन्द्र मोक्षण प्रभृति हैं, आप उन चारों को मुझसे कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी ने कहा-हे तपोधन ! आप सुनिये मैं इन जप्यों को बतलाता हूँ । इनके कहने-सुनने और स्मरण से दु स्वप्नों का नाश होता है ॥२॥ पहिले गजेन्द्र मोक्षण को सुनो उसके पश्चात् दो सारस्वतों को जोकि पुण्य और पाप प्रशमन स्तव हैं ॥३॥ त्रिकूट नाम का पर्वत सर्व रत्नों से पूर्ण है । वह भास्वर द्युति पर्वतराज सुमेरु का पुत्र है ॥४॥ क्षीर सागर के जल की तरंगों से जिसके शिलाओं का मल धुल गया है वह सागर का भेदन करके उत्थित हुआ था और देवर्षि गण से सेवित है ॥५॥ अप्सराओं से घिरा हुआ श्री वाला तथा प्रस्रवणों (झरनों) से व्याकुल है । गन्धर्व-किन्नर-सिद्ध चारण-गुह्यक-विद्याधर-सपत्नीक एवं संयत तपस्विगण तथा वृक-द्वीप गजेन्द्रों के द्वारा वृत गात्र वाले वह विराजमान हैं ॥६-७॥

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च विल्वामलकपाटलैः ॥८
चूतनीपकदम्बैश्च चन्दनागरुचम्पकैः ॥९
तस्यैकं काञ्चनशृङ्गं सेवते यद्दिवाकरः ॥१०
नानापुष्पसमाकीर्णं नानागन्धाधिवासितम् ॥ ११
द्वितीयं राजतं शृङ्गं सेवते यन्निशाकरः ॥१२
पाण्डुराम्बुदसङ्काशं तथा रत्नचयोपमम् ॥१३
वज्रेन्द्रनीलवैडूर्यतेजोभिर्भासयन्दिशः।
तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रहृष्टं शृङ्गमुत्तमम् ॥१४

पुन्नाग—कर्णिकार—विल्व—आमलक—पाटल—आम्र—नीप-कदम्ब-चन्दन-अगरु—चम्पक—शाल-ताल-तमाल-सरल-अर्जुन-पर्पट तथा अन्य अनेक प्रकार के वृक्षों से वह पर्वत अलङ्कृत था ॥८-९॥ प्रस्रवण करने वाले अनेक धातुओं से अङ्कित चारों ओर शिखरों से शोभित था। उसका एक काञ्चन शिखर है जो नाना पुष्पों से समाकीर्ण और अनेक गन्धों से अधिवासित है जिसको दिवाकर सेवन करते हैं ॥१०-१२॥ दूसरा राजत शृङ्ग है जिसका सेवन निशाकर करता है। यह पाण्डुर अम्बुद के तुल्य और रत्नों के ढेर के समान है ॥१३॥ वज्र-इन्द्रनील वैडूर्य-के तेजों से दिशाओं को भासित करने वाला तीसरा ब्रह्म सदन प्रहृष्ट उत्तम शिखर है ॥१४॥

न तत्कृतघ्नाः पश्यन्ति नृशंसा नैव राक्षसाः।
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो जनाः ॥१५
तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काञ्चनपङ्कजम् ॥१६
कारण्डवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम् ॥१७
तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा निगूढोऽन्तर्जलेशयः ॥१८
आसीद्ग्राहो गजेन्द्राणां दुराधर्षो महाबलः ॥१९
अथ दन्तोज्ज्वलवपुः कदाचिद्गजयूथपः।
मदस्रावी जलाकाङ्क्षी पादचारीव पर्वतः ॥२०
वासयन्मदगन्धेन गिरिमैरावतोपमः।
स गजोऽञ्जनसङ्काशो मदाघूर्णितलोचनः ॥२१

इस शृंग को कृतघ्न—नृशंस-राक्षस-विनातप करने वाले और जो पापो के करने वाले लोग हैं वे नही देखते हैं ॥१५॥ उस सानुमान् के पृष्ठ भाग मे एक काञ्चन पंकज सर है जो कारण्डवों से समाकीर्ण तथा हंसो से उपशोभित है ॥१६॥ उस सर मे जल के अन्दर शयन करने वाला दुष्टात्मा—निगूढ ग्राह था जो गजेन्द्रों के लिये महाबलवान् दुराधर्ष था ॥१९॥ इसके समीप मे दन्त के समान उज्वल वपु वाला किसी समय ये गजों के यूथ का स्वामी-मद का स्राव करने वाला—जल की इच्छा से युक्त गदाधरी पर्वत के समान आया था ॥२०॥ वह ऐरावत के सदृश था और मद की गन्ध से गिरि को अधिवासित कर रहा था। वह गज अञ्जन के समान मद से आघूर्णित नेत्रों वाला था ॥२१॥

तृषितः स्नातुकामोऽसाववतीर्णश्च तज्जलम् ।
सलीलः पङ्कजवने यूथमध्यगतस्त्वरन् ॥२२
गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना ।
पश्यन्तीनां करेणूनां क्रोशन्तीनां च दारुणम् ॥२३
ह्रियते पङ्कजवने ग्राहेणातिबलीयसा ।
गज आकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४
तयोर्दिव्यं महायुद्धं जातं वर्षसहस्रकम् ।
वारुणैः संयुतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥२५
वेष्टयमानः सुघोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा ।
विस्फूर्य च यथा शक्ति विक्रोशंश्च महारवान् ॥२६
व्यथितः संनिरुद्धवासो गृहीतो घोरकर्मणा ।
परमामापदं प्राप्य मनसाऽचिन्तयद्धरिम् ॥२७
स तु नागवरः श्रीमान्नारायणपरायणः ।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा ॥२८

वह प्यासा था। स्नान करने की इच्छा से उस जल मे अवतीर्ण हुआ था। लीला के साथ उस पङ्कज वन मे यूथ के मध्य मे रहता हुआ शीघ्रता से उतर रहा था ॥२२॥ तब बुरी तरह चीखतीं चिल्लाती हुई देखने वाली हथिनियों में से उस अव्यक्त मूर्ति वाले भयानक ग्राह

से उसको पकड़ लिया था ॥२३॥ बलवान् ग्राह के द्वारा पक्जवन में यह अतीव लज्जितगज तीर की ओर खींच रहा था और ग्राह उसे जल में खींच रहा था ॥२४॥ एक सहस्र वर्ष तक वही दिव्य महा युद्ध हुआ था। वारुण पाशों से समुत वह निष्प्रयत्न और गतिहीन कर दिया गया था ॥२५॥ दृढ और घोर पाशों से वेष्टयमान वह नाग होगया था यथा शक्ति विस्फुरित होकर और महान् ध्वनियों को निकाल रहा था अर्थात् बुरी तरह चिंघाड रहा था ॥२६॥ घोर कर्म के करने वाले के द्वारा पकड़ा गया वह अत्यन्त व्यथित हो गया था निरुच्छ्वास होते हुए परम विपत्ति में पड़कर मन से उसने हरि का चिन्तन किया था ॥२७॥ उस समय में वह श्रेष्ठ गज नारायण के स्मरण में तत्पर होगया था। उसी देव की शरणा गति में प्राप्त हुआ था और मन से उनका ध्यान किया था ॥२८॥

एकात्मा निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जन्मजन्मान्तराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे ॥२९
आद्य देव महादेव पूजयामास केशवम् ।
मथितामृतफेनाभ शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३०
सहस्रशुभनामानमादिदेवमज विभुम् ।
प्रगृह्य पुष्कराग्रेण काञ्चन कमलोद्भवम् ।
आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदैरयत् ॥३१
ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने ।
अनाश्रिताय देवाय नि स्पृहाय नमोस्तु ते ॥३२
नम आद्याय वामाय आर्षायादिप्रवर्तिने ।
अनन्तराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः ॥३३
त्वमेव शरण देवमृषयो वेदपारगाः ।
कीतयन्ती च य सर्वे ब्रह्मादीना परायणम् ॥३४
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद ।
अब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥३५

निगृहीत आत्मा वाला एकात्मा हो गया था और परम शुद्ध मन से अन्तरात्मा से उसने चिन्तन किया था। जन्म जन्मान्तर के अभ्यास से गरुड़ध्वज में भक्ति का उदय हुआ था ॥२६॥ आद्यदेव—महानुदेव भगवान् केशव का मन से अर्चन किया था जोकि मथित फेन की आभा के तुल्य शङ्ख-चक्र-गदा के धारण करने वाले हैं ॥३०॥ सहस्र शुभ नाम वाले आदि देव-अज-विभु को सूँड के अग्रभाग से काञ्चन कमलोद्भव को अपनी आपत्ति के विमोचन के लिये चाहते हुए गज ने इस स्तोत्र का पाठ किया था—॥३१॥ गजेन्द्र ने कहा—मूल प्रकृति—अजित-महान् आत्मा वाले-अनाश्रित-निःस्पृह देव की सेवा में मेरा नमस्कार है ॥३२॥ आद्य, वाम, आर्य, आदि प्रवर्त्ता, अनन्तराय, एक तथा अव्यक्त के लिये मेरा वारम्वार नमस्कार है ॥३३॥ वेद के पारगामी ऋषिगणों के आप ही देव शरण हैं। सभी ब्रह्मादि के परायण आपका ही कीर्त्तन किया करते हैं ॥३४॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! आप अपने भक्तों का सदा अभय प्रदान किया करते हैं। हे अब्रह्मण्य ! आपके लिये मेरा प्रणाम है। अब शरण में समागत मेरी रक्षा कीजिए ॥३५॥

भक्तिं तस्यानुसंचिन्त्य नागस्यामोघसंभवः।
प्रीतिमानभवद्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥३६
सांनिध्यं कल्पयामास तस्मिन्सरसि केशव.।
गरुडस्थो जगत्स्वामी लोकाधारस्तपोधनः ॥३७
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं तं तं च ग्राहं जलाशयात्।
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥३८
जलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः।
मोक्षयामास नागेन्द्रं पाशेभ्यः शरणागतम् ॥३९
एवं हि देवशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः।
ग्राहत्वमगमत्कृष्णाान्मोक्षं प्राप्य दिवं गतः ॥४०
गजोऽपि विष्णुना स्पृष्टो जातो दिव्यवपुः पुमान्।
पापाद्विमुक्तो युगपद्गजगन्धर्वसत्तमौ ॥४१

प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ।
अभवत्त्वथ देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥४२

पुलस्त्यजी ने कहा—अमोघ सम्भव शंख चक्रादि धारी भगवान् विष्णु ने उस गज की भक्ति को विचार कर प्रसन्नता प्राप्त की थी ॥३६॥ उस पर से केशव प्रभु ने गरुड पर स्थित होकर सन्निधि प्राप्त की थी जो प्रभु इस लोक के आधार जगत् के स्वामी और तपोधन हैं ॥३७॥ मधुसूदन ने जो अप्रमेय आत्मा वाले हैं ग्राह से ग्रस्त उस गजेन्द्र को वेग के साथ जलाशय से और ग्राह को भी निकाल लिया था ॥३८॥ जल में स्थित ग्राह को माधव ने चक्र से विदारित कर दिया था और शरणागत नागेन्द्र को पाशों से मुक्त कर दिया था ॥३९॥ इस प्रकार से देव शाप से हूहू गन्धर्व सत्तम ग्राहत्व को प्राप्त हुआ था जो कि कृष्ण से मोक्ष पाकर दिवलोक को चला गया था ॥४०॥ वह गज भी विष्णु के द्वारा पूछा गया दिव्य देह धारण करके पुमान् हो गया था। गज और गन्धर्व दोनों ही पापों से मुक्त होगये थे ॥४१॥ शरणागतों पर प्यार करने वाले पुण्डरीकाक्ष देवेश परम प्रसन्न हुए थे और उन दोनों ने उनका अर्चन किया था ॥४२॥

इदं च भगवान्योगी गजेन्द्रं शरणागतम् ।
प्रोवाच मुनिशार्दूल मधुरं मधुसूदनः ॥४३
यो मां त्वां च सरश्चेदं ग्राहस्य च विदारणम् ।
गुल्मकीचकरेणूनां रूपं मेरुसुतस्य च ॥४४
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिषारण्यमेव च ।
संस्मरिष्यन्ति मनुजाः प्रयाताः स्थिरबुद्धयः ॥४५
कीर्तयिष्यन्ति भक्त्या च श्रोष्यन्ति च शुचिव्रताः ।
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥४६
मात्स्यं कौर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिप्रलयकारकम् ॥४७
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः ।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते पुण्याँल्लोकानवाप्नुयुः ॥४८

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गजेन्द्रं गरुडध्वजः ।
स्पर्शयामास हस्तेन गज गन्धर्वमेव च ॥४६

योगी भगवान् ने शरणागत गजेन्द्र से यह कहा था—हे मुनि शार्दूल ! मधुसूदन मधुरता से बोले—॥४३॥ श्रीभगवान् ने कहा—जो मनुष्य मेरा-तेरा, इस सरोवर का—ग्राह के विदारण का—गुल्म कीचक रेणुओं के रूप का, मेरु सुत के स्वरूप का, अश्वत्थ, भास्कर, गगा और नैमिषा रण्य का स्मरण करेंगे और प्रयत तथा स्थिर बुद्धि से करेंगे-भक्ति से कीर्त्तन करेंगे या शुचिव्रत होकर श्रवण करेंगे उनका दु:स्वप्न नष्ट होकर सुस्वप्न होगा ॥४४ ४६॥ मात्स्य, कौर्म, वाराह, वामन, तार्क्ष्य, नारसिंह, नागेन्द्र और सृष्टि प्रलय कारक—इनका प्रातः उठकर जो मनुष्य स्मरण करेंगे वे सब पापों से छूटकर पुण्यमय लोकों को प्राप्त होंगे ॥४७-४८॥ पुलस्त्य जी ने कहा—गरुड़ ध्वज ने ऐसा कहकर हाथ से गज और गन्धर्व का स्पर्श किया था ॥४६॥

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा गजेन्द्रो मधुसूदनम् ।
जगाम विष्णु शरण नारायणपरायणः ॥५०
ततो नारायणः श्रीमान्मोक्षयित्वा गजोत्तमम् ।
पाप बन्धाश्च शापाञ्च ग्राह चाद्भुतकर्मकृत् ॥५१
ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगुह्यपरायणैः ।
ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥५२
गजेन्द्रमोक्षण दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ववन्दिरे महात्मान प्रभुं नारायण हरिम् ॥५३
महर्षयश्चारणाश्च दृष्ट्वा गजविमोक्षणम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः संस्तुवन्ति जनार्दनम् ॥५४
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा चक्रपाणेर्विचेष्टितम् ।
गजेन्द्रमोक्षण दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥५५
य इद शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थायमानव. ।
प्राप्नुयात्परमा सिद्धि दुःस्वप्नश्च विनश्यति ॥५६

गजेन्द्रमोक्षणं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम् ।
कथितेन स्मृतेनाथ श्रुतेन च तपोधन ॥५७
एतत्पवित्रं परमं सुपुण्य संकीर्तनीयं चरितं मुरारेः ।
यस्मिन्किलोक्ते बहुपापबन्धनाल्लब्धेतमोक्षद्विरदोनुयद्वत् ॥५८
अज वरेण्यं वरपद्मनाभं नारायणं ब्रह्मनिधि सुरेशम् ।
तं देवगुह्यं पुरुष पुराण वन्दाम्यहं लोकपति वरेण्यम् ॥५९

इसके पश्चात् दिव्य वपु वाला गजेन्द्र होगया था और नारायण परायण होकर विष्णु की शरण में गया था ॥५०॥ नारायण ने गज का मोक्ष करके और ग्राहको भी शाप के बन्धन छुड़ाकर अद्भुत कर्म किया था ॥५१॥ ऋषि देवादि के द्वारा स्तूयमान होते हुए भगवान् विष्णु दुर्विज्ञेयगति वाले स्थित थे ॥५२॥ गजेन्द्र मोक्ष को देखकर इन्द्रादि देवगणों ने नारायण हरि की वन्दना की थी ॥५३॥ महर्षि और चारणों ने गज विमोक्षण देखकर विस्मय से खिले हुए लोचन वाले होते हुए जनार्दन का स्तवन करने लगे थे ॥५४॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने चक्रपाणि प्रभु की इस क्रिया को देखकर गजेन्द्र मोक्ष को जानकर यह वचन कहा था ॥५५॥ जो मानव प्रातः उठकर इसका श्रवण करेगा वह परम सिद्धि को प्राप्त होगा और दुःस्वप्न नष्ट हो जायगा ॥५६॥ यह गजेन्द्र मोक्ष मनुष्यों के सब पापों का नाशक है। हे तपोधन ! इसका कथन-श्रवण और स्मरण कोई भी एक किया जावे ॥५६॥ यह परम पवित्र मुरारिका चरित्र है इसका कीर्त्तन करना चाहिए। जिसके कहने पर द्विरद की भांति ही बहुत से पापों के बन्धन से मोक्ष प्राप्त होता है ॥५८॥ अज-वरेण्य-वरपद्मनाभ-नारायण-ब्रह्मनिधि, सुरेश, देवगुह्य पुराण पुरुष लोकपति को मैं वन्दना करता हूँ ॥५६॥

८६—सारस्वत स्तोत्र वर्णन

कश्चिदासीद् द्विजद्रोग्धा पिशुनः क्षत्रियाधमः ।
परपीडारुचिः क्षुद्रः स्वभावादेव निर्घृणः ॥१

नोपासिता सदा तेन पितृदेवद्विजातय ।
स त्वायुषि परिक्षीणे जज्ञ घोरनिशाचर ॥२
तेनासौ कर्मदोषेण स्वेन पापकृता वर ।
क्रूरैश्चक्रे तदा वृत्ति राक्षसत्वाद्विशेषत ॥३
तस्य पापरतस्यैव जग्मुर्वर्षशतानि तु ।
तेनैव कर्मदोषेण नान्या वृत्तिररोचत ॥४
य य पश्यति सत्त्व स त तमादाय राक्षस ।
चखाद रौद्रकर्माऽसौ बाहुगोचरमागतम् ॥५
एव तस्यातिदुष्टस्य कुर्वत प्राणिना वधम् ।
जगाम सुमहान्काल परिणाम तथा वय ॥६
स कदाचित्तपस्य त ददर्श सरितस्तटे ।
महाभाग ह्यूर्ध्वभुज यथावत्सजितेन्द्रियम ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—कोई एक द्विजो से द्रोह करने वाला-परायों को पीड़ा देने में रुचि रखने वाला क्षुद्र स्वभाव से ही निपुण अधम क्षत्रिय था ॥१॥ उसने कभी पितर देव और द्विजातियो की उपासना नही की थी। जब उसकी आयु क्षीण हुई तो यह घोर निशाचर पैदा हुआ था ॥२॥ वह पापियो म शिरोमणि था जो कि अपने ही कर्मों क दोष स बन गया था। उसने क्रूरों के साथ वृत्ति की थी और राक्षस होने स विशेष रूप स ऐसा किया था ॥३॥ पापों से रति वान उसको सो वष व्यतीत हो गय थे और उसी कम के दोष से उस न कोई वृत्ति अच्छी ही नहीं लगती थी ॥४॥ जिस जिस जीव को वह देखता था वह रौद्र कर्मा राक्षस उसी को पकड कर खा जाता था ॥५॥ इस तरह प्राणियों का वध करते हुए महान् समय हो गया था और अवस्था पक चुकी थी ॥६॥ उसने किसी समय म सरिता क तट पर तप करते हुए ऊर्ध्व भुजा वाले और स जितेन्द्रिय को देखा था ॥७॥

अ-यया रक्षया प्रह्लान्तृसवर्त तपोनिधिम् ।
योगाचाय मुचि दष्ट वासुदेवपरायणम् ॥८

विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी ।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुः विष्णुः खड्गी ममोत्तरे ॥९
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः ।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम ॥१०

क्षुरान्तममलं चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम् ।
तस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्ति प्रेतनिशाचरान् ॥११
गदा चेयं सहस्रार्चिरुल्वं हन्तु वृकांस्तथा ।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च शातनी ॥१२
शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् ।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन्हन्त्वशेषतः ॥१३
खड्गधाराजलज्योत्स्नानिर्धूता ये ममाहिताः ।
ते यान्तु सौम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥१४

हे ब्रह्मन् ! यह योगाचार्य वासुदेव परायण-मुनि और इस इस प्रकार की रक्षा से तपोनिधि सुरक्षित था ॥८॥ विष्णु प्राची में स्थित थे-चक्री विष्णु दक्षिण में-गदाधारी पश्चिम में और शार्ङ्गधारी उसके उत्तर में खड्ग लिये स्थित थे ॥९॥ विकोणों में हृषीकेश-उसके भी छिद्रों में जनार्दन थे। क्रोड रूपी हरि भूमि में तथा मेरे नारसिंह अम्बर में स्थित हैं ॥१०॥ चक्र क्षुरान्त अमल है जो सुदर्शन भ्रमण करता है। उसकी किरणों की माला दुष्प्रेक्ष्य है जो प्रेत निशाचरों का हनन करती है ॥११॥ यह गदा सहस्र अर्चियों वाली है उग्र वृकों का हनन करती है। राक्षस भूत पिशाचों की तथा डाकिनियों की शातनी है ॥१२॥ यह विस्फूर्जित शार्ङ्ग वासुदेव का है जो मेरे शत्रु तिर्यक्-मनुष्य-कूष्माण्ड प्रेतादिका पूर्ण तथा हनन करे ॥१३॥ खड्ग धारा जल ज्योत्स्ना निर्धूत जो मेरे अहितगण अहित करने वाले हैं वे सौम्य हों गरुड से पन्नगों की भाँति सौम्यता को प्राप्त हो जावें ॥१४॥

ये कूष्माण्डास्तथा दैत्या यक्षा ये च निशाचराः ।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जृम्भकाः खगाः ॥१५

सिंहादयो य पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः ।
सव भवन्तु ते सौम्या विष्णुशङ्खरवाहताः ॥१६
चित्तवृत्तिहरा ये च ये जना. स्मृतिहारकाः ।
वलौजसा च हर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ॥१७
ये चोपभोग हर्तारो ये च लक्षणनाशकाः ।
कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररयाहताः ॥१८
बुद्धिस्वास्थ्य मन स्वास्थ्य स्वास्थ्यमैन्द्रियक तथा ।
ममास्तु वासुदेवस्य देवदेवस्य कीर्तनात् ॥१९
पृष्ठे पुरस्तादथ दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः ।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युत जनार्दन प्रणिपति न सीदति ॥२०
यथा पर ब्रह्म हरिस्तथा पर जगत्स्वरूप च स एव केशवः ।
ऋतेनतेनाच्युतनामकीर्तनात्प्रणाशमेतत्त्रिविधममाशुभम् ॥२१

जो कूष्माण्ड-दैत्य-यक्ष और जो निशाचर हैं। प्रेत-विनायक-क्रूर मनुष्य-जृम्भक-खग-सिंहादिक पशु-दन्दशूक-पन्नग ये सभी विष्णु की शङ्ख ध्वनि से हत होकर सौम्य हो जावें ॥१५-१६॥ जो चित्त की वृत्ति को अपहर्त्ता है और जो जन स्मृति हरण करने वाले हैं-बल और ओज के हर्त्ता हैं तथा जो छाया विभ्रंशक हैं—जो उपभोग के हर्त्ता हैं और जो लक्षण-नाशक हैं वे कूष्माण्ड वे विष्णु के चक्ररय से हत होकर नष्ट हो जावें ॥१७-१८॥ वासुदेव देव के कीर्तन से मेरी बुद्धि की स्वस्थता—मन की स्वस्थता और इन्द्रियों की स्वस्थता हो जावे ॥१९॥ पृष्ठ मे-आगे-दक्षिण और उत्तर में तथा विकोणो मे जनार्दन हरि हैं। उन ईशान-ईड्य-अनन्त-अच्युत—प्राणपति जनार्दन को कोई दुःख दे सकता है ॥२०॥ जैसे पर ब्रह्म है वैसे ही हरि हैं। जो जगत् स्वरूप है वही केशव है। ऋत उसके द्वारा अच्युत के नाम कीर्तन से मेरा यह त्रिविध अशुभ नाश को प्राप्त हो जावे ॥२१॥

इत्येवं चात्मरक्षार्थ कृत्वा वै विष्णुपञ्जरम् ।
सस्थितोऽसावपि बली राक्षसः समुपाद्रवत् ॥२२

ततो द्विज नियुक्तया रक्षया रजनीचरः ।
निर्धूतवेग सहसा तस्थौ मासचतुष्टयम् ॥२३
यावद्द्विजस्य देवर्षे समाप्तिर्वै समाधितः ।
ततो जप्यावसानेऽसौ त ददर्श निशाचरम् ॥२४
दीन हृतवलोत्साह कान्दिशीक हृतौजसम् ।
त दृष्ट्वा कृपयाऽऽविष्ट समाश्वास्य निशाचरम् ॥२५
पप्रच्छाऽऽगमने हेतु समाचष्टे यथागतम् ।
स्वभावमात्मनो दृष्ट्वा रक्षया तेजसो हृतिम् ॥२६
कथयित्वा च तद्रक्ष कारण विधिवत्तत. ।
प्रसीदेत्यब्रवीद्विप्र निर्विण्णः स्वेन कर्मणा ॥२७
बहूनि पापानिमयाकृतानितथा च सन्तोबहवो मया हृताः ॥२८

इस प्रकार से आत्म रक्षा करके तथा विष्णु पञ्जर करके वह सस्थित था तो भी इस बली राक्षस ने वहाँ उपद्रव किया था ॥२२॥ इसके पश्चात् द्विज नियुक्त रक्षा से वह रजनीचर सहसा निर्धूत वेग वाला होकर चार मास तक स्थित रह गया था ॥२३॥ हे देवर्षे ! जब तक द्विज की समाधि से समाप्ति हुई थी फिर जाप्य के अवसान में इसने उस निशाचर को नही देखा था ॥२४॥ दीन—नष्ट उत्साह बल वाले हत ओज वाले कान्दिशीक उसको देखकर दया से आविष्ट होकर उस निशाचर का आश्वासन दिया था ॥२५॥ उसके आगमन का कारण पूछा था और यथागत जानकर अपना स्वभाव और रक्षा से तेज का हनन देखा था ॥२६॥ उस राक्षस ने सब विधिवत् कारण बतला दिया था वह विप्र से अपने ही कर्म से निर्वेद को प्राप्त होकर बोला—आप मुझ पर प्रसन्न होइये ॥२७॥ मैंने बहुत से पाप किये हैं और मैंने बहुत से सन्तो को मार दिया है ॥२८॥

कृता स्त्रियो मया बह्व्यो विधवा पुत्रवर्जिताः ।
अनागसा च सत्वानामनेकाना क्षय कृत ॥२९
तस्मात्पापादह मोक्षमिच्छामि त्वत्प्रसादतः ।
तत्पापप्रशमायाल कुरु मे धर्मनाशनम् ॥३०

पापस्यास्य क्षयकरमुपदेशं प्रयच्छ मे ।
वचन प्राह धर्मार्थहेतुमत्त्व स्वमार्पितम् ॥३१
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा निशाटस्य द्विजोत्तमः ।
कथ क्रूरस्वभावस्यासतस्व निशाचर ।
सहसेव समायाता जिज्ञासा धर्मवर्त्मनि ॥३२
त्वा वै समागतोऽस्म्यद्य क्षिप्तोऽहृ रक्षया वलात् ।
तव संसर्गतो ब्रह्मञ्जातो निर्वेद उत्तम. ॥३३
का सा रक्षा न ता वेद्मिवेद्मि नास्याः परायणम् ।
यस्याः संसर्गमासाद्य निर्वेद प्रापितो वरम् ॥३४
त्व कृपा कुरु धर्मज्ञ मय्यनुक्रोशमावह ।
यथा पापा पनोदो मे भवत्यार्य तथा कुरु ॥३५

मैंने बहुत स्त्रियो को विधवा और पुत्र हीन कर दिया है मैंने अनेक निरपराधी जीवों का क्षय किया है ॥२९॥ उस पाप से अब मैं आपके ही प्रसाद से मोक्ष चाहता हूँ । उस पाप के प्रशमन के लिये मुझे उपदेश करें और मेरे धर्म नाश को समाप्त कर दो ॥३०॥ मुझे इस पाप का क्षय करने वाला उपदेश दीजिए । ऐसा धर्मार्थ हैतु वाला स्वमार्पित वचन बोला था ॥३१॥ द्विज ने निशाचर के वचन को सुनकर कहा—हे निशाचर ! तू तो बहुत क्रूर स्वभाव का है ऐसे तुझे सहसा धर्म के मार्ग जानने की इच्छा क्यो हुई है ? ॥३२॥ राक्षस ने कहा—आज मैं तुम पर आक्रमण को आया था आपकी रक्षा ने बलात् मुझे प्रक्षिप्त कर दिया है । हे ब्रह्मन् यह आपके ही ससर्ग से उत्तम निर्वेद हो गया है ॥३३॥ वह रक्षा कौन सी है मैं नही जानता हूँ । इसका परायण भी नहीं जानता हू जिसके ससर्ग को पाकर इस श्रेष्ठ निर्वेद को प्राप्त हो गया हूँ ॥३४॥ हे धर्मज्ञ ! आप कृपा करें और मुझ पर दया करे जिससे मेरे पापों का छुटकारा हो हे आर्य ! वही करो ॥३५॥

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तदा तेन च राक्षसम् ।
प्रत्युवाच महाभाग विमृश्य सुचिर वहु ॥३६

यन्मामाहोपदेशाय निर्विण्णः स्वेन कर्मणा ।
युक्तमेतद्धि पापानां निवृत्तिरुपकारिका ॥३७
करिष्ये यातुधानानां न त्वहं धर्मदेशनम् ।
तान्संपृच्छ द्विजान्सौम्य ये वै प्रवचने रताः ॥३८
एवमुक्त्वा ययौ विप्रांश्चिन्तामाप च राक्षसः ।
कथं पापापनोदः स्यादिति चिन्ताकुलेन्द्रियः ॥३९
न चखाद स सत्त्वानि क्षुधासंबाधितोऽपि सन् ।
षष्ठे षष्ठे तदा काले जन्तुमेकमभक्षयत् ॥४०
स कदाचित्क्षुधाविष्टः पर्यटन्विपुले वने ।
ददर्शाथ फलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम् ॥४१
गृहीतो रक्षसा तेन स तदा मुनिदारकः ।
निराशो जीविते प्राह सामपूर्वं निशाचरम् ॥४२

पुलस्त्यजी ने कहा—उसके द्वारा इस प्रकार से कहे हुए उस मुनि ने बहुत देर सोच कर राक्षस से कहा था ॥३६॥ ऋषि ने कहा—जो तुम मुझ से उपदेश के लिये कहता है तू तो अपने ही कर्म्म से निर्विण्ण हो गया है। यह बहुत ही युक्त है कि पापों की निवृत्ति उपकारिका होती है ॥३७॥ मैं यातुधानों को धर्म का उपदेश नहीं करता हूँ। हे सौम्य ! तुम उन द्विजों से पूछो जो प्रवचन करने में निरत होते हैं ॥३८॥ इस तरह से कह कर विप्रों के समीप में गया था और वह राक्षस चिन्ता को प्राप्त हो गया था। कैसे मेरे पापों का अपनोद होगा—इस चिन्ता से समाकुलित इन्द्रियों वाला हो गया था ॥३९॥ वह भूख से पीड़ित होकर भी जीवों को नहीं खाता था। छटवें २ दिन के समय में एक जन्तु को खाता था ॥४०॥ वह एक बार क्षुधा से युक्त होकर वन में घूम रहा था। उसने फलाहार करने वाले आते हुऐं ब्रह्मचारी को देखा था ॥४१॥ राक्षस ने उस समय में उस मुनि के बालक को पकड़ लिया था। वह अपने जीवन में निराश होकर साम पूर्वक उस निशाचर से बोला—॥४२॥

भोऽनघ ब्रूहि तत्कार्यं गृहीतो येन हेतुना ।
तदेव ब्रूहि भद्रं ते स्वयमस्म्यनुशाधि माम् ॥४३
षष्ठे काले त्वमाहारः क्षुधितस्य समागतः ।
निष्ठुरस्यातिपापस्य निर्घृणस्य द्विजद्रुहः ॥४४
यद्यवश्य त्वया चाहं भक्षितव्यो निशाचर ।
आयास्यामि तवाद्यैव निवेद्य गुरवे फलम् ॥४५
गुर्वर्थमेतदागत्य यत्फलग्रहणं कृतम् ।
ममात्र निष्ठां प्राप्तस्य फलानि विनिवेदितुम् ॥४६
स त्वं मुहूर्तमात्रं मामत्रैवमनुपालय ।
निवेद्य गुरवे यावदिहागच्छाम्यहं फलम् ॥४७
षष्ठे काले न मे ब्रह्मन्कश्चिद् ग्रहणमागतः ।
प्रतिमुच्येत देवोऽपि इति मे पापजीविका ॥४८
एक एवात्र मोक्षस्य तव हेतुः शृणुष्वतम् ।
मुञ्चाम्यहमसंदिग्धं यदि तत्कुरुते भवान् ॥४९

ब्राह्मण ने कहा—हे अनघ ! वह कार्य बतलाओ जिसके कारण से तुमने पकड़ लिया है । वही मुझे बोलो मैं स्वयं ही हूं-मुझको आदेश दो—तुम्हारा कल्याण हो ॥४३॥ राक्षस ने कहा—षष्ठ काल में तुम मेरा आहार आ गये हो मैं बहुत भूखा हूं । मैं निष्ठुर अत्यन्त पापी हूँ-निर्घृण और द्विजों का द्रोह करने वाला हूँ ॥४४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे निशाचर ! यदि अवश्य ही तुमने मुझको खाना ही है तो आज ही मैं गुरु जी को फल निवेदित कर तुम्हारे पास आजाऊंगा ॥४५॥ मैंने गुरुजी के लिये यहाँ आकर फलों का ग्रहण किया है । निष्ठा को प्राप्त हुए मेरा फल गुरु को निवेदन करना आवश्यक है ॥४६॥ आप एक मुहूर्त्त मात्र यहीं पर मेरी प्रतीक्षा करें । मैं जबतक गुरुजी को फल निवेदन कर यहीं पर आता हूं ॥४७॥ राक्षस बोला—षष्ठ काल में हे ब्रह्मन् ! कोई भी मेरे हाथ नहीं लगा है । देव भी छोड़ देवे किन्तु मेरी यही पाप जीविका है ॥४८॥ एक मात्र ही तुम्हारे मोक्ष का हेतु है।

जाऊंगा क्योंकि मैं पञ्च पञ्च में ही खाता हूँ ॥५५॥ उस घोर राक्षस के द्वारा इस तरह कहा गया वह मुनि पुत्र महा चिन्ता को प्राप्त हो गया था क्योंकि उसे कहने में वह असमर्थ था ॥५६॥

स विमृश्य चिरं विप्र शरणं जातवेदसम् ।
जगाम ज्ञानदानाय संशयं परमं गतः ॥५७
यदि शुश्रूषितो वह्निर्गुरुशुश्रूषणादनु ।
व्रतानि वा सुचीर्णानि सप्तार्चिः पातु मां ततः ॥५८
न मातरं न पितरं गौरवेण यथा गुरुम् ।
यथाऽहमवगच्छामि तथा मां पातु पावकः ॥५९
यथा गुरुं न मनसा कर्मणा मनसाऽपि च ।
अवजानाम्यहं तेन पातु मां तेन पालना ॥६०
इत्येवं मनसा सत्यं कुर्वतः शपथान्मुने ।
सप्तार्चिषा समादिष्टा प्रादुरासीत्सरस्वती ॥६१
सा प्रोवाच द्विजसुतं राक्षसग्रहणाकुलम् ।
मा भैर्द्विजसुताहं त्वां मोक्षयाम्यद्य सङ्कटात् ॥६२
यदस्य रक्षसः श्रेयो जिह्वाग्रे संस्थिता तव ।
तत्सर्वं कथयिष्यामि ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥६३
अदृश्या रक्षसा तेन प्रोक्त्वेत्थं च सरस्वती ।
अदर्शनं गता सोऽपि द्विजः प्राह निशाचरम् ॥६४
श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तथाऽन्येषां च पापिनाम् ।
समस्तपापशुद्धयर्थं पुण्योपचयदं च यत् ॥६५

उस विप्र ने चिरकाल तक सोच कर जातवेदा के शरण में गया था। परम संशय को प्राप्त हुआ वह ज्ञान दान के लिये ही शरण में गया था ॥५७॥ यदि हे अग्नि देव ! मैं गुरुजी की शुश्रूषा के पीछे आपकी शुश्रूषा की है और व्रतों को चीर्ण किया है तो सप्तार्चि देव आप मेरी रक्षा करें ॥५८॥ मैं माता और पिता को गौरव में उतना नहीं समझता जितना गुरु को जानता हूँ अतएव पावक देव मेरी रक्षा करो ॥५९॥ मन-कर्म से गुरु को भी मैं ऐसा नहीं समझता हूँ जैसा आपको

मत: मेरी रक्षा करो ॥६०॥ हे मुने ! इस प्रकार से मन से शपथों का सत्य करते हुए उसके आगे सप्तर्षि के द्वारा समादिष्ट सरस्वती देवी प्रादुर्भूता हुई थी ॥६१॥ राक्षस द्वारा ग्रहण करने से व्याकुल द्विज पुत्र से वह बोली—हे द्विज सुत ! डरो मत। आज इस संकट से मैं तुझे छुड़ा दूंगी ॥६२॥ जो भी इस राक्षस को श्रेय है वह तेरी जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित है वह सब कह दूंगी फिर तेरा मोक्ष हो जायगा ॥६३॥ उस राक्षस के द्वारा अदृश्य सरस्वती इस प्रकार से कह कर अन्तर्धान हो गई। वह द्विज भी उस निशाचर से बोला ॥६४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राक्षस ! तेरा तथा अन्य पापियों का श्रेय श्रवण करो जो समस्त पापों की शुद्धि और पुण्य के उपचय का प्रदान करने वाला है ॥६५॥

प्रातरुत्थाय जप्तव्यं मध्याह्नेऽह्नः क्षयेऽपि वा।
असंशयं सदाजापो जपतां पुष्टिशान्तिदः ॥६६
ॐ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु ॥६७
चराचरगुरुं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम्।
प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु ॥६८
शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम्।
प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः स मे पापं व्यपोहतु ॥६९
दामोदरमुदारं तं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यैः स मे पापं व्यपोहतु ॥७०
नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम्।
प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु ॥७१
केशवं केशहन्तारं कंसारिष्टनिषूदनम्।
प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु ॥७२

प्रातःकाल में उठकर जप करना चाहिए—मध्याह्न में और दिन क्षय के समय में भी जप करें। बिना किसी संशय के सदा जाप करने वालों को पुष्टि और शान्ति देने वाला है ॥६६॥ वह जाप यह है—ॐ हरि-कृष्ण-हृषीकेश-वासुदेव जनार्दन और जगन्नाथ को मैं प्रणाम

करता हूँ वही मेरे पापों का व्यपोहन करें ॥६७॥ परावर के गुरु-नाथ गोविन्द-शेषशायी परदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। वह मेरे पापों को दूर करें ॥६८॥ शंखधारी-चक्री-शाङ्‌र्गधारी-सग्धर-पर और लक्ष्मी के पति के समक्ष मैं प्रणत हूँ वह मेरे पाप दूर करें ॥६९॥ दामोदर-उदार पुण्डरीकाक्ष, अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ जो स्तुतियों से स्तुत हैं वह मेरे पाप का व्यपोहन करें ॥७०॥ नारायण-नर, शौरि, माधव, मधुसूदन और धरा के आधार को मैं प्रणाम करता हूँ वह मेरे पापों को छुड़ा देवें ॥७१॥ केशव, केशी के हन्ता, कंसारिष्ट निषूदन और महाबाहु को मैं प्रणाम करता हूँ वह मेरे पाप को दूर करें ॥७२॥

श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम् ।
प्रणतोऽस्मि श्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु ॥७३
यमीशं सर्वभूतानां ध्यायन्ति यतयोऽक्षरम् ।
वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः ॥७४
समस्तालम्बनेभ्यो यं व्यावृत्य मनसो गतिम् ।
ध्यायन्ति वासुदेवाख्यं तमस्मि शरणं गतः ॥७५
सर्वगं सर्वभूत च सर्वस्याधारमीश्वरम् ।
वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणागतः ॥७६
परमात्मानमव्यक्तं यं यान्ति च सुमेधसः ।
कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः ॥७७
पुण्यपापविनिर्मुक्तो य प्राप्य च पुनर्भवम् ।
न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरण गतः ॥७८
ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
यः सृजत्यच्युतो देवांस्तमस्मि शरण गतः ॥७९

श्रीवत्स को वक्षःस्थल मे धारण करने वाले—श्रीश, श्रीधर, श्री निकेतन और श्री के कान्त को मैं प्रणाम करता हूँ वह मेरे पाप दूर करें ॥७३॥ यतिगण सब भूतों के ईश अक्षर जिसका ध्यान करते हैं उन अनिर्देश्य वासुदेव प्रभु के मैं शरण में प्राप्त होगया हूँ ॥७४॥ समस्त

आलम्बनो से मन की गति को व्यावृत्त कर जिस वासुदेव नाम वाले का ध्यान करते हैं मैं उनके शरण में आगया हूं ॥७५॥ सर्वत्र गमनशील, सर्वभूत, सब का आधार, ईश्वर, परब्रह्म वासुदेव की शरणागति मे मैं आगया हूं ॥७६॥ सुन्दर मेधा वाले लोग परमात्मा—अव्यक्त जिसको कर्मों के क्षय मे अक्षयदेव को प्राप्त होते हैं मैं उन्ही को शरण मे आगया है ॥७७॥ योगी लोग पुण्य-पाप से विनिर्मुक्त होकर जिसको प्राप्त करते हैं और फिर पुनर्जन्म नही लेते हैं मैं उन्हीं की शरण मे हू ॥७८॥ ब्रह्म होकर देव—असुर और मनुष्यों मे पूर्ण इस जगत् का जो अच्युत सृजन करते हैं मैं उन्हीं की शरण में प्राप्त हूं ॥७९॥

ब्रह्मत्व यस्य वक्त्रभ्यश्चतुर्वेदमय वपुः ।
वपुः प्रभो. परो जज्ञे तमस्मि शरण गतः ॥८०
ब्रह्मरूपधर देव जगद्योनि जनार्दनम् ।
स्रष्टृत्वे सस्थित सृष्टौ त नतोऽस्मि जनार्दनम् ॥८१
धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथाऽमराः ।
येन तविष्णुमादेश्य प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥८२
यज्ञैर्यजन्ति य विप्रा यज्ञेश यज्ञभावनम् ।
त यज्ञपुरुष विष्णु प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥८३
पातालवीथीभूतानि तथा लोकान्निहन्ति यः ।
तमन्तपुरुष रुद्र प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥८४
सभक्षयित्वा सकल यथासृष्टमिद जगत् ।
यो वै नृत्यति रुद्रात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥८५
सुरासुराः पितृगणा यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
यस्याशभूता देवस्य सर्वग त नमाऽम्यहम् ॥८६
समस्तदेवाः सकला मनुष्याणा च जातयः ।
यस्याशभूता देवस्य सर्वग त नमाम्यहम् ॥८७
वृक्षगुल्मादयो यस्य तथा पशुमृगादयः ।
एकाश भूता देवस्य सर्वग त नमाम्यहम् ॥८८

जिसके मुखों से धनुर्वेदमय वपु वाला ब्रह्मात्म प्रभु का वपु परात्पर ने उत्पन्न किया था उसी के शरण में हूँ ।।८०।। ब्रह्म रूपधारी देव, जगद्योनि, जनार्दन सृष्टि में सृष्टा होकर संस्थित उसी जनार्दन प्रभु को मेरा नमस्कार है ।।८१।। मही को धारण किया—दैत्यों का हनन किया था तथा देवों का परित्राण किया था और जिसने उस विष्णु को आदेश कर किया था उन जनार्दन को मेरा प्रणाम है ।।८२ ।। जिसका यज्ञों के द्वारा विप्रगण यजन किया करते हैं उस यज्ञेश, यज्ञभावन, यज्ञ पुरुष विष्णु जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ।।८३।। जो पाताल वीथी भूतो को तथा लोकों को निहत करते हैं मैं उसे अन्त पुरुष रुद्र को जनार्दन को प्रणाम करता हूँ ।।८४।। सब का संरक्षण करके फिर इस तरह सृजन किया है और जो यज्ञात्मा नृत्य करता है उस जनार्दन प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।८५।। सुर, असुर, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस सब जिस देव के अंश भूत हैं उस सबग को मैं नमस्कार करता हूँ ।।८६।। वृक्ष देवता, मनुष्य, गुल्म प्रभृति तथा पशु–मृग आदि जिस देव के एक अंश भूत हैं मैं उस सब मे रहने वाले को प्रणाम करता हूँ ।।८७-८८।।

यस्माद्यान्यत्पर किञ्चिद्यस्मिन्सर्वं महात्मनि ।
य सर्वमध्ययोऽनन्तः सर्वगं त नमाम्यहम् ।।८९
यथा सर्वषु भूतेषु गूढोऽग्निरिह दारुषु ।
विष्णुरेव तथा पाप ममाशेष प्रणश्यतु ।।९०
यथा सर्वमय विष्णु ब्रह्मादि सचराचरम् ।
यच्च ज्ञानपरिच्छेद्य पाप नश्यतु मे तथा ।।९१
शुभाशुभानि कार्याणि रज.सत्त्वतमासि च ।
अनेकजन्म कर्मोत्थ पाप नश्यतु मे तथा ।।९२
यन्निशाया च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्नयोः ।
सध्ययोश्च कृत पाप कर्मणा मनसा गिरा ।।९३
यत्तिष्ठता द्रद्व्रजता यच्च शय्यागतेन मे ।
कृत यदशुभ कर्म कायेन मनसाऽपि वा ।।९४

अज्ञानतो ज्ञानतो वा मदाच्चलितमानसैः ।
तत्क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥६५
परदारपरद्रव्यवाञ्छाद्रोहोद्भवं च यत् ।
परपीडोद्भवा निन्दा कुर्वता यन्महात्मनाम् ॥६६
यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने ।
तद्यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥६७

जिससे अन्य कोई भी पर नहीं है और जिस महान् आत्मा में सभी हैं। जो अव्यय, सर्व, अनन्त है उस सर्वग को मैं नमस्कार करता हूँ ॥८६॥ जिस तरह काष्ठों में अग्नि निगूढ़ है वैसे ही वह सब विष्णु भूतों में गूढ़ है। वह मेरे अशेष पाप को नष्ट कर देवे ॥९०॥ जिस प्रकार विष्णु सर्वमय हैं और ब्रह्मादि चराचर हैं तथा जो ज्ञान से परिच्छेद्य है वैसे ही मेरे पाप नष्ट हो जावें ॥९१॥ शुभ और अशुभ कार्य और रज-सत्व, तम है उसी भाँति अनेक जन्मों के कर्मों से समुत्थित मेरे पाप नष्ट हो जावे ॥९२॥ जो निशा में—जो प्रातःकाल में—मध्याह्न और अपराह्न में—दोनों सन्ध्याओं में जो भी मन—वचन और कर्म से पाप किया है ॥९३॥ जो स्थित रहते—चलते और शय्यागत होते अशुभ कर्म काया अथवा मन से किया है ॥९४॥ अज्ञान से—मद से चलित मन वालों ने पाप किया है वह वासुदेव के कीर्त्तन से शीघ्र ही विलय को प्राप्त हो जावे ॥९५॥ पराई स्त्री-परायी द्रव्यवाञ्छा द्रोह से उत्पन्न जो भी पाप है। पर पीड़ा से उद्भव वाली निन्दा महात्माओं की करते हुए जो पाप है ॥९६॥ जो भोज्य में पेय में, भक्ष्य में-चोष्य में विलेहन में जो पाप है वह जल में लवण के भाजन की भाँति विलय को प्राप्त हो जावे ॥९७॥

यद्बाल्ये यच्च कौमारे यत्पापं यौवने मम ।
वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम् ॥९८
तन्नारायण गोविन्द हरे कृष्णेति कीर्तनात् ।
प्रयातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥९९

विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च ।
जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नमः ॥१००

भविष्यन्नरकघ्नाय नमः कंसविघातिने ।
अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणे नमः ॥१०१

कोऽन्यो बलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति ।
कोऽन्यो बलान्नाशयिता दर्पं हैहयभूपतेः ॥१०२

कः करिष्यति चान्यो वै सागरे सेतुबन्धनम् ।
वधिष्यति दशग्रीवं कः सामात्यपुरःसरम् ॥१०३

कस्त्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रतिमेष्यति ।
प्रलम्बपूतनादीनां त्वामृते मधुसूदन ।
नियन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति ॥१०४

जो बचपन में—जो कौमार अवस्था में और यौवन में मेरा किया हुआ पाप हो-वय की परिपाक अवस्था में जो किया गया है और जो दूसरे जन्मों में किया है ॥९८॥ वह सब नारायण-गोविन्द हरे, कृष्ण, इन भगवन्नामों के कीर्तन से तोय में लवण-भाजन की भाँति विलय को प्राप्त हों ॥९९॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्ण के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥१००॥ होने वाले नरकों के हनन करने वाले कंस के विघाती के लिये नमस्कार है। अरिष्ट, केशी, चाणूर, देवारि के क्षय करने वाले की सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥१०१॥ आपके बिना बलि का वञ्चन करने वाला अन्य कौन होगा। कौन अन्य है जो बलात् हैहय राजा के दर्प का नाश करने वाला हो ॥१०२॥ अन्य कौन सागर में सेतु बाँध सकता है। अमात्यों के सहित दशग्रीव का वध कौन करेगा ॥१०३॥ आपके सिवाय अन्य कौन गोकुल में नन्द की रति करेगा। हे मधुसूदन ! आप के बिना प्रलम्ब पूतनादि का नियन्ता-अथवा शास्ता हे देव देव ! होगा ॥१०४॥

जपत्येवं नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ।
इष्टानिष्टप्रसङ्गेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥१०५

कृतं तेन तु यत्पापं सप्तजन्मान्तरेण वै ।
महापातकसज्ञं वा तथा चैवोपपातकम् ॥१०६

यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च ।
नाशयेद्योगिना सर्वमामपात्रमिवाम्भसि ॥१०७

नरः सवत्सर पूर्णंतिलपात्राणि षोडश ।
अहन्यहनि यो दद्यात्पठत्येतच्च तत्समम् ॥१०८

अविप्लुतब्रह्मचर्य सप्राप्य स्मरणं हरेः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥१०९

तदेतत्सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि वै मृषा ।
राक्षसग्रस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु ॥११०

एवमुच्चारिते तेन मुक्तो विप्रस्तु रक्षसा ।
अकामेन द्विजो भूयस्तमाह रजनीचरम् ॥१११

जो मनुष्य इस प्रकार से परम पुण्य वैष्णव उत्तम धर्म का जप किया करता है चाहे इष्टानिष्ट के प्रसङ्गों से अथवा ज्ञान या अज्ञान से करे ॥ १०५ ॥ उसने सात जनमों में जो भी पाप किया है चाहे महा पातक हो अथवा उपपातक हो ॥१०६॥ पुण्य यज्ञ आदि और जप होम व्रत योगियों का सब जल में कच्चे पात्र की भांति नाश कर देते हैं ॥१०७॥ मनुष्य पूरे वर्ष सोलह पूरे तिलों के पात्र प्रतिदिन दान करे और उसके साथ इसको पढ़े ॥१०८॥ ब्रह्मचर्य का विलोप न करके हरि का स्मरण करे तो वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है—मेरा यह कथन सत्य है ॥१०९॥ यह मेरा सत्य कथन है। इसमें थोड़ा भी मिथ्या नहीं है। राक्षस के द्वारा ग्रस्त सर्वाङ्ग वाले मुझको यह छोड़ देवे ॥११०॥ पुलस्त्य ने कहा—उसके द्वारा ऐसा कहने पर राक्षस ने विप्र को छोड़ दिया था। बिना इच्छा के उस द्विज ने फिर निशाचर से कहा—॥१११॥

एतद्भद्र मयाऽऽख्यात तव पातकनाशनम् ।
विष्णोः सारस्वत स्तोत्र यदूचे सरस्वती ॥११२

हुताशनेन दीप्ता च मम जिह्वाग्रसंस्थिता ।
जगादेमं स्तवं विष्णोः सर्वेषां चोपशान्तिदम् ॥११३
अनेनैव जगन्नाथं त्वमाराधय केशवम् ।
ततः शापापनोदं तु स्तुते लप्स्यसि केशवे ॥११४
प्रत्यहं स्वं हृषीकेशस्तवेनानेन राक्षस ।
स्तुत्वा भक्तिं दृढां कृत्वा ततः पापात्प्रमोक्ष्यसे ॥११५
स्तुतो हि सर्वपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ।
स्तुतो हि भक्त्या नृणां स सर्वपापहरो हरि. ॥११६
ततः प्रणम्य तं विप्रमासाद्य च निशाचरः ।
तदैव तपसे श्रीमाञ्शालिग्राममगाद्वली ॥११७
अहर्निशं स ऐवैन जपन्सारस्वतं स्तवम् ।
देवक्रियारतिर्भूत्वा तपस्तेपे निशाचर. ॥११८
समाराध्य जगन्नाथं स तत्र पुरुषोत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमगाच्छुभम् ॥११९
एतत्ते कथितं ब्रह्मन्विष्णोः सारस्वतं स्तवम् ।
विप्रवक्त्रस्थया सम्यक्सरस्वत्या समीरितम् ॥१२०
य एतत्परमं स्तोत्रं वासुदेवस्य मानवः ।
पठिष्यति स सर्वेभ्यो दुःखेभ्यो मोक्षमाप्स्यति ॥१२१

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्र ! यह मैंने तेरे पातकों नाश करने वाला कहा है । विष्णु का सारस्वत स्तोत्र है जो सरस्वती ने कहा था ॥११२॥ हुताशन के द्वारा दीप्त मेरी जीभ के अग्रभाग मे संस्थित है । उसने ही इस विष्णु के स्तव को कहा है जो सबको उपशान्ति देने वाला है ॥११३॥ इसी के द्वारा तुम जगन्नाथ केशव का आराधन करो । फिर केशव के स्तुत होने पर तुम शाप का अपनोद प्राप्त करोगे । हे राक्षस ! प्रतिदिन इस स्तव से हृषीकेश की स्तुति कर दृढ भक्ति कर पाप से मुक्त हो जाओगे ॥११४-११५॥ स्तुत प्रभु समस्त पापों को निश्चय ही नष्ट कर देंगे । भक्ति से स्तुत हरि मनुष्यों के सब पापों का हरने वाले

होते हैं ॥११६॥ पुलस्त्यजी ने कहा—निशाचर ने उस विप्र को प्रणाम किया और उसी समय में तप के लिये शालिग्राम को चला गया था ॥११७॥ अहर्निश वह इसी सारस्वत स्तव का जाप किया करता था और निशाचर ने देव क्रिया में रति रखते हुए तपश्चर्या की थी ॥११८॥ जगन्नाथ की समाराधना करके जो वह पुरुषोत्तम प्रभु थे वह सब पापों से मुक्त हो गया था और परम शुभ विष्णुलोक को चला गया था ॥११६॥ हे ब्रह्मन् ! यह सारस्वत स्तव हमने तुमको बतला दिया है जो भगवान् विष्णु का है। यह विप्र के मुख में स्थित सरस्वती देवी ने भली भाँति बतलाया है ॥१२०॥ जो मानव इस वासुदेव के परम स्तोत्र का पाठ करेगा वह समस्त दुःखों से निश्चय ही छुटकारा पा लेगा ॥१२१॥

८७—वामन जन्म वर्णन

गतेऽथ तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे ।
कुरुक्षेत्रं समभ्यागाद्द्रष्टुं वैरोचनो बलिः ॥१
तस्मिन् महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुंगवः ।
शुक्रोद्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवः ॥२
भृगुणाऽऽमन्त्र्यमाणा वै श्रुत्वाऽत्रेयाः सगौतमाः ।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्त्वज्ञाः कुरुजाङ्गलान् ॥३
उत्तराशां प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रवीम् ।
शातद्रवे जले स्नात्वा विप्रास्ते प्रययुस्ततः ॥४
विधाय तत्र सुस्नानं संपूज्य पितृदेवताः ।
प्रजग्मुः किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम् ॥५
तस्यां स्नात्वा च देवर्षे सर्वे एव महर्षयः ।
ऐरावतीं सुपुण्योदां स्नात्वा जग्मुरथेश्वरीम् ॥६
देविकायां जले स्नात्वा पयोष्ण्याश्चैव तापसाः ।
अवतीर्णा मुने स्नातुमात्रेयाद्यास्तु तां नदीम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—दानवों के स्वामी प्रह्लाद के तीर्थ यात्रा के लिये चले जाने पर वैरोचन बलि कुरुक्षेत्र को देखने के लिये आगया था ॥१॥ उस महान धर्म से संयुत तीर्थ में ब्राह्मणो मे परम श्रेष्ठ भार्गव शुक्र ने द्विजातियो मे श्रेष्ठो का आमन्त्रण किया था ॥२॥ भृगु के द्वारा आमन्त्रित होते हुए यह श्रवण करके आत्रेय, गौतम, कौशिक, आंगिरस तत्वों के ज्ञान रखने वाले उत्तर दिशा में शतद्रवी नदी के सहारे कुरु जांगल देशों को चल दिये थे और शातद्रव मे जल में स्नान करके वे विप्र वहा से चले गये थे ॥३-४॥ वहाँ पर सुन्दर रीति से स्नान करके पितर और देवो को भली भांति पूजन करके दिनेश की किरणो से गिरी हुई पुण्यमयी किरणा नदी पर चले गये थे ॥५॥ हे देवर्षे ! उसमे सब महर्षियो ने स्नान करके फिर पवित्र जलवाली ऐरावती मे स्नान करके ईश्वरी को इसके पश्चात् चले गये थे ॥६॥ देविका के जल मे तथा पयोष्णी के जल मे तपस्वियो ने स्नान किया था। हे मुने ! आत्रेयादिक सब लोग उस नदी में स्नान करने के लिये अवतीर्ण गए थे ॥७॥

ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिबिम्बमथात्मनः।
अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारकम् ॥८

उन्मज्जन्तश्च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः।
ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि ॥९

जग्मुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन्कथयन्तः परस्परम्।
चिन्तयन्तश्च सततं किमेतदिति विस्मिताः ॥१०

ततोऽदूरादपश्यस्ते वनषण्ड सुविस्तृतम्।
घनं घनदलश्याम खगश्रमविनाशनम् ॥११

अतितुङ्गतया व्योम आवृण्वानं नरोत्तमम्।
विस्तृताभिर्लताभिस्तु अन्तर्भूमि च नारद ॥१२

काननं पुष्पितैर्वृक्षैः फलितैश्च ततस्ततः।
दशार्धवाणसदृशैर्नभस्तारागणैरिव ॥१३

तद् दृष्ट्वा कमलैर्व्याप्तं पुण्डरीकैश्च शोभितम् ।
तद्वत्कोकनदैर्व्याप्तं वनं पद्मवनं यथा ।।१४

उसमें निमग्न होकर उन्होंने अपना प्रतिबिम्ब देखा था। हे द्विज श्रेष्ठ ! उस जल के अन्दर ऐसा प्रतिबिम्ब का देखना महान् आश्चर्य करने वाला था ।।८।। उन्मज्जन करते हुए भी उन्होंने प्रतिबिम्ब को देखा था फिर उनके मन में बड़ा ही विस्मय होगया था। फिर स्नान करके वे सभी ऋषिगण उत्तीर्ण हुए थे ।।९।। हे प्रह्लाद ! परस्पर में कथन करते हुए वे वहाँ से भी चलदिये थे। सभी इसका चिन्तन करते जारहे थे कि यह क्या बात है और सब बड़े विस्मयापन्न होरहे थे ।।१०।। इसके उपरान्त उन्होंने दूर से ही एक सुविस्तृत वनखण्ड देखा था। वह वनखण्ड बहुत घना था और घनदल के समान ही श्याम वर्ण का था जो खगों के श्रम का विनाशक था ।।११।। हे नरोत्तम ! वह अत्यन्त ऊँचा होने के कारण से आकाश को आवृत-सा कर रहा था और हे नारद ! अति विस्तृत लताओं से अन्तभूमि को भी समावृत करने वाला था।।१२।।वह कानन पुष्पों वाले और फलों वाले वृक्षों से जहाँ तहाँ खूब स्थिर हुआ था जो कामदेव के सदृश आकाश के तारागणों की भाँति थे ।।१३।। उसे कमलों से व्याप्त और पुण्डरीकों से परम शोभा सम्पन्न देखकर जोकि उसी भाँति कोकनदों से व्याप्त था जैसे पद्मवन ही वह वन था ।।१४।।

प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलां ते ह्लादं परमं युयुः ।
विविशुः प्रीतमनसो हंसा इव महासरः ।।१५

तन्मध्ये ददृशुः पुण्यमाश्रमं लोकपूजितम् ।
चतुर्णां लोकपालानां वर्णाणां मुनिसत्तमाः ।।१६

धर्माश्रमं प्राङ्मुखं तु पलाशविटपावृतम् ।
प्रतीच्यभिमुखं ब्रह्माश्रयं पुण्यवनावृतम् ।।१७

दक्षिणाभिमुखं काम्यं रम्भाशोकवनावृतम् ।
उदङ्मुखं च मोक्षस्य शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।१८

कृतान्ते त्वाश्रमी मोक्षः कामस्त्रेतायुगे स्थितः ।
आश्रम्यर्थो द्वापरान्ते तिष्यान्ते धर्म आश्रमी ॥१९
तमाश्रम हि मुनयो दृष्ट्वाऽऽत्रेयास्ततोऽव्ययाः ।
तत्रैव हि रतिं चक्रु रखण्डे सलिलाप्लुते ॥२०
धर्माद्यो भगवान्विष्णु रखण्ड इति विश्रुतः ।
चतुर्मूर्तिजगन्नाथः पूर्वमेव प्रतिष्ठितः ॥२१

उसे देखकर अतुलनीय तुष्टि को प्राप्त हुए और परम प्रसन्नता प्राप्त हुई थी। जैसे हंस गण किसी महान् सरोवर में प्रवेश किया करते हैं वैसे ही वे सब परम प्रसन्न मन वाले होते हुए उसमें प्रवेश कर गये थे ॥१५॥ उसके मध्य में चारों वर्गों के लोक पालों के मुनि श्रेष्ठों ने वहाँ लोक द्वारा वन्दित एक पुण्याश्रम का दर्शन किया था ॥१६॥ हे ब्रह्मन् ! वह धर्माश्रम पूर्व की ओर मुख वाला था और ढाक के वृक्षों से आवृत था। प्रतीची (पश्चिम) की ओर अभिमुख पुण्य वनावृत था ॥१७॥ दक्षिण की ओर मुख वाला काम्य वन था जो रम्भा (केला) और अशोक के वन से समावृत हो रहा था। उत्तर की ओर मुख वाला मोक्ष का वन था जो स्फटिक मणि के समान था ॥१८॥ कृत युग के अन्त में आश्रमी ही मोक्ष था—त्रेतायुग में काम स्थित था—द्वापरान्त में आश्रमी अर्थ था और तिष्यान्त में धर्म ही आश्रमी है ॥१९॥ मुनिगण ने वहाँ पर आश्रम को देखकर अव्यय आत्रेयों ने वहीं पर ही अखण्ड सलिल से समाप्लुत में रति करली थी ॥२०॥ धर्माद्य विष्णु भगवान् अखण्ड है-ऐसा प्रसिद्ध है—ऐसा प्रसिद्ध है। चतुर्मूर्ति जगन्नाथ पहिले ही वहाँ प्रतिष्ठित थे ॥२१॥

तमर्चयन्ति ऋषयो योगात्मानो बहुश्रुताः ।
शुश्रूषया च तपसा ब्रह्मचर्येण नारद ॥२२
एव ते च्यवसंस्तत्र समेता भार्गवेण हि ।
असुरेभ्यस्तदा भीतास्त्वाश्रिताः खण्डपर्वताः ॥२३
तथाऽन्ये ब्राह्मणा ब्रह्मन्प्रमुखा मरीचिपाः ।
स्नात्वा जले हि कालिन्द्याः प्रजग्मुर्दक्षिणामुखाः ॥२४

अवन्तीविषय प्राप्य विष्णुमासाद्य संस्थिताः ।
विष्णोरपि प्रसादेन दुष्प्रवेशं महासुरैः ॥२५

वालखिल्यादयो जग्मुरवशा दानवाद्भयात् ।
रुद्रकोटि समाश्रित्य स्थितास्ते ब्रह्मचारिण. ॥२६

एव गतेषु विप्रेषु गौतमाङ्गिरसादिषु ।
शुक्रस्तु भार्गवान्सर्वान्निन्ये यज्ञविधौ मुने ॥२७

अधिष्ठितो भार्गवेण महायज्ञेऽमितद्युते ।
यज्ञदीक्षा बलेः शुक्रश्चकार विधिना स्वयम् ॥२८

वे बहुश्रुत धात्मा ऋषिगण उनका अर्चन किया करते हैं। हे नारद ! शुश्रूषा—ब्रह्मचर्या द्वारा वे समर्चन किया करते हैं ॥२२॥ इस प्रकार से वे वहाँ पर भार्गव मुनि के साथ निवास करते थे किन्तु उस समय में वे असुरों से भय भीत थे और खण्ड पर्वतों का समाश्रय ग्रहण कर लिया था ॥२३॥ अन्य जो ब्राह्मण अश्मकुट्टा और मरीचिप थे वे सब कालिन्दी के जल में स्नान करके दक्षिण की ओर मुख करके चले गये थे ॥२४॥ अवन्ती देश में पहुँचकर महासुरों के द्वारा दुष्प्रवेश वाले विष्णु के प्रसाद से विष्णु लोक को प्राप्त कर वहा पर ही संस्थित हो गये थे ॥२५॥ दानवीय भय से अवश बालखिल्यादिक ऋषिगण ब्रह्मचारी लोग रुद्र कोटि का समाश्रय ग्रहण करके वहीं पर वे स्थित हो गये थे ॥२६॥ इस प्रकार से गौतम और आंगिरस प्रभृति विप्रों के चले जाने पर हे मुने ! शुक्र ने समस्त भार्गवों को यज्ञ के विधान में ले लिया था ॥२७॥ भार्गव के द्वारा अधिष्ठित उस महायज्ञ में शुक्र ने अमित द्युति वाले बलि की स्वयं विधि पूर्वक यज्ञ की दीक्षा की थी ॥२८॥

श्वेताम्बरधरो दैत्यः श्वेतमाल्यानुलेपनः ।
मृगाजिनास्तृतपृष्ठो बहुपत्रविचित्रकः ॥२९

समास्ते वितते यज्ञ सदस्यैरभिसंवृतः ।
हयग्रीवमधुराद्यैस्तु मयबाणपुरोगमैः ॥३०

पत्नी विन्ध्यावली तस्य दीक्षिता यज्ञकर्मणि ।
ललनाना सहस्रस्य प्रधानमृपिकन्यका ॥३१
शुक्रेणाश्वः श्वेतवर्णो मधुमासे सुलक्षणः ।
मही चरितुमुत्सृष्टस्तारकाक्षस्त्वगाच्च तम् ॥३२
एवमश्वे समुत्सृष्टे वितते यज्ञकर्मणि ।
गते च मासत्रितये ह्रियमाणे च पावके ॥३३
पूज्यमानेपु दैत्येषु मिथुनस्थे दिवाकरे ।
सुपुवे देवजननी माधव वामनाकृतिम् ॥३४
सजातमात्र भगवन्तमीश नारायण लोकपतिं पुराणम् ।
ब्रह्मासमभ्येत्यसममहर्षिभि.स्तोत्र जगादाथसममहर्षे ॥३५

दैत्य श्वेत अम्बर धारण कर श्वेत माल्य और अनुलेपन वाला होकर मृगचर्म से आस्तृत पुत्र नाम वाला बनकर वहाँ पत्नी से सह्युत हो गया था ॥२६॥ सदस्यों से अभिसवृत होकर जो कि हयग्रीव सुर आदि तथा मय एवं बाण प्रभृति थे वहाँ स्थित था ॥३०॥ उसकी विन्ध्यावली नाम वाली भी उस यज्ञ के कर्म मे दीक्षित हुई थी वह ऋषि कन्यका सहस्रों ललनाओ मे परम प्रधान थी ॥३१॥ श्री शुक्राचार्य ने एक सुन्दर लक्षणो वाला श्वेत वर्ण से युक्त अश्व मधुमास मे इस मही मण्डल मे सञ्चरण करने के लिये छोड दिया था जो तारकाक्ष नामक दैत्य की रक्षा मे गया था ॥३२॥ इस प्रकार मे उस यज्ञ कर्म के वितत होने मे अश्व के छोडे जाने पर तीन मास के समाप्त हो जाने पर और पावक के द्वारा ह्रियमाण जब वह हो गया था ॥३३॥ उस समय मे पूज्यमान दैत्यो मे दिवाकर के मिथुन राशि पर स्थित हो जाने पर देवों की माता ने वामन की आकृति वाले माधव का प्रसव किया था ॥३४॥ हे महर्षे ! जैसे ही उनका जन्म हुआ था उन भगवान्-ईश-पुराण पुरुष-लोकों के स्वामी-नारायण के समीप में ब्रह्माजी ने आकर समस्त महर्षियों को साथ मे लेकर स्तोत्र का पाठ किया था ॥३५॥

नमोऽस्तु ते माधव सत्त्व मूर्ते नमोऽस्तु ते सात्वतविश्वरूप ।
नमोऽस्तु ने शत्रुवनेन्धनाग्ने नमोऽस्तु ते पापमहादवाग्ने ॥३६
नमोऽस्तु पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्ते जगदाधार नमस्ते पुरुषोत्तम ॥३७
नारायण जगन्मूर्ते जगन्नाथ गदाधर ।
पीतवासः श्रियः कान्त जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥३८,
भवास्त्राता च गोप्ता च विश्वात्मा सर्वगोऽव्ययः ।
सर्वधारिन्धराधारिन्धृ पृधारिन्नमोऽस्तु ते ॥३९
वर्धिष्णो वर्द्धिताशेषत्रैलोक्य सुरपूजित ।
कुरुष्व त्व देवपते मघोनोऽम्युप्रमार्जनम् ॥४०
त्व धाता च विधाता च संहर्ता त्व महेश्वर ।
महालयो महायोगी योगशायी नमोऽस्तु ते ॥४१
इत्थ स्तुतो जगन्नाथः सर्वात्मा सर्वगो हरिः ।
प्रोवाच भगवान्महा कृत्पनयन विभो ॥४२

हे सत्व मूर्त्ति वाले ! माधव प्रभो ! आपको मेरा नमस्कार है। हे सात्वत विश्वरूप वाले ! आपकी सेवा मे प्रणाम समर्पित है। आप तो शत्रुओ के बन के लिये ईधन के समान है और महान् पापों के लिये दवाग्नि के सदृश हैं आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३६॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! आपको नमस्कार है. आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के पोषक हैं आपकी सेवा मे हमारा प्रणाम है। आप इस जगत् के आधार हैं। हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥३७॥ हे नारायण ! जगन्मूर्त्ते ! हे जगत् क नाथ ! गदा के धारण करने वाले ! पीताम्बर धारी श्री के कान्त ! हे जनों के कष्टों का अर्दन करने वाले ! आपको नमस्कार है ॥३८॥ आप तो त्राण करने वाले-रक्षा करने वाले विश्व की आत्मा-सर्वत्र गमन शील और अव्यय हैं। आप सबको धारण करने वाले-इस धरा को धारण करते हैं आप रूपों को धारण करने वाले हैं आपको नमस्कार है ॥३९॥ आप बर्द्धन शील हैं और इस सम्पूर्ण त्रैलोक्य को बर्द्धित करने वाले हैं। आप सुरों के द्वारा वन्द्य मान हैं। हे देवों

के स्वामिन् ! अब आप इन्द्र के अश्रुओं का प्रमार्जन करने की कृपा करें ॥४०॥ आप ही धाता- विधाता और हे महेश्वर । आप ही सहार करने वाले हैं । आप महान् लय-महान् योगी और योगावस्था मे शयन करने वाले हैं । आपकी सेवा मे नमस्कार है ॥४१॥ इस प्रकार से जगतो के स्वामी की स्तुति की गई थी जो सबकी आत्मा हैं-सर्वत्र गमन करने वाले हैं । ऐसे भगवान् हरि ने कहा—हे विभो ! मेरे लिये कुरूप की प्राप्ति है ॥४२॥

तत्श्चकार देवस्य जातिकर्मादिकाः क्रियाः ।
भारद्वाजो महातेजा बार्हस्पत्यस्तपोधनः ॥४३
व्रतबन्ध तथैवास्य कृतवान्सर्वशास्त्रवित् ।
ततो ददुः प्रीतियुताः सर्व एव यथाक्रमम् ॥४४
यज्ञोपवीत पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी ।
मृगाजिन कुम्भयोनिर्भरद्वाजस्तु मेखलाम् ॥४५
पालाशमददाद्दण्ड मरीचिर्ब्रह्मण: सुतः ।
अक्षसूत्र वारुणिस्तु कौशचीरमथाङ्गिराः ॥४६
छत्र ददौ युराजश्च उपानद्युगल भृगुः ।
यमण्डलु बृहत्तेजाः प्रादाद्विष्णोर्बृहस्पतिः ॥४७
एवं कृतोप नयनो भगवान्भूतभावनः ।
सस्तूयमान ऋषिभिर्वेदान्साङ्गानधीतवान् ॥४८
भारद्वाजात्साङ्गिरसात्सामवेद महास्वरम् ।
महदाख्यानसयुक्तं गान्धर्वसहित मुने ॥४९

इसके अनन्तर देव की जात कर्म आदि क्रिया सम्पन्न की गई थी और महान् तेजस्वी तपोधन बार्हस्पत्य भारद्वाज ने उसे किया था ॥४३॥ समस्त शास्त्रो के ज्ञाता ने उस जगदीश्वर का वृत बन्ध किया था । इसके उपरान्त सब ने बडी ही प्रीति से युक्त होकर यथा क्रम वस्तुएँ उन्हें समर्पित की थी ॥४४॥ पुलह ऋषि ने उन वामन देव को यज्ञोपवीत दिया था पुलस्त्य ऋषि ने दो श्वेत वस्त्र समर्पित किये थे । अगस्त्यजी ने मृग चर्म दिया और भारद्वाज ने मेखला दी थी ॥४५॥ ब्रह्मा

में निपुणता प्राप्त करके ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भारद्वाज से यह वचन बोले— ॥५१॥ श्री वामन देव ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं महान् उदय वाले कुरुक्षेत्र को जाता हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए। वहाँ पर दैत्यों के स्वामी का परम पवित्र अश्व मेघ यज्ञ प्रवृत्त हो रहा है ॥५२॥ आप देखिये, इस पृथिवी तल में तेज समाविष्ट हो गये हैं जो सतत पुण्य वर्धन मेरे अंश सविधान हैं। इसलिये बलि कुरुक्षेत्र में चला गया है मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ ॥५३॥ भारद्वाज ने कहा—आप स्वेच्छा से संस्थित रहें। हम जाते हैं। मैं आपको आज्ञा नहीं देता हूँ। हे विष्णो ! हम वहाँ जायेंगे जहाँ बलि का यह अध्वर सम्पन्न हो रहा है ॥५४॥ हे देव ! मैं जो कुछ भी आपसे पूछता हूँ वह आप मुझे बतलाइये। हे विभो ! हे पुरुषों में उत्तम ! किन-किन स्थानों में आपका नित्य ही सान्निध्य रहा करता है—इसे आप मुझे बतलाइये मैं इसको तत्त्वतः जानना चाहता हूँ ॥५५॥ विष्णु ने कहा—हे गुरुवर्य ! अब आप श्रवण करिये जिन-जिन सुपुण्य स्थानों में मैं बहुत से रूपों वाला निवास किया करता हूँ ॥५६॥

ममावतारैर्वसुधा नभस्तलं पातालमम्भोनिधयो दिवं च।
दिशः समस्ताः गिरयोऽम्बुदाश्च व्याप्ता भरद्वाजममानुरूपैः ॥५७
ये दिव्या ये च भौमा जलगगनचराः स्थावरा ये च ब्रह्म-सेन्द्राः
सार्काः सचन्द्रा यमवसुवरुणा ह्यग्नयः सर्वपालाः।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ता द्विजखगसहिता मूर्तिमन्तोह्यमूर्तास्ते
सर्वे मत्प्रसूता बहुविविधगुणाः पूरणार्थं पृथिव्याम् ॥५८
एते हि पुण्याः सुरसिद्धदानवैःपूज्या नराःसन्निहितामहीतले।
यैर्दृष्टमात्रैः सहसैव नाशं प्रयाति पापं द्विजवर्य कीर्तितैः ॥५९

हे भरद्वाज ! मेरे अवतारों से जो मेरे अनुरूप हैं यह सम्पूर्ण वसुधा तल-नभस्तल-पाताल-सब समुद्र-दिवलोक समस्त दिशाएँ-पर्वत श्रेणियाँ और अम्बुद व्याप्त हैं ॥५७॥ हे ब्रह्मन् ! जो दिव्य हैं और जो भूमिगत हैं, जो जगत में चरण करने वाले हैं-स्थावर हैं। इन्द्र-सूर्य और चन्द्र के सहित यम-वसु और वरुण हैं तथा सर्वपाल अग्नियाँ हैं।

ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त द्विज और सर्गों के सहित जो सब मूर्तिमान् हैं वे सब बिना मूर्त्ति वाले मेरे ही द्वारा प्रसूत हैं और बहुत से अनेक प्रकार के गुणगण से युक्त पृथ्वी पूर्त्ति के करने के लिये ही हैं ॥५८॥ ये पुण्यमय सुर-सिद्ध और दानवों के द्वारा पूज्य मनुष्य इस महीतल में सन्निहित हैं। हे द्विज वर! जिनके कीर्तन मात्र करने से और दृष्ट मात्र होने से सहसा ही सम्पूर्ण पाप नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥५९॥

८८—वामन भगवान का स्वस्थान कथन वर्णन

आद्यं हि मत्स्यरूपं मे संस्थितं मानसे ह्रदे ।
सर्वं पापक्षयकरं कीर्तनस्पर्शनादिभिः ॥१
कौर्ममन्यत्सन्निधाने कौशिक्याः पापनाशनम् ।
हयशीर्षं च कृष्णाया गोविन्दं हस्तिनापुरे ॥२
त्रिविक्रमं च कालिन्द्या लिङ्गभेदे भवं विभुम् ।
केदारे माधवं शौचकुब्जाम्रे कृष्णमूर्द्धजम् ॥३
नारायणं बदर्यां च वाराहे गरुडध्वजम् ।
जयेशं भद्रकर्णे च विपाशायां द्विजप्रियम् ॥४
रूपधारमिरावत्यां कुरुक्षेत्रे कुरुध्वजम् ।
कृतशौचे नृसिंहं च गोकर्णे विश्वधारणम् ॥५
प्राचीने कामपालं च पुण्डरीकं महाम्भसि ।
विशाखयूपे ह्यजितं हंसं हंसपदे तथा ॥६
पयोष्ण्यां यमखण्डं च वितस्तायां कुमारिलम् ।
मणिमत्यां ह्रदे शंभुं ब्रह्मण्ये च प्रजापतिम् ॥७

श्री भगवान् ने कहा—मेरा सर्व प्रथम मत्स्य का स्वरूप है जो मानस ह्रद में समवस्थित है। इसका कीर्त्तन और स्पर्शन आदि के द्वारा समस्त प्रकार के पापों का क्षय करने वाला यह हुआ करता है ॥१॥ दूसरा कौर्म स्वरूप है अर्थात् कूर्मावतार है जो

सन्निधान में स्थित है और पापों का विनाश करने वाला है । हय शीर्ष का स्वरूप कृष्णा में विद्यमान रहता है और जो विन्द हस्तिनापुर में स्थित है ॥२॥ कालिन्दी में त्रिविक्रम स्वरूप है और केदार में विभुमय का लिंग भेद है । ओघ कुब्जाम्र माधव में कृष्ण मूर्द्धग हैं ॥३॥ बदरी में अर्थात् बदरिकाश्रम में भगवान् नारायण स्थित हैं । वाराह में गरुड ध्वज विद्यमान हैं । भद्रकर्ण में जयेश हैं और विपाशा में द्विज प्रिय हैं ॥४॥ इरावती में रूपधार हैं तथा कुरुक्षेत्र में कुरुध्वज विराजमान हैं । कृत शौच में नृसिंह हैं और गोकर्ण में विश्व धारण हैं ॥५॥ प्राचीन में कामपाल हैं और महाम्भ में पुण्डरीक प्रभु हैं । विशाख यूप में अजित हैं तथा हंस पद में हंस भगवान् विद्यमान हैं ॥६॥ पयोष्णी में यम खण्ड हैं और वितस्ता में कुमारिल हैं । मणिमितो के ह्रद में शम्भु हैं और ब्रह्मण्य में प्रजापति हैं ॥७॥

मधुनद्यां चक्रधरं शूलबाहुं हिमाचले ।
विद्धि विष्णुं मुनि श्रेष्ठ स्थितमोषधसानुनि ॥८
भृगुतुङ्गे सुवर्णाक्षं नैमिषे पीतवाससम् ।
गयायां गोपतिं देवं गदापाणिं तमोश्वरम् ॥९
त्रैलोक्यनाथं वरदं गोप्रचारं कुशेशयम् ।
अर्द्धनारीश्वरं चक्रे महीध्रं दक्षिणे गिरौ ॥१०
गोपालमुत्तरे नित्यं महेन्द्रे सोमपीथिनम् ।
वैकुण्ठमपि सह्याद्रौ पारियात्रेऽपराजितम् ॥११
कशेरुदेशे देवेशं विश्वरूपं तपोधनम् ।
मलयाद्रौ च सौगन्धिविन्ध्यपादे सदाशिवम् ॥१२
अवन्तिविषये विष्णुं निषधेष्वमरेश्वरम् ।
पाञ्चालिकं च ब्रह्मर्षे पाञ्चालेषु सदा स्थितम् ॥१३
महोदये हयग्रीवं प्रयागे योगशायिनम् ।
स्वयम्भुवं मधुवने ह्यब्जगन्धं च पुष्करे ॥१४

मधु नदी में चक्रधर हैं तथा हिमाचल में शूल बाहु हैं हे मुनि श्रेष्ठ ! ओषध सानु में भगवान् विष्णु को स्थित समझो ॥८॥ भृगु

तुंग मे सुवर्ण नाम वाले विद्यमान हैं तथा नैमिष क्षेत्र मे पीत वस्त्र धारी हैं। गया मे गोपति गदा पाणि देवेश्वर हैं ॥९॥ दक्षिण पर्वत में त्रैलोक्य के नाम—वरदान प्रदान करने वाले-गो प्रचार—कुशेशय अध नारीश्वर महीध्र का किया था ॥१०॥ उत्तर मे नित्य गोपाल को स्थित समझिये तथा महेन्द्र मे सोमपी भी को जानो। महाद्रि मे वैकुण्ठ है और पारियात्र मे अपराजित हैं ॥११॥ कशेरु देश मे तपोधन दवश्वर विश्वरूप हैं। मलय पर्वत मे सौगन्धि है तथा विन्ध्य गिरि के पाद मे भगवान् सदा शिव विराजमान हैं ॥१२॥ अवन्तिका देश मे धिष्ण्य हैं और निषध देशो म अमरेश्वर प्रभु विराजमान हैं। हे ब्रह्मर्षे! पाञ्चाल देशो मे सदा पाञ्चालिक स्थित रहा करते हैं। महोदय मे हयग्रीव हैं तथा प्रयाग में योगशायी हैं। मधुवन मे स्वयम्भू हैं और पुष्कर मे अब्ज गन्ध हैं ॥ १३-१४॥

तथैव विप्रप्रवर वाराणस्यां च केशवम्।
अविमुक्त च तत्रैव गीयते सुरकिन्नरैः ॥१५
पम्पायां पद्मकिरण समुद्रं वडवामुखम्।
कुमारधारे वाह्लीशकार्त्तिकेय च बहृणे ॥१६
ओजसे शम्भुमनघ स्थाणुं च कुरुजाङ्गले।
वनमालिनमाहुर्मा किष्किन्धावासिनो जना. ॥१७
वीर कुवलयारूढ शङ्खचक्रगदाधरम्।
श्रीवत्साङ्कमुदाराङ्गं नर्मदायां श्रिय. पतिम् ॥१८
माहिष्मत्यां त्रिणयन तत्रैव च हुताशनम्।
अर्बुदे च त्रिसौपर्ण क्ष्माधर सूकराचले ॥१९

हे द्विजवर! उसी प्रकार से वाराणसी पुरी मे केशव भगवान् को किन्नरो के द्वारा वहाँ पर अविमुक्त गान किया जाता है ॥१५॥ पम्पा मे पद्म किरण—समुद्र मे वडवामुख—कुमार धार मे वाह्लीश—बहृण मे कार्त्ति केय-ओजस मे अनघ शम्भु-कुरुजाङ्गल मे स्थाणु और किष्किन्धा के निवास करने वाले मुझको वनमाली कहा करते हैं ॥१६-१७॥ कुवलय पर समारूढ—शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले-श्रीवत्स

के चिह्न से युक्त-उदार अङ्गों वाले श्री के स्वामी को नर्मदा में-माहिष्मती में त्रिणयन और वहीं पर हुताशन-अर्बुद में त्रिसौपर्ण और सूकराचल में हमाधर मुझको कहते हैं ॥१८-१९॥

त्रिणाचिकेत ब्रह्मर्षे प्रभासे च कपर्दिनम् ।
तत्रैवापि च ख्यात तृतीय शशिशेखरम् ॥२०
उदये शशिन सूर्यं ध्रुव च त्रितयस्थितम् ।
हेमकूटे हिरण्याक्ष स्कन्द शरवणे मुने ॥२१
महालये स्मृत रुद्रमुत्तरेषु कुरुष्वथ ।
पद्मनाभ मुनिश्रेष्ठ सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥२२
सप्तगोदावरे ब्रह्मन्विख्यात हाटकेश्वरम् ।
तत्रैव च महाहस प्रयागेऽपि महेश्वरम् ॥२३
शोणे च रुक्मकवच कुण्डिने घ्राणतर्पणम् ।
भिल्लीवने महायोग मन्त्रपु पुरुषोत्तमम् ॥२४
प्लक्षावतरणे विश्व श्रीनिवास द्विजोत्तमम् ।
सूर्यारके चतुर्बाहु मगधाया सुधापतिम् ॥२५
गिरिव्रजे पशुपति श्रीकण्ठ यमुनातटे ।
वनस्पति समाख्यात दण्डकारण्यवासिनम् ॥२६

हे ब्रह्मर्षे ! प्रभास मे त्रिणाचिकेत और वहीं पर कपर्दी और यहां पर भी तृतीय शशि शेखर ख्यात हूं ॥२०॥ उदयाचल मे शशी-सूर्य और ध्रुव इन तीनों अवस्थाओं मे स्थित मुझको कहते हैं। हे मुने हेमकूट पर्वत मे हिरण्याक्ष और हे मुने ! शरवण मे स्कन्द मुझको ही कहा जाता है ॥२१॥ महालय के अवसर मे मुझको रुद्र नाम से कहा गया है हे मुनि श्रेष्ठ ! उत्तर कुरुओं मे समस्त सौख्यो के प्रदान करने वाले पद्म नाम कहते हैं ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ? सप्त गोदावर मे हाटकेश्वर नाम से विख्यात हूं। और वहीं पर ही महाहस नाम भी प्रसिद्ध है तथा प्रयाग मे महेश्वर नाम प्रथित है ॥२३॥ शोण मे रुक्म कवच और कुण्डन मे घ्राण तर्पण प्रसिद्ध है भिल्लीवन में महा योग मन्त्रों मे

शाल वन मे भीम जानना चाहिए ॥३२॥ घटिन मे विश्वामित्र और कैलाश मे वृषभध्वज-महिला शैल मे महेश जो कामरूप और शशि प्रभ है। ये सभी मेरे ही नाम कहे जाते हैं ॥३३॥

बलस्यामपि गोमित्र कटाह ब्राह्मण प्रियम् ।
उपेन्द्रं सिंहलद्वीपे शक्राह्वे कुन्दमालिनम् ॥३४
रसातले च विख्यात सहस्रशिरसं मुने ।
कालाग्नि कपिल चैव तथाऽन्यं कृत्तिवाससम् ॥३५
सुतले कूर्ममचल वितले पङ्कजाननम् ।
महातले गुरुं ख्यात देवेशं वृषलेश्वरम् ॥३६
तले सहस्रचरण सहस्रभुजमीश्वरम् ।
सहसाट्य परिख्यात मुसलाकृष्टदानवम् ॥३७
पाताले योगिनामीशं संस्थितं हरिशंकरम् ।
धरातले कोकनदं मेदिन्यां चक्रपाणिनम् ॥३८
भुवर्लोके च गरुड स्वर्लोके विष्णुमव्ययम् ।
महर्लोके तथाऽगस्त्य कपिलं च जनेस्थितम् ॥३९
तपोलोकेऽखिल ब्रह्मन्वाङ्मय सप्तसंयुतम् ।
ब्रह्माणं ब्रह्मलोके च सप्तमेव प्रतिष्ठितम् ॥४०
सनातन तथा शैवेपर ब्रह्म च वैष्णवे ।
अप्रतर्क्यं निरालम्बे निराकारे तपोमयम् ॥४१
जम्बूद्वीपे चतुर्बाहु कुशद्वीपे कुशेशयम् ।
प्लक्षद्वीपे मुनि श्रेष्ठ ख्यातं गरुडवाहनम् ॥४२

बलमी मे भी गोमित्र—कटह और ब्राह्मण प्रिय मुझको कहा जाता है। सिंहल द्वीप मे उपेन्द्र—शक्राह्व मे कुन्दमाली, हे मुने ! रसातल मे सहस्र शिरा मेरा नाम विख्यात है। कालाग्नि-कपिल और अन्य कृत्तिवासा मेरा नाम कहा जाता है ॥३४-३५॥ सुतल मे अचल कूर्म-वितल मे पङ्कजानन और महातल मे देवेश्वर वृषलेश्वर विख्यात नाम हैं ॥३६॥ तललोक मे सहस्र चरण, सहस्र भुज, ईश्वर और मुसल के द्वारा दानव को आकृष्ट करने वाला सहसाट्य मैं कहा जाया करता हूँ

॥३७॥ पाताल लोक में योगियों का ईश, सस्थित हरिशंकर मेरा नाम है। धरातल में कोकनद—मेदिनी में चक्रपाणि-भुवर्लोक में गरुड़—स्वर्लोक में अव्यय विष्णु-महर्लोक में अगम्य और जनस्थित कपिल मेरा नाम कहा जाता है ॥३८-३९॥ हे ब्रह्मन् ! तपालोक में अखिल सप्त सयुग वाङ्मय मेरा नाम है। ब्रह्मलोक में ब्रह्मा और धर्म ही प्रतिष्ठित मेरा नाम है। शैव में सनातन और वैष्णव लोक में परम ब्रह्म—निरालम्ब में अप्रतर्क्य—निराकार में तपोमय-जम्बूद्वीप में चारभुजाओं वाला कुशद्वीप में कुशेशय–हे मुनिश्रेष्ठ ! प्लक्ष द्वीप में गरुड़ वाहन विख्यात मेरा ही नाम कहा जाता है ॥४०-४२॥

पद्मनाभ तथा क्रौञ्चे शाल्मले वृषभध्वजम् ।
सहस्राक्षः स्थितः शाके वामनः पुष्करे स्थितः ॥४३
तथा पृथिव्यां ब्रह्मर्षे शालिग्रामे स्थितोऽप्यहम् ।
सजलस्थलपर्यन्तमशेषस्थावरेषु च ॥४४
एतानि पुण्यानि महालयानि ब्रह्म-पुराणानि सनातनानि ।
ब्रह्मप्रदानीह महौजसानि सङ्कीर्तनीयान्यघनाशनानि ॥४५
सङ्कीर्तनान्नाशमुपैति पापसद्दर्शनादेव च देवतायाः ।
धर्मोऽर्थकामावपवर्गमेव देवा लभन्ते मनुजाः ससाध्याः ॥४६
एतानि तुभ्यं विनिवेदितानि महालयानीह मया निजानि ।
उत्तिष्ठ गच्छामि महासुरस्य यज्ञ पुराणा हि हिताय विप्र ॥४७

क्रौञ्च में पद्मनाभ—शाल्मल में वृषभ ध्वज-शाकद्वीप में स्थित सहस्राक्ष और पुष्कर में स्थित वामन मेरा नाम कहा जाया करता है ॥४३॥ हे ब्रह्मर्षे ! सभी प्रकार से इस पृथ्वी में मैं शालग्राम में स्थित रहता हूँ। जल-स्थल पर्यन्त समस्त स्थावरों में हे ब्रह्मन् ! इन परम पुण्यमय, महालय, पुराण, सनातन, ब्रह्मप्रद, महौजस और अघों के नाश करने वाले नामों का सङ्कीर्तन करना चाहिए ॥४४-४५॥ इन पवित्र भगवान के नामों का सङ्कीर्तन करने से पापों का विनाश हो जाता है और देवता के दर्शन से भी पापों का नाश हुआ करता है। देवता और साध्यों के सहित मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और अपवर्ग की प्राप्ति

किया करते हैं ।।४८।। इन महालय अपने नामों को मैंने आपका निवेदित कर दिया है । हे विप्र ! उठिये,अब सुरों के हितका सम्पादन करने के लिये महान् असुर बलि के यज्ञ मण्डप मे मैं जाता हूँ ।।४७।।

८६—शुक्र-बलि संवाद वर्णन

ततः समागच्छति वासुदेवे मही चकम्पे गिरयश्च चेलु ।
क्षुब्धा समुद्रा दिवि सर्वलोको बभौ विपर्यस्तगतिर्महर्षे ।।१
यज्ञ समागात्परमाकुलत्वन वेद्मि किं मा मधुहा करिष्यति ।
यथा प्रदग्धोऽस्मि महेश्वरेण किं मा न संवक्ष्यति वासुदेवः ।।२
ऋग्सामम-त्राहुतिभिहु तास्तुतेऽप्यासुरीयाज्वलनास्तुभागान् ।
भक्ष्यान् द्विजेन्द्रै रपि सप्रदत्तान्न व प्रतीच्छन्तिविभोर्भयेन ।।३
त दृष्ट्वा घोररूप तु निमित्त दानवेश्वरः ।
पप्रच्छौशनस शुक्र प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।।४
किमर्थमाचार्य मही सशैला रम्भेव वाताभिहता चचाल ।
किमासुरीयाश्च हुताश्नपीह भागान्न गृह्णन्ति हुताशनाश्च ।।५
क्षुब्धा किमर्थंमकरालयाविभोऋक्षाणि खे नैवचरन्तिपूर्ववद् ।
दिश किमर्थं तमसापरिप्लुतादोषेणकस्याद्यवदस्वमे गुरो ।।६
शुक्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य विरोचनसुतेरितम् ।
अथो ज्ञात्वा कारण च ततो वचनमब्रवीत् ।।७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् वासुदेव के समागत होने पर भूमण्डल कम्पित होगया था और पर्वत चलायमान होने लगे थे ।।१।। यज्ञ कर्म परम आकुलता को प्राप्त होगया था । मधुदैत्य के हनन करने वाले मेरा क्या करेंगे—इसे मैं नही जानता हूँ । मैं जिस तरह महेश्वर के द्वारा प्रदग्ध होगया हू । यह वासुदेव मुझसे क्या नही कहेंगे ।।२।। ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा दी हुई आहुतियों से हुत ये आसुरीय अग्निदेव द्विजेन्द्रो के द्वारा भी दिये जाने पर भक्ष्य भागों को विभु के भय से ग्रहण नही कर रहे हैं ।।३।। दानेश्वर ने उस

घोर रूप वाले निमित्त को देखकर दोनों हाथ जोड़कर औशनस शुक्राचार्य को प्रणाम किया था और उनसे पूछा था ।।४।। हे आचार्य देव ! शैलों के सहित यह पृथ्वी वायु से आहृत कदली के वृक्ष की भाँति किस कारण से चलायमान हो रही है । और आसुरीय हुताशन भी हुत किये हुए भी भागों को क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ?।।५।।हे विभो ! ये मकरालय (सागर) किस कारण से अतिक्षोभ वाले हो रहे हैं और नक्षत्र भी आकाश में पूर्व की भाँति इस समय में क्यों नहीं सञ्चारण कर रहे हैं । ये दिशाऐं किस कारण से सब अन्धकार से परिप्लुत हो रही हैं । यह किसके दोष से सब कुछ हो रहा है ? हे गुरुदेव ! आप मुझे यह स्पष्ट बतलाइये ।।६।। पुलस्त्यजी ने कहा—शुक्राचार्य ने विरोचन के पुत्र के द्वारा कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके इसके अनन्तर पहिले तो उन्होंने/इस सब उत्पात होने का कारण जान लिया और फिर यह वचन बोले—।।७।।

शृण्वद्य दैत्येश्वर येन भागान्नामी प्रयच्छन्ति महासुरेभ्यः ।
हुताशना मन्त्रहुतास्त्वमीभिर्न न समागच्छति वासुदेवः ।।८
तदङ्घ्रिविक्षेपमपारयन्ती मही सशैला चलिता दिशश्च ।
तस्या चलन्त्या मकरालयाश्च तूढ्‌त्तवेला दितिजाद्य जाताः ।।९

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्गवमब्रवीत् ।
धर्मं सत्य च पथ्य च सत्त्वोत्साहसमन्वितम् ।।१०

आयाते वासुदेवे वद मम भगवन्धर्मकामार्थयुक्तं किं कार्यं
किं च देय मणिकनकमयो राज्यमुर्वी धनं वा ।
किं वा वाच्यं मुरारेर्निजहितमथवा तद्धित वा प्रयुञ्जे तथ्यं
पथ्य प्रिय भो वद मभमुमद तत्करिष्ये न चान्यत् ।।११।

तद्वाक्यं भार्गवः श्रुत्वा दैत्यनाथेरित महत् ।
विचिन्त्य नारद प्राह भूत भव्यार्थमीश्वरः ।।१२

त्वया कृता यज्ञभुजोऽसुरेन्द्रा बहिष्कृता ये श्रुतिदृष्टमार्गाः ।
श्रुतिः प्रमाणं मखभाग भाजिनः सुरास्तदर्थं हरिरभ्युपैति ।।१३

तस्याध्वरं दैत्य समागतस्य कार्यं शृणु त्वं परिपृच्छसे यत् ।
कार्यं न देय हि विभो तृणाग्रं यदध्वरं भूतलकादिकं वा ॥१४

श्री शुक्राचार्य ने कहा—हे दैत्येश्वर ! अब आप मुझसे जिस कारण से ये मन्त्रों से हुत हुताशन महासुरों से अपने भागों का ग्रहण नहीं कर रहे हैं—इसका यही कारण है वासुदेव निश्चय ही आरहे हैं ॥८॥ उनके चरणों के निक्षेप से ही यह मही शैलों के सहित भार सहन न करती हुई चलायमाना होगई है और दिग्गजों का भी यही कारण है। उनके चलने होने पर हे दितिज ! इस समय समुद्र भी उद्धृत वेला वाले होगये हैं ॥९॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—शुक्राचार्य के इस वचन का श्रवण कर राजा बलि ने भार्गव से यह वचन कहा था कि धर्म सत्य और पथ्य है तथा सत्वोत्साह से संयुत है ॥१०॥ बलि ने कहा—भगवान् वासुदेव के समागत हो जाने पर हे भगवान् ! आप मुझे तो बतला दीजिए मुझे धर्म और काम तथा अर्थ से युक्त क्या कार्य करना चाहिए और मुझे उनको क्या देना चाहिए-मणि-कनक-राज्य, भूमि अथवा मुरारि से अपने हित की क्या बात कहनी चाहिए या उनके ही हित का क्या प्रयोग किया जावे ? हे गुरु देव ! जो भी तथ्य पथ्य (हितकर) और प्रिय हो वह मुझको बतलाइये। उसी शुभप्रद को मैं करूंगा और अन्य कुछ भी नहीं करूंगा ॥११॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—दैत्यनाथ के द्वारा समुच्चरित उस महत् वाक्य को भार्गव ऋषि ने सुनकर हे नारद ! विचार करके ईश्वर ने भूत भार्गव को कहा—॥१२॥ शुक्राचार्य ने कहा—आपने तो यज्ञ का भोग करने वाले असुरेन्द्रों को कर दिया है और जो श्रुति दृष्ट मार्ग हैं वे सब बहिष्कृत कर डाले हैं। इसमें तो श्रुति ही प्रमाण है कि मख के भाग का उपभोग करने वाले देवगण ही होते हैं। इसीलिये तो इस समय में हरि यहां पर आरहे हैं ॥१३॥ हे दैत्य ! इस आपके अध्वर में उनके समागत होने पर जो भी करना चाहिए उसको जो आप मुझसे पूछ रहे हैं उसे भी अब श्रवण करलो। हे विभो ! तृण का अग्रभाग भी देने का कुछ भी

कार्य नहीं है जो भी इस अध्वर में भूमि एवं सुवर्ण आदि विद्यमान है ।।१४।।

वाच्य तथा सामनिरर्थकविभोकस्त्वावरदातुमलहिशर्तुगार् ।
यस्यो दरे भूर्भुवनाकपालरसातलेशा निवसन्ति नित्यशः ।।१५
मया तवोक्त वचन हि भार्गव न चार्थिने किंचन दातुमुत्सहे ।
समागतेऽर्थिनि हीनवृत्त तद्वद्वि देवे समागते हि ।।१६
जनार्दने लोकपतो महर्षे समागते नास्ति यर्थ मुनिशा ।
एवं च श्रूयते लोके सतां त्वयतो विभो ।।१७
सद्भावो ब्राह्मणेष्वेव वक्तव्यो भूतिमिच्छता ।
दृश्यतेऽपि तथा तच्च सत्य ब्राह्मणपुङ्गव ।।१८
पूर्वाभ्यासेन कर्माणि संभवन्ति नृणां स्फुटम् ।
वाक्कायमानसानीह योन्यन्तरगतान्यपि ।।१९
किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ पौराणी न श्रुता कथा ।
या वृत्ता मलये पूर्वं कोशकारसुतस्य च ।।२०
कथयस्व महाबाहो कोशकारसुताश्रयाम् ।
कथा पौराणिकीं ब्रह्मन्महाकौतहल हि मे ।।२१

से मनुष्यों के कर्म स्फुट हुआ करते हैं। वाणी-शरीर और मन के होने वाले सभी कर्म इस लोक में और अन्यतर जन्म में भी जाने पर हुआ करते हैं ॥१९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! क्या आपने पौराणिक कथा का श्रवण नहीं किया है ? जो पहिले मलय में कोशकार सुत की घटित हुई है ॥२०॥ शुक्राचार्य ने कहा—हे महाबाहो ! कोशकार के पुत्र का समाश्रय करने वाली कथा को आप कहिए जोकि पौराणिकी है मुझे हे ब्रह्मन् ! उसके श्रवण करने के लिये अब बहुत ही कौतूहल हो रहा है ॥२१॥

शृणुष्व कथयिष्यामि कथा मेता मखान्तरे ।
पूर्वाभ्यासेन विद्वान्हि सत्य भृगुकुलोद्वह ॥२२
मुद्‌गलस्य मुनेः पुत्रो ज्ञानविज्ञानपारगः ।
कोशकार इति ख्यात आसीद्‌ब्रह्म स्तपोधनः ॥२३
तस्यासीद्दयिता साध्वी धर्मिष्ठा नामतः श्रुता ।
सती वात्स्यायनसुता धर्मशीला पतिव्रता ॥२४
तस्यामस्य सुतो जातः प्रकृत्या वै जडाकृतिः ।
नासौ ब्रूते मूर्खवच्च नासौ पश्यति चान्धवत् ॥२५
स जात ब्राह्मणो पुत्र जड मूक विचक्षुषम् ।
सा च माता गृहद्वारि षष्ठेऽह्नि समवासृजत् ॥२६
ततोऽगाच्च दुराचारा राक्षसी जातहारिणी ।
स्व शिशु कृशमादाय शूर्पाक्षी नाम नामतः ॥२७
ततोत्सृज्य स्वपुत्रं सा जग्राह द्विजनन्दनम् ।
तमादाय जगामाथ भोक्तुं शालोदरे गुरौ ॥२८

दैत्यराज बलि ने कहा—आप श्रवण कीजिए मैं इस कथा को मखान्तर में कहता हूँ। हे भृगुकुलोद्वह ! यह सत्य है कि पूर्वाभ्यास से मैं विद्वान् हूँ ॥२२॥ मुद्‌गल मुनि का पुत्र ज्ञान और विज्ञान का पारगामी विद्वान् था हे ब्रह्मन् ! वह तपोधन कोशकार-इस नाम से ही विख्यात था ॥२३॥ उसकी पत्नी बहुत ही साध्वी और धर्म में पूर्ण निष्ठा रखने वाली थी। नाम से वह श्रुता थी। वह सती वात्स्यायन,

की पुत्री धर्म शीला एवं पूर्ण - पतिव्रता थी ॥२४॥ उस - पत्नी में इस तपस्वी का एक पुत्र समुत्पन्न हुआ था जो प्रकृति से ही जड़ आकृति वाला था। न तो यह एक मूर्ख की भांति कुछ बोलता ही था और न एक अन्धे के समान कुछ देखा ही करता था ॥२५॥ उस समुत्पन्न पुत्र को जो एक दम जड़-भूत और नेत्र हीन था वह ब्राह्मणी जो उसकी माता थी उसने छटवें दिन उसको गृह के द्वार पर विसर्जित कर दिया था ॥२६॥ इसके पश्चात् एक दुराचार वाली जात को हरण करने वाली राक्षसी वहाँ पर आ गयी थी। नाम से वह शूर्पाक्षी थी। उस कृश अपने शिशु को उसने ग्रहण कर लिया था ॥२७॥ वहाँ पर अपने पुत्र का उत्सर्जन करके उसने उस द्विज नन्दन को ग्रहण कर लिया था। उसको लेकर शालोदर गिरि में भोग करने के लिये चली गयी थी ॥२८॥

ततस्तामागतां वीक्ष्य तस्या भर्ता घटोदरः।
नेत्रहीनः प्रत्युवाच किमानीतं त्वया प्रिये ॥२९
साऽब्रवीद्राक्षसपते मयाऽऽस्थाप्य शिशुं निजम्।
कोशकारद्विजगृहे तस्यानीतः प्रभो सुतः ॥३०
स प्राह न त्वया भद्रे भद्रमाचरितं त्विदम्।
महाज्ञानी द्विजेन्द्रोऽसौ स नः शप्स्यति कोपितः ॥३१
तस्माच्छीघ्रमिमं त्यक्त्वा तन्नूनं घोररूपिणम्।
अन्यस्य कस्यचित्पुत्रं क्षिप्रमानय सुन्दरि ॥३२
इत्येवमुक्ता सा रौद्री राक्षसी कामरूपिणी।
समाजगाम त्वरिता समुत्पत्य विहायसा ॥३३
स चापि राक्षससुतो निसृष्टो गृहद्वारतः।
रुरोद सस्वरं ब्रह्मन्प्रक्षिप्याङ्गुष्ठमानने ॥३४
सा शब्दं तं चिराच्छ्रुत्वा धर्मिष्ठ पतिमब्रवीत्।
पश्य स्वयं मुनिश्रेष्ठ सुशब्दस्तनयस्तव ॥३५

इसके उपरान्त उसके स्वामी ने उसको समागत हुई देखकर जिसका नाम घटोदर था और जो नेत्रों से हीन था। उसने उससे कहा—हे

प्रिये ! तुम क्या ले आयी हो ? ॥२९॥ उसने उत्तर दिया था—हे राक्षस-पते ! मैंने अपना शिशु यहाँ पर रखकर कोशकार द्विज के घर में हे प्रभो ! उसका पुत्र मैं यहाँ पर ले आई हूँ ॥३०॥ उसने कहा—यह तो तुमने बिल्कुल भी अच्छा कार्य नहीं किया है। यह द्विजेन्द्र महान् ज्ञानी है वह क्या कुपित होकर शाप नहीं दे देगा ? ॥३१॥ इसलिये तुम घोर रूपी इसको निश्चय ही शीघ्रातिशीघ्र वहीं पर त्याग कर हे सुन्दरि ! किसी अन्य के पुत्र को शीघ्र ले आओ ॥३२॥ इस प्रकार से कही गई रौद्री-कामरूपिणी वह राक्षसी तुरन्त ही आकाश के मार्ग से उत्पतन करके वहीं पर आगई थी ॥३३॥ वह राक्षस सुत भी गृह के बाहिर निःसृष्ट हुआ हे ब्रह्मन् ! मुख में अँगूठा लेकर शीघ्र ही रुदन करने लगा था ॥३४॥ उसने बहुत देर तक उस शब्द का श्रवण कर अपने धर्मिष्ठ पति से बोली—हे मुनि श्रेष्ठ ! आप स्वयं ही देखिए अब तो आपका पुत्र सुन्दर शब्द वाला हो गया है ॥३५॥

त्रस्ता सा निर्जगामाथ गृहमध्यात्तपस्विनी ।
स चापि ब्राह्मणश्रेष्ठः समपश्यच्च तं शिशुम् ॥३६
वर्णरूपादिसंयुक्तं तद्वत्स्वतनयं यथा ।
ततो विहस्य प्रोवाच कोशकारो निजां प्रियाम् ॥३७
एवमाविश्य धर्मिष्ठे भाव्य भूतेन साम्प्रतम् ।
कोऽप्यस्माकं छलयितुं स्वरूपो भुवि संस्थितः ॥३८
इत्युक्त्वा वचनं पत्नीं मन्त्रैस्तं राक्षसात्मजम् ।
बबन्धोल्लिख्य वसुधां सकुशेनाथ पाणिना ॥३९
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताशूर्पाक्षी विप्रबालकम् ।
अन्तर्द्धानं गता भूमौ गृहे चिक्षेप दूरतः ॥४०
सक्षिप्तमाम जग्राह कोशकारस्तु पुत्रकम् ।
सा चाभ्येत्य ग्रहीतुं स्व नाशकद्राक्षसी सुतम् ॥४१
इतश्चेतश्च विभ्रष्टा सा भर्तारमुपागता ।
कथयामास यद्वृत्तं स्वकीयात्मजहारिणम् ॥४२

अत्यन्त त्रस्त होती हुई वह तपस्विनी घर के मध्य से बाहिर निकल आई थी और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने भी उस शिशु को देखा था ॥३६॥ वह वर्ण इत्यादि से पूर्ण तथा युक्त था जैसा कि अपना पुत्र था बिल्कुल वैसा ही था इसके उपरान्त वह हँसकर कोशकार अपनी प्रिया से बोला ॥३७॥ हे धर्मिष्ठे ! इस प्रकार से आविष्ट होकर इस समय में भूत से भाव्य है। कोई हमको छलने के लिये स्वरूप वाला भूमि में संस्थित हैं ॥३८॥ अपनी पत्नी से यह वचन कह कर मन्त्रों के द्वारा उस राक्षस के पुत्र को कुश सहित हाथ से वसुधा का उल्लेखन कर बन्धन कर दिया था ॥३९॥ इसी बीच में शूर्पाक्षी वहाँ पर आगई थी उसने दूर से ही भूमि में घर में उस विप्र के बालक को प्रक्षिप्त कर दिया था और वह अन्तर्धान हो गई थी ॥४०॥ फेंके हुए उस पुत्र को कोशकार ने ग्रहण कर लिया था किन्तु वह राक्षसी वहाँ पर आकर भी अपने सुत को ग्रहण करने समर्थ न हो सकी थी ॥४१॥ इधर से उधर विभ्रष्ट होती हुई वह अपने स्वामी के समीप में उपस्थित हो गई थी और अपने पुत्र के हरण होने वाले सम्पूर्ण समाचार को उससे कह सुनाया था ॥४२॥

एवं गतायां राक्षस्यां ब्राह्मणेन महात्मना ।
स राक्षससिशुत्रं ह्यन्भार्यायै विनिवेदितः ॥४३
कपिलायाः सवत्सायाः पित्राऽस्मतनयस्तदा ।
दध्ना संतोषितोऽथर्यं क्षीरेणेक्षुरसेन च ॥४४
द्वावेव वर्द्धितौ बालौ,संजातौ सप्तवार्षिकौ ।
पित्रा च कृतनामानौ निशाकरदिवाकरौ ॥४५
नैशाकरिर्दिवाकीर्तिनिशाकीर्तिः स्वपुत्रकः ।
तयोश्चकार विप्रोऽसौ व्रतबन्धक्रियां क्रमात् ॥४६
व्रतबन्धे कृते वेद पपाठासौ दिवाकरः ।
निशाकरो जडतया न पपाठेति नः श्रुतम् ॥४७
तं बान्धवाः स्वपितरौ माता भ्राता गुरुस्तथा ।
पर्यनिन्दंस्तथाऽन्ये च जना मलयवासिनः ॥४८

ततः स पित्रा क्रुद्धेन क्षिप्तः कूपे तु निर्जले ।
महाशिलां तदुपरि पिता तस्याथ व्यक्षिपत् ।।४९

इस प्रकार से उस राक्षसी के वहाँ से चले जाने पर महात्मा ब्राह्मण ने वह राक्षस का शिशु हे ब्रह्मन् ! अपनी भार्या को दे दिया था ।।४३।। वत्स के सहित एक कपिला गौ के दधि से उस समय में पिता ने अपने पुत्र को सन्तोषित किया था और अत्यधिक क्षीर एवं ईख के रस से तुष्ट किया था ।।४४।। वे दोनों ही बालक वर्द्धित होकर सात वर्ष के हो गये थे । पिता ने इनके नामकरण किये थे । एक का नाम निशाकर रक्खा था और दूसरे का दिवाकर रक्खा गया था ।।४५।। नैशाकरि और दिवाकीर्ति ये दोनों के नाम थे । निशाकीर्ति उसका अपना पुत्र था इस विप्र ने उन दोनों के क्रम से मुञ्ज बन्ध क्रिया की थी ।।४६।। व्रत बन्ध के करने पर वह दिवाकर वेद पढ़ने लगा था । निशाकर तो जड़ता के कारण से न कुछ पढ़ता था और न सुनता ही था ।।४७।। उसकी समस्त बान्धव-अपने उसके माता-पिता-भ्राता-गुरु तथा अन्य सभी मलय के निवासी लोग निन्दा करने लगे थे ।।४८।। इसके पश्चात् एक दिन पिता ने क्रुद्ध होकर उसको एक बिना जल वाले अन्धे कुए में डाल दिया था । उसके ऊपर एक महाशिला भी पिता ने प्रक्षिप्त कर दी थी ।।४९।।

एवं क्षिप्तस्तदा कूपे बहुवर्षगणान्स्थितः ।
तत्रास्त्यामलकीगुल्मः पीवायफलितोऽभवत् ।।५०
ततो दशसु वर्षेषु समतीतेषु भार्गव ।
तस्य माताऽगमत्कूपं तमपश्यच्छिलान्वितम् ।।५१
सा दृष्ट्वा निचितं कूपे शिलया गिरिकल्पया ।
उच्चैः प्रोवाच केनेयं कूपोपरि शिला कृता ।।५२
कूपान्तस्थः सुतो वाणीं श्रुत्वा मातुर्निशाकरः ।
प्राहाम्ब दत्ता तातेन कूपोपरि शिला त्वियम् ।।५३
साऽतिभीताऽब्रवीत्कोऽसि कूपान्तःस्थोऽद्भुतस्वरः ।
सोऽप्याह तव पुत्रोऽस्मि निशाकर इति श्रुतः ।।५४

साऽब्रवीत्तनयो मेऽस्ति नाम्ना ख्यातो दिवाकरः ।
निशाकरेति नाम्ना च न कश्चित्तनयोऽस्ति मे ॥५५
स च तत्पूर्वचरितं मातुर्निरवशेषतः ।
कथयामास पुत्रोऽसौ यद्वृत्तं पूर्वमेव हि ॥५६

इस प्रकार से उस समय में प्रक्षिप्त वह बहुत से वर्षों तक वहाँ पर एक आवले की झाड़ी थी जो उसके पोषण करने के लिये फलों वाली हो गई थी ॥५०॥ हे भार्गव ! इसके उपरान्त दश वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसकी माता उस कुए पर गयी थी और उसने शिला से युक्त उसको वहा पर देखा था ॥५१॥ गिरि के समान एक शिला के द्वारा निचित कूप में देखकर उसने ऊंचे स्वर से कहा था—यह शिला यहा कूप के ऊपर किसने कर दी है ॥५२॥ कूप के अन्दर स्थित सुत ने जिसका नाम निशाचर था माता की इस वाणी का श्रवण किया था और वहा से बोला—हे माता ! यह शिला तो इस कुए के ऊपर पिताजी ने ही डाली है ॥५३॥ वह उसे सुनकर अत्यन्त डर गई और बोली यह अद्भुत स्वर वाला कुए के अन्दर स्थित कौन है। वह भी बोला—मैं आपका ही हे माता ! पुत्र हूँ जिसका नाम निशाकर ऐसा श्रुत हुआ है ॥५४॥ वह बोली—मेरा पुत्र है जिसका नाम दिवाकर प्रसिद्ध है ? निशाकर इस नाम वाला तो मेरा कोई भी पुत्र ही नहीं है ॥५५॥ उस पुत्र ने अपना पूर्ण चरित्र पूर्णतया माता से कह सुनाया था जो कि पहिले ही सब घटित हो चुका था ॥५६॥

सा श्रुत्वा तां शिलां सुभ्रूः समुत्क्षिप्यान्यतोऽक्षिपत् ।
स तु कूपात्समुत्तीर्य मातुः पादौ ववन्द च ॥५७
सा स्वानुरूपं तनयं दृष्ट्वा स्वजवमग्रतः ।
ततस्तमादाय सुतं धर्मिष्ठा पतिमेत्य च ॥५८
कथयामास तत्सर्वं चेष्टितं स्वसुतस्य च ।
ततो ह्यपृच्छद्विप्रोऽसौ किमिदं पातकारणम् ॥५९
प्रोक्तवान्मदभूतपूर्वं महत्कौतूहलं मम ।

तच्छ्रुत्वा वचनं धीमान्कोशकारं द्विजोत्तमम् ।
प्राह पुत्रोऽद्भुतं वाक्यं मातरं पितरं तथा ॥६०
श्रूयतां कारणं तात येन मूकत्वमाश्रितम् ।
मया जडत्वमनघ तथाऽन्धत्वं स्वचक्षुषा ॥६१
पूर्वमासासमहं विप्र कुले वृन्दारकस्य तु ।
वृषाकपेश्च तनयो मालागर्भसमुद्भव ॥६२
सत पिताऽपाठय मां शास्त्रं धर्मार्थकामदम् ।
मोक्षमार्गपरं तात सेतिहासं श्रुतिं तथा ॥६३

उस शूद्र ने यह सब श्रवण करके उस शिला को अन्यत्र उत्क्षिप्त करके डाल दिया था और वह कुए से निकल आया था तथा उसने अपनी माता के चरणों की वन्दना की थी ॥५७॥ वह अपने अनुरूप पुत्र को देखकर उसे अपने समस्त जनों के आगे लाकर फिर उस धर्म में निष्ठा रखने वाली ने अपने पति के समीप उपस्थित होकर अपने पुत्र के उस सम्पूर्ण चेष्टित को कहा था। इसके पश्चात् इस विप्र ने उससे पूछा था कि इस बात का क्या कारण था ? ॥५८ ५९। यह उसने सब कह दिया था कि मुझे इसका बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है। धीमान् ने इस वचन का श्रवण कर कोशकार द्विजोत्तम से उस पुत्र ने माता तथा पिता को अद्भुत वाक्य बोला था ॥६०॥ पिता कर न कहा—हे तात ! अब आप इसका कारण सुनिए जिसके कारण से मुझे यह मूकता थी। मैंने इस प्रकार की जड़ता और अपने नेत्रों से अन्धता प्राप्त की थी हे अनघ ! उसका भी जो हेतु है उसका श्रवण करिये ॥६१॥ मैं पहिले हे विप्र ! वृन्दारक के कुल में था। मैं वृषाकपि का पुत्र था तथा माता के गर्भ से मेरा जन्म हुआ था ॥६२॥ इसके पश्चात् पिता ने मुझे धर्म-अर्थ और काम के प्रदान करने वाले शास्त्र को पढ़ाया था। हे तात ! मोक्ष के मार्ग में परायण इतिहास के सहित श्रुति को भी पढ़ाया था ॥६३॥

सोऽहं तात महाज्ञानी परापरविशारदः ।
जातो मदान्वर्ततेऽहं कुत्सर्माभिरतोऽनवद्यम् ॥६४

मदात्समभवल्लोभस्तेन नष्टा प्रगल्भता ।
विवेको नाशमगन्मदो मे मोहमागतः ॥६५
मूढभावतया चाथ जातः पापरतोऽस्म्यहम् ।
परदारपरार्थेषु सदा मे मानसं स्थितम् ॥६६
परदाराभिमर्शित्वात्परार्थहरणादपि ।
मृतो ह्यु द्बन्धनेनाहं नरकं रौरवं गतः ॥६७
तस्माद्वर्ष सहस्रान्ते भुक्तशिष्टे तदागसि ।
अरण्ये मृगहा पापः सजातोऽहं मृगाधिपः ॥६८
व्याघ्रत्वे संस्थितस्तावद्बद्धः पञ्जरगः कृतः ।
नराधिपेन विभुना नीतश्च नगरं द्विज ॥६९
बद्धस्य पञ्जरस्थस्य व्याघ्रत्वेऽपि स्थितस्य च ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि प्रत्यभासन्त सर्वशः ॥७०

हे तात ! इसलिये महान् ज्ञानी हो गया था और परपार का महा मनीषी बन गया था । इस कारण से मुझे बड़ा भारी मद समुत्पन्न हो गया था और उस मद से मैं अन्धा बन गया था तथा फिर मदोन्मत्त होकर अनेक दुष्कर्मों मे मैं निरत हो गया था ॥६४॥ मद से मुझे महान् लोभ उत्पन्न हो गया था जिस कारण से मेरी सम्पूर्ण प्रगल्भता विनष्ट हो गई थी । मेरा सब विवेक नाश को प्राप्त हो गया था जो कि उस वर्द्धित मद ने ही कर दिया था और मैं मोह को प्राप्त हो गया था ॥६५॥ उसी मूढ भाव से पापों में रति रखने वाला मैं यहाँ पर आकर समुत्पन्न हो गया था । मेरा मन सदा ही पराई दाराओं मे और दूसरों के धनो मे स्थित रहा करता था ॥६६॥ पराई स्त्रियों के साथ अभिमर्श करने वाला होने से तथा दूसरों के धन का अपहरण करने के कारण से मैं उद्बन्धन से मृत हो गया था और फिर रौरव नरक मे किये हुए पापों की यातनाऐं भोगने के लिये चला गया था ॥६७॥ वहाँ पर एक सहस्र वर्ष तक यातनाऐं भोगता रहा । इसके अन्त मे जो भी कुछ पापो का फल भोगने मे शेष रह गया था उसको भोगने के लिये एक अरण्य में मृगों का हनन करने वाला महा पापी

मृगाधिप बनकर मैंने जन्म ग्रहण किया था ।।६८।। व्याघ्रत्व की योनि में स्थित मैं एक बार बद्ध हो गया था और एक पिंजडे में डाल दिया गया था। हे द्विज ! वहाँ के विभु नराधिप ने मुझे नगर में लिवा कर बुला लिया था ।।६६।। मैं उस दशा में बद्ध था और एक पिंजडे में बन्द भी था तथा व्याघ्र की योनि में भी स्थित था कि उस समय में भी मुझे धर्मार्थ काम के सम्पादन करने वाले सम्पूर्ण शास्त्र प्रतिभासित हो रहे थे ।।७०।।

ततो नृपति शार्दूलो गदापाणिः कदाचन ।
एकवस्त्रपरीधानो नगरान्निर्ययौ बहिः ।।७१
तस्य भार्याऽजिता नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
सा निर्गते भर्तरि तु ममान्तिकमुपागता ।।७२
तां दृष्ट्वा ववृधे चित्त पूर्वाभ्यासान्मनोभवः ।
यथैव कामशास्त्रेषु ततोऽहमवद च ताम् ।।७३
राजपुत्रि सुकल्याणि नवयौवनशालिनि ।
चित्त हरसि मे भीरु कोकिला ध्वनिना यथा ।।७४
सा तद्वचनमाकर्ण्य प्रोवाच तनुमध्यमा ।
कथमेवावयोर्व्याघ्र रतियोग उपैष्यति ।।७५
ततोऽहमब्रव तान राजपुत्री सुमध्यमाम् ।
द्वारमुद्घाटयास्व स्व निर्गमिष्यामि सत्वरम् ।।७६
साऽप्यब्रवीद्दिवा व्याघ्र लोकोऽय परिपश्यति ।
रात्रावुद्घाटयिष्यामि ततो रस्याव चेच्छया ।।७७

इसके अनन्तर एक बार वह नृपति शार्दूल गदा हाथ में ग्रहण करके एक ही वस्त्र का परिधान किये हुए नगर से बाहिर निकल गया था ।।७१।। उसकी भार्या का अजिता नाम था और इतनी रूपवती थी कि भूमण्डल में उसकी तुलना में अन्य कोई नारी नहीं थी। वह अपने भर्त्ता के निकल जाने पर मेरे समीप में उपस्थित हो गयी थी ।।७२।। उसको देखकर मुझे मेरे पूर्व जन्म के अभ्यास से मन में कामदेव की बढ़ोत्ति हो गई थी। जिस प्रकार से काम शास्त्रों में है उसी भाँति

मैंने उससे कहा था ॥७३॥ हे राजपुत्रि ! हे कल्याणि ! आप तो नूतन यौवन की शोभा वाली हैं। हे भीरु ! आपने तो इस रूप सौन्दर्य से मेरे भी चित्त का हरण कर लिया है जैसे कोकिल की ध्वनि से चित्त का हरण हो जाया करता है ॥७४॥ उसने उस वचन का श्रवण करके तनुमध्यमा ने कहा था—हे व्याघ्र ! हम दोनों का रति का योग कैसे हो सकेगा ॥७५॥ हे तात ! फिर मैंने सुमध्यमा राजपुत्री से कहा—आज आप इस पिंजड़े के द्वार को खोल दो मैं शीघ्र ही बाहिर निकल आऊँगा ॥७६॥ वह बोली—हे व्याघ्र ! यह दिन का समय और य सभी लोक देख रहे हैं। मैं रात्रि के समय में इस पिंजड़े के दरवाजे को खोल दूँगी तब स्वेच्छा से हम दोनों रमण करेंगे ॥७७॥

तामेवाहमवोचं वै कालक्षेपो न मे क्षमः।
तस्मादुद्घाटय द्वारं मां बन्धाद्विमोचय ॥७८
ततः साऽपि वरश्रोणी द्वारमुद्घाटयच्छनैः।
उद्घाटिते ततो द्वारे निर्गतोऽहं बहिः क्षणात् ॥७९
निगडादिकपाशाश्च च्छिन्ना बलवता मया।
सा तदा नृपतेर्भार्या गृहीता रन्तुमिच्छता ॥८०
ततो दृष्टोऽस्मि नृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः।
शस्त्रहस्तैः सर्वतश्च तैरहं परिवेष्टितः ॥८१
महापाशैः शृङ्खलाभिः समाहृत्य च मुद्गरैः।
बद्धस्तानब्रवं मैव मा हन्तु यूयमर्हथ ॥८२
ते च मद्वचनं श्रुत्वा मामेव रजनीचरम्।
वटवृक्षे दृढं बद्धाऽघातयन्वै तपोधन ॥८३
भूयस्ततश्च नरकं परदारनिषेवणात्।
गतो वर्षसहस्रान्ते जातोऽहं श्वेतगर्दभः ॥८४

मैंने फिर उससे कहा था कि इतने समय का निकालना मेरी क्षमता के बाहिर है। इसलिए अभी तुम मेरे पिंजड़े के द्वार को खोल दो और इस बन्धन से मेरा मोचन कर दो ॥७८॥ इसके अनन्तर उस वरश्रोणी ने भी धीरे से पिंजड़े के द्वार को खोल दिया था।

फिर उस दरवाजे के खुलते ही मैं अति शीघ्र बाहिर निकल आया था ॥७६॥ बलवान् मैंने निगड़ आदिक जो मेरे पाश मुझे कसे हुए थे उनको मैंने छिन्न-भिन्न कर दिया था। उस समय मे मैंने वह राजा की भार्या रमण करने की इच्छा वाले ने ग्रहण कर ली थी ॥८०॥ इस प्रकार से रमण करने के इच्छुक मुझको नृप के अतुल विक्रम वाले भृत्यों ने देख लिया था। सब ओर से शस्त्रों का हाथों में लेकर उन्होंने मुझे परिवेष्टित कर लिया था ॥८१॥ महान् पाशों से–शृङ्खलाओं से और मुद्गरों से मुझे हताहत करके बांध लिया था। तब मैंने उनसे कहा था—इस प्रकार से आप लोग मुझे मारने के योग्य नहीं होते हैं ऐसा मत करो ॥८२॥ उन्होंने मेरे वचनों का श्रवण करके भी रजनीचर मुझको इस प्रकार से बहुत ही मजबूती से बट के वृक्ष में बाँधकर हे तपोधन ! मेरे ऊपर वे सब आघात करने लगे थे ॥८३॥ फिर मैं पुनः पराई स्त्री के सेवन करने के पाप के कारण से नरक मे यातनाऐं भोगने के लिये गया था फिर जब वहाँ एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तो उसके अन्त में भुक्त शेष पाप का फल भोगने के लिये मैंने श्वेतगर्दभ की योनि में जन्म ग्रहण किया था ॥८४॥

ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गृहे बहुकलत्रिणः।
तत्रापि सर्वविज्ञान प्रत्याभासत मे तदा ॥८५
उपवाह्यः कृतश्चास्मि द्विजयोषिद्भिरादरात्।
एकदा नवराष्ट्रीयाभार्या तस्याग्रजन्मनः ॥८६
विमतिर्नामतः ख्याता गन्तुमैच्छद्गृहे पितुः।
तामुवाच पतिर्गच्छ आरुह्यनं च गर्दभम् ॥८७
मासेनागमनं कार्यं न स्थेय परतस्ततः।
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा तन्वी चारुह्य गर्दभम्। ८८
बन्धनादवमुच्याथ जगाम त्वरिता मुने।
ततोऽर्द्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरु्ह्य ॥८९

मया चाभिहृता तूर्णं पतिता पृथिवीतले ।
तस्या उपरि भो तात पतितोऽहं तदाऽऽतुरः ॥९१
दृष्टोऽभवं तदा तस्या नृणा तदनुसारिणा ।
तदोद्यम्य स यष्टिं मां समधावत्त्वरान्वितः ॥९२

वहाँ पर भी अर्थात् उस गर्दभ की योनि में भी मुझे अति वैभव और बहुत धनधान्यों वाले ब्राह्मण के घर में उस समय में सब प्रकार का विज्ञान प्रतिभासित होता था ॥८५॥ मुझे द्विजों की स्त्रियों ने बड़े ही आदर से उपवहन करने के योग्य कर लिया था। एकबार उस अग्रजन्मा (ब्राह्मण) की नवराष्ट्रीया भार्या थी ॥८६॥ जिसका नाम विमति यह विख्यात था। वह अपने पिता के घर में जाने की इच्छा कर रही थी। उसके पति ने उससे कहा था चली जाओ और इस गर्दभ पर समारोहण करलो ॥८७॥ एक मास में तुमको यहाँ वापिस आजाना चाहिए। इतने समय से अधिक वहाँ पर तुमको नहीं ठहरना चाहिए। इस तरह से अपने स्वामी के द्वारा कही गयी वह तन्वी गर्दभ पर समारूढ़ होगई थी ॥८८॥ बन्धन से अब मोचन करके हे मुने! वह शीघ्र गामिनी होती हुई चली इसके उपरान्त जब आधा मार्ग पूरा होगया तो वह तन्वी मेरी पीठ से नीचे उतर गई थी ॥८९॥ वह अत्यन्त सुन्दर रूप वाली और आर्द्रवसन धारण करती हुई नदी में स्नान करने के लिये अवतीर्ण हुई थी। सभी अंगों से रूप-लावण्य से समन्वित उसको मैंने देखा था और मैं उसी समय काम से दुखित होगया था ॥९०॥ मैंने तुरन्त ही उसका अभिहरण किया था और वह पृथिवी पर गिर गई थी। हे तात! उस के ऊपर उस समय मैं कामातुर होकर गिर गया था ॥९१॥ उस समय में उसके अनुसार चलने वाले उसी के मनुष्य के द्वारा मैं देख लिया गया था। उसी क्षण में उसने लाठी लेकर त्वरान्वित होते हुए मेरे पीछे दौड़ लगाई थी ॥९२॥

तद्भयात्तां परित्यज्य प्रद्रुतो दक्षिणामुखः ।
ततोऽभिद्रवतस्तूर्णं खलीनरशना मुने ॥९३

फिर उस दरवाजे के खुलते ही मैं अति शीघ्र बाहिर निकल आया था ।।७६।। बलवान् मैंने निगड आदिक जो मेरे पाश मुझे कसे हुए थे उनको मैंने छिन्न-भिन्न कर दिया था। उस समय में मैंने वह राजा की भार्या रमण करने की इच्छा वाले ने ग्रहण कर ली थी ।।८०।। इस प्रकार से रमण करने के इच्छुक मुझको नृप के अतुल विक्रम वाले भृत्यों ने देख लिया था। सब ओर से शस्त्रों का हाथों में लेकर उन्होंने मुझे परिवेष्टित कर लिया था ।।८१।। महान् पाशों से—शृङ्खलाओं से और मुद्गरों से मुझे हनाहन करके बांध लिया था। तब मैंने उनसे कहा था—इस प्रकार से आप लोग मुझे मारने के योग्य नहीं होते हैं ऐसा मत करो ।।८२।। उन्होंने मेरे वचनों का श्रवण करके भी रजनीचर मुझको इस प्रकार से बहुत ही मजबूती से वट के वृक्ष में बाँधकर हे तपोधन ! मेरे ऊपर वे सब आघात करने लगे थे ।।८३।। फिर मैं पुन पराई स्त्री के सेवन करने के पाप के कारण से नरक में यातनाऐं भोगने के लिये गया था फिर जब वहाँ एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तो उनके अन्त में भुक्त शेष पाप का फल भोगने के लिये मैंने श्वेतगदभ की योनि में जन्म ग्रहण किया था ।।८४।।

ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गृहे बहुकलत्रिणः ।
तत्रापि सर्वविज्ञानप्रत्याभासत मे सदा ।।८५
उपवाह्यः कृतश्चास्मि द्विजयोषिद्भिरादरात् ।
एकदा नवराष्ट्रीयाभार्या तस्याग्रजन्मनः ।।८६
विमतिर्गमत: सयाता गन्तुमैच्छद्गृहे पितुः ।
तामुवाच पतिर्गच्छ आरुह्य न च गर्दभम् ।।८७
मासेनागमन कार्यं न स्थेय परतस्ततः ।
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा तन्वी चारुह्य गर्दभम् । ८८
वन्धनादवमुच्याथ जगाम त्वरिता मुने ।
ततोऽर्द्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरुह्य वै ।।८९
अवतीर्णा नदीं स्नातुं सुरूपामार्द्रवाससम् ।
सर्वाङ्गं रूपवतीं दृष्ट्वा तामहमाद्रवम् ।।९०

मया चाभिहृता तूर्णं पतिता पृथिवीतले ।
तस्या उपरि भो तात पतितोऽहं तदाऽऽतुरः ॥६१
दृष्टोऽभव तदा तस्या नृणा तदनुसारिणा ।
तदोद्यम्य स यष्टिं मा समधावत्त्वरान्वितः ॥६२

वहाँ पर भी अर्थात् उस गर्दभ की योनि मे भी मुझे अग्नि वेश्य और बहुत बच्चों वाले ब्राह्मण के घर मे उस समय में सब प्रकार का विज्ञान प्रतिभासित होता था ॥८५॥ मुझे द्विजों की स्त्रियों ने बड़े ही आदर से उपवहन करने के योग्यकर लिया था। एकबार उस अग्रजन्मा (ब्राह्मण) की नवराष्ट्रोथा भार्या थी ॥८६॥ जिसका नाम विमति यह विख्यात था। वह अपने पिता के घर में जाने की इच्छा कर रही थी। उसके पति ने उससे कहा था चली जाओ और इस गर्दभ पर समारोहण करलो ॥८७॥ एक मास में तुमको यहाँ वापिस आजाना चाहिए। इतने समय से अधिक वहाँ पर तुमको नहीं ठहरना चाहिए। इस तरह से अपने स्वामी के द्वारा कही गयी वह तन्वी गर्दभ पर समारूढ होगई थी ॥८८॥ बन्धन से अब मोचन करके हे मुने ! वह शीघ्र गामिनी होती हुई चली इसके उपरान्त जब आधा मार्ग पूरा होगया तो वह तन्वी मेरी पीठ से नीचे उतर गई थी ॥८९॥ वह अत्यन्त सुन्दर रूप वाली और आर्द्रवसन धारण करती हुई नदी में स्नान करने के लिये अवतीर्ण हुई थी। सभी दर्गों से रूप-लावण्य से समन्वित उसको मैंने देखा था और मैं उसी समय काम से दुखित होगया था ॥९०॥ मैंने तुरन्त ही उसका अभिहरण किया था और वह पृथिवी पर गिर गई थी। हे तात ! उस के ऊपर उस समय मैं कामातुर होकर गिर गया था ॥९१॥ उस समय में उसके अनुसार चलने वाले उसी के मनुष्य के द्वारा मैं देख लिया गया था। उसी क्षण मे उसने लाठी लेकर त्वरान्वित होते हुए मेरे पीछे दौड़ लगाई थी ॥९२॥

तद्भयात्ता परित्यज्य प्रद्रुतो दक्षिणामुखः ।
ततोऽभिद्रवतस्तूर्णं खलीनरसना मुने ॥९३

समासन्ना तदा ब्रह्मन्ममासौ प्राणनाशने ।
तत्रा सक्तस्य पद्मात्रादभून्मे जीवितक्षयः ॥६४
ततोऽस्मि नरकं भूयस्तस्मान्मुक्तोऽभव शुकः ।
महारण्ये ततो बद्ध. शवरेण दुरात्मना ॥६५
पञ्जरे न्यस्य विक्रीतो वणिक्पुत्राय शालिने ।
तेनाप्यन्तः पुरतरे युवतीनां समीपतः ॥६६
सर्वशास्त्रविदित्येव दोषघ्नश्चेत्यवस्थितः ।
तत्रासतस्तरुण्यस्ता ओदनादिफलादिभिः ॥६७
पक्वैश्च दाडिमफलैः पोषयन्त्यो दिने दिने ।
एकदा पद्मपत्राक्षी श्यामा पीनपयोधरा ॥६८
सुश्रोणी तनुमध्या च वणिक्पुत्री प्रिया शुभा ।
नाम्ना चन्द्रावली नाम समुद्गृह्याथ पञ्जरम् ॥६९
सा जग्राह सुचार्वङ्गी कराभ्यां चारुहासिनी ।
चकारोपरि पीनाभ्यां स्तनाभ्यां सा तदा च माम् ॥१००

उसके भय से मैंने उस महिला को त्याग दिया था और मैं फिर दक्षिण की ओर मुख करके भाग खड़ा हुआ था । हे मुने ! इस प्रकार से शीघ्रता से दौड़ लगाते हुए मेरी छली ने रसना समासन्न होगई थी । हे ब्रह्मन् ! उस समय में यह मेरे प्राणों का नाश करने वाली थी । इसमें आसक्त मेरा छैः रात्रि में ही जीवित का क्षय होगया था ॥६३-६४॥ इसके अनन्तर मैं पुनः नरक गामी हो गया था । उस नारकीय यातना से जब मैं मुक्त हुआ तो फिर मैंने एक शुक का शरीर धारण कर जन्म ग्रहण किया था । इसके उपरान्त एक महान् अरण्य में दुष्ट आत्मा वाले शबर के द्वारा मैं बद्ध होगया था ॥६५॥ उस शबर ने मुझे एक पिंजरे में डालदिया था और एक शाली वैश्य के पुत्र के लिये मुझे बेच दिया था । उसने भी मुझे युवतियों के समीप में अपने अन्तः पुर के मध्य में रख दिया था ॥६६॥ क्योंकि समस्त शास्त्रों का ज्ञाता है—इसी लिये दोषों के नाश करने वाला है—इस तरह अवस्थित था । वहाँ पर रहते हुए वे सब तरुणियाँ ओदन और फल आदि के द्वारा तथा पके

हुए अनार के फलों के द्वारा दिनों दिन मेरा पोषण किया करती थी। एक बार पद्म के दल के समान नेत्रों वाली-पीन स्तनों से संयुत-श्यामा सुन्दर श्रोणि प्रदेश वाली और मध्यभाग कृश वाली बड़ी प्रिय एवं शुभ वणिक् की पुत्री थी जो नाम से चन्द्रावली थी, उसने मेरे पींजरे का ग्रहण किया था ॥९७-९९॥ उस सुन्दर अंगों वाली ने जो बहुत ही चारु हार वाली थी मुझको अपने हाथों से ग्रहण कर लिया था और उस समय में उसने मुझे अपने पीन स्तनों के ऊपर कर लिया था ॥१००॥

ततोऽहं कृतवान्भावं तस्यां विलसितुं प्लयन् ।
ततोऽनुप्लवमानोऽहं हारे मर्कटवन्धने ॥१०१
तस्माद्ध पापसंयुक्तो मृतश्च तदनन्तरम् ।
भूयोऽपि नरकं घोरं प्रपन्नोऽस्मि सुदुर्मतिः ॥१०२
तस्मान्मृतो वृषत्वं च गतश्चाण्डालपक्कणे ।
स चैकदा मां शकटे नियोज्य स्वां विलासिनीम् ॥१०३
समारोप्य महातेजा गन्तुं कृतमतिर्वनम् ।
तस्याग्रतः स चाण्डालो गतः सा चास्य पृष्ठतः ॥१०४
गायन्ती याति तच्छ्रुत्वा जातोऽहं व्यथितेन्द्रियः ।
पृष्ठतस्तु समालोक्य विपर्यस्तस्तथा प्लुतः ॥१०५
पतितो भूमिमगमं क्षणेन क्षणविभ्रमात् ।
योक्त्रेण बद्ध एवास्मि पञ्चत्वमगमं ततः ॥१०६
भूयो निमग्नो नरके दशवर्षशतान्यहम् ।
जातस्तव गृहे तात सोऽहं जातिमनुस्मरन् ।
तावन्त्येवाद्य जन्मानि स्मरामि चानुपूर्वशः ॥१०७

इसके अनन्तर मैंने प्लवन करते हुए उसमें विलास करने की भावना करली थी और इसके अनन्तर मैं मर्कट बन्धन हार में प्लव मान हो गया था ॥१०१॥ वहाँ पर मैं पाप से संयुक्त हो गया था और मर गया था। फिर भी दुष्ट बुद्धि वाला मैं अतिघोर नरक में आकर प्राप्त हो गया था ॥१०२॥ उससे छुटकारा पाकर मैं मृत हो फिर एक चाण्डाल के

फरकण मे वृषभ की योनिको प्राप्त हुआ था। उसने एक बार मुझे एक गाड़े मे जोड़ दिया था और उसमे अपनी विलासिनी को बिठाकर लाया था और फिर उस महान् तेजस्वी ने वन मे भ्रमण करने का विचार किया था। उसके आगे वह चाण्डाल गया था और वह उसके पीछे थी ॥१०३-१०४॥ वह मधुर स्वर से गायन करती हुई जारही थी। उसके उस गान का श्रवण कर मैं तो व्यथित इन्द्रियों वाला होगया था। पीछे की ओर देखकर इस तरह से विपर्यस्त होकर मैं प्लुत हुआ था कि मैं भूमि मे गिर गया था एक क्षण मात्र के विभ्रम से जूए मे ही बद्ध मैं वही पर पञ्चत्व को प्राप्त होगया था अर्थात् मर गया था ॥१०५-१०६॥ मैं फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त घोर नरक मे निमग्न हो गया था। हे तात! वही मैं अब आपके घर में अपनी जाति का अनुस्मरण करते हुए समुत्पन्न हुआ हूँ। मैं उसने समस्त अपने जन्मों का आनुपूर्वी से स्मरण कर रहा हूँ ॥१०७॥

पूर्वाभ्यासाच्च शास्त्राणां वचनं चागतं मम।
तदहं ज्ञातविज्ञानो नाचरिष्ये कथंचन ॥१०८
पापानि घोररूपाणि मनसा कर्मणा गिरा।
शुभं वाऽप्यशुभं वापि स्वाध्यायः शास्त्रजीविका ॥१०९
बन्धनं वा वधो वाऽपि पूर्वाभ्यासेन जायते।
जातिं यदा पौर्विकीं तु स्मरते तात मानवः।
तदा स तेभ्यः पापेभ्यो निवृत्तिं हि करिष्यति ॥११०
तस्माद्गमिष्ये शुभवर्धनाय पापक्षयायाथ मुनेह्यरण्यम्।
भवान्दिवाकीर्तिमिमं सुपुत्रं गृहस्थधर्मे विनियोजयस्व ॥१११
इत्येवमुक्तः स निशाकरस्तदा प्रणम्य मातापितरौ महर्षे।
जगाम पुण्यं सदनं मुरारेः ख्यातं बदर्याश्रममाद्यमैशम् ॥११२
एवं पुराऽभ्यासरतस्य पुंसो भवन्ति दानाध्ययनादिकानि।
तस्माच्च पूर्वं द्विजवर्य वै मया स्वभ्यस्ततायां तु ते ब्रवीमि ॥११३
दानं तपो वाऽध्ययनं महर्षे स्तेयं महापातकमग्निदाहः।
ज्ञानानि चाभ्यासनाच्च पूर्वं भवन्ति धर्मार्थयशांसि नान्यथा ॥११४

इत्येवमुक्तो वलवान्स शुक्रं दैत्येश्वरः स्व गुरुमीशितारम् ।
ध्यायस्तदा त मधुकैटभारिं नारायणंचक्रगदासिपाणिम् ॥११५

शास्त्रों के पूर्वाभ्यास के होने के कारण ही मुझे वचन आगया है सो मैं विज्ञान को जानने वाला उसे अब किसी भी प्रकार से आचरण नहीं करूँगा ॥१०८॥ घोर रूप वाले पाप जो मन—कर्म और वाणी द्वारा किये जाते हैं। शुभ अथवा अशुभ—स्वाध्याय और शास्त्र जीविका तन्यन अथवा वध ये सभी पूर्व के ही अभ्यास से हुआ करते हैं। हे तात ! जिस समय में वह मानव पूर्व में होने वाली अपनी जाति का स्मरण किया करता है। उसी समय में वह उन अपने कृत पापों से निवृत्ति किया करता है ॥१०६-११०॥ इसलिये हे मुने ! मैं तो अपने शुभ के वर्धन करने के लिये और पापों का क्षय करने के वास्ते अरण्य में जाऊंगा। आप अब इस दिशावीर्ति पुत्र को ही जोकि एक सुपुत्र है गृहस्थ के धर्म मे विनियुक्त करिये ॥१११॥ बलि ने कहा—इस प्रकार से कहा गया वह निषाकर उस समय मे हे महर्षे ! अपने माता पिता को प्रणाम करके मुरारि के परम पुण्य सदन को चला गया था जो आज एव ऐसा बदर्याश्रम के नाम से विख्यात है ॥११२॥ इसी प्रकार से पूर्वाभ्यास से रति रखने वाले पुरुष के दान और अध्ययन आदि होते हैं। इसलिये हे द्विजवर्य ! मेरे द्वारा पूर्व में ही यह सब अभ्यस्त हैं मैं आप से कुछ भी नहीं तोलता हूँ ॥११३॥ दान-उपश्चर्या-अध्ययन-स्तेय-महापातक, अग्निदाह और ज्ञान हे महर्षे ! अभ्यसन करने से पहिले ही हुआ करते हैं। धर्म, अर्थ, और यश भी पूर्वाभ्यास से ही सम्पन्न हुआ करते हैं। अन्यथा नहीं होते हैं ॥११४॥ इस प्रकार से वह बलवान् दैत्येश्वर अपने गुरु और ईशिता शुक्राचार्य से बोला था। उसी समय मे उन मधु कैटभारि चक्र गदा और खंग धारण करने वाले नारायण का ध्यान करने लगा था ॥११५॥

९०—बलि बन्धन वर्णन

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते भगवान्वामनाकृतिः ।
यज्ञवाट समीपे स उच्चैर्वचनमब्रवीत् ॥१
ॐकारपूर्वाः श्रुतयो मखेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति रूपेण तपोधनानाम् ।
यज्ञोऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूना युक्तं यथा स्यात्कुरु दैत्यनाथ ॥२
इत्य वचनमाकर्ण्य दानवाधिपतिर्वशी ।
सार्घ्यपात्रः समभ्यागाद्यत्र देवः स्थितोऽभवत् ॥३
ततः स देवदेवेश पूजयित्वा विधानतः ।
प्रोवाच भगवन्ब्रूहि किं ददामि तव मानद ॥४
ततोऽब्रवीन्मधुरिपुर्दैत्यराज तमव्ययः ।
विहस्य सुचिर काल भरद्वाजमवेक्ष्य च ॥५
गुरोर्मदीयस्य गुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः ।
न स धारयते भूम्या पारक्याया च पावकम् ॥६
तदर्थमभियाचेऽ य मम दानवपार्थिव ।
मच्छरीरप्रमाणेन देहि राजन्क्रमत्रयम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसी बीच मे समय प्राप्त होने पर वामन की (बौना की शकल वाले) आकृति वाले भगवान् ने उपस्थित होकर यज्ञवाट के समीप म यह वचन ऊँचे स्वर से कहा था—॥१॥ हे दैत्यनाथ ! इस मख मे ओंकार पूर्वक श्रुतियाँ इन समस्त तपस्वियों के स्वरूप मे समास्थित हैं। यह समस्त क्रतुओं मे परम श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ है। इसमें जो भी युक्त हो वह तुम करो ॥२॥ इस प्रकार के वचन का श्रवण कर वशी दानवों का अधिपति अर्घ्यपात्र हाथ मे लेकर वहाँ पर उपस्थित हो गया था जहाँ पर वामनदेव विराजमान थे ॥३॥ इसके उपरान्त देवों के भी देव प्रभु का विधि पूर्वक उसने पूजन किया था और इसके अनन्तर वह बोला—हे मान देने वाले भगवन् ! मुझे बतलाइए मैं आपको क्या समर्पित करूँ ॥४॥ तब अव्यय मधुरिपु उस दैत्य राज से बोले। पहिले बहुत समय तक हँसकर और भरद्वाज की ओर उन्होंने

देखा था ॥५॥ ये मेरे गुरु हैं। इनके अग्नि का परिग्रह है। यह दूसरे की भूमि में पावक को धारण नहीं किया करते हैं ॥६॥ हे दानव पार्थिव ! इनके लिये ही मेरी यही अभियाञ्चा है कि आप मेरे शरीर के प्रमाण से ही तीन पद परिणाम वाली भूमि का दान कर दवें ॥७॥

मुरारिवचनं श्रुत्वा बलिर्भार्यामवैक्ष च ।
बाणं च तनयं वीक्ष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥८
न केवलं प्रमाणेन वामनोऽस्य लघुप्रिय ।
येन क्रमत्रयं चोक्तं याचते मेऽप्यधिकेऽपि च ॥६
प्रायो विधाताऽल्पधिया नराणां वहिष्कृतानां खलु दिव्यपुण्यैः ।
धनादिकं भूरि न वै ददाति तथैव विष्णुर्न बहुप्रयासः ॥१०
न ददाति विधिस्तस्य यस्य भाग्यविपर्ययः ।
मयि दातरि यश्चायं याचते च क्रमत्रयम् ॥११
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा भूयोऽप्युवाचाथ हरिं मुरारिम् ।
यावच्च विष्णो गजवाजिभूमिदासीर्हिरण्यं यदभीप्सितं त्व ॥१२
भवाश्च याचिता विष्णो त्वहं दाता जगत्पतिः ।
दातुं वै मम लज्जेयं कथं न स्यात्पदत्रये ॥१३
रसातलं स्वा पृथिवीं भुवं नाकमथापि वा ।
एतेभ्यः कतमं दद्यां त्वस्यो याचस्व वामन ॥१४

भगवान् मुरारि के इस वचन का श्रवण कर राजा बलि ने अपनी भार्या की ओर दृष्टि डाली और फिर अपने पुत्र बाण की ओर दृष्टि पात पात किया था। इसके पश्चात् वह वचन बोला—॥८॥ यह केवल प्रमाण से ही वामन नहीं है कि बहुत ही छोटी वस्तु को भी प्यार करने वाला है जिसने मुझ जैसे विभव शाली से भी केवल तीन पद प्रमाण वाली भूमि की याचना की है ॥६॥ बहुधा विधाता भी अल्प बुद्धि वाले और दिव्य पुण्यों से वहिष्कृत मनुष्यों को अधिक धन आदि का वैभव नहीं दिया करता है। उसी भाँति विष्णु भी बहुत प्रयास शील नहीं होते हैं ॥१०॥ जिसके भाग्य की विपरीतता होती है विधाता उसको नहीं दिया करता है जो दाता मुझ जैसे से भी केवल तीन पैंड भूमि की ही

याचना कर रहा है।११।इस तरह से यह वचन कहकर वह महान् आत्मा वाला सुरों का शत्रु फिर भी यह वचन मुरारि से बोला—हे विष्णु ! जितने भी गज, अश्व, भूमि, दासी, सुवर्ण आदि हैं उनमें जो भी अभीष्ट हैं। आप तो याचना करने वाले हैं और हे विष्णो ! मैं इस जगत् का स्वामी दान देने वाला हूँ। इस तीन पद प्रमाण भूमि के दान करने में मुझे लज्जा कैसे नहीं होगी ? ॥१२-१३॥ हे वामन ! रसातल, अपनी पृथ्वी, भू, नाक (स्वर्ग) इन सब में किसको दूँ। आप स्वस्थ होकर याचना करें ॥१४॥

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ।
एतावदेव सम्प्रार्थी देहि राजन्पदत्रयम् ॥१५
इत्येवमुक्ते वचने वामनेन महात्मना ।
बलिर्भृङ्गारमादाय ददौ विष्णो क्रमत्रयम् ॥१६
पाणौ तु पतिते तोये दिव्य रूप चकार ह ।
त्रैलोक्य क्रमणार्थाय बहुरूपं जगन्मयम् ॥१७
पादे भूमिस्तथा जङ्घे नभस्संलोकयवन्दितम् ।
सत्य तपो जानुयुग्मे ऊरू स्तो मेरु मन्दरौ ॥१८
विश्वेदेवाः कटीभागे मरुतो बस्तिशीर्षयोः ।
लिङ्ग स्थितो मन्मथश्च वृष्णस्थ प्रजापति ॥१९
कुक्षिस्था अर्णवा सप्त जठरे भुवनान्यथो ।
बलिपु त्रिपु नद्यश्च यज्ञोऽस्तजठरे स्थितः ॥२०
इष्टापूर्तादयः सर्वाः क्रियामन्त्राश्च संस्थिता ।
पृष्ठस्था वसवो देवाः स्कन्धो रुद्रं रधिष्ठितः ॥२१

वामनदेव ने कहा—हे राजन् ! हाथी, घोड़े, भूमि, और सुवर्ण आदि पदार्थों के जो भी चाहने वाले याचक हों उन्हें वे सब दीजिए। मैं तो केवल इतनी ही प्रार्थना करने वाला याचक [illegible] जो केवल तीन पैंड भूमि ही चाहता हूँ ॥१५॥ इस वचन के कहने पर महात्मा वामन के द्वारा राजा बलि ने भृङ्गारक लेकर विष्णु को तीन पैण्ड भूमि का दान, सङ्कल्प करके दे दिया था ॥१६॥ उस सङ्कल्प के जल के हाथ में लेते

हो वामन देव ने अपना दिव्य रूप धारण कर लिया था जोकि इस त्रिलोकी के क्रमण करने के लिए जगन्मय वज्र रूप थी ॥१७॥ उनके पाद मे यह सम्पूर्ण भूमि आगई थी जघनो मे त्रैलोक्य वन्दित नभस्तल आगया था—जानु युग्म मे सत्य और तपलोक थे और ऊर्वों मे मेरु एवं मन्दराचल थे ॥१८॥ समस्त विश्वेदेव कटि भाग मे थे—बस्ति और शीर्ष मे मरुद्गण थे-लिङ्ग मे कामदेव था और प्रजापति वृषणो मे संस्थित थे ॥१९॥ सातो सागर कुक्षियों मे थे और जठर मे अन्य समस्त नदियाँ थी और यज्ञ जठर के अन्दर मे स्थित था ॥२०॥ इष्टा पूर्तादिक समस्त क्रियाऐं और उनके मन्त्र भी वहीं पर संस्थित थे। पृष्ठ भाग में सब वसुगण थे और रुद्रों से अधिष्ठित स्कन्ध था ॥२१॥

बाहवश्च दिशः सर्वा वसवोऽष्टौ कराः स्मृताः ।
हृदये संस्थितो ब्रह्मा कुलिशो हृदयास्थिषु ॥२२
श्रीसहस्रमुरोमध्ये चन्द्रमा मनसि स्थितः ।
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलये स्थिताः ॥२३
मुखे तु साग्नयो विप्राः संस्कारा दशनच्छदाः ।
धर्मकामार्थमोक्षाश्च शास्त्रैश्चैव समन्विताः ॥२४
लक्ष्म्या सह ललाटस्थो श्रवणस्थौ हि चाश्विनौ ।
श्वासस्थो मातरिश्वा च मरुतः सर्वसन्धिषु ॥२५
सर्वसूक्तानि दशना जिह्वा देवी सरस्वती ।
चन्द्रादित्यौ च नयने पक्ष्मस्थाः कृत्तिकादयः ॥२६
शिखाद्या देवदेवस्य भ्रु वोर्मध्ये व्यवस्थिताः ।
तारका रोमकूपेभ्यो रोमाणि च महर्षयः ॥२७
गुणैः सर्वमयो भूत्वा भगवान्भूतभावनः ।
क्रमेणैकेन जगती जहार सचराचरम् ॥२८

समस्त दिशाऐं उनकी बाहुऐं थीं और आठ वसुगण उनके कर थे। हृदय में ब्रह्मा विराजमान थे और कुलिश आदि सब उनके हृदय की अस्थियों में संस्थित थे ॥२२॥ उरु के मध्य में थी सहस्र था तथा मन मे चन्द्रमा स्थित था। देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा थी और

उनके वलय मे सब विद्याऐं विराजमान थी ॥२३॥ मुख मे अग्नियों के सहित विप्रगण थे और सम्पूर्ण सस्कार दशननच्छद (होठो) में विराजमान थे। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष सब शास्त्रों से सयुत वहीं पर विराजमान थे ॥२४॥ ललाट मे स्थित लक्ष्मी के सहित नारायण थे। अश्विनी कुमार दोनो श्रवणो में सस्थित थे। मातरिश्वा श्वास मे स्थित था तथा मरुत सब सन्धि भागो में विराजमान थे ॥२५॥ सम्पूर्ण सूक्त उनके दशन थे और देवी सरस्वती जिह्वा पर विराजमान थी। चन्द्र और सूर्य उनके दोनो नेत्र थे तथा कृत्तिका प्रभृति नक्षत्र सब पक्ष्मों मे विराजमान थे ॥२६॥ देवो के भी देव के भ्रूओं के मध्य मे शिखाएं विद्यमान थी। रोम कूपो मे तारक थे और सब महर्षिगण उनके रोम थे। २७॥ ऐसे गुणो से भूतभावन भगवान् सर्वमय हो गये थे। उन्होने एक क्रमण से सम्पूर्ण चराचर इस भूमि का हरण कर लिया था अर्थात् नाप डाला था ॥२८॥

ऊर्ध्वं विक्रममाणस्य महारूपस्य तस्य वै।
दक्षिणोऽभूत्ततश्चन्दु सूर्योऽभूत्सव्यस्तथा ॥२९
तृतीयक्रमणेनाथ स्वर्महजनतापसाः।
क्रान्तास वर्द्धन वै राजन्नर्द्धेनापूर्यताम्बरम् ॥३०
तत' प्रवर्धितो ब्रह्मन्विष्णुर्वै दक्षिणान्तरे।
ब्रह्माण्डोदरमाहत्य निरालोक जगाम सः ॥३१
विश्वाङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहे भेदितेऽम्बरात्।
कुटिला विष्णुपादात्तु ससाराकुलिता तत. ॥३२
तस्माद्विष्णुपदीत्येव ता स्तुवन्ति च तापसाः।
भगवानप्यसपूर्णे तृतीयेऽनुक्रमे विभु. ॥३३
समभ्येत्य वलि प्राह ईषत्प्रस्फुरिताधरः।
ऋणे भवसि दैत्येन्द्र बन्धन घोरदर्शनम्।
त्वं पूरय पद तन्मे नोचेद्बन्ध प्रतीच्छ मे ॥३४
तन्मुरारिवचः श्रुत्वा विहस्याथ वलेः सुतः।
बाण प्राहामरपति वचन हेतुसयुतम् ॥३५

उस महा रूप के ऊपर की ओर विक्रममाण होने पर इन्दु तो दक्षिण भाग मे हो गया था और सव्य भाग मे सूर्य देव हो गये थे ॥२६॥ तीसरे क्रमण से अर्थात् तीसरे पैंड के नापने से उन्होने स्वर्लोक-जन लोक, और तप लोक क्रान्त कर लिये थे। आधे से मे क्रान्त किये और आधे से अम्बर को पूरा कर दिया था ॥३०॥ इसके उपरान्त प्रवर्द्धमान होते हुए विष्णु ने हे ब्रह्मन् ! दक्षिणान्तर मे जाकर ब्रह्माण्डोदर को आहत किया था और फिर वे निरालोक को चले गये थे ॥३१॥ प्रसरण करने वाले विश्वाग्नि से अम्बर से कटाह के भेदित होने पर विष्णु पाद से कुटिला वह ससराकुलिल हो गई थी ॥३२॥ इसी लिये तपस्वीगण उसको विष्णु पदी-इस नाम से स्मरण किया करते हैं। विभु भगवान् भी तीसरे अनुक्रम के अपूर्ण होने पर अर्थात् जब तीसरा पैंड पूरा नही हुआ तो दैत्यराज बलि के पास उपस्थित होकर थोड़े होठों को फड़काते हुए बोले—हे दैत्येन्द्र ! तुम तो मेरा तीसरा पद पूरा न होने पर ऋण म फस गये हो अतएव उसका परिणाम घोर दर्शन बन्धन है। तुम या मेरे पद की पूर्ति कर दो या मुझ से अपना बन्धन स्वीकार करो ॥३३-३४॥ मुरारि के इस वचन का श्रवण करके बलि का पुत्र बाण हँसकर अमरपति से हेतु सयुत वचन बोला—॥३५॥

कृत्वा महीमल्पतरा जगत्पते स्वय विधाता भुवनेश्वराणाम् ।
कथवलिप्रार्थयसेमुविस्तृतायाप्राग्भवाप्नोविपुलाचकार ॥३६
विभो मही यावती च त्वयाऽद्य सृष्टा समेता भुवनान्तराले ।
दत्ता च तातेन हि तावतीयं किंवाक्छलेनैप निवध्यतेऽद्य ॥३७
यथैव शक्त्या भवता हि पूर्वं तथैव शक्त्या दितिजेश्वरोऽसौ ।
शक्तस्तु सम्पूजयितु मुरारे प्रसीद मा बन्धनमादिशस्व ॥३८
प्रोक्तं श्रुतौ भवताऽधीश वाक्य दान पात्रे जायते सौख्यदायि ।
देशे पुण्ये तद्वदेवापि काले तच्चाशेषं दृश्यते चक्रपाणौ ॥३९
दान भूमिः सर्वकामप्रदाता भवान्पात्रं देवदेवोऽजितात्मा ।
कालोज्येष्ठामूलयोगेमृगाङ्कः कुरुक्षेत्रं पुण्यदेशः प्रसिद्धः ॥४०

किं वा देवैर्मद्विधैर्बुद्धिहीनैः शिक्षा नेया साधुवाऽसाधु चैव ।
स्वयं श्रुतीनामपि चादिकर्ता व्यवस्थितः सदसद्यो जगद्वै ॥४१
कृत्वा प्रमाणं स्वयमेव हीनं पदत्रयं याचितवांस्तु यच्च ।
किंत्वं हि गृह्णासि विभो महात्मारूपेणलोकप्रतिवन्दितेन ॥४२

बाणासुर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आपने इस मही को स्वल्पतर बना दिया है क्यों कि आप तो स्वयं ही भुवनेश्वरों के विधाता हैं। आप अब बलि से कैसे प्रार्थना कर रहे हैं जिस भुविस्तृत को आपने पहिले विपुल नहीं किया है ॥३६॥ हे विभो ! जितनी भूमि आपने आज सृजन की है और जो भुवनान्तराल में समेत है मेरे पिता ने यह सब की सब उतनी ही आपको देदी है। अब आप वाणी के छल से इनको क्यों बांध रहे हैं ? ॥३७॥ आपने जिस शक्ति से पहिले रचना की है उसी शक्ति से यह दितिजेश्वर है। हे मुरारे ! आपका भली भाँति पूजन करने को यह शक्त है। आप प्रसन्न होइये और इनके बन्धन का आदेश मत दीजिए ॥३८॥ हे ईश ! आपने ही श्रुति में भी वाक्य कहा है कि पात्र में दान सौख्य देने वाला होता है। पुण्य देश और काल में भी वह दान सुख प्रद हुआ करता है। वे सभी बातें चक्रपाणि में दिखलाई देरहे हैं ॥३६॥ दान तो भूमि का है सर्व कामों का प्रदान करने वाला उस दान का देने वाला है और देवों के भी देव अजित आत्मा वाले आप उस दान के पात्र हैं। काल भी बहुत अच्छा है क्यों कि चन्द्रमा ज्येष्ठा मूल के योग में है तथा कुरुक्षेत्र जैसा परम पुण्यमय देश है जो अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥४०॥ देवों के द्वारा अथवा मुक्त जैसे बुद्धि हीनों के द्वारा साधु अथवा असाधु क्या शिक्षा दी जा सकती है। आप तो स्वयं ही श्रुतियों के आदि कर्त्ता हैं जो भी सद् और असद् जगत् व्यवस्थित है ॥४१॥ स्वयं ही हीन तीन पद करके जो आपने याचना की थी। अब महात्मा आप हे विभो ! लोक प्रति वन्दित रूप से क्या ग्रहण कर रहे हैं ॥४२॥

नात्राश्चर्यं यज्जगद्वै समग्रं क्रमत्रयेणैव पूर्णं तवाद्य ।
क्रमेण भो लङ्घयितुं समर्थो मही समग्रा ननु लोकनाथ ॥४३

प्रमाणहीनां स्वयमेव कृत्वा वसुंधरां माधव पद्मनाभ ।
विष्णोनिबध्नासिकथंबलिंत्वंविभुर्यदेवेच्छसितत्कुरुष्व ॥४४
इत्येवमुक्ते वचने बलिना बलिसूनुना ।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं ह्यादिकर्ता जनार्दनः ॥४५
यान्युक्तानि वचांसीत्थं त्वया बालेय साम्प्रतम् ।
तेषां वै हेतुसंयुक्तं शृणु प्रत्युत्तरं मम ॥४६
पूर्वमुक्तस्तव पिता मया राजन्पदत्रयम् ।
देहि मह्यं प्रमाणेन तदेतत्समनुष्ठितम् ॥४७
किं न वेत्ति प्रमाणं मे बलिस्तव पितासुरः ।
प्रायच्छद्येन निःशङ्कं मम मानं पदत्रयम् ॥४८
सत्यं क्रमेण चैकेनं क्रमेयं भूर्भुवादिकम् ।
बलेरपि हितार्थाय कृतमेतत्क्रमद्वयम् ॥४९

इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि आप के तीन पदों में ही आज यह जगत् सम्पूर्ण पूर्ण हो गया है। हे लोक के नाथ! आप तो इस क्रम से इस समग्र भूमि का लंघन करने में पूर्ण समर्थ हैं। ॥४३॥ हे पद्म नाभ माधव! आपने स्वयं ही इस बसुन्धरा को प्रमाण हीन किया है। हे विष्णो! अब आप बलिका बन्धन क्यों कर रहे हैं? आप तो विभु हैं फिर जो भी कुछ आप चाहते हैं करिये ॥४४॥ पुलस्त्यजी ने कहा—बलवान् बलि राजा के पुत्र के द्वारा इस प्रकार से बचनो के कहने पर आदि कर्ता भगवान जनार्दन यह वचन कहा था ॥४५॥ त्रिविक्रम ने कहा—हे बालेय! तुम ने इस प्रकार से जो भी वचन इस समय में कह डाले हैं अब उन सब बचनों का हेतु समन्वित मेरा प्रत्युत्तर तुम सुनलो ॥४६॥ हे राजन्! पहिले तेरे पिता से मैंने तीन पैंड ही कहे थे कि उन्हें मेरे प्रमाण से दे। वही मैंने किया है ॥४७॥ क्या तुम्हारे पिता असुर बलि मेरे प्रमाण को नहीं जानते हैं जिसने बिना किसी शंका के मेरे तीन पदों के मान को दे दिया था ॥४८॥ यह सत्य है कि मैं एक ही क्रम से भूर्भुवादिक क्रमण कर लेता किन्तु यह भी मैंने बलि के ही हित के लिये दो क्रम किये हैं ॥४९॥

तस्मात्त्वन्मम बालेय त्वत्पित्राऽम्बु करे महत् ।
दत्त तेनायुरेतस्य कल्प यावद्भविष्यति ।।५०
इदमुक्त्वा बलिसुत बाण देवस्त्रिविक्रम. ।
प्रोवाच बलिमभ्येत्य वचन मधुराक्षरम् ।।५१

आपूर्णाद्दक्षिणाया गच्छ राजन्महाफलम् ।
सुतल नाम पाताल वस तत्र निरामय' ।।५२
सुतले वसतो नाथ मम भोगा कुतोऽव्यया. ।
भविष्यन्ति तु येनाह वसिष्यामि निरामयः ।।५३

सुतलस्थस्य दैत्येन्द्र यानि भोग्यानि तेऽधुना ।
भविष्यन्ति महार्हाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः ।।५४
दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
तथाऽधीतान्यव्रतिभिर्दास्यन्ति भवतः फलम् ।।५५

तथाऽन्यमुत्सव पुण्य वृत्त शक्रमहोत्सवे ।
दीपप्रदाननामाऽसौ तव भावी महोत्सव ।।५६

हे बालेय ! तुम्हारे पिता ने जो मेरे हाथ मे सकल्प करके जल दिया था उसी से इसकी आयु एक कल्प पर्यंन्त हो जायगी ।।५०।। देव त्रिविक्रम ने बलि के पुत्र बाण को यह कहकर फिर बलि के समीप मे आकर मधुर अक्षरों मे यह वचन कहा था—।।५१।। श्री भगवान् ने कहा—हे राजन् ! दक्षिणा के आपूरण से महान् फल को प्राप्त करो। सुतल नामक जो पाताल है वहाँ निरामय होकर निवास करो ।।५२।। बलि ने कहा—हे नाथ सुतल मे वास करते हुए मेरे भोग अव्यय कैसे होंगे जिससे कि मैं निरामय होकर वास करूँगा ।।५३।। त्रिविक्रम ने कहा—हे दैत्य इ ! सुतल मे स्थित आपके इस समय में जो भोग्य होंगे वे महार्ह होंगे। उन्हें सब प्रकार से मैं बतलाता हूँ ।।५४।। बिना विधि के दिये हुए दान—अश्रोत्रिय श्राद्ध और अव्रतियों के द्वारा अधीत ये सब आपको यहाँ पर फल देंगे ।।५५।। शक्र महोत्सव के होने पर अन्य पुण्य उत्सव है जिसका नाम दीप प्रदान है वह भावी महोत्सव होगा ।।५६।।

तत्र त्वां नरशार्दूला हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः।
पुष्पदीपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः ॥५७
तस्योत्सवो मुख्यतमोभविष्यति स चापिलोकेतवनामचिह्नितः।
यथैवराज्ये भवतस्तु साम्प्रतंतथैव सा भाव्यथ कौमुदीति ॥५८
इत्येवमुक्त्वा मधुहा दितीश्वरं विसर्जयित्वा ससुतंसभार्यम्।
उर्वी समादाय जगाम तूर्णं सशक्रब्रह्मामरसंघजुष्टः ॥५९
दत्वा मघोनेमधुजित्त्रिविष्टपंकृत्वा च देवान्मखभागभोगिनः।
अन्तर्दधे विश्वपतिर्महेशः संपश्यतामेव सुराधिपानाम् ॥६०
स्वर्गं गते धातरि वासुदेवे शाल्वोऽसुराणां महता बलेन।
कृत्वा पुरंसौभमितिप्रसिद्धं तदाऽन्तरिक्षविचचारकामात् ॥६१
मयश्च कामात्त्रिपुरं महात्मा सुवर्णताम्रायसमुग्रसौख्यम्।
स तारकाख्यः सह वैद्युतेन संतिष्ठते मित्रकलत्रवांश्च ॥६२

वहाँ पर हृष्ट-पुष्ट एवं नर शार्दूल स्वलंकृत होकर यत्न पूर्वक पुष्पदीप प्रदान के द्वारा आपका अर्चन करेंगे ॥५७॥ वहाँ पर परम मुख्य उत्सव होगा और लोक में वह आपके नाम से चिह्नित होगा। जिस तरह से आपके राज्य में इस समय है वैसे ही वह कौमुदी वहाँ पर होने वाली है ॥५८॥ मधुदैत्य के वध करने वाले प्रभु ने इस प्रकार से इतना कहकर सुत और भार्या के सहित दितीश्वर का विसर्जन करके उर्वी को लेकर ब्रह्मा—इन्द्र और देवगण के संघ से संयुत शीघ्र ही चले गये थे ॥५९॥ मधुजित् भगवान् ने त्रिविष्टप को इन्द्र के सुपुर्द कर और समस्त देवों को मख के भाग का भोगी बना कर फिर विश्वपति महेश सम्पूर्ण सुराधिपों के देखते२ अन्तर्धान हो गये थे ॥६०॥ धाता वासुदेव के स्वर्ग में चले जाने पर असुरों के महान् बल से शाल्व सौभपुर बना कर जो इसी नाम से विख्यात है फिर स्वेच्छा से अन्तरिक्ष में उस समय में विचरण करने लगा था ॥६१॥ महात्मा मय स्वेच्छा से सुवर्ण-ताम्र और आयस उग्र सौख्य वाले त्रिपुर में रहता था। वह तारक नाम वाला वैद्युत के साथ मित्र और कलत्र वाला स्थित रहता था ॥६२॥

बाणोऽपि देवेऽथ गते त्रिविष्टपं बद्धे बलौ चापिरसातलस्थे।
कृत्वा सुगुप्तभुविशोणिताख्यं पुरं स चास्ते सहदानवेन्द्रैः ॥६३
एवं पुरा चक्रधरेण विष्णुना बद्धो बलिर्वामनरूपधारिणा।
शक्रप्रियार्थं सुरकार्यसिद्धये हिताय विप्रर्षभगोद्विजानाम् ॥६४
प्रादुर्भवस्ते कथितो महर्षे पुण्यः शुचिर्वामनस्याघहारी।
श्रुते यस्मिन्कीर्तिते संस्मृते च पापं याति प्रक्षयं पुण्यमेति ॥६५
एतत्प्रोक्तं वामनीयं चरित्रं बद्धो बलिः पुण्यकीर्तिर्यथाऽसौ।
यच्चैवान्यच्छ्रोतुकामोऽसि विप्रतत्तेवक्ष्येब्रूहि ब्रह्मन्नशेषम् ॥६६

बाण भी देव के त्रिविष्टप में चले जाने पर तथा बलि के बद्ध और रसातल में स्थित होने पर भूमण्डल में परम गुप्त शोणित नाम वाला पुर बना कर दानवेन्द्रों के साथ वहाँ पर रहता था ॥६३॥ इस प्रकार से पहिले चक्रधारी विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि को बद्ध किया था जो कि इन्द्र के प्रिय-सुरों के कार्यों की सिद्धि और विप्र गौ तथा द्विजों के हित-सम्पादन के लिये ही किया था। ॥६४॥ भगवान् वामन देव का प्रादुर्भाव हे महर्षे! परम पुण्यमय-शुचि तथा अघों का हरण करने वाला है उसको हमने आपको बतला दिया है। जिसके श्रवण करने पर—कीर्त्तन करने पर और स्मरण मात्र कर लेने पर पाप का क्षय हो जाया करता है और पुण्य का लाभ होता है ॥६५॥ यह वामन का चरित्र कह दिया गया है जिसमें बलि का बाँधना है और यह पुण्य कीर्त्ति वाला है अब हे विप्र! जो कुछ अन्य आप सुनना चाहते हैं हे ब्रह्मन्! वह मुझे बतलाओ, मैं सभी पूर्ण रूप से तुमको बतलाऊँगा ॥६६॥

६१—भगवत् प्रशंसा

गत्वा रसातलं दैत्यो महामणिविचित्रितम्।
शुद्धस्फटिकसोपानं कारयामास वै पुरम् ॥१

तत्र मध्ये सुविस्तीर्णं प्रासादो वहुवेदिकः ।
मुक्ताजालान्तरद्वारो निर्मितो विश्वकर्मणा ॥२
तत्रास्ते विविधान्भोगान्भुञ्जन्दिव्यान्स मानुवान् ।
नाम्ना विन्ध्यावलीत्येवं भार्याऽस्य दयिताऽभवत् ॥३
युवतीनां सहस्रस्य प्रधाना शीलमण्डना ।
तया सह महातेजा रेमे वैरोचनिर्मुने ॥४
भोगासक्तस्य दैत्यस्यवसतः सुतले तदा ।
दैत्यतेजोहरं प्राप्त पातालं वै सुदर्शनम् ॥५
चक्रे प्रविष्टे पाताले दानवाना भयं महत् ।
अभूद्धलहलाशब्दः क्षुभितार्णवसंनिभः ॥६
त श्रुत्वा सुमहच्छब्द वलिः खड्ग समाददे ।
आ. किमेतदितीत्यं च पप्रच्छासुरपुङ्गवः ॥७

पुलस्त्य ऋषि ने कहा—दैत्यराज ने रसातल मे पहुँच कर महान् मणियो से विचित्र एवं विशुद्ध स्फटिक मणियो का सोपान युक्त पुर की रचना कराई थी ॥१॥ उसमे मध्य मे जो कि पर्याप्त रूप से विस्तृत था एक बहुत वेदियो वाले प्रासाद का निर्माण कराया था जो कि मुक्ताओ के जाल वाले अनार द्वार जिसमे विद्यमान थे ऐसा विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित किया गया था ॥२॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के दिव्य और मानुष भोगों का उपभोग करता हुआ वह रहा करता था। उसकी भार्या विन्ध्यावली नाम वाली परम प्रिया थी ॥३॥ वह सहस्रो युवतियों मे परम प्रमुख थी और शील के मण्डन से मण्डित थी। हे मुने ! उसी अपनी प्रियतमा भार्या के साथ वह विरोचन का पुत्र बलि वहाँ पर सानन्द रमण किया करता था ॥४॥ इस प्रकार भोगो के उपभोग मे परमाधिक आसक्त होकर वहाँ पर सुतल मे निवास करने दैत्य के तेज को हरण करने वाला सुदर्शन उस समय मे पाताल मे प्राप्त हो गया था ॥५॥ उस सुदर्शनचक्र के पाताल लोक मे प्रविष्ट होने पर समस्त दानवो को भीषण भय हो गया था और क्षोभ से युक्त सागर के सदृश वहाँ पर हलाहला ध्वनि उत्पन्न हो गई थी ॥६॥ उस महान् घोष

बोला—और उसने विधि-विधान के साथ उस चक्र का अर्चन किया था और इस स्तोत्र के द्वारा संस्तवन किया था—।११।। राजा बलि ने कहा—मैं दैत्यों के चक्र का विदारण करने वाले भगवान् श्री हरि के चक्र को नमस्कार करता हूँ। आप तो सहस्र किरणों वाले—सहस्र आभा से सम्पन्न और सहस्र अरों से युक्त सुदर्शन देव हैं ।।१२।। मैं भगवान् श्री हरि के चक्र की सेवा में नमस्कार अर्पित करता हूँ जिन भगवान् की नाभि में पितामह विराजमान रहते हैं। तुम्ब में त्रिशूल के धारण करने वाले भगवान् शंकर हैं और अराओं के मूल में महान् पर्वत हैं ।।१३।। आपके अराओं में इन्द्र-अर्क और पावक आदि के सहित समस्त देवगण विराजमान हैं। जिसके वेग में वायुदेव हैं तथा जल-अग्नि-पृथिवी और नभ विद्यमान हैं ।।१४।।

अरासन्धिषु जीमूता. सौदाम्यृक्षाणि तारका. ।
बाह्यतो मुनयो यस्य वालखिल्यादयस्तथा ।। .५
तदायुधवर देव वासुदेवस्य भक्तितः ।
त्रिधा पाप शरीरोत्थ वाग्ज मानसमेव च ।।१६
तन्मे दहस्व दीप्तांशो विष्णोश्चक्र सुदर्शनम् ।
यत्कलौ बहुल पाप पैतृक मातृक तथा ।।१७
तन्मे हरस्व तरसा नमस्तेऽस्त्वच्युतायुध ।
आपदो मम नश्यन्तु व्याधयो यान्तु सक्षयम् ।
स्वन्नामकीर्तनाच्चक्र दुरित यातु सक्षयम् ।।१८
इत्येवमुक्त्वा मतिमान्समभ्यर्च्याथ भक्तितः ।
सस्मरन्पुण्डरीकाक्ष सर्वपापविनाशनम् ।।१६
पूजित बलिना चक्रं कृत्वा निस्तेजसोऽसुराध् ।
निश्चक्रामाथ पातालाद्विपुवे दक्षिणे मुने ।।२०
सुदर्शने विनिष्क्रान्ते बलिर्विक्लवता गतः ।
परमामापद प्राप्य सस्मार स्व पितामहम् ।।२१

आपकी अराओं की सन्धियों में जीमूत—(मेघ) सौदामिनी-ऋक्ष और तारागण संस्थित हैं और बाहर के भाग में वालखिल्य प्रभृति

का श्रवण करके दैत्यराज बलि ने अपना खड्ग ग्रहण कर लिया था और असुरराज ने पूछा था कि यह क्या इस प्रकार से हो रहा है ? ॥७॥

तनो विन्ध्यावलिः प्राह सान्त्वयन्ती निज पतिम् ।
कोशे खड्ग समाधाय धर्मपत्नी शुचिव्रता ॥८
उवाच मधुर वाक्य दैत्यराज सुनिश्चितम् ।
एतद्भागवत चक्र दैत्यचक्रक्षयकरम् ॥९
सपूजनीय दैत्येन्द्र वामनस्य महात्मनः ।
इत्येवमुक्त्वा चार्वङ्गी प्रयता सा विनिर्ययौ ॥१०
अथाभ्यागारसहस्रार विष्णोश्चक्र सुदर्शनम् ।
ततोऽसुरपतिः प्राह कृताञ्जलि पुटो मुने ।
सपूज्य विधिवच्चक्रमिद स्तोत्रमुदैरयत् ॥११
नमस्यामि हरेश्चक्र दैत्यचक्रविदारणम् ।
सहस्राशु सहस्राभ सहस्रार सुदर्शनम् ॥१२
नमस्यामि हरेश्चक्र यस्य नाभ्या पितामहः ।
शुक्र स्त्रिशूलधृक्शर्व अरामूले महाद्रय ॥१३
अरासु सस्थिता देवा सेन्द्रार्काश्च सपावका ।
जवे यस्य स्थितो वायुरापोऽग्निः पृथिवी नभः ॥१४

इसके अनन्तर उस विन्ध्यावली ने अपने स्वामी को सान्त्वना देती हुई ने कहा था उस समय मे परम शुचि व्रत वाली बलि की धर्म पत्नी खड्ग को कोश के अन्दर करा कर प्रार्थना की थी ॥८॥ उस विन्ध्यावली ने दैत्यराज से परम मधुर सुनिश्चित वचनो के द्वारा यह कहा था कि यह भगवान् का सुदर्शनचक्र है जो दैत्य चक्र के क्षय करने वाला है ॥९॥ हे दैत्येन्द्र ! इस महात्मा वामन के चक्र की भली भाँति पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से अपने स्वामी से वह परम सुन्दर अङ्गों वाली विन्ध्यावली कह कर प्रयत होती हुई वहाँ से निकल कर चली गयी थी ॥१०॥ इसके अनन्तर सहस्र अरों वाला भगवान् विष्णु का वह सुदर्शनचक्र वहाँ पर आ गया था । हे मुनिवर ! इसके उपरान्त वह असुरो का स्वामी राजा बलि अपने दोनो हाथो को जोड कर

बोना—और उसने विधि विधान के साथ इस चक्र का अर्चन किया था और इस स्तोत्र के द्वारा संस्तवन किया था—।११॥ राजा बलि ने कहा— मैं दैत्यों के चक्र का विदारण करने वाले भगवान् श्री हरि के चक्र को नमस्कार करता हूँ। आप तो सहस्र किरणों वाले—सहस्र आभा से सम्पन्न और सहस्र अरों से युक्त सुदर्शन देव हैं ॥१२॥ मैं भगवान् श्री हरि के चक्र की सेवा में नमस्कार अर्पित करता हूँ जिन भगवान् की नाभि में पितामह विराजमान रहते हैं। तुम्ब में त्रिशूल के धारण करने वाले भगवान् शंकर हैं और अराओं के मूल में महान् पर्वत हैं ॥१३॥ आपके अराओं में इन्द्र-अर्क और पावक आदि के सहित समस्त देवगण विराजमान हैं। जिसके वेग में वासुदेव हैं तथा जल-अग्नि पृथिवी और नभ विद्यमान हैं ॥१४॥

अरासन्धिषु जीमूता. सौदाम्न्यृक्षाणि तारका. ।
बाह्यतो मुनयो यस्य वालखिल्यादयस्तथा ॥१५
तदायुधवरं देव वासुदेवस्य भक्तित. ।
त्रिधा पापं शरीरोत्थं वाग्जं मानसमेव च ॥१६
तन्मे दहस्व दीप्तांशो विष्णोश्चक्र सुदर्शनम् ।
यत्कली बहुलं पापं पैतृकं मातृकं तथा ॥१७
तन्मे हरस्व तरसा नमस्तेऽस्त्वच्युतायुध ।
आपदो मम नश्यन्तु व्याधयो यान्तु संक्षयम् ।
त्वन्नामकीर्तनाच्चक्र दुरितं यातु संक्षयम् ॥१८
इत्येवमुक्त्वा मतिमान्समभ्यर्च्याथ भक्तितः ।
संस्मरन्पुण्डरीकाक्षं सर्वपापविनाशनम् ॥१९
पूजितं बलिना चक्रं कृत्वा निस्तेजसोऽसुरान् ।
निष्क्रामाथ पातालाद्विपुवे दक्षिणे मुने ॥२०
सुदर्शने विनिष्क्रान्ते वलिर्विक्लवतां गतः ।
परमामापदं प्राप्य सस्मार स्वं पितामहम् ॥२१

आपकी अराओं की सन्धियों में जीमूत—(मेघ) सौदामिनी-ऋक्ष और तारागण अवस्थित हैं और बाहर के भाग में बालखिल्य प्रभृति

मुनिगण विराजमान हैं ॥१५॥ उन भगवान् वासुदेव के परम श्रेष्ठ आयुध देव आपकी सेवा में मैं भक्ति भाव से नमस्कार करता हूँ। तीन प्रकार के शरीर में समुत्थित पाप है-वाणी में उत्पन्न होने वाले और तीसरी प्रकार का पाप मन में उत्पन्न होने वाला है ॥१६॥ हे दीप्त किरणों वाले ! आप तो भगवान् विष्णु के सुदर्शनचक्र हैं। आप मेरे इन तीनों प्रकार के पापों को कृपया दग्ध कर दीजिए। जो इस कलियुग में पैतृक और मातृक बहुत सा पाप है, हे अच्युत भगवान् के आयुध ! उस सम्पूर्ण पाप का आप शीघ्रता से हरण कर दीजिए। आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। मेरी समस्त आपत्तियाँ नष्ट हो जावें और मेरी सब व्याधियाँ भी क्षीण हो जावें। हे चक्र आपके परम शुभ नाम के ही कीर्तन से मेरे सब दुरित (पाप) क्षय को प्राप्त हो जावें ॥१७-१८॥ इस प्रकार से सविनय कह कर मतिमान् राजा बलि ने भक्ति भाव से सुदर्शन चक्र का यजन किया था। उस समय में सब पापों के विनाश करने वाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष का स्मरण किया था ॥१९॥ असुरों को निस्तेज करते हुए राजा बलि के द्वारा चक्र का पूजन किया गया था इसके अनन्तर हे मुने ! वह चक्र पाताल लोक से विपुल दक्षिण में निकल कर चला गया था ॥२०॥ उस सुदर्शन चक्र के विनिष्क्रान्त हो जाने पर राजा बलि अधिक विह्वल हो गया था और उस समय में परमाधिक आपदा को प्राप्त करके उसने अपने पितामह का स्मरण किया था ॥२१॥

स चापि सस्मृत प्राप्तः सुतल दानवेश्वरः।
दृष्ट्वा तस्थौ महातेजाः सार्घ्यपात्रो बलिस्तदा ॥२२
स तमभ्यर्च्य विधिना पितु पितरमीश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इद वचनमब्रवीत् ॥२३
सस्मृतोऽपि समायातः सुविषण्णेन चेतसा।
तन्मे हित च पथ्य च श्रेयासि त्वं तदा शुभम् ॥२४
किं कार्यं तात ससारे वसता पुरुषेण हि।
कृतेन येन वै नास्य बन्धः समुपजायते ॥२५

संसारार्णवमग्नानां नराणामल्पचेतसाम् ।
तारणाय भवेद्यस्तु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२६

एतद्वचनमाकर्ण्य तत्पौत्राद्दानवेश्वरः ।
विचिन्त्य प्राह वचन संसारे यद्धितं परम् ॥२७

साधु दानवशार्दू ल यत्ते जाता मतिस्त्वियम् ।
प्रवक्ष्यामि हितां तेऽद्य तथाऽन्येषा नृणामपि ॥२८

वह दानवेश्वर भी स्मरण किये जाने पर उसी समय मे सुतललोक मे प्राप्त होगया था। उसी समय मे वहाँ पर पितामह का दर्शन प्राप्त करके वह महान् तेज वाला राजा बलि अर्घ्य के पात्र के साथ ही उपस्थित होगया था ॥२२॥ उसने विधि पूर्वक पिता का अभ्यर्चन किया था और फिर हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगा ॥२३॥ आप मेरे द्वारा स्मरण करते ही सुविषाद मे युक्त चित्त से यहाँ पर प्राप्त होगये हैं इसलिये अब आप मेरा हित—पथ्य—श्रेय और शुभ हों उन्हें बतलाइवे ॥२४॥ हे तात ! इस संसार मे निवास करने वाले पुरुष को क्या-क्या करना चाहिए जिसके करने मे इस जीवात्मा को फिर बन्धन नहीं रहे या उत्पन्न होवे ॥२५॥ इस संसार रूपी सागर मे निमग्न, स्वल्प चित्त वाले मनुष्यों के तारने के लिये जो भी कुछ साधन हो वही इस समय मे आप मेरे समक्ष में वर्णन कीजिए क्योंकि इसकी व्याख्या करने के लिये परम योग्य हैं ॥२६॥ महर्षि पुलस्त्य जी ने कहा—दानवेश्वर ने अपने पौत्र के द्वारा कहे हुए इन वचनो का श्रवण करके कुछ विचार करके संसार में जो परम हित की बात है उस वचन को उन्होंने कहा था ॥२७॥ प्रह्लाद जी ने कहा—हे दानवो मे शार्दूल के समान ! जो तुम को इस समय में ऐसी बुद्धि समुत्पन्न होगई है—यह बहुत ही अच्छा बात है। मैं अब जो आपके हित की तथा अन्य मानवों के भी हित की बात होगी उसे ही बतलाऊँगा ॥२८॥

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारादितानाम् ।

।।३०।। पाश हाथ मे ग्रहण कर जीवों को बाँधकर यमराज की सभा में लाने वाले अपने दूत को देखकर यमराज स्वयं उसके कान मे कहा करता है कि जो भगवान् मधुसूदन प्रभु के चरण कमलो की शरण करने वाले परम भक्तजन हैं उनको मत बाँधना और उनका तो दूर ही से त्याग कर देना। मैं दूसरे ही मानवों का प्रभु हूँ जो भगवद्भक्त वैष्णव जन होते हैं उन पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है ।।३१।। परम पुरुषोत्तम भक्ति से युक्त इक्ष्वाकु ने उसी प्रकार से अन्य वचन निश्चित रूप से कहे हैं कि जो इस भूमण्डल मे भगवान् विष्णु के परम भक्त पुरुष हैं वे कभी भी यमराज के विषय नहीं हुआ करते हैं ।।३२।। जिह्वा वस्तुत वही है अर्थात् उसी जिह्वा की इस संसार मे सार्थकता होती है जो भगवान् का सस्तवन किया करती है और वही चित्त भी वास्तव मे सफल है जो भगवान् के चरणो मे समर्पित हो गया है और वे ही कर श्लाघा करने के योग्य हुआ करते हैं जो भगवान् की यजनार्चना में सदा संलग्न रहा करते हैं ।।३३। निश्चय ही उन हाथों को हाथ नहीं कहा जा सकता है जो श्री हरि के चरण कमलों की पूजा करने मे समासक्त नहीं हुआ करते हैं वे तो एक वृक्ष की शाखा के ही एक भाग के तुल्य हुआ करते हैं ।।३४।। वह कण्ठ भी एक छिद्र के ही समान है और वह जिह्वा भी प्रति जिह्विका सदृश है अथवा एक प्रकार का रोग के ही तुल्य है जो भगवान् के गुण गणों का गान नहीं किया करते हैं ।।३५।।

शोचनीयः स बन्धूना जीवन्नपि मृतो नरः ।
य. पादपङ्कज विष्णोर्न पूजयति भक्तितः ।।३६

ये नरा वासुदेवस्य सतत पूजने रताः ।
मृता अपि न शोच्यास्ते सत्यं सत्यं मयोदितम् ।।३७

शारीर मानसं वाग्ज मूर्तामूर्तं चराचरम् ।
दृश्य स्पृश्यमदृश्य वा तत्सर्वं केशवात्मकम् ।।३८

येनार्चितो हि भगवांश्चतुर्द्धाऽपि त्रिविक्रमः ।
तेनार्चिता न सदेहो लोकाः सामरदानवाः ।।३९

यथा रत्नानि जलधेरसङ्ख्येयानि पुत्रक ।
तथा गुणाश्च देवस्य त्वसङ्ख्येया हि चक्रिणः ।।४०
येशङ्खचक्राब्जकरचशार्ङ्गिणखगेन्द्रकेतुंवरदश्रिय.पतिम् ।
समाश्रितास्तेनभवन्तिदुःखितासंसारगर्तेनपतन्तितेपुनः ।।४१
येषां मनसि गोविन्दो निवासी सततं भवेत् ।
न ते परिभवं यान्ति न मृ.योरुद्विजन्ति च ।।४२

वही मनुष्य बन्धुओं के द्वारा चिन्ता एवं शोक करने के योग्य होता है और जीता हुआ भी मृत के ही समान हुआ करता है जो भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु के चरण कमलों की अर्चना नहीं किया करता है ।।३६।। जो भगवान् की पूजा करने में सर्वदा अपनी रुचि रक्खा करते हैं वे मृत हो जाने पर भी कभी शोच करने के योग्य नहीं हुआ करते हैं—यह मैंने परम सत्य एवं तथ्य की बात तुम्हारे सामने बतलायी है ।।३७।। शरीर से मन से और वचन से समुत्पन्न होने वाला-मूर्त्त एवं अमूर्त्त सम्पूर्ण चर और अचर-दृश्य, स्पर्श करने के योग्य और अदृश्य-जो कुछ भी है वह इस जगत् में सभी केशव के स्वरूप युक्त ही है।।३८।। जिसने त्रिविक्रम भगवान् का चारों प्रकारों से समर्चित किया है उसने सम्पूर्ण अमर और दानवों से समन्वित समस्त लोकों की अर्चना करली है—इसमें कुछ भी सन्देह का अवसर नहीं है क्यों कि सभी भगवान् के स्वरूप में ही अन्तर्गत हो जाया करते हैं ।।३९।। हे पुत्र ! जिस प्रकार से जलधि के असंख्य रत्न हुआ करते हैं उसी प्रकार से भगवान् देवेश्वर के गुण गण भी असंख्य हुआ करते हैं ।।४०।। जो मनुष्य शंख चक्र और कमल के धारण करने वाले शार्ङ्ग धनुष के धारी—गरुड़ की ध्वजा वाले भी वरदानों के प्रदाता—महालक्ष्मी के स्वामी भगवान् के चरणों का समाश्रय ग्रहण करने वाले हैं वे कभी भी दुःखित नहीं हुआ करते हैं और पुनः इस संसार के गर्त्त में पतन नहीं किया करते हैं अर्थात् अन्त में उनको भगवान् की ही सन्निधि का नित्यनिवास प्राप्त होजाया करता है ।।४१।। जिनके परम पवित्र मन में निरन्तर भगवान् का निवास रहा करता है वे कभी भी किसी प्रकार का परिभव प्राप्त नहीं किया करते

हैं और उन्हें फिर मृत्यु से भी किसी तरह का उद्वेग नहीं होता है ॥४२॥

देवं शार्ङ्गधरं विष्णु ये प्रपन्नाः परायणम् ।
न तेषां यमलोकोऽस्ति न च ते नरकौकसः ॥४३
सतां गति प्राप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविशारदाः ।
यान्ति दानवशार्दूल विष्णुभक्ता व्रजन्तितम् ॥४४
या गतिर्दैत्यशार्दूल सग्रामे निहतात्मनाम् ।
ततोऽधिका गतिं यान्ति विष्णुभक्ता नरोत्तमाः ॥४५
या गतिर्धर्मशीलाना सात्त्विकानां महात्मनाम् ।
सा गतिर्गदिता दैत्य भगवद्वेदिनामपि ॥४६
सर्वावास वासुदेव सूक्ष्ममव्यक्त विग्रहम् ।
प्रपश्यन्ति महात्मानस्तीर्थभूता भवच्चिदम् ॥४७
प्रणिपत्य यथान्याय संसारे न पुनर्भवेत् ।
कृतेषु वसते नित्यं क्रीडन्नास्तेऽमितद्युतिः ॥४८
आसीनः सर्वदेहेषु कर्मभिर्न स बध्यते ।
येषा विष्णुः प्रियो नित्य ते विष्णोः सततं प्रियाः ॥४९

शार्गधारी भगवान् विष्णु के ध्यान एव स्मरण मे जो परायण रहा करते हैं और उनकी प्रपत्ति ग्रहण कर लिया करते हैं उनको फिर कभी भी यमलोक और नरकों का निवास नहीं हुआ करता है ॥४३॥ हे दानव शार्दूल ! श्रुति और शास्त्र के महान् मनीषी सत्पुरुषो की गति को प्राप्त किया करते हैं उसी गति को भगवान् विष्णु के परम भक्त भी किया करते हैं भगवद्भक्ति बडी भारी महिमा है ॥४४॥ हे दैत्यो मे शार्दूल के समान महावीर ! सग्राम मे शत्रु के समक्ष मे युद्ध करके प्राणों का परित्याग करने वालों की जो सद्गति हुआ करती है उससे भी कहीं अधिकोत्तम गति नरो में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु देव के भक्तो को हुआ करती है ॥४५॥ जो गति धर्म मे शील स्वभाव वाले परम सात्विक महान् आत्मा वालो को हुआ करती है वही सद्गति हे दैत्यराज ! भगवान के ज्ञान को प्राप्त करने वाले परम भक्तो को हुआ करती

है ।।४६।। सब में निवास करने वाले—परम सूक्ष्म स्वरूप से युक्त अव्यक्त रूप वाले और इस सांसारिक बन्धन का छेदन कर देने वाले भगवान् वासुदेव का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लिया करते हैं वे महान् आत्मा वाले एक तीर्थ के ही समान हुआ करते हैं ।।४७।। रीति पूर्वक उन भगवान् के चरणों में प्रणिपात करके फिर यह जीवात्मा संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है वह तो फिर कृतों में ही नित्य निवास किया करता है और अपरिमित कान्ति वाला होकर आनन्द क्रीड़ा करने वाला रहा करता है क्योंकि भगवत्प्राप्ति होने पर दुःख तो हुआ ही नहीं करता है ।।४८।। वह भगवान् का भक्त चाहे किसी भी देह में रहे सभी देहों में वह फिर कर्मों के बन्धनों से बद्ध नहीं हुआ करता है। जिनको सदा भगवान् प्रिय होते हैं वे भगवान् विष्णु के भी परम प्रिय हुआ करते हैं ।।४९।।

न ते पुनः सभवन्ति तद्भक्तास्तत्परायणाः ।
ध्यायेद्दामोदर यस्तु भक्तिनम्रस्तथाऽर्चयेत् ।।५०
न हि संसारपङ्केऽस्मिन्मज्जते दानवेश्वर ।
कल्यमुत्थाय ये भक्त्या स्मरन्ति मधुसूदनम् ।।५१
श्रावयन्ति च शृण्वन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।५२
हरिगाथामृतं पीत्वा बले वै श्रोत्रभाजनैः ।
प्रहृष्यति मनो येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।५३
येषां चक्रगदा पाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।।५४
विष्णुधर्मप्रसक्तानां तेषां या परमा गतिः ।
सा तु जन्मसहस्रेण न तपोभिरवाप्यते ।।५५
किं जप्यैस्तस्य मन्त्रैर्वा किं तपोभिः किमाश्रमैः ।
यस्य नास्ति परा भक्तिः सततं मधुसूदने ।।५६

भगवान् की भक्ति में परायण रहने वाले भगवान् के परम भक्त संसार में फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं। जो कोई भगवान् दामोदर का ध्यान किया करता है और भक्ति-

भाव में अतिशय विनम्र होकर उनको अर्चना किया करता है वह पुनर्जन्म प्राप्त नहीं किया करता है ५०। हे दानवेश्वर ! वह मनुष्य जो नित्य ही प्रातः काल में उठ कर भक्ति के भाव से भगवान् मधुसूदन का स्मरण किया करते हैं वे फिर इस संसार की कीच में कभी भी मग्न नहीं हुआ करते हैं ॥५१॥ जो स्वयं भगवान् के गुणों का श्रवण किया करते हैं तथा दूसरों को श्रवण कराया करते हैं उनको फिर पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है ॥५२॥ भगवान् श्री हरि की गाथा रूपी आहुत का जो अपने कर्ण रूपी पात्रों के द्वारा हे भले ! निरन्तर पान किया करते हैं उनका मन सर्वदा परम प्रसन्न रहा करता है और वे बड़े२ कष्टों को भी पार कर जाया करते हैं ॥५३॥ जिन महानुभावों की चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् में अव्यभिचारिणी भक्ति हुआ करती है वे निश्चत रूप से उस नियत स्थान का निवास प्राप्त किया करते हैं जहाँ पर साक्षात् योगेश्वर श्री भगवान् विराजते हैं ॥५४॥ भगवान् विष्णु के धर्म में अर्थात् वैष्णव धर्म में प्रसन्न रहने वाले भगवद्भक्तों की जो सर्वोत्तम परम गति हुआ करती है वह गति सहस्रों जन्मों में बड़ी भारी उग्र तपश्चर्या करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकती है ॥५५॥ ऐसे मन्त्र के जापों के करने से क्या लाभ है और ऐसे तप तथा आश्रमों में रह कर उनके नियमों के परिपालन करने से भी क्या लाभ है जिसकी मधुसूदन भगवान् के चरणों में परम भक्ति न होने अर्थात् बिना भक्ति भाव के मन्त्र जप-तप और आश्रम सब निष्फल ही होते हैं ॥५६॥

वृथा यज्ञो वृथा दानं वृथा धर्मो वृथाऽऽश्रमः ।
वृथा तपश्च कीर्तिश्च यो द्वेष्टि मधुसूदनम् ॥५७

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने ।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥५८

विष्णुर्येषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥५९

सर्वमङ्गलमाङ्गल्य वरेण्य वरद प्रभुम् ।
नारायण नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥६०
विघ्नयो व्यतिपाताश्च येऽन्ये दुर्नीतिसभवाः ।
ते नामस्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्तिमहासुर ॥६१
तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च ।
नारायणप्रणामस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥६२
पृथिव्यामानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥६३

जो भगवान् मधुसूदन से द्वेष करता है उसका यज्ञ–दान-धर्म आश्रम तप और कीर्ति सभी व्यर्थ ही है। भगवद्भक्ति के सामने इन उक्त साधनों का कुछ भी महत्त्व नहीं होता है। ॥५७॥ जिसकी भगवान जनार्दन में भक्ति भाव विद्यमान है उनको फिर बहुत से मन्त्रों के जाप करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान् नारायण के लिये नमस्कार है-यह मन्त्र ही सब अर्थों का साधन करने वाला है ॥५८॥ जिनके ऊपर भगवान् विष्णु का हाथ है अर्थात् परम वैष्णव है उनकी सदा जय होती है। विष्णु भक्तों की कभी हार तो होती ही नहीं है क्योंकि उनके हृदय में भगवान् जनार्दन स्वयं विराजमान रहा करते हैं ॥५९॥ सर्व मगलों के भी मगल स्वरूप–वरेण्य–वरदाता प्रभु नारायण का स्मरण करके ही समस्त कर्मों को करना चाहिए ॥६०॥ विघ्न व्यतिपात और जो अन्य बुरी नीति से होने वाले दोष हैं वे सभी भगवान् विष्णु के परम शुभ नामों का स्मरण करने से विनाश को प्राप्त हो जाया करते हैं। भगवान् के शुभ नामों के स्मरण तथा कीर्तन की ऐसी अत्यद्भुत महिमा हुआ करती है ॥६१॥ सहस्रों और सैकड़ों करोड़ तीर्थ भी भगवान् नारायण को किये गये प्रणाम की सोलहवीं कला को प्राप्त करने के योग्य नहीं होते हैं ॥६२॥ इस भूमण्डल में जो भी तीर्थ स्थल हैं तथा परम पुण्य मय आयतन हैं वे सब भी भगवान् विष्णु के शुभ नामों के कीर्तन से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

प्राप्नुवन्ति न तांल्लोकान्व्रतिनो वा तपस्विनः ।
प्राप्यन्ते ये तु कृष्णस्य नमस्कारपरैर्नरैः ॥६४
योऽप्यन्यदेवताभक्तो मिथ्यार्च्चयति केशवम् ।
सोऽपि गच्छति साधूना स्थानं पुण्यकृता महत् ॥६५
सुमत्येन हृषीकेशं पूजयित्वा तु यत्फलम् ।
नृणां सुचीर्णे तपसि तत्फलं न कदाचन ॥६६
त्रिसंध्यं पद्मनाभं तु ये स्मरन्ति सुमेधसः ।
लभन्ते तूपवासस्य फलं नास्त्यत्र संशयः ॥६७
सततं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा हरिमर्चय ।
तत्प्रसादात्परां सिद्धिं वत्से प्राप्स्यसि शाश्वतीम् ॥६८
तन्मना भव तद्भक्तस्तद्याजी तं नमस्कुरु ।
तमेवाश्रित्य देवेशं सुखं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥६९

कोई महा व्रत धारी हो या परम उग्र तपश्चर्या करने वाले हो वे लोग भी उन लोकों को प्राप्त नहीं किया करते हैं जो कि भगवान् श्री कृष्ण के नमस्कार करने में परायण मनुष्यों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं ॥६४॥ जो किसी अन्य देवता की उपासना करने वाला हो और मिथ्या रूप से ही भगवान् का अर्चन किया करता है वह भी बड़े पुण्यात्मा साधुओं के महान् स्थान की प्राप्ति किया करता है ॥६५॥ परम धन्य भाव से भगवान् हृषीकेश के पूजन के करने से जो परम पुण्य-फल प्राप्त होता है वह बहुत समय तक भली भांति किये हुए मनुष्यों के तप से भी किसी भी प्रकार से कभी प्राप्त नहीं होता है ॥६६॥ जो सुन्दर बुद्धि वाले पुरुष तीनों कालों में पद्मनाभ भगवान् का स्मरण किया करते हैं वे परमोत्तम उपवास करने का फल प्राप्त किया करते हैं–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६७॥ हे वत्से ! अतएव शास्त्रोक्त कर्म के द्वारा निरन्तर भगवान् श्री हरि का अर्चन किया करो । उनके प्रसाद से आप परमोत्तम शाश्वती सिद्धि के पाने का लाभ करेंगे ॥६८॥ उन्हीं भगवान् में मन लगाओ–उनके ही भक्त बनो–उन्हीं श्री हरि का यजन सदा करो और उनको ही प्रणाम किया करो हे पुत्र !

उन्हीं देवेश्वर का आश्रय ग्रहण करो तो आप अवश्य सुख की प्राप्ति करेंगे ॥६६॥

आद्य ह्यनन्तमजरहरिमव्ययं च
सर्वत्रगं परमब्रह्मपरं पुराणम् ।
ते यान्ति वैष्णवपदं ध्रुवमक्षयं च
ये मानवा विगतरागपरा भवन्ति ॥७०
नारायणं सुरवरं सततं स्मरन्ति
ते धौतपाण्डरपटा इवराजहंसा ।
संसारसागरजलस्य तरन्ति पारं
ध्यायन्ति ये सततमच्युतमीशितारम् ॥७१
निष्कल्मषं सपदि पद्मदलायताक्षं
ध्यानेन तेन हतकिल्विषचेतनास्ते ।
मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति
ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभम् ॥७२
शङ्खाब्जचक्रवरचापगदासिहस्तं
पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाख्यम् ।
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते
शृण्वन्ति ये सुदृढभक्तिपरा मनुष्याः ॥७३
संकीर्त्यमानं भगवन्तमाद्यमाजन्म पापं यदकारि यैस्तु ।
ते मुक्तपापाः सुखिनो भवन्तियथाऽमृतप्राशनतर्पिताश्च ॥७४
तस्माद्‌ध्यानं स्मरणं कीर्तनं वा
नाम्नामपि श्रवणं पठतां सज्जनानाम् ।
कार्यं विष्णोः श्रद्धधानैर्मनुष्यैः
पूजातुल्यं तत्प्रशंसन्ति देवाः ॥ ५
वाह्येन चान्तःकरणेन योगिष्वथार्चयेत्केशवमीशितारम् ।
पुष्पैश्च पत्रैर्श्च तुसर्वैश्च नूनं स पूज्यो विधिवन्नरेण ॥७६

जो मनुष्य वीतराग परायण होते हैं वे आद्य अनन्त-अजर अव्यय-सर्वत्र गमन करने वाले परम ब्रह्म परात्पर-पुराण पुरुष हरि को प्राप्त

किया करते हैं और अक्षय वैष्णव पद को प्राप्त होते हैं ॥७०॥ समस्त युगों में परम श्रेष्ठ भगवान् नारायण का जो निरन्तर स्मरण किया करते हैं वे धौत पाण्डर पट वाले राज हंसो के समान हुआ करते हैं अर्थात् परम विशुद्ध होते हैं। जो अनवरत ईशिता भगवान् अच्युत का निरन्तर ध्यान किया करते हैं वे इस संसार रूप सागर के जल के पार हो जाया करते हैं ॥७१॥ कल्मष से रहित कमल दल के समान आयत नेत्रों वाले भगवान् का ध्यान करने से तुरन्त ही पापों के नाश करके शुद्ध बुद्धि वाले हो जाया करते हैं वे मनुष्य जो निरन्तर वर दाता वर पद्म नाभ का कीर्त्तन किया करते हैं वे पुनः अपनी माता का स्तन नहीं पिया करते हैं ॥७२॥ जो सुदृढ भक्ति में तत्पर रहा करते हैं और भगवान् के गुणों का श्रवण करते हैं वे शंख चक्र गदा पद्म और खड्ग हाथों में ग्रहण करने वाले तथा लक्ष्मी के मुख कमल के मधुकर मधु दैत्य के नाशक भगवान् के सदन को निश्चय ही गमन किया करते हैं ॥७३॥ जिन्होंने जन्म से लेकर पाप किये हैं वे जन आद्य आपका संकीर्तन करते हैं तो पापों से मुक्त होकर अमृत पान से तृप्त होने वालों की समान ही सुखी हो जाया करते हैं ॥७४॥ इससे सज्जनों के पढ़े हुए भगवान् का स्मरण ध्यान कीर्त्तन कथा का श्रवण श्रद्धा रखने वाले पुरुषों के द्वारा भगवान् विष्णु का अवश्य ही करना चाहिए यह मनुष्यों की पूजा के तुल्य ही होता है और देवता भी उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥७५॥ ब्रह्म और योगियों में अन्तःकरण के द्वारा ही शिला के स्तर का अर्चन करना चाहिए। पुष्प-पत्र और ऋतु फलों के द्वारा मनुष्य को भगवान् का विधिवत् अवश्य ही पूजन करना चाहिए ॥७६॥

८२– नारद पुलस्त्य संवाद

भवता कथितं सर्वं समाराध्य जनार्दनम्।
या गतिः प्राप्यते लोके स चाराध्यः कथंचन ॥१

येनार्चनेन देवस्य प्रीतिः समुपजायते ।
कानि दानानि शस्तानि प्रीणनाय जगद्गुरोः ॥२
उपवासादिकं कार्यं कस्या तिथ्यां महोदयम् ।
कानि पुण्यानि शस्तानि विष्णुतुष्टिकराणि वै ॥३
यच्चान्यदपि कर्तव्यं हृष्टरूपैरनालसैः ।
तदप्यशेषं दैत्येन्द्र ममाख्यातुमिहार्हसि ॥४
श्रद्दधानैर्भक्तिपरैः समुद्दिश्य जनार्दनम् ।
दीयन्ते यानि दानानि तानि यान्ति न वै क्षयम् ॥५
ता एव तिथयः शस्तायास्वभ्यच्य जगत्पतिम् ।
तच्चित्तस्तन्मयो भूत्वा उपवासी नरो भवेत् ॥६
पूजितेषु द्विजेन्द्रेषु पूजितस्तु जनार्दनः
यस्तान्द्वेष्टि स मूढात्मा स याति नरकं ध्रुवम् ॥७

बलि ने कहा—आपने सभी कुछ बतला दिया है कि जनार्दन का समाराधन करके जो गति लोक मे प्राप्त की जाती है वह किसी प्रकार से आराधना करने के योग्य है ॥१॥ किस अर्चन के विधान से देव की प्रीति समुत्पन्न होती है जगत् के गुरु की प्रसन्नता के लिये कौन से दान प्रशस्त होते है ॥२॥ किस तिथि मे महान् उदय वाले उपवास आदि करने चाहिए । कौन से पुण्य सर्व श्रेष्ठ होते हैं जो कि भगवान् विष्णु की तुष्टि के करने वाले हैं ? ॥३॥ और अन्य भी जो कुछ आलस रहित हृष्ट रूपो के द्वारा करना चाहिए हे दैत्येन्द्र ! वह सभी कुछ आप मुझ से कहने के लिये योग्य होते हैं ॥४॥ प्रह्लाद ने कहा—श्रद्धा रखने वाले और भक्ति मे परायण लोगों के द्वारा भगवान् जनार्दन की प्रीति का उद्देश्य लेकर जो भी दान दिये जाया करते हैं वे कभी भी क्षय को प्राप्त नही हुआ करते हैं ॥५॥ वे ही तिथियाँ परम प्रशस्त अर्थात् अत्युत्तम हैं जिनमे जगत्पति की अर्चना की जाया करती है उनमे ही चित्त लगाकर और तन्मय होकर मनुष्य को उपवास करने वाला होना चाहिए ॥६॥ द्विजेन्द्रों की पूजा किये जाने पर भगवान् जनार्दन स्वयं

समर्चित हो जाया करते हैं। जो पुरुष द्विजगण से द्वेष रखता है वह मूढ आत्मा निश्चय ही नरक में जाया करता है ।।७।।

तानचयेन्नरो भक्त्या ब्राह्मणान्विष्णुतत्परः ।
एवमाह हरिः पूर्वं ब्राह्मणा मामको तनुः ।।८
ब्राह्मणो नावमन्तव्यो बुधो वाप्यबुधोऽपि वा ।
सोऽपि दिव्या तनुर्विष्णोस्तस्मात्तं ह्यर्चयेन्नरः ।।६
तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि महासुर ।
यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च ।।१०
विशेषतः प्रवक्ष्यामि पुण्यानि तिथिभिः सह ।
दानानीह प्रशस्तानि माधवप्रीणनाय तु ।।११
जाती शताह्वा सुमनाः कुन्दं वहूपुटं तथा ।
वाणं च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका ।।१२
पारिभद्रं पाटला च वकुलं गिरिशालिनी ।
तिलकं च जपापुष्पं पीतक तगरं त्वपि ।।१३
एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने ।
सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ।।१४

विष्णु में तत्पर रहने वाले मनुष्य को भक्ति की भावना से उन द्विजों का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए भगवान् हरि ने इस प्रकार से स्वयं ही कहा है कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होते हैं ।।८।। चाहे बुध हो या अबुध (मूर्ख) हो ब्राह्मण कोई कैसा भी क्यों न हो उसका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए। वह भी भगवान् का दिव्य शरीर है। इसलिये उसका मनुष्यों को अर्चन ही सर्वदा करना चाहिए ।।६।। हे महासुर ! वे ही कुसुम परम प्रशस्त माने जाते हैं जो वर्ण से युक्त हों तथा रस एवं गन्ध से भी समन्वित होवें ।।१०।। यह तो हमने सामान्य रूप से एक अटल सिद्धान्त की बात बतला दी है अब आगे हम विशेष रूप से तिथियों के सहित प्रशस्त एवं पुण्य दानों के विषय में बतलाते हैं जो भगवान् माधव की प्रसन्नता के लिये हुआ करते हैं ।।११।। जाती-शताह्व-सुमन-कुन्द-बहुपुट-बाण-चम्पक-अशोक

करवीर-यूथिका-पारिभद्र-पाटल वकुल-गिरि शालिनी–तिलक-जपा पुष्प-पीतक-नगर ये सब पुष्प अच्युत भगवान् के अर्चना मे परम प्रशस्त बताये गये हैं। अन्य भी सुगन्धि वाले पुष्प अच्युत के अर्चन मे उत्तम होते हैं केवल केतकी को ग्रहण नहीं किया जाता है ॥१२-१४॥

बिल्वपत्र शमीपत्र पत्र भृङ्ग मृगाङ्कयोः।
तमालमालतीपत्र शस्त च हरिपूजने ॥१५
एषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यर्चने विभोः।
पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरेः ॥१६
वीरुधा च प्रवालेन बर्हिषां चार्चयेन्नरः।
नानारूपैश्चानुभावै. कमलेन्दीवरादिभिः ॥१७
प्रवालैः शुचिभिः सूक्ष्मजलप्रक्षालितैर्दलैः।
वनस्पतीनामर्च्चेत तथा दूर्वाग्रपल्लवैः ॥१८
तथैव प्रतिपूज्योऽसौ पत्रकुड्मलपल्लवैः॥
चन्दनेनानुलिम्पेत कुड्कुमेन च यत्नतः ॥१६
उशीरपद्मकाभ्या स तथा कालीयकादिना।
महिषाख्य कण दारुसिह्लक नागर तथा ॥२०
शङ्खुजातीफल श्रीशे धूपने स्यु. प्रियाणि वै।
हविषा सस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः ॥२१

विल्वपत्र–शमी पत्र-भृङ्ग और मृगाक के पत्र-तमाल पत्र-मालती पत्र ये सब श्री हरि के पूजन मे प्रशस्त होते हैं ॥१५॥ इनके पुष्प भी विभु के पूजन के कार्य मे प्रशस्त माने गये हैं हरि की अर्चा की विधि मे उनके पल्लव और पत्र भी काम में लिये जाते हैं ॥१६॥ वीरुध और वर्हिष के प्रवाल से मनुष्य को अर्चन करना चाहिए। नाना प्रकार के अनुभावों के द्वारा और कमल-इन्दीवर आदि के द्वारा भी अर्चना करे ॥१७॥ हे ब्रह्मे ! सूक्ष्म जल से प्रक्षालन किये हुए वनस्पतियो के पवित्र प्रवालों मे तथा दूर्वा के पल्लवों से अर्चन करना चाहिए ॥१८॥ उसी भाँति पत्र कुड् मल और पल्लवों से इनका पूजन करना चाहिए। चन्दन और कुंकुम से अनुलेपन करे ॥१६॥ उशीर-पद्मक तथा काली-

एक आदि–महिषाक्ष-कण-दारुसिह्लक-नागर तथा शंख और जाती फल आदि प्रिय पदार्थों से श्रीश का धूपन करना चाहिए। हवि के द्वारा सुसंस्कृत यव-गोधूम और शाली करे ॥२०-२१॥

तिलमुद्गादयो माषा व्रीहयश्च प्रियाहरेः ।
गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि यानि च ॥२२
वस्त्राग्नस्वर्णदानानि प्रीतये मधुघातिनः ।
माघमासे तिलाः शस्तास्तिलधेनुश्च दानव ॥२३
इन्धनानि च देयानि माधवः प्रीयतामिति ।
फाल्गुने व्रीहयो वस्त्रं तथा कृष्णाजिनादिकम् ॥२४
गोविन्दप्रीणनार्थं च दातव्यं पुरुषर्षभैः ।
चैत्रे विचित्रवस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥२५
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेषु च ।
गन्धशालीनि वस्तूनि वैशाखे सुरभीणि च ॥२६
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ।
उदकुम्भाडघधेनुं च तालवृन्तं सचन्दनम् ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थ दातव्यं साधुभिः सदा ॥२७
सदा भवेत्पुत्रधनेन भार्यया युतश्च यो विष्णुगतः सदा भवेत् ।
शृणोतिनित्यंविधिवच्चभक्त्यासंपूजयन्यःप्रणतश्चविष्णुम् ॥२८

तिल-मूंग आदि-माष (उर्द)-जो हरि के प्रिय पदार्थ हैं उनका ग्रहण करे। पवित्र गो दान और जो भूमि दान हैं तथा वस्त्र-अन्न और स्वर्ण के दान मधु के हनन करने वाले प्रभु की प्रीति के सम्पादन करने के लिये करे? माघ मास में हे दानव तिल बहुत ही प्रशस्त माने जाते हैं। तिल और धेनु का दान करे ॥२२-२३॥ शीत काल में ईंधन का दान करे और कहे–माधव प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें। फाल्गुन मास में व्रीहि-वस्त्र तथा कृष्णा जिन आदि पदार्थों का दान करना चाहिए ॥२४॥ श्रेष्ठ पुरुषों को श्री गोविन्द की प्रसन्नता के लिये इन सबका दान करना चाहिए। चैत्र मास में विचित्र प्रकार के वस्त्र-शयन और आसनों का दान करे। ब्राह्मणों को श्री विष्णु की

प्रीति के लिये इन सबका दान देना चाहिए। वैशाख मास में परम सुगन्धि और गन्ध वाली वस्तुओं का दान देना चाहिए ॥२५-२६॥ मधुसूदन प्रभु की तुष्टि के लिये प्रमुख द्विज वरों को जल के भरे हुए कलश-तान वृत्त-चन्दन और धेनु का दान करना चाहिए। साधु पुरुषों को सदा त्रिविक्रम प्रभु की प्रीति के लिये इन पदार्थों का दान अवश्य ही करना चाहिए ॥२७॥ जो पुरुष सदा श्री विष्णु की सेवा में रत रहता है वह निश्चय ही पुत्र-धन-भार्या से समन्वित सदा रहता है। जो भक्ति की भावना से नित्य ही विधि पूर्वक श्रवण करता है और विष्णु भगवान् का अर्चन करते हुए उनको प्राप्त किया करता है ॥२८॥

स चाश्वमेधस्य सदक्षिणस्य फलं समग्रं किल हीनपापः।
प्राप्नोति दत्तस्य सुवर्णभूमेरश्वस्य गोनागरथस्य चैव ॥२९
नारी नरश्चापि च पादमेकं शृण्वञ्छुचि. पुण्यतमः पृथिव्याम्।
स्नाने कृते तीर्थवरे सुपुण्ये गङ्गाजले नैमिषपुष्करे वा ॥३०
कोकामुखे यत्प्रवदन्ति विप्राः प्रयागभासाद्य च माघमासे।
स तत्फलं प्राप्य च वामनस्य संकीर्तयन्नान्यमनाः पदं हि ॥३१
गच्छेन्मया नारद तेऽद्य चोक्तं यद्राजसूयस्य फलं प्रयच्छेत्।
यद्वा त्रिलोके सुरलोकलभ्ये महत्सुखं प्राप्य नरः समग्रम् ॥३२
प्राप्नोति चास्य श्रवणान्महर्षे सौत्रामणेर्नास्ति च संशयो मे।
रत्नस्य दानस्य च यत्फलं भवेद्यत्सूर्यचन्द्रग्रहणे च राहोः ॥३३
अन्नस्य दानेन फलं यथोक्तं बुभुक्षिते प्राप्तवरे च सात्त्विके।
दुर्भिक्षसंपीडितपुत्रभार्ये ज्ञातौ सदा पोषणतत्परे च ॥३४
देवाग्निविप्रप्रिरते च पित्रोः सुते तथा भ्रातरि ज्येष्ठके च।
यत्तत्फलं तत्प्रवदन्ति देवाः सततफलं लभते चास्य पाठात् ॥३५

वह मनुष्य दक्षिणा से युक्त किये गये अश्वमेध यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है तथा समस्त पापों से भी छुटकारा पाजाया करता है। दिये हुए सुवर्ण भूमि-अश्व-गौ और हाथी तथा रथ का फल प्राप्त कर लेता है ॥२९॥ नारी और चाहे [illegible] करता हुआ पृथिवी में परम शुचि और पुण्य [illegible] में

स्नान करने पर तथा सुपुण्य गंगा जल में अथवा नंदिप-पुष्कर मे-कोशामुत्र में स्नान करने पर जो फल प्राप्त होता है विप्र लोग कहते हैं कि वही माघ मास में प्रयाग में पहुंचकर वामन प्रभु का सकीर्तन करके अनन्य मन वाला होकर रहे तो प्राप्त हो जाता है ॥३०-३१॥ हे नारद ! आपको मेरे साथ आज ही चलना चाहिए मैंने आपको सब बतला दिया है जो कि राजसूय यज्ञ का फल देने वाला है। जो भूमि लोक में सुरलोक के प्राप्त करने के योग्य मनुष्य सम्पूर्ण महान् सुख की प्राप्ति किया करता है ॥३२॥ हे महर्षे ! इसके श्रवण मात्र से ही सोना मणि का फल प्राप्त करलेता है—इसमें मुझे तनिक भी सशय नहीं है रत्नों के दान में जो फल होता है तथा सूर्य एवं चन्द्र के राहु ग्रहण में जो फल होता है ॥३३॥ अन्न के महा दान से प्राप्त वर-पारिनक और जो बुभुक्षित और जो दुर्भिक्ष से पीड़ित पुत्र एवं भार्या के पोषण मे तत्पर हो उनको दिये हुए दान से जो फल होता है ॥३४॥ देव-अग्नि-विप्रो मे रत-माता-पिता-ज्येष्ठ भाई की सेवा में सलग्न को जो फल होता है जिसको कि देवगण कहते हैं वही फल इसके पाठ मात्र के करने से प्राप्त हो जाता है ऐसा इसका महत्व है ॥३५॥

चतुर्दश वामनमाहुरग्रयं श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम् ।
प्रयान्तिनास्त्यत्रचसशयोऽत्रमहान्तिपापान्यपिनारदाशु ॥३६
पाठास्सश्रवणाद्विप्र श्रावणादपि कस्यचित् ।
नश्यन्ति सर्वपापानि वामनस्य सदा मुने ॥३७
उपानद्युगल छत्र लवणामलकादिकम् ।
कापाढे वामन प्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिता ॥३८
मासि भाद्रपदे दद्यात्पायस मधुसर्पिषी ।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवण सगुडौदनम् ॥३९
नीलं तुरङ्ग वृषभ दधि ताम्रायसादिकम् ।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाश्वयुजे नरैः ॥४०
रजत कनक दीपान्मणिमुक्ताफलादिकम् ।
दामोदरस्य तुष्ट्यर्थं प्रदद्यात्कार्त्तिके नर. ॥४१

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टोत्तराणि तु।
तारयेदात्मना सार्वं विष्णोर्मन्दिरकारकः ॥४७
इमाश्च पितरो देवा गाथा गायन्ति योगिनः।
पुरतो यदुसिंहस्य ह्यमोघस्य तपस्विनः ॥४८
अपि नः स्वकुले कश्चिद्विष्णुभक्तो भविष्यति।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः ॥४९

प्रासाद (महल) और नगर आदि तथा गृह और प्रावरण प्रभृति का दान भगवान वामन देव को प्रसन्नता के लिये पौष मास में करे और भक्ति की भावना के साथ करना चाहिए ॥४३। दासी-दास अलङ्कार-पङ्क्ति से समन्वित अन्न भगवान् पुरुषोत्तम की तुष्टि की प्राप्ति करने के लिये देना चाहिए जोकि सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला दान है ॥४४॥ जो-जो भी अपना अत्यन्त अभीष्टतम पदार्थ हो अथवा इसके घर में शुचि हो—वही वही देवों के भी देव चक्रधारी प्रभु की प्रीति के लिये देना चाहिए ॥४५॥ जो कोई केशव प्रभु के मन्दिर का निर्माण कराता है वह तो शाश्वत परम पुण्य लोकों का जय प्राप्त कर लिया करता है। पुष्प और फलों से परिपूर्ण उद्यानों का दान करके मनुष्य स्वेच्छा से अतिदलाया के योग्य भोगों के सुख का उपभोग करता है ॥४६॥ भगवान विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराने वाला पुरुष पिता मह से आगे आठ उत्तर कुलों का अपने ही साथ उद्धार कर दिया करता है ॥४७॥ अति अमोघ तपस्वी यदुसिंह के आगे इनकी गाथाओं को पितर—देव और योगीजन गाया करते हैं ॥४८॥ क्या हमारे भी कुल में कोई ऐसा विष्णु का भक्त उत्पन्न होगा जो परम शुचिव्रत वाला होकर श्री हरि के मन्दिर के निर्माण कराने वाला हो ॥४९॥

अपि नः सन्ततौ जायेद्विष्णवालयदिलेपनः।
समार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः ॥५०
अपि नः सन्ततौ जातो ध्वज केशवमन्दिरे।
दास्यते देवदेवाय दीप पुष्पानुलेपनम् ॥५१

खरोष्ट्राश्वतरानागान्शकटाद्यमजाविकम् ।
दातव्यं केशवप्रीत्यैमासि मार्गशिरे नरैः ॥४२

अग्रच वामन को चतुर्दश कहते हैं जिसके श्रवण करने पर अघों के घयो का नाश हो जाता है। पापो का विनाश निश्चय ही हो जाता है- इसमे मुझको लेशमात्र भी संशय नही है। हे नारद ! महान् पाप भी बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाया करते हैं ॥३६॥ हे मुने ! इसके पाठ करने से श्रवण करने से तथा इसको दूसरो को श्रवण कराने से समस्त पाप हे विप्र ! वामन के संकीर्त्तन से सदा ही नष्ट होजाया करते हैं ॥३७॥ उपानद् का जोड़ा-छत्र—लवण और अमल आदि पदार्थ आषाढ़ मास में वामन भगवान् की प्रीति के लिये विद्वान् पुरुष को दान करना चाहिए ॥३८॥ भाद्रपद मास मे भगवान् हृषी केश की प्रसन्नता के लिये पायस, मधु, घृत, गुड, ओदन और लवण का दान करना चाहिए ॥३९॥ नील तुरग, वृषभ, दधि, ताम्र और आयस आदि भगवान् पद्म नाम की प्रसन्नता के लिये मनुष्यो को अश्विन मास मे दान करना चाहिए ॥४०॥ कार्त्तिक मास मे रजत-कनक-दीप-मणि—मुक्ता फल आदि पदार्थ भगवान् दामोदर की तुष्टि के लिये मनुष्य को दान मे देने चाहिए ॥४१॥ मार्गशीर्ष मास मे मनुष्यो को खर-उष्ट्र-अश्वतर-नाग (हाथी)—शकट आदि अजाविक भगवान केशव की प्रीति का सम्पादन करने के वास्तदान मे देने चाहिए ॥४२॥

प्रासादनगरादीनि गृहप्रावरणादिकम् ।
वामनस्य च तुष्टयर्थं पौषे देयानि भक्तितः ॥४३
दासीदासमलंकारमन्न षड्रससयुतम् ।
पुरुषोत्तमतुष्टयर्थं प्रदेयं सार्वकामिकम् ॥४४
यद्यदिष्टतमं किंचिद्यद्वाऽप्यस्य गृहे शुचि ।
तत्तद्धि देय प्रीत्यर्थं देवदेवस्य चक्रिणः ॥४५
यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य पुण्यांल्लोकान्स
जयेच्छाश्वतान्वा दत्त्वाऽऽरामान्पुष्पफलाभिपन्नान्
भोगान्स भुङ्क्ते कामतः श्लाघनीयान् ॥४६

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टोत्तराणि तु ।
तारयेदात्मना सार्वं विष्णोर्मन्दिरकारकः ॥४७
इमाश्च पितरो देवा गाथा गायन्ति योगिनः ।
पुरतो यदुसिंहस्य ह्यमोघस्य तपस्विनः ॥४८
अपि नः स्वकुले कश्चिद्विष्णुभक्तो भविष्यति ।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः ॥४९

प्रासाद (महल) और नगर आदि तथा गृह और प्रावरण प्रभृति का दान भगवान वामन देव की प्रसन्नता के लिये पौष मास मे करे और भक्ति की भावना के साथ करना चाहिए ॥४३। दासी-दास अलंकार-पट्टन से समन्वित अन्न भगवान् पुरुषोत्तम की तुष्टि की प्राप्ति करने के लिये देना चाहिए जोकि सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला दान है ॥४४॥ जो-जो भी अपना अत्यन्त अभीष्टतम पदार्थ हो अथवा इसके घर में शुचि हो—वही वही देवों के भी देव चक्रधारी प्रभु की प्रीति के लिये देना चाहिए ॥४५॥ जो कोई केशव प्रभु के मन्दिर का निर्माण कराता है वह तो शाश्वत परम पुण्य लोकों का वास प्राप्त कर लिया करता है। पुष्प और फलों से परिपूर्ण उद्यानों का दान करके मनुष्य स्वेच्छा से अतिदलाघा के योग्य भोगों के सुख का उपभोग करता है ॥४६॥ भगवान विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराने वाला पुरुष पितामह से आगे आठ उत्तर कुलों का अपने ही साथ उद्धार कर दिया करता है ॥४७॥ अति अमोघ तपस्वी यदुसिंह के आगे इनकी गाथाओं को पितर—देव और योगीजन गाया करते हैं ॥४८॥ क्या हमारे भी कुल मे कोई ऐसा विष्णु का भक्त उत्पन्न होगा जो परम शुचिव्रत वाला होकर श्री हरि के मन्दिर के निर्माण कराने वाला हो ॥४९॥

अपि नः सन्ततौ जायेद्विष्णवालयविलेपनः ।
समार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः ॥५०
अपि नः सन्ततौ जातो ध्वज केशवमन्दिरे ।
दास्यते देवदेवाय दीप पुष्पानुलेपनम् ॥५१

अपि नः स कुले भूयादेकादश्यां हि यो नरः ।
करिष्यत्युपवासं च सर्वपातकहानिदम् ॥५२

महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी ।
विमुक्तपापो भवति विष्ण्वावसथचित्रकृत् ॥५३

इत्थं पितृणां वचनं श्रुत्वा नृपतिसत्तमः ।
देवतायतनं भूम्यां स्वयं चाकारयद्बले ॥५४

विभूतिभिः केशवस्य केशवायतनान्यथ ।
चित्रयामास शुचिभिः पञ्चवर्णैस्तु चित्रकैः ॥५५

दीपपात्राणि विधिवद्वासुदेवालये बले ।
सुवर्णं तैलपूर्णानि घृतपूर्णानि च स्वयम् ॥५६

क्या हमारी सन्तति मे कोई ऐसा भी व्यक्ति जन्म ग्रहण करेगा जो भगवान विष्णु के आलय का विलेपन करने वाला हो। और देवालय मे धर्मात्मा भक्तिभाव से समार्जन करेगा ॥५०॥ क्या कोई हमारी सन्तानो मे ऐसा भी जन्म लेगा जो केशव के मन्दिर में ध्वज लगायेगा। देवो के देव के लिये दीप और पुष्पानुलेपन करेगा ॥५१॥ क्या हमारे कुल मे ऐसा भी कोई होगा जो मनुष्य एकादशी के दिन मे सम्पूर्ण प्रकार के पापो का नाश करने वाला उपवास करेगा ॥५२॥ महान पातकों से से युक्त हो अथवा उपपातकों वाला कोई भी हो जो विष्णु भगवान के आलय मे चित्रकारी करने वाला हो जाने तो वह पापो से विमुक्त हो जाया करता है॥५३॥नृपतियों मे परम श्रेष्ठ ने इस प्रकार के पितृगण के वचनों का श्रवण कर हे बले ! भूमि मे स्वयं दो देवायतनों का निर्माण कराया था ॥५४॥ भगवान केशव के आयतनों का विभूतियों से परम शुचि पाँच वर्णों वाले चित्रो से चित्रित भी कराया था ॥५५॥ हे बले ! वासुदेव भगवान् के आलय मे सुवर्ण के ही पयात्र भी स्वयं कराये थे जो घृत और तैल से परिपूर्ण थे ॥५६॥

नानावर्णा वैजयन्त्यो महारजनरञ्जिताः ।
मञ्जिष्ठा नवरङ्गीयाः श्वेतपाटलिकाश्रिताः ॥५७

आरामा विविधा हृद्याः पुष्पाढ्याः फलशालिनः।
लतापल्लवसंछन्ना देवदारुभिरावृताः ॥५८
कारितालं कृता मञ्चाधिष्ठिताः कुशलैर्जनैः।
गन्धर्वविद्यारागज्ञैं रत्नसंस्कारिभिर्दृढैः ॥५९
तेषु नित्यं प्रपूज्यन्ते यतयो ब्रह्मचारिणः।
श्रोत्रिया दानसंपन्ना दीनान्धविकलादयः ॥६०
इत्थं स नृपतिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
ज्यामघो विष्णुनिलयं गत इत्यनुशुश्रुम ॥६१
सर्षपस्य स तैलेन मधुकातसिसंभवैः।
दीपप्रधानान्नरकानन्धतामिस्रसंज्ञकान्।
तीर्त्वा स भार्यया राजा विष्णुलोकमगात्ततः ॥६२
तमेव चाद्यापि वले मार्गं ज्यामघकारितम्।
व्रजन्ति नरशार्दूला विष्णुलोक जिगीषवः ॥६३

अनेक वर्णों वाली वैजयन्तियाँ जो महारञ्जन से रञ्जित थीं—मञ्जिष्ठा-नगरंग वानी-श्वेता और पाटलिकाश्रित विरचित कराई थीं ॥५७॥ अनेक प्रकार के आराम जो परम सुन्दर और पुष्पों तथा फलों से सुसम्पन्न थे एवं लताओं के पल्लवों से समाच्छन्न थे और देवदारु के वृक्षों से चारों ओर घिरे हुए थे निर्मित कराये थे ॥५८॥ कुशल जनों द्वारा अधिष्ठित अनेक मञ्च अलंकारित कराये गये थे जो परम दृढ रत्न संस्कारी और गन्धर्व विद्या राग के ज्ञाताओं से युक्त थे ॥५९॥ उन पर नित्य ही ब्रह्मचारी तथा यति वृन्दों का पूजन किया जाता था श्रोत्रिय-दीन-अन्धे—दान सम्पन्न और विकल प्रभृति सभी का पूजन होता था ॥६०॥ इस प्रकार से वह राजा परम श्रद्धालु और इन्द्रियों को जीतने वाला होकर ज्यामघ भगवान् विष्णु के निलय को प्राप्त होगया था—ऐसा सुना जाता है ॥६१॥ वह सरसों के तेल से तथा मधूक और अतसिसम्भूत तैलों से दीप प्रधान अन्धतामिस्र संज्ञा वाले नरकों को तरण करके भार्या के सहित वह राजा फिर विष्णु लोक को चला गया था ॥६२॥ हे वले! आज भी उसी ज्यामघ कारित मार्ग को विष्णु लोक

को जाने की इच्छा वाले नर शार्दूल जाया करते हैं अर्थात् विष्णुलोक को प्राप्त कर लेते हैं ॥६३॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुरु देवालयं हरेः ।
तमर्चयस्व यत्नेन ब्राह्मणाश्च बहुश्रुतान् ॥६४
पौराणिकान्विशेषेण सदाचाररताञ्छुचीन् ।
वासोभिर्भूषणै रत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः ॥६५
विभवे सति देवस्य प्रीणनं कुरु चक्रिणः ॥६६
एवं क्रियायोगरतस्य तेऽद्य नूनं मुरारिः शुभदो भविष्यति ।
नरानसीदन्तिबलेसमाश्रिता विभुं जगन्नाथमनन्तमच्युतम् ॥६७
प्रह्लादः स तदा चोक्त्वा पुनर्नगरमभ्यगात् ॥६८
इत्येवमुक्त्वा वचनं दितीश्वरो वैरोचनं सत्यमनुत्तमं हि ।
सपूजितस्तेन विमुक्तिमाययौ सपूर्णकामो हरिपादभक्तः ॥६९
गते हि तस्मिन्मुदिते पितामहे बलर्बभौ मन्दिरमिन्दुवर्णम् ।
महेन्द्रशिल्पिप्रवरोऽथ केशव स कारयामास महामहीयान् ॥७०

इस लिए हे राजेन्द्र ! तुम भी हरि का देवालय निर्मित कराओ। वह हरि का अर्चन करो और जो बहुश्रुत ब्राह्मण हैं उनका भी यजन किया करो ॥६४॥ विशेष रूप से पुराणों के ज्ञाता विप्रों को जो परम शुचि और सदाचार में निरत हो उनका अर्चन वस्त्र भूषण-रत्न-धेनु-भूमि और सुवर्ण आदि के द्वारा करना चाहिए ॥६५॥ यदि वैभव प्राप्त है तो चक्रधारी भगवान् देव की प्रसन्नता करो ॥६६॥ इस प्रकार से क्रिया योग में रति रखने वाले तुमको आज भी भगवान् मुरारि शुभ प्रदान करने वाले हो जाँयगे। हे बले ! जगत् के स्वामी-अनन्त विभु और अच्युत प्रभु का समाश्रय ग्रहण करने वाले मनुष्य कभी भी दुःखित नहीं हुआ करते हैं ॥६७॥ फिर प्रह्लाद ने यह कह कर उसी समय में नगर को गमन किया था ॥६८॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस प्रकार से दितीश्वर ने वैरोचन को परम सत्य एवं अत्युत्तम यह वचन कह कर उसके द्वारा सपूजित होता हुआ वह हरि के चरणों का भक्त सम्पूर्ण काम वाला होकर विमुक्ति को प्राप्त हो गया था ॥६९॥

उस पितामह के परम प्रसन्न होकर चले जाने पर बलि ने चन्द्र के समान वर्ण वाला मन्दिर निर्मित कराया था। महेन्द्र के शिल्पियों में परम श्रेष्ठ से उसने केशव का महान् महीयान् का मन्दिर का निर्माण कराया था ॥७०॥

स्वयं स्वभार्यासहितश्चकार देवालये मार्जनलेपनादिकाः।
क्रियामहारमायवशर्कराद्यावलिचकाराप्रतिमंमधुद्रुहः ॥७१
दीपप्रदानं स्वयमायताक्षी विन्ध्यावली विष्णुगृहे चकार।
गेयं सधर्मग्रहणं च धीमान्पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत् ॥७२
तथाविधस्यासुरपुङ्गवस्य धर्मानुमार्गे प्रतिसंस्थस्य।
जगत्पतिर्दिव्यवपुर्जनार्दनस्तस्थौ महात्मा बलिरक्षणाय ॥७३
सूर्यायुताभं मुसलं प्रगृह्य निघ्नन्स दुष्टान्नरयूथपालान्।
द्वारि स्थितो नप्रददौ प्रवेशं प्राकारगुप्तो बलिनो गृहे तु ॥७४
द्वारि स्थिते धातरि रक्षपाले नारायणे सर्वगुणाभिरामे।
प्रासादमध्ये हरिमीशितारमभ्यर्चयामास सुरर्षिमुख्यम् ॥७५
एवमास्तेऽसुरराड् बलिस्तु समर्च्चयन्वै हरिपादपङ्कजे।
स्मारनित्यंतरिमापितानिसतस्य जातोविनयाङ्कुशस्तु ॥७६
इदं च वृत्तं स पपाठ दैत्यराट् स्मरन्सुवाक्यानि गुरोःशुभानि।
तथ्यानि पथ्यानि परत्र चेह पितामहस्येन्द्रसमस्य वीरः ॥७७

अपनी भार्या के सहित स्वयं ही उस देवालय में मार्जन तथा लेपन आदि क्रियाऐं किया करता था। उस महात्मा ने यव एवं शर्करा आदि की भगवान् विष्णु की अप्रतिम बलि किया करता था ॥७१॥ विशाल नेत्रों वाली उसकी भार्या विन्ध्यावली स्वयं ही विष्णु के मन्दिर में दीपों का प्रदान किया करती थी। धीमान् उसने गायन और धर्म ग्रहण परम श्रेष्ठ पौराणिक विप्रों के द्वारा कराया था ॥७२॥ उस रीति से रहने वाले असुर श्रेष्ठ के धर्म के मार्ग में प्रति संस्थित होने पर महात्मा दिव्य वपु वाले जनार्दन स्वयं बलि की रक्षा करने के लिये वहाँ स्थित रहा करते थे ॥७३॥ दश सहस्र सूर्यों की आभा वाले मुसल को ग्रहण करके दुष्ट नर यूथपालों का निहनन करते हुए

द्वार पर ही स्थित रहा करते थे और बलि के घर में प्राचीर की रक्षा करते हुए किसी को भी प्रवेश नहीं करने देते थे ॥७४॥ दाता के और सर्व गुणों से अभिराम भगवान् नारायण के द्वार पर रक्षा करने वाला स्थित हो जाने पर प्रासाद के मध्य में सब का ईशिता एवं सुरर्षियों में प्रमुख श्री हरि का अभ्यर्चन किया था ॥७५॥ वह असुरों का राजा बलि श्री हरि के पादपंकजों का अभ्यर्चन करते हुए इस प्रकार से रहा करता था। वह नित्य ही श्री हरि के भाषितों का स्मरण किया करता था। वह उस के विनय का अंकुश हो गया था ॥७६॥ वह दैत्यों का राजा गुरु के शुभ वाक्यों का स्मरण करता हुआ इस वृत्त का पाठ किया करता था। वह वीर इस लोक में और परलोक में भी तथ्य एवं परम पथ्य इन्द्र के समान पितामह के वे वचन थे ॥७७॥

ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति श्रुत्वा दुरुक्तान्यपि पूर्वतस्तु ।
स्निग्धानिपश्चान्नवनीतशुद्धामोदन्तितेनात्रविचार्यमस्ति ॥७८
आपद्भुजङ्गदष्टस्य मन्त्रहीनस्य सर्वदा ।
वृद्धवाक्यौषधान्येव कुर्वन्ति किल निर्विषम् ॥७९
वृद्धवाक्यामृतं पीत्वा तदुक्तान्यनुमन्य च ।
या तृप्तिर्जायते पुंसां सोमपाने कुतस्तथा ॥८०
आपत्तौ पतितानां येषां वृद्धा न सन्ति शास्तारः ।
ते शोच्या बन्धूनां जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः स्युः ॥८१
आपद्ग्राहगृहीतानां वृद्धाः सन्ति न पण्डिताः ।
येषां मोचयितारो वै तेषां शान्तिर्न विद्यते ॥८२
आपज्जलनिमग्नानां ह्रियतां व्यसनोर्मिभिः ।
वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोत्ता : कथंचन ॥८३
तस्माद्यो वृद्धवाक्यानि शृणुयाद्विदधाति वा ।
स सद्यः सिद्धिमाप्नोति यथा वैरोचनिर्बलिः ॥८४

जो लोग पहिले से दुरुक्त भी वृद्धों के वाक्यों के अनुसार समाचरण किया करते हैं अर्थात् श्रवण में कटु एवं बुरे लगने वाले वचनों का परिपालन करते हैं वे पीछे परम स्निग्ध हो जाते हैं और उनसे नव-

नीत के समान शुद्ध होकर वे परम प्रसन्न होते हैं–इस विषय में कुछ भी विचार करने के योग्य बात नहीं है ॥७८॥ आपत्ति रूपी सर्प के काटे हुए और सर्वदा मन्त्र हीन पुरुष के लिये वृद्ध के वचन ही औषध हैं जो उसको विष से रहित कर दिया करते हैं ॥७६॥ वृद्ध वाक्य रूपी अमृत का पान करके और उनके कथनों का सम्मान करके जो तृप्ति समुत्पन्न होती है वह मनुष्यों को सोम पान में भी कहा हो सकती है ॥८०॥ आपत्तियों में पड़े हुए जिन लोगों के वृद्ध पुरुष शासन-करने वाले नहीं होते हैं वे बन्धुओं में सोचने के योग्य ही होते हैं और वे जीवित रहते हुए भी मृतकों के ही समान हुआ करते हैं ॥८१॥ आपत्ति रूपी ग्राह के द्वारा पकड़े हुए मनुष्यों को यदि वृद्ध जन नहीं हैं तो उनके आपत्तियों से मोचन कराने वाले पण्डित नहीं होते हैं और उनको कभी भी शान्ति नहीं होती है । ॥८२॥ आपत्ति के जल में डूबे हुए पुरुष व्यसन रूपी तरङ्गों से अपहृत होते रहते हैं उन तराङ्गों में पड़े हुए लोगों का वृद्धों के वाक्यों के बिना अन्य कोई भी किसी भी तरह उत्तारण करने वाला नहीं है ॥८३॥ महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसलिये जो भी मनुष्य वृद्धों के वचनों का समादर सहित श्रवण किया करता है और उनके अनुरूप कार्य भी करता है वह बहुत ही शीघ्र सिद्धि को प्राप्त हो जाता है जिस प्रकार से वैरोचन बलि को सिद्धि प्राप्त हो गई थी ॥८४॥

एतन्मया पुण्यतम पुराणं तुभ्य तथा नारद कीर्तित वै ।
श्रुत्वाचकीर्त्यापरयासमेतोभवस्याचविष्णो परमभ्युपेति ॥८५

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात् ।
तथा पुराणश्रवणाद्दुरितानां विनाशनम् ॥८६

न तस्य रोगा जायन्त न विष चाभिचारिकम् ।
शरीरे च कुले ब्रह्मन्यः शृणोतीह वामनम् ॥८७

इद रहस्य परम तवोक्त न वाच्यमेव हरिभक्तिवर्जिते ।
द्विजस्य निन्दारतिहीनतारते सहेतुवावसाद्दतपापसरते ॥८८

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ।।८८
इत्थं वदेद्यो नियतं मनुष्यः कृष्णभावनः ।
तस्य विष्णुः पदं मोक्ष ददाति सुरपूजितः ।।९०
याचकाय प्रदातव्यं गोभूस्वर्णविभूषणम् ।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कुर्वंश्चश्रवणम शक्रः ।।९१
त्रिसन्ध्यं च पठञ्शृण्वन्सर्वपापप्रणाशनम् ।
असूयारहित विप्रः सर्वसंपत्प्रदायकम् ।।९२

महर्षि प्रवर पुलस्त्य जी ने कहा—हे नारद ! यह परम पुण्यतम पुराण मैंने तुमको कह कर सुना दिया है । परा कीर्ति के सहित उसका भक्ति भावना से श्रवण करके विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता है ।।८५।। जिस तरह से समस्त महान् पाप भगीरथी गंगा के जल मे अवगाहन करने से पवित्र स्वरूप धारण कर लिया करते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं उसी भांति पुराण के श्रवण करने से सब दुरितो का विनाश हो जाता है ।।८६।। पुराण श्रवण करने वाले पुरुष को कोई भी रोग उत्पन्न नहीं होते हैं । उस पर किसी भी विष का कोई प्रभाव नहीं होता है और न किसी के आभिचारिक (मारणादि) का असर हुआ करता है । उसके शरीर मे कुछ भी हानि नहीं होती है और उसके कुल मे भी किसी तरह का अनिष्ट नहीं होता है । हे प्रह्लाद ! जो भी कोई इस वामन पुराण का श्रवण किया करता है ।।८७।। यह परम रहस्य का विषय है जो मैंने तुमको सुना दिया है । जो हरि की भक्ति से रहित पुरुष हो उसके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि इसका पात्र नहीं होता है । जो भी निन्दा रति और हीनता मे निरत हो और हेतु वाक्याहत पापी जीव हो उसको भी इसे मत बताना ।।८८।। कारण से वामन का स्वरूप धारण करने वाले-अमित विक्रम से युक्त भगवान् नारायण के लिये बारम्बार नमस्कार है । श्री शार्ङ्ग धनु सुदर्शन चक्र कौमोद की गदा और असि के धारण करने वाले उन पुरुषोत्तम प्रभु के लिये नमस्कार है ।।८९।।

इस प्रकार से नित्य ही श्री कृष्ण के चरणों में भावना रखने वाला जो पुरुष नियत रूप से पढ़ता है उसको भगवान् विष्णु देव जो सुरों के द्वारा सुपूजित हैं मोक्ष का दुर्लभ पद प्रदान किया करते हैं ॥६०॥ जो इस वामन पुराण का वाचन किया करता है उसको गो-भूमि और सुवर्ण के भूषणों का दान करना चाहिए। इसमें वित्त की शठता को न करे अर्थात् धन रहते हुए दान में कमी कभी न करनी चाहिए। यदि कोई करता है तो वह श्रवण करने के महत्व का विनाश ही कर देने वाला होता है। तीनों समयों में इसका पठ-श्रवण करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। विप्र को असूया से रहित होकर ही इसका पठन श्रवण करना चाहिए तो यह सब सम्पदाओं का देने वाला होता है ॥६१ ६२॥

उपसंहार

वामन अवतार की कथा और उसका प्रचार

अवतारवाद भारतीय धर्म और आध्यात्मिक ज्ञान की एक बहुत बड़ी विशेषता है। यद्यपि संसार के अधिकांश मनुष्य किसी न किसी रूप मे ईश्वर का अस्तित्व मानते हैं, पर किसी जाति या धर्म के विद्वानों ने 'ईश्वर' के सम्बन्ध मे इतनी खोज या विवेचना नही की जैसी भारतवर्ष में प्राचीन काल से होती आई है। उन लोगो ने अधिक से अधिक यही कहा है कि इस संसार को बनाने वाला एक ईश्वर अवश्य है जो विश्व ब्रह्माण्ड के किसी स्थान मे किसी रूप मे स्थित है। उन धर्मों के अनुयायी सामान्यतः उसकी कल्पना साकार रूप मे ही करते हैं और उसे भले-बुरे कामो का दण्डकर्ता या पुरस्कर्ता मात्र मानते हैं। यह भी कहा गया है कि समय-समय पर संसार मे उसके 'पैगम्बर' (संदेशवाहक) आते रहते हैं, पर उनमे तथा उनके द्वारा प्रचारित परमात्मा मे मूलतः क्या सम्बन्ध रहता है, इस विषय मे कोई स्पष्ट सिद्धान्त अभी हमारे सुनने या पढने मे नही आया। ईसामसीह ने अवश्य अपने को 'ईशपुत्र' (ईश्वर का बेटा) कहा था और कभी-कभी यह भी प्रकट किया था कि "मैं और मेरा पिता एक ही हैं।" पर इसका मर्म ग्रहण करने वाले ईसाइयो मे भी बहुत कम मिलते हैं। अन्यथा संसार के सभी धर्म 'ईश्वर' को मुख्यतः एक कठोर दण्डकर्ता के रूप मे ही देखते हैं। यह एक ऐसी मान्यता है जो मनुष्यो को अनीति और कुकर्म से रोकने में किसी हद तक सफल हो सकती है, पर जिसका दर्शन-शास्त्र (तर्क और विज्ञान) से विशेष सम्बन्ध नहीं।

पर भारतीय शास्त्रो में, विशेष कर उपनिषदों में ईश्वरीय सत्ता का इतना गम्भीर विवेचन किया गया है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर

मनुष्य उससे आगे कुछ नहीं सोच सके हैं। पश्चिमीय वैज्ञानिकों ने सौ-दो सौ वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में बड़ी उछल-कूद मचाई थी और एक प्रकार से 'नास्तिकवाद' का प्रचार संसार भर में किया था, पर अब जैसे-जैसे विज्ञान की जड़ें गहरी पहुँचती जाती हैं, वह भारतीय आध्यात्मिक सिद्धान्तों के समीप आता जाता है। हम कह सकते हैं कि सृष्टि की रचना और एक अविनाशी चैतन्य सत्ता के सम्बन्ध में अब उसकी मान्यता भारतीय शास्त्रों से मिलती-जुलती हो गई है और आगे चलकर वह उसी स्थान पर पहुँच जायगा जहाँ हमारे वेदान्त और सांख्य दर्शन हजारों वर्ष पूर्व पहुँच चुके थे।

निराकार और साकार

पर पश्चिमीय विद्वानों और वहाँ के धर्म शास्त्र वेत्ताओं की मुख्य कठिनाई है ईश्वर के निराकार और साकार रूप का समन्वय कर सकने में। सामान्य मनुष्य की बुद्धि इन दोनों में से एक को ही ग्रहण और स्वीकार करने में समर्थ होती है। वह या तो ईश्वर को किसी सबसे बड़े राजा-महाराजा की तरह सबसे ऊपर वैकुण्ठ लोक में रत्नजड़ित सुवर्ण सिंहासन पर महान वैभव और ऐश्वर्य के मध्य बैठा हुआ मान लेते हैं अथवा वायु से भी बहुत सूक्ष्म और अदृश्य किसी शक्ति के रूप में ख्याल करते रहते हैं। पर जो ईश्वर वायु और आकाश की तरह अमूर्त और अव्यक्त है वही किसी समय साकार बन कर चर्म चक्षुओं के सम्मुख लीला करने लगता है, यह जल्दी उनकी समझ में नहीं आता। अन्य धर्म वाले तो स्पष्टतः इससे इन्कार करते हैं और इसे भ्रम अथवा असत्य कह देते हैं और हमारे यहाँ के सामान्य जन भी 'वैकुण्ठ' अथवा 'कैलाश' में रहने वाले परमेश्वर अथवा राम तथा कृष्ण के रूप में उसके अवतारों को 'परम्परा' या 'रूढ़ि' के रूप में मान लेने के अतिरिक्त कुछ अधिक कह सकने में समर्थ नहीं होते। यद्यपि हमारे लोकप्रिय धर्म ग्रंथ 'रामायण' में भक्त श्रेष्ठ गो० तुलसीदास इस सिद्धान्त को बहुत ही सरल ढंग से समझा गये हैं कि—

सगुणहि अगुणहि नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज सोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

अर्थात् जो परमात्म शक्ति मूल रूप में गुण रहित, रूप रहित, अदृश्य और बिना जन्म और मृत्यु (आदि-अन्त) के रहती है वही अवसर पड़ने पर भक्ति-भावना के प्रभाव से सगुण रूप में प्रकट हो जाती है।"

संत कबीर ने भी परमात्म तत्व से जीवात्मा के विकास का विवेचन करते हुये अवतार की स्थिति को बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं—

एक राम है सबसे न्यारा । एक राम ने जगत पसारा ॥
एक राम घट-घट मे बोले। एक राम अवतारी डोले ॥
जासु कृपा भव दुःख मिट जाही । सद्गुरु एक राम रघुराई ॥

इसका आशय यह है कि जब विश्व व्यापी चैतन्य तत्व (परमात्मा) और प्रकृति तत्व के मिलने से सृष्टि रचना का क्रम शुरू होता है तो पहले सूक्ष्म देव शक्तियों (ब्रह्मा विष्णु महेश आदि) का आविर्भाव होता है और फिर सूक्ष्म तथा स्थूल देहधारी जीवात्मा का जो जीवात्मा विकास की अनेक मंजिलों को पार करता हुआ देवत्व की कोटि में जा पहुँचता है वह 'अवतार' कहा जाने लगता है। गो० तुलसीदास और संत कबीर के विवेचन में अगर कोई अन्तर है तो यही है कि जहाँ गोस्वामीजी ने अवतार का आगमन वैकुण्ठ से बतलाया है वहाँ कबीर ने जीवात्मा का विकास होते-होते ही 'अवतार' के दर्जे पर पहुँचने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। बौद्ध धर्म ग्रंथों में भी यही कहा गया है कि जीव अनेक जन्मों में प्रगति करते-करते ही 'बुद्ध' (जगत गुरु या अवतार) की पदवी को प्राप्त होता है।

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो निराकार और साकार का अन्तर समझ सकना उतना कठिन नहीं है। विज्ञान भी अब 'परमाणु-

सिद्धान्त' द्वारा इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि स्थूल प्रकृति भी मूल अवस्था 'न्यूक्लियस' और 'एलेक्ट्रोन' आदि के ऐसे सूक्ष्म रूप में रहती है कि उसे किसी प्रकार देखा या पकड़ा नहीं जा सकता, केवल उसके द्वारा अनेक यांत्रिक कार्य होते देख कर उसकी सत्ता को मान लिया जाता है। यही बात विश्व व्यापी चैतन्य सत्ता अथवा परमात्म शक्ति के सम्बन्ध में भी है। निस्सन्देह वह निराकार और निर्गुण है, पर विचार और भावना की शक्ति द्वारा वह कार्य रूप मे प्रत्यक्ष दिखलाई भी दे सकती है। इस प्रकार के 'परिवर्तन' को भक्ति मार्ग में 'प्रभु प्राकट्य' या 'अवतार' कह दिया जाता है और वेदान्त आदि में 'माया' कह कर पुकारा जाता है। पुराणकारों ने भी अनेक स्थानों पर अवतारों को 'माया मनुष्य' ही कहा है।

वामन अवतार की कथा—

विकास सिद्धान्त के अनुयायिओ के मतानुसार तो जिस प्रकार प्रथम चार अवतार—मत्स्य, कूर्म, वाराह और नरसिंह का सम्बन्ध मानव-जाति से पूर्ववर्ती प्राणि-जगत के साथ है उसी प्रकार 'वामन अवतार' का सम्बन्ध मनुष्य की आदिम अवस्था से है। अर्थात् जिस समय मनुष्य जाति का आविर्भाव हो चुका था पर उसकी बाह्य और आन्तरिक शक्तियां बहुत अविकसित और न्यून थीं उस समय का व्यक्ति पूर्ण विकसित मनुष्य की तुलना में 'वामन'(या बौना) ही था। पर 'वामन पुराण' में जिस ईश्वरीय अवतार की कथा कही गई है उसका आधार इस विकास-सिद्धान्त के बजाय उन वैदिक कथानकों को माना जा सकता है जिनमें कहा है कि समस्त जगत विष्णु के तीन चरणों में है—

विष्णोर्नु क वीर्याणि प्रवोचयः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१
प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्मगिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयत सधस्थमेको त्रिभिरित्पदेभिः ॥३
यस्यत्री पूर्णा मधुना पदान्य क्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उत्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४

(ऋग्वेद मडल १, सूक्त १५४)

इस सूक्त के ऋषि दीर्घतमा कहते हैं कि "मैं, विष्णु के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करता हूँ कि उन्होंने तीनों लोकों को नाप लिया और आकाश को स्थिर किया। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया। संसार उनकी बहुत स्तुति करता है ॥१॥ चूँकि विष्णु के तीन पाद क्षेप में सारा संसार रहता है, इसलिये समस्त जगत भयकर, हिंस्र और पर्वत में रहने वाले वन्य-जन्तु की तरह उनके पराक्रम की प्रशंसा करता है ॥२॥ अभीष्ट प्रदायक और सब लोकों में प्रशंसित विष्णु की सब कोई स्तुति करते हैं जिन्होंने तीन लोकों को तीन पदक्रमण से नाप लिया था ॥३॥ जिन विष्णु ने अकेले ही धातुत्रय, पृथ्वी द्युलोक और समस्त भुवनों को धारण कर रखा है उनका त्रिसंख्यक पद क्षेप मनुष्यों को मधुर अन्न देता है ॥४॥"

एक अन्य सूक्त में विष्णु के तीन पदों द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि को व्याप्त करने का जिक्र करते हुये कहा गया है—

अतो देवा अवन्तु नोयतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्या सप्त धामभि ॥१६
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम ।
समूल हमस्य पांसुरे ॥१७
त्रीणि पादा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥१८

अर्थात् "जिस सप्त स्थान वाली पृथ्वी पर विष्णु ने पाद क्रमण किया, उस पृथ्वी पर देवगण हमारी रक्षा करें ॥१६॥ विष्णु ने इस जगत में पद क्रमण किया और तीन पैर रखे। उनके धूलि युक्त पैर

से जगत छिर गया ।।१७।। विष्णु जगत के रक्षक हैं उन्होंने समस्त धर्मों को धारण करके तीन पैरों से परिक्रमा की ।।१८।। (ऋग्वेद १-२२)

आगे चल कर आठवें मण्डल में ऋषि पर्वत काण्व ने इसी बात को दुहराया है—

यदाते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।
अदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ।।

(ऋग्वेद ८।१२।२७)

अर्थात् "हे इन्द्र ! जिस समय विष्णु ने तीन पैरों से तीनों लोकों को नापा था, उसी अवसर पर दोनों हरि (हरे रंग के घोड़े) तुमको ले आये थे ।"

इसी मण्डल के २९ वें सूक्त में मनु वैवस्वत ऋषि कहते हैं—

त्रीण्येक उरुगायो विचक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ।

अर्थात् "एक विष्णु ही बहुतों द्वारा स्तुति किये जाने योग्य हैं । उन्होंने तीन पगों से त्रिलोकी का अतिक्रमण किया । इससे देवगण अति प्रसन्न हुये ।"

इस प्रकार वेदों में कई जगह विष्णु द्वारा तीन पगसेप से त्रिलोकी को नापने या ढकने का उल्लेख मिलता है। वेदों के 'ब्राह्मण ग्रंथों' मे इन ऋचाओं की व्याख्या करते समय इन वर्णनों का अधिक विस्तार किया गया है और पुराणों मे उनको एक सर्वांगपूर्ण काव्यमय उपाख्यान का रूप देकर अन्त मे उस आधार पर एक पृथक् पुराण की रचना ही कर डाली गई ।

असुरों का अस्तित्व—

पर इसका आशय यह नहीं कि बलि और वामन का उपाख्यान पूर्णतया कवि कल्पना है । पुराणों की रचना मे एक बड़ी विशेषता यह है कि उनमे इतिहास और कल्पना को मिलाजुला कर एक ऐसी रचना उपस्थित कर दी है, कि विषय से वास्तविक तथ्यों और कल्पना

को अलग-अलग कर सकना प्रायः असम्भव ही है। कुछ कथाओ का विश्लेषण करने की चेष्टा की जाती है, पर उनमे भी कहाँ तक सफलता प्राप्त होती है यह कहा नही जा सकता। इसलिये हाल ही मे एक लेखक ने विभिन्न देशो के पौराणिक साहित्य की समीक्षा करते हुये ठीक ही लिखा था—

"आदिम मानव की कल्पना ने हर कही प्राकृतिक शक्तियो एव घटनाओ के आधार पर अनेक पोषक और सहारक (रचनात्मक और विध्वसात्मक) देवताओ को गढा था। इन देवताओ की प्रकृति इनके आपसी सबध और व्यवहार तथा मनुष्यो के प्रति इनकी मनोभावना को लेकर अनेक कथाए रची गई। ये कथाऐ प्रतीकात्मक भी थी और रोचक तथा रोमाचक भी। पूजा पाठ वाले पुरोहितो तथा मत्र तत्र वालो का धधा इन्ही के आधार पर पनपा। आदिम विज्ञान और शिल्प ने इन्ही से जीवन-रस पाया। पर जैसे-जैसे सस्कृति आगे बढी इन आदिम पौराणिक गाथाओ और उनके देवताओ तथा मानवीय इतिहास तथा उसके वीर पुरुषों के बीच आदान-प्रदान बढा। कभी तो पुराण इतिहास के और कभी इतिहास पुराण के साँचे मे ढल कर नवीन रूप मे प्रकट हुआ धीरे-धीरे दोनो पक्ष इतने घुल-मिल गये कि अब उन्हे अलग करना कठिन हो गया है।'

वामन और बलि की कथा भी इसी का नमूना मानी जा सकती है। सभावत आरम्भ मे किसी वैदिक ऋषि ने—'यह समस्त जगत ईश्वर का ही रूप है' इस सिद्धा त को किंचित रोचक ढग से वर्णन करने के लिये कह दिया कि 'यह समस्त विश्व (तीनो लोक) विष्णु रूपी ईश्वर के तीन चरणो मे है' अर्थात् वे सर्वत्र व्याप्त हैं। इसी भाव मे आगे चल कर उन्हे 'त्रिविक्रम' कहा गया। बाद म किसी समय असुरराज बलि के दान के सम्बन्ध म कोई घटना हुई। किसी पुराणकर्ता ने इन दोनों को जोड़ कर एक उपाख्यान का रूप दे दिया। फिर धीरे-धीरे कथाकार उसको बढ़ाते गये और उसकी एक बड़ी सी पौराणिक कथा बन गई।

इस अनुमान मे हमको कुछ सचाई की झलक इसलिये दिखाई देती है कि अब से ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व ही भारत वर्ष से कुछ ही दूरी पर पश्चिमी ऐशिया मे 'असीरिया' मे असुर राजागण राज्य करते थे और उनका राज्य अनेक वर्षो तक भारत के अनेक समुद्र तटवर्ती प्रदेशो पर भी रहा था। इनमें असुर बाणीपाल एक प्रसिद्ध शासक हुआ है, जिसका जिक्र अगरेजो के बड़े-बड़े इतिहासो मे पाया जाता है। असल में ये असुर राजा इतिहास तथा काव्य आदि के बड़े अनुरागी थे उन्होने अपने राज्य कार्य का प्रतिदिन का हाल भी लिखकर रखा है। यद्यपि उनके पास न तो आजकल का सा कागज था और न भोजपत्र जैसा कोई उपकरण ही था। पर उन्होंने लिखने का एक नया ही तरीका निकाला था। वे कच्ची मिट्टी की लम्बी-चौड़ी ईंटें बना कर उन पर कील से अक्षर खोद कर लिखते थे और फिर उनको पका कर पक्का कर लेते थे। इस प्रकार की लाखों ईंटो का सग्रह खोज करने वालो को असीरिया के खण्डहरो में मिला है और विद्वानो ने प्रयत्नपूर्वक उसकी लिपि को पढ कर उनमे से ३० हजार ईंटो पर लिखा साहित्य नये सिरे से लिख लिया है जिनमे अनेकों काव्य और असुर नरेशो की 'डायरियाँ' हैं। जैसे यहाँ के मुगल बादशाह 'बाबर नामा'—'अकबर नामा' 'जहाँगीर नामा' आदि लिख कर तत्कालीन इतिहास की बहुत सी सामग्री छोड गये हैं, वैसी ही सामग्री यह भी है।

इन ईंटों के लेखो से ज्ञात होता है कि ईसा से ६७२ वर्ष पूर्व बाणीपाल का पिता "हसर हैडन" असीरिया का शासक था। उसने उस वर्ष अपने अधीनस्थ सभी राजाओं तथा उप राजाओ को एक सभा बुलाई। उसमें राज्य का उत्तरी भाग बड़े पुत्र असुरबाण को और दक्षिणी भाग छोटे पुत्र शम्प्र को देने की घोषणा की और राजाओं तथा सामंतो से इस व्यवस्था का समर्थन कराने की शपथ खिलाई।

भारतीय इतिहास की खोज करने वाले विद्वानों के मतानुसार यही असुर बाण भारतीय पुराणो में वर्णित बाणासुर है जिसे हरिवंश पुराण

मे शोणितपुर का शासक लिखा है। अंगरेजो इतिहासकारों ने भी उसके रक्तरंजित संग्रामों तथा अनेक कत्ल आम की घटनाओं के कारण उसकी राजधानी का जिक्र 'ए ब्लडी सिटी' (खूनी नगर,के नाम से किया है। इसी की पुत्री उषा से अनिरुद्ध का विवाह होने की कथा को लेकर श्री कृष्ण के साथ घोर संग्राम होने की पौराणिक गाथा रची गई है। राजा बलि को इसी वाणासुर का पिता बतलाया गया है।यद्यपि वामन अवतार रामचन्द्र जी से भी बहुत पहले हुआ बतलाया जाता है पर विभिन्न पौराणिक कथा लेखकों ने वाणासुर की चर्चा वामन अवतार-राम अवतार, कृष्ण अवतार, आदि सभी के साथ कर दी है। जब कि इतिहासकार उसका समय अब से २६०० या २७०० वर्ष पूर्व ही बतला रहे हैं। इसका कारण यह है कि कथा कहानियों के लेखक सन्, संवत्, लबाई, चौड़ाई, दूरी आदि का यथा तथ्य वर्णन करने मे अपने आपको बँधा हुआ नहीं मानते। उनका मुख्य उद्देश्य उपदेश प्रद और साथ ही रोचक उपाख्यान बनाना होता है। इस लिये असुर बाण के शासक की घटनायें सुन कर उस नाम का उपयोग श्री कृष्ण के चरित्र वर्णन मे कर लिया तो यह उनकी दृष्टि मे कोई हानिकर या आक्षेपजनक बात नहीं है

असुर और आर्यों का सम्बन्ध—

भारतीय पुराणों और वैदिक कालीन तथ्यों की खोज करने वालों द्वारा प्रतिपादित एक निष्कर्ष यह भी है कि असीरिया और उसके आस पास के बेबीलोनिया तथा खाल्डिया आदि में रहने वाले असुर, दैत्य आदि यथार्थ में भारतीय आर्यों द्वारा जाति बहिष्कृत व्यक्ति थे, और इस लिए वे विदेश में रहते पर भी इस देश में आते जाते रहते थे और मौका लगने पर अपना शासन भी जमाने की कोशिश किया करते थे। इस सम्बन्ध 'वैदिक सम्पत्ति' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता ने लिखा है—

आर्यों में अवैदिकता का संचार और प्रसार कैसे हुआ ? समाज में चाहे जैसा अच्छा और दृढ़ प्रबन्ध हो, पर कुछ काल बाद उसमे शिथिलता आही जाती है और दुष्ट मनुष्यों का प्रादुर्भाव हो जाता है। आर्यों में भी इसी स्वाभाविक नियमानुसार आलस और प्रमाद उत्पन्न हुआ। परन्तु बुद्धिमान नेताओं ने तुरन्त इस बात को ताड़ लिया और उपाय भी करने लगे। सब से उपयुक्त उपाय यही था कि ऐसे व्यक्तियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाय। इस प्रकार जो लोग समाज से निकाले गये, वे ही अन्यत्र जाकर दस्यु, दास, राक्षस, असुर, महिष, कपि, नाग आदि नीच नामों से पुकारे जाने लगे। मनुस्मृति में भी लिखा है कि ब्राह्मणों के समीप रह कर शिक्षा प्राप्त न कर सकने से अनेक क्षत्रिय जातियाँ क्रिया शून्य होने से पतित हो गईं। वही पौंड्र, औण्ड्र, काम्बोज खश, पल्हव, चीन, किरात, शल्य, मल्ल, दरद, और शक नाम की अनार्य जातियाँ बन गई प्राचीन काल में आर्यगण लोभी वैश्यों को 'पणिक्' कहते थे। वे उन समय लोगों को तरह-तरह से ठगने का रोजगार करते थे। जब उनको समाज से निकाला गया तो वे भारत के दक्षिणी प्रांत में चले गये। वहाँ रहकर उन्होंने काफी वृद्धि और संगठन करके आर्यों से संघर्ष किया। पर जब वे परास्त हो गये तो फिर अन्य देशों को चले गये।"

'वैदिक सम्पत्ति' के लेखक के मतानुसार इन 'पणि' जाति वालों ने ही यहाँ से निकलकर मेसोपोटामिया, इराक, सीरिया आदि में अड्डा जमा कर अपने नाम से 'फिनीशिया' देश को आबाद किया। ये लोग नाव और जहाज बनाने तथा चलाने में बहुत होशियार थे और व्यापार करने में हर तरह की चालाकी से काम लेना जानते ही थे। इसलिये उन्होंने कितने ही देशों के साथ व्यापार करके खूब धन इकट्ठा कर लिया। भारत में सिन्ध और काठियावाड इनके बडे अड्डे थे। इन दोनों प्रदेशों में इन दिनों जो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि अनेक प्राचीन नगरों के खण्डहर निकले हैं उनसे पता चलता है कि इन्होंने अब से चार-पाँच हजार वर्ष पहले एक व्यापारिक तथा शासन कर्ता जाति के रूप में

अच्छी उन्नति कर ली थी। भारतीय आर्य शासकों से अनेक बार उनका संघर्ष भी हो जाता था जिसमें परिस्थिति के अनुसार कभी एक पक्ष की और कभी दूसरे की विजय हो जाती थी। भारतीय पुराणों मे, जो अधिकांश में विक्रम-संवत् के आरम्भिक काल मे अर्थात् अब से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये थे, इन्हीं घटनाओं के सम्बन्ध में प्रचलित जन श्रुतियों के आधार पर उनका वर्णन 'असुर' 'दैत्य' नाम से किया गया। साथ ही उन घटनाओं को प्राचीन देवताओं की कथाओं के साथ जोड़कर एक नये ही साहित्य की सृष्टि कर डाली।

इस प्रकार पुराणों में पुरानी धार्मिक कथाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं का कहाँ तक मेल हुआ है और कवियों की कल्पना कहाँ तक दौड़ी है, इसका ठीक विवेचन कर सकना सहज नहीं है और न उसके लिये यहाँ उपयुक्त स्थान है। इस चर्चा से हमारा उद्देश्य यही बतलाना है कि यद्यपि 'वामन-उपाख्यान' की कथा इतनी अलौकिक तथा चमत्कार पूर्ण है कि सामान्य पाठक उसकी वास्तविकता पर विश्वास नहीं कर सकते तो भी उसका कुछ आधार अवश्य है। पुराण और इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि सिकन्दर के आक्रमण से कुछ सौ वर्ष पूर्व इन विदेशी शासकों ने गुजरात से आगे बढ़ कर मगध (काशी पटना आदि) तक आधिपत्य जमा लिया था। कुछ समय बाद भारतीय जनता ने तैयारी करके उनको पुनः देश से बाहर निकाल दिया। संभवतः इसी घटना का अलंकारिक वर्णन करके बलि-वामन के उपाख्यान की रचना की गई और उसका उपयोग दान की महत्ता तथा अहंकार प्रवृत्ति के दोष दिखलाने के लिये किया गया।

फिर भी हम वामन पुराण की कथा को इतिहास की कसौटी पर कसने की सम्मति नहीं दे सकते। उसका मुख्य उद्देश्य भारतीय धर्म की उत्कृष्टता प्रतिपादित करना और भिन्न जातीय मान्यताओं का निरीक्षण करना ही है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर विभिन्न पुराणों ने विस्तार पूर्वक या संक्षिप्त रूप में इसका वर्णन किया है। उन सबकी कथाओं में थोड़ा-बहुत अन्तर भी पाया जाता है और किसी में तो एकाध वर्णन

को बिल्कुल ही भिन्न रूप में लिखा है। इन पौराणिक वर्णनों का परिचय देने के लिये हम उनका कुछ अंश नीचे दे रहे हैं, जिससे पाठकों को इस कथा के विभिन्न रूपों और उसकी महत्ता का कुछ अनुमान हो सकेगा।

महाभारत में बलि-वामन उपाख्यान—

'महाभारत' यद्यपि मुख्य रूप से एक ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ माना गया है, पर उसमें भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध समस्त कथाओं और उपाख्यानों को भी विविध प्रसंगों में इस प्रकार सम्मिलित कर लिया गया है कि उसे अधिकांश विद्वान् 'पुराणेतिहास' के नाम से पुकारते हैं। उसके सभा पर्व में 'वामन अवतार' का सक्षेप में बड़े अच्छे ढंग से वर्णन किया गया है—

पुरा त्रेतायुगे राजन् बलिर्वैरोचनोऽभवत्।
दैत्यानां पार्थिवो वीरो बलेनाप्रतिमो बली ॥१
तदा बलिर्महाराज दैत्यसघैः समावृतः।
विजित्य तरसा शक्रमिन्द्रस्थानमवाप सः ॥२
तेन वित्रासिता देवा बलिनाऽऽखण्डलादयः।
ब्रह्माणं तु पुरस्कृत्य गत्वा क्षीरोदधिं तदा।
तुष्टुवुः सहिताः सर्वे देवं नारायणं प्रभुम् ॥३
स तदा दर्शनं चक्रे विबुधानां हरिः स्तुतः।
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्यां जन्म चोच्यते ॥४
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजोऽभवत् ॥५

अर्थात्—"प्राचीन त्रेतायुग में वैरोचन का पुत्र बलि नाम का राजा हुआ जो बड़ा शक्ति शाली और वीर था। उसने अपनी दैत्य सेना को सगठित करके देवताओं पर आक्रमण किया और इन्द्र का समस्त राज्य छीन लिया। तब तो इन्द्र आदि सभी देवता बड़े दुःखी होकर ब्रह्माजी को साथ लेकर भगवान विष्णु की सभा में क्षीर सागर के निकट पहुँचे

और भगवान नारायण की स्तुति करने लगे। इस पर प्रसन्न होकर भगवान ने देवताओं को दर्शन दिया और उनकी रक्षा करने के निमित्त स्वयं अदिति के गर्भ से जन्म लिया। इस समय जो यदुकुल में कृष्ण रूप अवतीर्ण हुये हैं, ये ही उस समय इन्द्र के छोटे भाई के रूप में अदिति के पुत्र बने थे ॥१५॥

तस्मिन्नेव च काले तु दैत्येन्द्रो वीर्यवान् बलि।
अश्वमेधं क्रतुश्रेष्ठमाहर्तुमुपचक्रमे ॥६
वर्तमाने तदायज्ञे दैत्येन्द्रस्य युधिष्ठिर।
स विष्णुर्वामनो भूत्वा प्रच्छन्नो ब्रह्मवेषधृक्।
मुण्डो यज्ञोपवीती च कृष्णाजिनधरः शिखी ॥७
पलाशदण्डं संगृह्य वामनोऽद्भुत दर्शनः।
प्रविश्य स बलेर्यज्ञे वर्तमानेतु दक्षिणाम्।
देहीत्युवाच दैत्येन्द्रं विक्रमास्त्रीन ममैव हि ॥८
दीयतां त्रिपदी मात्रामित्ययाचन्महासुरम्।
स तथेति प्रतिश्रुत्य प्रददौ विष्णवे तदा ॥९

"उन्हीं दिनों परम शक्तिशाली दैत्यराज बलि ने बड़ी धूमधाम से अश्वमेध यज्ञ का उपक्रम किया। जिस समय वह यज्ञ हो रहा था उस अवसर पर वामन भगवान अपने को ब्रह्मचारी के वेष में छिपाये हुये, मस्तक मुड़ाये, यज्ञोपवीत धारण किये, मृगछाला बगल में दाबे, शिखा धारण किये, एक पलाश का दण्ड हाथ में लेकर, बलि के निकट पहुँचे। उन्होंने उससे कहा—'मुझे' तीन पग भूमि दक्षिणा स्वरूप दीजिये। उन्होंने फिर कहा मुझे केवल तीन ही पैर भूमि चाहिये। यह सुन कर बलि ने भी 'तथास्तु' कह कर दान की स्वीकृति देदी ॥६-६॥

तेन लब्ध्वा हरिर्भूमिं जृम्भयामास वभशम्।
स शिशुः सदिवं खं च पृथिवीं च विशाम्पते ॥१०
त्रिभिर्विक्रमणैरेतत् सर्वमाक्रमतामिभूः।
ब्रह्मर्थेलवद्वो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा।

विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्या क्षोभितास्ते महासुरा. ॥११
विप्रचित्तिमुखा क्रुद्धा दैत्यसघा महावला ।
नाना वक्त्रा महामाया नानावेषधरा नृप ।
नाना प्रहरणा रौद्रा नानामाल्यानुलेपना: ॥१२
स्वान्यायुधानि सगृह्य प्रदीप्ता इव तेजसा ।
क्रममाण हरि तत्र उपावर्तन्त भारत ॥१३

"बलि द्वारा भूमि दान का सकल्प कर दिये जाने पर वामन भगवान बड़े वेग से बढ़ने लगे। पहल तो वे बालक जैसे लगते थे पर क्षण मात्र मे उन्होंने महाविशाल रूप धारण करके तीन ही पैरो मे त्रिलोक को नाप लिया। जब भगवान ने इस प्रकार केवल तीन ही पगो द्वारा बलि का सर्वस्व ले लिया तो उसके बडे बडे सामन्त महा असुर विचलित हो उठे। उनमे विप्रचित्ति आदि प्रमुख दानव थे। वे अनेक प्रकार के वेष मे अनेक प्रकार के मुख वाले थे। उनका आकार बहुत विशाल था। उनके हाथो म तरह तरह के हथियार थे, उन्होंने मालाऐ और चन्दन धारण कर रखे थे तथा तेज की अधिकता से प्रज्ज्वलित हो रहे थे। जब वामन भगवान तीनो लोको को नापने लगे तो वे दैत्य अपने हथियार लेकर उनके चारो तरफ खड़े हो गये ॥१०-१३॥

प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैस्तु तान् ।
रूप कृत्वा महाभीम जहाराशु स मदिनीम् ॥१४
सम्प्राप्य पादमाकाशमादित्य सदने स्थित ।
अत्यरोचत भूतात्मा भास्कर स्वेन तेजसा ॥१५
प्रकाशयन् दिश सर्वा प्रदिशश्च महावल ।
शुशुभे स महावाहु: सर्वलोकान् प्रकाशयन् ॥१६
तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रादित्य स्तनान्तरे ।
नभ प्रक्रममाणस्य नाभ्या किल तदा स्थितौ ।
परमाक्रममाणस्य जानुभ्या तौ व्यवस्थितौ ॥१७

विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातयः ।
अथासाद्य कपालं स अण्डस्य तु युधिष्ठिर ॥१८
तच्छिद्रात् स्यन्दिनी तस्य पदाद् प्रष्टा तु निम्नगा ।
ससार सागरं साऽऽशु पावनी सागरङ्गमा ॥१९

"यह देख कर भगवान ने महा भयंकर रूप धारण करके उन दैत्यों को लातों और थप्पड़ों से ही मार कर समस्त भूमि को उनसे छीन लिया । उनका एक पैर ऊपर उठ कर आदित्य मण्डल तक पहुँच गया । उस समय भगवान सूर्य से भी अधिक तेजस्वी प्रतीत हो रहे थे । वे महा बलवान विष्णु सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुये अत्यंत शोभित हो रहे थे । उस समय वे इतने विशाल हो गये कि चन्द्रमा और सूर्य उनकी छाती के बराबर आ गये । और जब वे आकाश को नापने लगे तो सूर्य, चन्द्रमा नाभि के बराबर ऊंचाई में ही दिखाई पड़ने लगे । जब उन्होंने अपना पैर स्वर्ग से भी ऊंचा उठाया तो चन्द्रमा और सूर्य घुटनों के ही सामने आ गये । इस प्रकार भगवान के चरण ब्रह्माण्ड कपाल में जा लगे और उसमें छिद्र हो गया । उससे जल झरने लगा जो नीचे गिर कर गंगा के रूप में समुद्र से जा मिला ॥१४-१९॥

जहार मेदिनीं सर्वां हत्वा दानवपुङ्गवान् ।
आसुरीं श्रियमाहृत्य त्रींल्लोकान्स जनार्दन ।
सपुत्रदारानसुरान् पाताले तानपातयत् ॥२०
बलिर्वद्धोऽभिमानी च यज्ञवाटे महात्मना ।
विरोचन कुले सर्वं पाताले विनिपातितम् ॥२१

"वामन भगवान ने बड़े-बड़े दैत्यों को परास्त करके समस्त पृथ्वी उनसे छीन ली और उनकी समस्त सम्पदा लेकर उनको स्त्री-पुत्रों सहित पाताल लोक में भेज दिया । भगवान ने अभिमानी राजा बलि यज्ञ मंडप में ही बांध लिया और विरोचन के समस्त वंश को पाताल चले जाने को बाध्य किया ॥२०-२१॥

'पद्म पुराण' में वामन-प्रादुर्भाव वर्णन—

'पद्म पुराण' मे बलि-वामन चरित्र का वर्णन अन्य पुराणो की तरह किया गया है, पर उसमें राजा बलि की भी बड़ी प्रशंसा की गई है, अदिति और कश्यप द्वारा तपस्या का वर्णन विस्तार से किया है—

प्रह्लादस्य सुतो जज्ञे विरोचन इतीरितः ।
तस्य पुत्रो महाबाहुर्बलिर्वैश्वानरः प्रभु ॥१
स तु धर्मविदा श्रेष्ठः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
हरेः प्रियतमो भक्तो नित्य धर्मरतः शुचिः ॥२
स जित्वा सकलान् देवान् सेन्द्रांश्च समरुद्गणान् ।
त्रींल्लोकान्स्ववशे स्थाप्य राज्य चक्रे महाबलः ॥३
अकृष्ट पच्या पृथिवी बहुसस्य फलप्रदा ।
गावः पूर्णदुघाः सर्वा. पादपा फलपुष्पिताः ॥४
स्वधर्मनिरताः सर्वे नरा. पापविवर्जिताः ।
अर्चयन्ति हृषीकेश सतत विगतज्वराः ॥५
एव चकार धर्मेण राज्य दैत्यपतिर्वशी ।
इन्द्रादि त्रिदशास्तस्य किंकराः समुपस्थिता ॥६
ऐश्वर्यं त्रिषु लोकेषु बुभुजे बलदर्पहृत् ।
भ्रष्ट राज्य सुत दृष्ट्वा तस्यापि हितकाम्यया ॥७
कश्यपो भार्यया सार्द्धं तपस्तपे हरिं प्रति ।
आदित्या सह धर्मात्मा पतोव्रत समन्वितः ॥८

अर्थात्—'दैत्यपति प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नाम का हुआ और उसका पुत्र महा बलवान और तेजस्वी बलि हुआ। वह धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, सत्यव्रती और जितेन्द्रिय था, भगवान का सच्चा भक्त था और सदैव धर्मपालन मे दत्त चित्त रहता था। उसने समस्त देवताओं तथा मरुद्गणों को जीत कर तीनों लोकों मे अपना चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित किया था। उसके राज्य मे पृथ्वी बिना जोते बोये ही बहुत अन्न और फल उत्पन्न करती थी, गायें खूब दूध देती थीं और वृक्ष सदा

फल फूलों से लदे रहते थे। सब प्रजा धर्म का पालन करती और पापों से दूर रहती थी। सब लोग विनम्र भाव से भगवान की पूजा-अर्चा किया करते थे। उस बलवान दैत्यपति का शासन इस प्रकार पूर्ण धर्म युक्त था और इन्द्रादि समस्त देवगण उसके सम्मुख सेवक की तरह उपस्थित रहते थे। वह अपने बल के द्वारा तीनों लोकों के ऐश्वर्य का हस्तगत करके उपभोग करने लगा। तब अपने पुत्र इन्द्र को राज्य भ्रष्ट देख कर कश्यप और अदिति उसकी हित कामना से भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के उद्देश्य से तप करने लगे और आहार त्याग कर केवल दूध पर रहने लगे।'

वे बहुत समय तक इस प्रकार तप करते रहे तो भगवान ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा। उन्होंने इन्द्र का राज्य पुनः दिलाने की प्रार्थना की। भगवान ने वामन अवतार लेकर उनकी मनो कामना पूर्ण करने का आश्वासन दिया। कुछ समय पश्चात् वे माता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुये। जब वे देवताओं के आग्रह पर बलि के यज्ञ में पहुंचे तो वह इनके दर्शन करके बड़ा प्रसन्न हुआ और पूजा करके कहने लगा—

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफल मम जीवितम् ।
त्वामर्चयित्वा विप्रेन्द्र किं करोमि तव प्रियम् ॥

"आपका पूजन करके मैं धन्य हो गया—कृतकृत्य हो गया—मेरा जीवन सफल हो गया। अब मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूं ?" तब वामन जी ने कहा—

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि ममागमन कारणम् ।
अग्निकुण्डस्य पृथिवी देहि दैत्य पते मम ॥
मम त्रिविक्रममिता नान्यदिच्छामि मानद ।
सर्वेषामेव दानानां भूमिदानमनुत्तमम् ॥
यो ददाति समो राजा विप्रायऽकिञ्चनाय वै ।
अंगुष्ठमात्रमपि वा स भवेत्पृथिवीपतिः ॥

न भूमिदानं सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
भूमि यः प्रतिगृह्णाति भूमि यश्च प्रयच्छति ।।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ निधने स्वर्गगामिनौ ।
तस्माद्भूमि महाराज ! प्रयच्छ त्रिपदी मम ।।

"हे राजेन्द्र ! मैं अपने आने का कारण बतलाता हूँ । आप मुझे अग्निहोत्र के लिये कुण्ड बनाने को भूमि दान दीजिये । मैं केवल तीन पैर पृथ्वी चाहता हूं, ज्यादा की मेरी इच्छा नहीं है । हे माननीय राजन ! सब प्रकार के दानों में भूमि का दान सर्वोत्तम है । जो किसी अकिंचन ब्राह्मण को एक अंगुल भूमि भी दान करता है वह पृथ्वी का स्वामी हो जाता है । भूमि दान के समान पवित्र दान और कुछ नहीं है । जो भूमि दान देता है और जो उसे ग्रहण करता है, वे दोनों देहान्त होने पर स्वर्ग को जाते हैं । इसलिये मैं आपसे तीन पैरों के बराबर भूमि की याचना करता हूं ।"

जब वामन भगवान ने तीन पैर पृथ्वी को नापने के लिये अपना रूप बढ़ाया तब उन्होंने पचास करोड़ योजन विस्तीर्ण समुद्र, पर्वत, द्वीप, मनुष्य, देवता सहित पृथ्वी को एक ही पग में नाप लिया । तब भी बलि अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान की स्तुति करता रहा । इससे सन्तुष्ट होकर भगवान ने उसे दिव्य चक्षु देकर अपना विश्व रूप दिखलाया । इस प्रसंग में 'पद्म पुराणकार ने गंगा के आविर्भाव का भी कथन किया है, पर उनका वर्णन दूसरे पुराणों से कुछ भिन्न है । जैसा हम पहले कह चुके हैं तदनुसार विष्णु के पद से ब्रह्म कटाह में छेद हो जाने से गंगाजल बह निकला । पर पद्म पुराण में कहा गया है—

अथ सर्वेश्वरो विष्णुर्द्वितीय पदमव्ययम् ।
ऊर्ध्वं प्रसारयामास ब्रह्मलोकान्तमच्युतः ।।
ततः पितामहो ब्रह्मा चक्राद्यादि चिह्नितम् ।
पाद तद्देवदेवस्य हर्षसंपूर्ण चेतसा ।।

धन्योऽस्मीति वदन्ब्रह्मा गृहीत्वा स्वकमण्डलुम्।
भक्त्या प्रक्षालयामास तत्र संस्थित वारिणा ॥
अक्षय्यमभवत्तोयं तस्य विष्णोप्रभावत: ।
तत्तीर्थं मेरुशिखरे पपात विमले जलम् ॥
स्वर्गे मन्दाकिनी प्रोक्ता स्वधो भोगवही तथा ।
मध्ये वेगवती गङ्गा पावनार्थं नृणां शिवा ॥

"सर्वेश्वर विष्णु का दूसरा पैर ब्रह्मलोक मे पहुँचा। तब पितामह ब्रह्मा चक्र, पद्म आदि के चिह्नो से युक्त उस चरण को देख हर्ष विभोर हो उठे और उन्होने कहा "आज मैं धन्य हो गया" और तुरन्त ही अपने कमण्डलु के जल से उसका प्रक्षालन किया। विष्णु के प्रभाव से यह जल अक्षय हो गया और परम पवित्र तीर्थ सलिल के रूप मे मेरु शिखर पर गिरा। वही जल स्वर्ग मे मन्दाकिनी, पाताल मे भोगवती और भूमण्डल मे गंगा के नाम से बहता है और करोडों मनुष्यो को तारने वाला बना है।"

वामन भगवान ने बलि की धार्मिकता की बडी सराहना की और जब उसे पाताल मे भेजा तो स्वयं भी उसके साथ वहाँ पर सदैव रहने की प्रतिज्ञा की।

वायु पुराण—

'वायु पुराण' मे विष्णु भगवान का महात्म्य कीर्तन करते हुये सक्षेप मे वामन अवतार का भी जिक्र कर दिया गया है। कथानको की बहुत सी बातें उनमे नही है, पर विशाल रूप धारण करके समस्त विश्व को तीन पगों मे नाप लेने की घटना उसमे भी स्पष्ट रूप से वर्णित है—

बलि संस्थेपु लोकेपु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥१
संक्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् ।
यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्या: कुलनन्दन: ।

द्विजो भूत्वा मुभे काले बलि वैरोचनम्पुरा ॥२
त्रैलोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
दातुमर्हसि मे राजन् विक्रमास्त्रीनिति प्रभुः ॥३
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ।
वामनन्तं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥४
स वामनो दिव खव पृथिवी च द्विजोत्तमा ।
त्रिभिः क्रमैस्त्रिभिदं जगदाक्रामन प्रभुः ॥५

"सातवें त्रेता युग में जब बलि नामक दैत्य राजा ने तीनों लोकों पर अधिकार जमा लिया, तो विष्णु भगवान 'वामन रूप में अवतीर्ण हुये। उस समय वे अदिति के पुत्र हुये और उन्होंने बृहस्पति के समान रूप में ब्राह्मण बन कर राजा बलि के सम्मुख जाकर दान की याचना की। उन्होंने कहा—महाराज ! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, आप मुझे तीन पैंड भूमि देने की कृपा करें। राजा बलि उनको वामन समझ कर बड़े खुश हुये और तीन पैर भूमि दान देदी। तब उन वामन देव ने द्युलोक, आकाश और पृथ्वी को तीन ही पैरों में आक्रान्त कर लिया।" १-५॥

अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा ।
प्रकाशयन् दिशः सर्व्वाः प्रदिशश्च महायशाः ॥६
शुशुभे स महाबाहुः सर्व्वलोकान् प्रकाशयन् ।
असुरान्श्रियमाहृत्य त्रींल्लोकांश्च जनार्दनः ।
सपुत्र पौत्रानसुरान् पातालतलमानयत् ॥७
महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधवः ।
कालञ्च सकलं विप्रास्तत्राद्भुतमदर्शयत् ॥८
तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति ।
न किञ्चिदस्ति लोकेषु यद व्याप्तं महात्मना ॥९
तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य देवदानव मानवाः ।
दृष्ट्वा सम्मुमुहुः सर्वे विष्णुतेजो विमोहिताः ॥१०

बलिः सितो महापशैः सबन्धु ससुहृद्गण ।
विरोचनकुल सर्वं पाताले सन्निवेशितम् ॥११

"उस समय वामन भगवान के तेज के सम्मुख सूर्य का तेज भी फीका पड़ गया। समस्त दिशायें और प्रदिशायें उस तेज से पूरित हो गई। तीनों लोकों और असुरों की समस्त सम्पदा को ग्रहण करके उस समय वे अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो गये और समस्त असुरों को बन्धु-बांधवों सहित पाताल में भेज दिया। उस समय वहाँ पर उपस्थित समस्त ज्ञानी जनों को उन भगवान की देह में समस्त जगत प्रतिबिम्बित होता दिखाई पड़ा। समस्त लोकों में एक भी ऐसी वस्तु नहीं है जो उस विश्व रूप में व्याप्त न हो। भगवान 'उपेन्द्र विष्णु' के उस अद्भुत रूप को देख कर देव, दानव, मनुष्य सब मुग्ध हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने राजा बलि तथा उसके बश के समस्त जनों को महापाश से निबद्ध करके पाताल भेज दिया" ॥६-११॥

इस कथानक में भी समस्त घटना क्रम 'पद्म पुराण' के समान ही है, पर इसमें बलि की प्रशंसा की कोई बात नहीं है। उल्टा ऐसा ही भाव दर्शाया है कि दानव दुरात्मा थे और भगवान ने उनको दण्ड स्वरूप ही पाताल में रहने को विवश किया।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बलि-वामन कथा—

बलि-वामन का उपाख्यान किसी न किसी रूप में सभी पुराणों में पाया जाता है। उनके कथानकों में थोड़ा-थोड़ा अन्तर भी है, पर मूल कथा ज्यों की त्यों है। इस दृष्टि से 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' के रचयिता ने उसमें एक बिल्कुल नई घटना सम्मिलित कर दी है। अधिकांश पुराणों में तो यही कहा गया है कि देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु भगवान वामन रूप धारण करके बलि के यहाँ गये और उससे तीन पग पृथ्वी माँग कर उसका समस्त राज्य छीन कर इन्द्र को दे दिया। पर 'विष्णु धर्मोत्तर' में कहा गया कि स्वयं इन्द्र ही छल करके वामन भगवान को लेकर बलि के पास गया था—

तेषां बभूव देवेन्द्रो विश्वभुवलोक पूजितः ।
भ्रातस्तस्यासुरा घोरास्तदा दायाद बान्धवाः ॥१
बभूव राजा तेषां च वाष्कलिर्नामनामतः ।
येन विक्रम्य शक्रस्य हृतं राज्यं तदा बलात् ॥२
हृत राज्यस्तु देवेन्द्रो ब्रह्माणं शरणं गतः ।
ब्रह्मादि शक्रमादाय जगाम शरणं हरिम् ॥३
निवेदयामास तदा देवदेवाय शार्ङ्गिणे ।
वापूलोविजयं सर्वं ब्रह्मा शुभचतुर्मुखम् ॥४

अर्थात्—"जब देवेन्द्र समस्त विश्व का पूजनीय शासक बना तो उसके अन्य भाई बड़े बलशाली असुर बन गये। उन असुरों में एक राजा वाष्कलि (बलि) नाम का हुआ, जिसने अपनी वीरता से इन्द्र के राज्य को जीत लिया। इस प्रकार राज्य च्युत हो जाने पर इन्द्र ब्रह्माजी की शरण में गया और वे उसे लेकर विष्णु भगवान के सान्निध्य में पहुँचे। ब्रह्माजी ने भगवान शार्ङ्गपाणि से बलि द्वारा इन्द्र के पराभव की सब बात कह सुनाई ॥१-४॥

ब्रह्मन्प्रत्याहरिष्यामि राज्यमस्य शतक्रतोः ।
दिवि देवेषु धर्मात्मन्निवृत्तो भव मा चिरम् ॥५
अहं वामन रूपेण प्रयास्ये वाष्कलिं नृपम् ।
मां दृष्ट्वा विस्मितं तन्तु गत्वा याचतु देवराट् ॥६
लोकत्रयं मम हृतं त्वया विक्रम्य वाष्कले ।
तत्राग्नि शरणार्थाय दयिता मेक्रमत्रयम् ॥७
अतीव ह्रस्वगात्रस्य वामनस्यास्य मा चिरम् ।
एवमुक्तस्तु शक्रेण तदा दाता क्रमत्रयम् ॥८

"हे ब्रह्मा! मैं इन्द्र के राज्य को पुनः बलि से छीन कर इसे दिला दूंगा। धर्मात्मा देवगण अधिक समय तक स्वर्ग से वंचित नहीं रहेंगे। मैं वामन रूप धारण करके वापूलि नृप के पास जाऊंगा। जब वह मुझे देखकर विस्मित होने लगेगा तो देवराज इन्द्र भी उसके पास पहुँच जायगा और कहेगा कि—'हे वाष्कले! तुमने अपनी वीरता से

तीनों लोको पर अधिकार कर लिया है। यह वामन ब्रह्मचारी मेरे पास अग्निहोत्र के निमित्त तीन पैर भूमि माँगने आया है, पर मेरे पास जरा भी भूमि शेष न रहने से मैं असमर्थ हो गया हूँ और तुम्हारे पास सहायतार्थ आया हूँ। यह वामन बहुत ही छोटे आकार का है, इसको थोड़ी-सी भूमि तो तुम दे ही सकते हो।' इन्द्र के यह कहने पर वाष्कलि तीन पैर भूमि मुझे दान दे देगा ॥५-८॥

इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मा स्वभवनं गतः ।
देवोऽपि वामनो भूत्वा प्रयातो यत्र वाष्कलि ॥६
वाष्कलिर्वामनो दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ल लोचनः ।
निरीक्ष्य त यथाकाममसुरैर्बहुभिर्वृतः ॥१०
एतस्मिन्नेव काले तु शक्रस्तं देश मायर्यो ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः शक्रं सपूज्य वाष्कलिः ॥११
किमागमनकार्यं ते तमुवाच प्रहृष्ट वाक् ।
अत्याश्चर्यमिदं मन्ये तवागमन कारणम् ॥१२

"भगवान विष्णु के इस कथन को सुनकर ब्रह्माजी अपने भवन को चले गये। तब विष्णुजी वामन रूप धारण करके वाष्कलि के यहाँ आये। उनको देख कर वह बड़ा विस्मित हुआ और अन्य भी अनेक असुर उनको देखने को वहाँ आ गये। इतने में इन्द्र भी वहाँ आ पहुँचा और उसे देख कर वाष्कलि ने पाद्य-अर्घ्य—आचमन आदि से उसका सत्कार किया। वाष्कलि ने इन्द्र से कहा—'आपने किस कारण यहाँ आने का कष्ट उठाया, मुझे तो इससे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ?'॥६-१२

लोकत्रयं मेऽपहृतं विक्रमेण तु वाष्कले ।
तथाग्नि कारणार्थाय दीयतां मे क्रमत्रयम् ॥१३
अतीव ह्रस्वगात्रस्य वामनस्यास्य पार्थिव ।
भूमि मांगे सु पारयामे यस्तु न स्वहृष्टुरगहे ॥१४
क्रमत्रयं वामनके देवराज कृतं शुभम् ।
तत्र गृह मुदितः प्राप्तः सुखी गृहमने मम ॥१५

एवमुक्तो वाष्कलिना त्यक्त्वा रूपं तु वामनम् ।
हरिर्विचक्रमे लोकान्देवानां हितकाम्यया ॥१६
ब्रह्मलोकं ततो गत्वा……………………।
देवस्य वामश्चरणो निविष्टो दानवालये ॥१७
ततः क्रमं स प्रथमं ददौ सूर्ये जगत्पतिः ।
द्वितीयं च ध्रुवे देवस्तृतीयेन च यादव ॥१८

"इन्द्र ने कहा—'हे वाष्कले ! मेरे समस्त राज्य पर तो आपने अधिकार कर लिया है । इसलिये मैं इस वामन ब्रह्मचारी के लिये अग्निहोत्र के लिये तीन पैर भूमि माँगने को आपके पास आया हूँ । यह अत्यन्त छोटे आकार का है, इसको इतनी थोड़ी सी भूमि देने में आपको क्या लगता है?' वाष्कलि ने कहा—'आप इसे तीन पैर भूमि दिलाना चाहते हैं तो मैं खुशी से देता हूँ ।' जब उसने संकल्प पूर्वक दान कर दिया तो भगवान ने वामन-रूप त्याग दिया और देवताओं के हितार्थ इतना विशाल रूप धारण किया कि वह ब्रह्मलोक तक जा पहुंचा । उनका बाँया पैर तो बलि के सम्मुख रखा रहा और दाँया सूर्य तक पहुँच गया । दूसरे पैर में उन्होंने ध्रुव तक नाप लिया । तीसरे पैर के लिये स्थान ही नहीं रहा और वह ब्रह्माण्ड से जा टकराया ।" ॥१३-१८॥

वामनेन समाक्रान्ताः सर्वे लोका यदानघ ।
असुरैस्ते तदा त्यक्त्वा देवानां सत्य बान्धवैः ॥१९
पातालञ्च यदातेन नाक्रान्तं हरिमेधसा ।
असुरैस्तैस्तदा घोरैरुष्यते यदुनन्दनः ॥२०
देवोऽपि हृत्वा त्रैलोक्यं जगामादर्शनं तदा ।
पातालनिलयश्चापि सुखमास्ते स वाष्कलिः ॥२१
शक्रोऽपि पालयामास विपश्चिद्भुवनं तदा ।
इमं त्रिविक्रमं नाम प्रादुर्भावं जगद्गुरो ॥२२

"इस प्रकार जब वामन भगवान ने समस्त लोकों को अपने चरणों से नाप डाला तब असुरों को देवताओं का राज्य छोड़ देना पड़ा ।

भगवान ने उन सब को पाताल चले जाने का आदेश दिया। इस पर असुर गण बड़े नाराज हुये। पर अन्त मे उनको वहाँ जाना ही पड़ा। और वाष्कलि वहीं सुख पूर्वक रहने लगा। भगवान उसी समय अन्तर्धान हो गये और इन्द्र भी अपने लोक में पहुंच गया। इस प्रकार भगवान का नाम'त्रिविक्रम' प्रसिद्ध हो गया।" ॥१९-२२॥

अग्नि पुराण—

अग्नि पुराण के आरम्भ में ही दसों अवतारों का वर्णन किया गया है। इनमें राम-कृष्ण का वृतान्त तो काफी विस्तार से दिया गया है, मत्स्य और कूर्म का सामान्य है और शेष बराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध, कल्कि का संक्षेप में ही दिया गया है। फिर भी उसके द्वारा वामन अवतार के स्वरूप का ठीक ज्ञान हो जाता है—

देवासुरे पुरायुद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः।
जिताः स्वर्गात् परिभ्रष्टा हरिं ते शरणं गताः।
सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥१
स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्या स क्रतुं ययौ।
बलेः श्रीयजमानस्य गङ्गाद्वारे गृणन्स्तुतिम् ॥२
वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत्।
निवारितोऽपि शुक्रेण बलिः ब्रूहि यदिच्छसि ॥३
तत्तेहं संप्रदास्यामि वामनो बलिमब्रवीत्।
पदत्रयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥४
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
भूर्लोकस भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च पदत्रयम् ॥५
चक्रे बलिं च सुतलं तच्छक्राय ददौ हरिः।
शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत् ॥६

अर्थात्—"प्राचीन काल में देवासुर संग्राम में बलि आदि असुरों ने समस्त देवताओं को जीत कर स्वर्ग से निकाल दिया था। तब समस्त देवगण विष्णु भगवान की शरण में पहुंचे। उन्होंने देवों को

अभय रहने का वचन दिया। उधर महर्षि कश्यप तथा माता अदिति ने देवताओं के हितार्थ तपस्या की। इस पर भगवान अदिति के गर्भ से वामन रूप में प्रकट हुये और राजा बलि के यज्ञ में पहुंचे। गंगाद्वार नामक स्थान में वे राजा बलि द्वारा पूजित हुये। उनके वेद पाठ से प्रसन्न होकर बलि ने कहा चाहे जो माँग लो। यद्यपि गुरुशुक्राचार्य ने उसे दान देने से रोका, पर फिर भी उसने वामन से कहा कि जो कुछ चाहो माँग लो। इस पर वामनजी ने कहा कि मुझे गुरु को देने के लिये तीन पैर जमीन की जरूरत है, जिससे मैं उनकी दक्षिणा चुका सकूँ। भूमि दान के लिये पृथ्वी पर संकल्प का जल छोड़ते ही वामन जी महा विशाल हो गये और उन्होंने तीन ही पैरों में तीनों लोक नाप लिये। तब उन्होंने राजा बलि को पकड़ कर नीचे सुतल लोक में भेज दिया और समस्त राज इन्द्र को सौंप दिया। इन्द्र ने वामनजी की स्तुति की और वह लोकों का स्वामी बन कर सुखी हुआ"

नारद-पुराण—

नारद पुराण में भी यह कथा विस्तार के साथ दी गई है। उसमें देवमाता अदिति की तपस्या का वर्णन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। दैत्यों ने उनकी तपस्या का हाल जान कर उनको विचलित करने के लिये वन में आग लगा दी, पर तब भी अपने ध्यान में लगी रहीं। भगवान के सुदर्शनचक्र ने उनकी रक्षा की और दैत्य लोग स्वयं ही अपनी आग से जल मरे। फिर भी जब विष्णु भगवान उनको वरदान देने आये तो उन्होंने अपने पुत्रों के कष्ट मिटाने की प्रार्थना करने के साथ यह भी कहा कि मैं नहीं चाहती कि दैत्य मारे जायें, क्योंकि वे भी कश्यपजी की अन्य पत्नी के पुत्र होने के नाते मेरे भी पुत्र ही हैं। इस पर विष्णु भगवान बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने कहा—

स्वात्मजे चान्यपुत्रेवा य. समत्वेन वर्तते।
न तस्य पुत्रशोक. स्यादेव धर्म. सनातन ॥

"जो अपने तथा दूसरे के पुत्रों पर समान भाव रखता है, उसके पुत्र कभी दुरवस्था में नहीं रह सकते, यही सनातन धर्म है"

जब वामनदेव बलि के पास दान-लेने को पहुंचे और शुक्राचार्य ने उसे दान देने को समझाया तो उसने गुरु के वचन को धर्म विरोधी मानते हुये कहा—

हरिर्हरति पापानि दुष्टाचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छमापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥
जिह्वाग्रवसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥

"यदि दूषित चित्त वाला व्यक्ति भी भगवान को स्मरण करे तो वे उसके पापों को वैसे ही जला देते हैं जैसे बिना इच्छा किये भी छू लिया जाय तो भी वह जला देती है। इसी प्रकार जिसकी जिह्वा के अग्रभाग 'हरि' ये दो अक्षर रहते हैं वह अवश्य ही वैकुण्ठधाम को प्राप्त करता है और उसका पुनरागमन नहीं होता।"

वामनदेव के तीन पग भूमि मांगने पर बलि ने सब जानते हुये भी बड़ी प्रसन्नता से भूमि दान दी। उस समय शुक्राचार्यजी सूक्ष्म रूप से संकल्प के जल पात्र में घुस उसके जल को बाहर गिरने से रोकने लगे। यह देख कर वामनदेव ने हाथ में लिये कुश को कलश के मुख में घुसेड़ दिया जिससे शुक्राचार्य जी की एक आँख फूट गई। तत्पश्चात् वामन भगवान ने तीनों लोक को नाप कर बलि को बड़े प्रेम से रसातल का अधिपति बना दिया।

भागवत महापुराण—

पर 'वामन-उपाख्यान' का सर्वोत्तम वर्णन भागवत में पाया जाता है। यद्यपि 'वामन पुराण' में भी वामन-चरित्र काफी विस्तार से दिया गया है, पर 'भागवत' की विद्वता, कवित्व और साहित्यिकता को शायद ही कोई पुराण कहीं-कहीं पहुंच सका हो 'भागवत' में वामन अवतार का कथानक भी बड़े काव्य मय रूप और प्रौढ़ शैली में वर्णित है। आरम्भ में भगवान के स्वरूप और उनके शुभ जन्म समय का वर्णन ही बड़े प्रभावशाली ढंग से किया गया है—

इत्थं विरञ्चिस्तुत कर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृत भूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासानलिनायतेक्षणः ॥१
श्यामावदाणोझखराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजःपुमान् ।
श्रीवत्सवक्षावलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥२
श्रोणायां श्रवण द्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ।
सर्वे नक्षत्रताराद्यश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥३
शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ।
चित्रवादित्र तूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥४
गायन्तोऽति प्रशंसन्ता नृत्यन्तो विबुधानुगाः ।
आदित्या आक्राम पदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥५

"जब ब्रह्माजी ने भगवान की शक्ति और लीला का गुणगान किया तब वे अदिति के सम्मुख प्रकट हुये। उनकी चार भुजाएं थीं जिनमें शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये थे, कमल के समान नेत्र थे और पीताम्बर धारण किये थे। श्यामवर्ण का उनका शरीर था, वक्षस्थल पर श्री वत्स का चिह्न था। वे कंगन बाजूबन्द, किरीट, करधनी, नूपुर आदि सुन्दर आभूषणों से युक्त थे। जिस समय उन्होंने जन्म लिया उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर थे। भाद्रपद शुक्ल की द्वादशी तिथि थी। अभिजित नक्षत्र में भगवान का जन्म हुआ। सभी नक्षत्र और ग्रह भगवान के जन्म को शुभ सूचित कर रहे थे। उस समय देवगण ने शंख, ढोल, मृदंग, डफ और नगाड़े बजाये। इन तमाम बाजों और तुरहियों के शब्द बड़े जोर का हुआ। उस समय समस्त देवगण तथा उनके अनुचर गाने, नाचने और प्रशंसा करने लगे और उन्होंने अदिति के आश्रम को पुष्प वर्षा से ढक दिया ॥१-५॥

इस प्रकार कश्यप, अदिति तथा अन्य देव तथा महर्षियों को चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर भगवान ने सब के देखते-देखते वामन रूप धारण कर लिया। तब उनके जात कर्म आदि संस्कार किये गये। उपनयन संस्कार में किस प्रकार समस्त प्रमुख देवों ने उनको विभिन्न सामिग्री अर्पण की इसका वर्णन करते हुये कहा है—

स वटु वामन दृष्ट्वा मोदमाना-महर्षय ।
कर्माणि कारयामासु पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥६
तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सवितात्रवीत् ।
वृहस्पतिर्यज्ञसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥७
ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पति ।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगत पते ॥८
कमण्डलुं वेदगर्भा कुशान्सप्तर्षयोददु ।
अक्षमाला महाराज सरस्वत्यव्ययात्मन ॥६
तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥१०
स ब्रह्मवर्चसेनैव समां सम्भावितो वटु ।
ब्रह्मर्षिगणसजुष्टामत्यरोचत मारिष ॥११

"भगवान को इस प्रकार ब्रह्मचारी के रूप में देख कर महर्षिगण बड़े प्रसन्न हुये और अन्य संस्कार करके उपनयन की तैयारी की। उस अवसर पर गायत्री के अधिष्ठाता सविता देव ने स्वयं उनको गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया। देवगुरु बृहस्पति ने यज्ञोपवीत, प्रजापति कश्यप जी ने मेखला, माता अदिति ने कोपीन दी। आकाश के देवता ने छत्र, ब्रह्माजी ने कमण्डल, सप्तर्षियों ने कुश, सरस्वती ने रुद्राक्षमाला अर्पित की। जब उपनयन संस्कार हो गया तो यक्षों के स्वामी कुबेर ने उनको भिक्षा का पात्र दिया जिसमें जगत् माता पार्वतीजी ने स्वयम् भिक्षा डाला। इस प्रकार सबके द्वारा सम्मानित होकर बटुक वेषधारी भगवान ब्रह्मर्षियों के मध्य ब्रह्मतेज से अत्यन्त शोभित हुये ॥६-११॥

उसी समय मालूम हुआ कि परम यशस्वी दैत्यराज बलि नर्मदा के तट पर 'भृगुकच्छ' नामक स्थान में बहुत विशाल अश्वमेध यज्ञ कर रहा है। यह मालूम होने पर वे उसके लिये चल दिये। जब वहाँ पर उपस्थित भृगुवंशी ब्राह्मणों ने सूर्य के समान तेजस्वी वामन भगवान को दूर से ही आते देखा तो वे सब आश्चर्य में पड़ गये और उनके सम्बन्ध में तरह तरह की कल्पनाएं करने लगे। उसी समय हाथ में

छत्र, दण्ड और जल से युक्त कमण्डलु लेकर वामनजी ने यज्ञशाला में प्रवेश किया। उनके तेज से प्रभावित होकर समस्त ऋत्विज उठ खड़े हुये और उनका स्वागत-सत्कार करने लगे। भगवान के छोटे स्वरूप के अनुरूप ही उनके समस्त अंग छोटे-छोटे अत्यन्त मनोहर और दर्शनीय थे। उनके दर्शन करके राजा बलि बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उनको श्रेष्ठ आसन दिया। उसने उनका भक्ति भाव के साथ स्वागत करके उनके चरण धोये और उस जल को अपने मस्तक पर धारण किया। जिस चरण-जल को स्वयं भगवान शिव ने मस्तक पर धारण किया है उस विष्णु के पादोदक को पाकर दैत्यराज बलि धन्य हो गया। उसने बड़े विनय पूर्वक उनसे निवेदन किया—

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्कि करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम् ॥१२
अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम्।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥१३
अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः।
हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥१४
यद्यद्वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।
गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥१५

"बलि ने कहा—भगवन्! मैं आपका स्वागत करता हूँ। आप आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपके दर्शनों से तो ऐसा लगता है कि महर्षियों की तपस्या ही मूर्तिमान होकर मेरे सम्मुख आ गई है। आपके यहाँ पधारने से मेरे पितर तृप्त हो गये, मेरा वंश पवित्र हो गया, मेरा यज्ञ सफल हो गया। आपके चरणोदक से मेरे समस्त पाप दूर हो गये और यज्ञों से जो फल मिलता है वह अनायास ही मिल गया, आपके चरण-रज से पृथ्वी भी पवित्र हो गई। अब आप कृपा करके अपनी मनोवांछा प्रकट कीजिये कि आप क्या चाहते हैं? गाय, सोना, सब प्रकार से सुसज्जित घर, अन्न-जल, विवाह के

लिये ब्राह्मण-कन्या, गाँव, घोड़, हाथी, रथ आदि जो कुछ आपकी इच्छा हो मैं आपको देने को प्रस्तुत हूं।" बलि के इन धर्म युक्त वचनों को सुनकर वामन भगवान ने सर्व प्रथम उसकी दानशीलता की जिस प्रकार प्रशंसा की यह इस धर्म कथा का बड़ा महत्वपूर्ण अंश है उन्होंने कहा—

वचस्तवैतज्जन देव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ।
यस्य प्रमाण भृगवः साम्पराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥१६
न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ।
प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वादाता द्विजातये ॥१७
न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थितः
परांमुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ।
युष्मत्कुले यद्यसमामलेन प्रह्लाद उद्भादि यथोडुपः खे ॥१८
यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमा महीम् ।
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥१६
य विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णु क्ष्मोद्धार आगतम् ।
नात्मान जयिन मेने तद्वीर्यं भूयंनुस्मरन् ॥२०

"हे राजन्! आपने जो कुछ कहा वह आपकी कुल मर्यादा के अनुकूल, धर्मयुक्त और कीर्ति-दायक है। ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि आप अपने कुल गुरु शुक्राचार्य जी की शिक्षा तथा अपने पितामह प्रह्लादजी के आदर्श को मानने वाले हैं। आपकी वंश परम्परा में कभी कोई हीनात्मा अथवा कंजूस नहीं हुआ, जिसने ब्राह्मणों को मुंहमांगा दान न दिया हो अथवा जो दान के लिये कह कर बाद में नाहीं करने लगा हो। दान देने समय याचक की याचना सुनकर अथवा युद्ध के अवसर पर किसी का सामना होने पर जिसने मुँह मोड़ लिया हो ऐसा कायर आपके वंश में कोई नहीं हुआ है। आपके पितामह प्रह्लाद जी का यश तो इस दृष्टि से आकाश में निर्मल चन्द्रमा की तरह फैल रहा है। आपके ही वंश में हिरण्याक्ष जैसा वीर उत्पन्न हुआ, जो अकेला ही गदा लेकर दिग्विजय के लिये निकला, पर समस्त भूमण्डल

में किसी ने उसका सामना करने का साहस न किया। समुद्र में से पृथ्वी का उद्धार करते समय उसका संघर्ष वाराह रूपधारी विष्णु भगवान से हुआ। उन्होंने उस पर किसी तरह विजय तो पाई, पर वे उसकी वीरता को सदा याद करते रहे और जीतने पर भी अपने को विजयी नहीं समझा ॥१६-२०॥

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा।
हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥२१
तामायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत्।
चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥२२
यतो यतोऽहं तत्रासौ प्राणभृतामिव।
अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥२३
एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर मायावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेणविविग्नचेताः ॥२४
सतन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद।
क्ष्मा द्यां दिशः ख विवरान् समुद्रान्
विष्णुं विचिन्तयन् न ददर्श वीर. ॥२५
अपश्यन्निति होवाच मयान्वियमिदं जगत्।
भ्रातृहा मे गतो नून यतो नावर्तते पुमान् ॥२६

"जब हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु को उसके वध का वृतान्त मालूम हुआ तो वह भगवान से बदला लेने को वैकुण्ठ लोक में पहुँचा। उसे देखकर उन माया रचने में परम कुशल विष्णु जी ने सोचा कि यह तो काल की तरह मेरी तरफ आ रहा है। अब मैं जहां कहीं जाऊंगा यह मेरे पीछे पड़ा रहेगा। इसलिये अब इससे बचने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि मैं इसी के हृदय में छिप जाऊँ। यह तो बहिर्मुख है, इसलिये अपने भीतर का इसे पता ही नहीं चलेगा। तब वे सूक्ष्म रूप से नासिका में होकर उसके हृदय में जा बैठे। जब हिरण्यकशिपु को भगवान वैकुण्ठ में न मिले तो उसने पृथ्वी, आकाश, पाताल, समुद्र सर्वत्र उनको ढूंढा।" जब कहीं उनका पता न

तो उसने विचार किया कि अवश्य ही मेरा भ्रातृघाती उस लोक में चला गया जहां से फिर लौटना नहीं होता ॥२६॥ तब उसने विचार किया कि यदि ऐसा है तो अब उससे वैर रखने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि सब तरह के झगड़े तो देह के साथ ही समाप्त हो जाते हैं।

पिता प्रह्लाद पुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सल.।
स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः ॥२७
भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभि.।
ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥२८
तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानित्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम ॥२६
नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात्।
नैन. प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ॥३०

"आपके पिता विरोचन भी बड़े दानी और ब्राह्मणों पर भक्ति रखने वाले थे। जब देवताओ ने छल पूर्वक ब्राह्मण का वेष बनाकर उनसे याचना की तो उन्होंने सब कुछ जानते हुये भी अपनी आयु तक दान मे दे डाली। आप भी उसी धर्म का पालन करते हैं जिसका उपदेश आपके गुरु तथा अन्य पूर्व पुरुषो ने किया है। आप मुंह मांगा दान देने वालों मे श्रेष्ठ हैं इसलिये मैं भी आप से थोड़ी सी भूमि—अपने पैरों से तीन डग मात्र मांगता हूं। मैं जानता हू कि आप जगत के स्वामी और बड़े उदार हैं, पर मैं इससे अधिक कुछ मांगना नहीं चाहता, ज्ञानी जन को केवल अपनी आवश्यकतानुसार दान स्वीकार करना चाहिये, क्यों कि इसी प्रकार के आचरण से वह प्रतिग्रह के पाप से बच सकता है ॥२७-३०॥

अब राजा बलि और वामनदेव के मध्य दान की न्यूनाधिकता पर जो वार्तालाप हुआ उससे वर्तमान समय के दान मांगने वाले कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं—

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मताः।
त्व बालो बालिश मतिः स्वार्थं प्रत्यबुधोयथा ॥३१

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ।
पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान द्वीपदाशुषम् ॥३२
न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ।
तस्माद् वृत्तिकरी भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥३३

"राजा बलि ने कहा—"हे ब्रह्मचारीजी ! तुम्हारी बातें तो वृद्धों के समान ज्ञान युक्त हैं पर तुम्हारी बुद्धि अभी बच्चों की सी है, क्योंकि तुम अपना हानि लाभ भी नहीं समझते । मैं इस समय तीनों लोकों का स्वामी हूँ और जिस पर प्रसन्न हो जाऊँगा उसको एक पूरा द्वीप भी दान दे सकता हूँ । ऐसी दशा में तुमने जो केवल तीन डग भूमि का दान माँगा यह कौन सी बुद्धिमानी है ? मैं तो ऐसा दानी हूँ कि जो एक बार मेरे पास माँगने को आवे उसे फिर कभी मागने की आवश्यकता ही न हो । इसलिये अपने निर्वाह के लिये आपको जितनी भी भूमि की आवश्यकता हो उतनी मैं अभी देने को तैयार हूँ ।" बलि की बात का उत्तर देते हुये भगवान ने उसे बताया—

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृपः ॥३४
त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नव वर्ष समेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥३५
सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैण्यगयादयः ।
अर्थैःकामैर्गता नान्तं तृष्णाया इतिनः श्रुतम् ॥३६
यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥३७
पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तयेस्मृतः ॥३८
यदृच्छा लाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत् प्रशाम्यत्य संतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥३९
तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद् वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्त यावत्प्रयोजनम् ॥४०

"वामनदेव ने कहा—असन्तोषी व्यक्ति के लिये संसार की समस्त सम्पदा भी अपर्याप्त है। जो तीन पग भूमि से सन्तुष्ट न होगा वह नौ खण्डों से युक्त पूरा द्वीप (पृथ्वी) पाने पर भी असन्तुष्ट बना रहेगा। क्यों कि एक द्वीप पा जाने पर उसके मन में शेष छः द्वीप पाने की इच्छा हो जायगी। यह सुना जाता है कि पृथु, गय आदि नरेश सातों द्वीपों के अधिपति थे, पर उनकी धन तथा भूमि की तृष्णा तब भी पूर्ण नहीं हुई थी। अपने उद्योग तथा प्रारब्ध से जो कुछ मिल जाय उसे पाकर सतोष रखने वाला व्यक्ति उतने में सुख से रह सकता है, पर जिसका मन और कामनायें वश में नहीं है वह तीनों लोक का आधिपत्य पा जाने पर भी दु:ख ही अनुभव करता रहेगा। वास्तव में धन और भोगों से सन्तुष्ट न होना ही इस जीवन-मरण के चक्र में पड़े रहने का कारण है। बिना सन्तोष के मुक्ति का प्राप्त होना संभव नहीं। जो ब्राह्मण स्वाभाविक रूप से प्राप्त होजाने वाली सामग्री से संतुष्ट रहता है उसका तेज बढ़ता रहता है, पर जो असन्तोषी ही बना रहता है उसका तेज वैसे ही लोप हो जाता है जैसे जल के सयोग से अग्नि। निस्सन्देह आप मुंह मांगा दान देने वाले प्रसिद्ध हैं, पर मेरा कार्य तीन पग भूमि मिलने से ही चल जायगा, इसलिये मैं उतनी ही मांगता हूँ ॥३४-४०॥

वामनदेव की उक्तियों को सुनकर महाराज बलि हँस पड़े और उन्होंने कहा–'तब, अच्छी बात है आप उतनी भूमि लें जितनी आपको इच्छा है।" यह कहकर ज्योंही उन्होंने संकल्प के लिये जल-पात्र को उठाया उसी समय उनके गुरु शुक्राचार्यजी ने उनको बुलाया और कहा—

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः।
कश्यपाददितेर्जातो देवाना कार्यसाधकः ॥४१

प्रतिश्रुत त्वयं तस्मै यदनर्थमजानता।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥४२

एप ते स्थानमैश्वर्य श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ।।४३
त्रिभिः क्रमैरिमांल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ।
सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढवर्तिष्यसे कथम् ।।४४
क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ।
स्वं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ।।४५

"हे विरोचन कुमार ! ये वामनदेव और कोई नहीं साक्षात् विष्णु भगवान हैं और देवताओं के हितार्थ कश्यप पत्नी अदिति के गर्भ से प्रकट हुये हैं। तुमने इनका भेद न जान कर दान देने की प्रतीज्ञा तो कर ली है, पर ये तुम्हारा सब कुछ छीन लेंगे। मेरी सम्मति में यह दैत्यों के प्रति बड़ा भारी अन्याय होगा। स्वयं भगवान अपनी माया से ब्रह्मचारी का रूप बनाकर यहाँ आये हैं और तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य, सम्पदा, अधिकार और यश छीन कर इन्द्र को दे देंगे। ये तो विश्व रूप हैं, तीन ही पैरों में समस्त लोकों को नाप डालेंगे। जब इस प्रकार तुम अपना सर्वस्व विष्णु को दे डालोगे, तब तुम्हारा क्या होगा ? ये तो एक ही डग में पृथ्वी और दूसरे में स्वर्ग को नाप लेंगे तब इनका तीसरा डग कहाँ जायगा ? ।।४१-४५।।

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ।।४६
न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ।।४७
धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पंचधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ।।४८
अत्रापि वह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।
सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हितं ।।४९
सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्याद नृतं मूलमात्मनः ।।५०

"दो पगों में तीनों लोक चले जाने पर जब तुम्हारे पास कुछ

बचेगा ही नहीं तो तीसरे की पूर्ति कैसे होगी ? उस दशा में प्रतिज्ञा-भंग के कारण तुमको नरक जाना होगा। दान देना अच्छा है पर इस प्रकार के दान का समर्थन कोई समझदार नहीं कर सकता जिससे जीवन निर्वाह का साधन भी न बचे। अरे, बिना साधन के तो मनुष्य दान, यज्ञ, तप और परोपकार के कार्य भी नहीं कर सकता। मनुष्य को अपना धन पाँच उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त विभाजित करना चाहिये—धर्म, यश, धन की वृद्धि, भोग और स्वजन। इस प्रकार योजनापूर्वक खर्च करने वाला ही लोक-परलोक में सुख पाता है। यदि तुमको यह भय है कि ऐसा करने से प्रतिज्ञा भंग हो जायगी तो मैं इस सम्बन्ध में तुमको वेदों की सम्मति बतलाता हूँ। उनमें कहा गया है कि "किसी को कुछ देने की बात स्वीकार कर लेना सत्य है और उससे मुकर जाना असत्य कहा जाता है। पर साथ ही यह भी विचारना चाहिये कि यह शरीर एक वृक्ष के समान है और सत्य इसका फल फूल है। यदि वृक्ष न रहे तो फल फूल कैसे रह सकते हैं ? शरीर की रक्षा अपनी सम्पत्ति को बचाये रहने पर ही हो सकती है।" ॥४६-५०॥

पर बलि ने किसी सांसारिक हानि-लाभ के विचार से अपनी प्रतीज्ञा को भंग करना उचित न समझा और गुरु तथा इष्ट-मित्रों का विरोध होते हुये वामनदेव को दान देने का संकल्प कर दिया।

इन विविध वर्णनों से प्रतीत होता है कि बलि-वामन का उपाख्यान वास्तव में प्राचीन है और उसका कुछ आधार भी है। यद्यपि इस प्रकार की रचनाओं में जो रोचकता और प्रभाव होता है, उसका श्रेय मुख्यतः कवि की प्रतिभा और काव्य-शक्ति को होता है, तो भी धर्म भाव और सदाचार की वृद्धि की दृष्टि से उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। निस्सन्देह इस आख्यान ने हमारे सामने एक ऐसा आदर्श रखा है, जिससे हम सत्य की महिमा को समझ कर अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं।